© नई दिल्ली, 1977
प्रमिला कपूर ।

भारत सरकार द्वारा प्रयोजित 'प्रकाशकों के सहयोग से लोकप्रिय पुस्तकों के लेखन, अनुवाद तथा प्रकाशन की योजना' के अन्तर्गत, इस पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया गया है जिसकी 3000 मुद्रित प्रतियों में से एक तिहाई प्रतियाँ सरकार ने प्रकाशक से खरीदी हैं। यह पुस्तक डॉ० प्रमिला कपूर द्वारा अंग्रेजी में मूलत: लिखी LOVE, MARRIAGE AND SEX शीर्षक पुस्तक का श्री मुनीशनारायण सक्सेना द्वारा कृत अनुवाद है।

अपने पिता श्रद्धेय स्वर्गीय श्री हरिकृष्णलाल भवन की पुण्य स्मृति में, जिन्होंने मुझे सदैव उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा बौद्धिक कार्य अपनाने के लिए प्रोत्साहन तथा प्रेरणा दी। उन्होंने मुझे जो स्नेह और सद्भावना दी उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ क्योंकि मैं आज जो कुछ भी हूँ, उसमें उनका बहुत बड़ा योगदान रहा है।

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा में विभिन्न प्रकार का ज्ञानवर्धक साहित्य उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार द्वारा पुस्तक-प्रकाशन सम्बन्धी अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं।

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के तत्त्वावधान में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा 'प्रकाशकों के सहयोग से हिन्दी में पुस्तकों के लेखन, अनुवाद और प्रकाशन की योजना' सन् 1961 से चल रही है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अद्यतन ज्ञान-विज्ञान का जन-सामान्य में प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय एकता, धर्म-निरपेक्षता तथा मानवता का उद्बोधन तथा हिन्दीतर भाषाओं के साहित्य को रोचक तथा लोकप्रिय हिन्दी भाषा में सुलभ कराना है। इन पुस्तकों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का उपयोग किया जाता है और योजना की पुस्तकें अधिक से अधिक पाठकों को सुलभ हो सकें, इस विचार से विक्रय-मूल्य कम रखा जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'विवाह, सेक्स और प्रेम' डॉ० प्रमिला कपूर की अंग्रेज़ी रचना 'लव, मैरेज एंड सेक्स' का अनुवाद है। 'प्रेम, विवाह और सेक्स' मानव की मूलभूत अभिवृत्तियाँ हैं जिनपर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की संरचना, कार्यशीलता एवं उसका अस्तित्व आधारित है। अतः आधुनिक युग एवं समाज के परिप्रेक्ष्य में इन अभिवृत्तियों का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। इस पुस्तक में इन्हीं मूल अभिवृत्तियों, इनकी परिवर्तनशील प्रवृत्तियों और इनके निर्धारक सिद्धांतों, प्रक्रियाओं आदि का अध्ययन और विवेचन भारत की युवा शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के जीवन को आधार मानकर किया गया है। आशा है, यह पुस्तक सभी पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

(हरवंशलाल शर्मा)
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
तथा निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

नई दिल्ली-22
जनवरी, 1977

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा में विभिन्न प्रकार का ज्ञानवर्धक साहित्य उपलब्ध कराने के लिए भारत सरकार द्वारा पुस्तक-प्रकाशन सम्बन्धी अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं।

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के तत्त्वावधान में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा 'प्रकाशकों के सहयोग से हिन्दी में पुस्तकों के लेखन, अनुवाद और प्रकाशन की योजना' सन् 1961 से चल रही है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अद्यतन ज्ञान-विज्ञान का जन-सामान्य में प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय एकता, धर्म-निरपेक्षता तथा मानवता का उद्बोधन तथा हिन्दीतर भाषाओं के साहित्य को रोचक तथा लोकप्रिय हिन्दी भाषा में सुलभ कराना है। इन पुस्तकों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का उपयोग किया जाता है और योजना की पुस्तकें अधिक से अधिक पाठकों को सुलभ हो सकें, इस विचार से विक्रय-मूल्य कम रखा जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'विवाह, सेक्स और प्रेम' डॉ० प्रमिला कपूर की अंग्रेजी रचना 'लव, मैरेज एंड सेक्स' का अनुवाद है। 'प्रेम, विवाह और सेक्स' मानव की मूलभूत अभिवृत्तियाँ हैं जिनपर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की संरचना, कार्यशीलता एवं उसका अस्तित्व आधारित है। अतः आधुनिक युग एवं समाज के परिप्रेक्ष्य में इन अभिवृत्तियों का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। इस पुस्तक में इन्हीं मूल अभिवृत्तियों, इनकी परिवर्तनशील प्रवृत्तियों और इनके निर्धारक सिद्धांतों, प्रक्रियाओं आदि का अध्ययन और विवेचन भारत की युवा शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के जीवन को आधार मानकर किया गया है। आशा है, यह पुस्तक सभी पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

हरवंशलाल शर्मा

(हरवंशलाल शर्मा)
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
तथा निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी [illegible]

नई दिल्ली-22
जनवरी, 1977

क्रम

भूमिका

हमारे यहाँ डॉ० प्रमिला कपूर उन कुछेक संवेदी समाजशास्त्रियों में से हैं, जिन्होंने भारत की शिक्षित, विवाहित, श्रमजीवी और सफ़ेदपोश स्त्रियों के जीवन और मनोवृत्तियों में हो रहे परिवर्तनों के अध्ययन में विशिष्टता प्राप्त की है। 1960 के कुछ वर्ष पहले से, जबकि उन्होंने समाजशास्त्र की पी-एच० डी० की डिग्री के लिए तैयारी आरम्भ की थी, वे उद्देश्य की एकनिष्ठता और कष्टसाध्य अध्यवसाय से नयी उभर रही उच्चतर तथा मध्यमवर्ग की उन शिक्षित और विवाहित स्त्रियों के जीवन, अभिवृत्तियों और मूल्यों का अध्ययन करती रही हैं, जिन्होंने घर की चारदीवारी से बाहर, विशेषतः नौकरियों तथा व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश कर, आजीविका कमाने की नयी भूमिकाओं को अपनाया।

डॉ० प्रमिला कपूर ने "हिन्दू शिक्षित श्रमजीवी नवयुवतियों के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अभिवृत्तियों में बदलते हुए दृष्टिकोण" विषय में अनुसन्धान किया और 1960 में आगरा यूनिवर्सिटी की इंस्टीच्यूट ऑफ़ सोशल साइंसिज़ से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। यह उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने अपना अनुसन्धान उससे आगे विशिष्टता हासिल करने के लिए जारी रखा और डी० लिट० की उपाधि प्राप्त की। यह अनुसन्धान "मैरेज एंड द वर्किंग वूमैन इन इण्डिया" नाम से (1970 में) पुस्तक रूप में (तथा 1976 में "भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ" हिन्दी-अनुवाद के रूप में) प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशन का सम्मान के साथ स्वागत हुआ और इससे डॉ० प्रमिला कपूर इस विशिष्ट क्षेत्र की प्रामाणिक अनुसन्धान-कर्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुईं।

डॉ० प्रमिला कपूर ने उन 500 विवाहित और श्रमजीवी हिन्दू [illegible] में से अधिकांश के प्रसंग में अनुसन्धान का अपना कार्य जारी रखा, जिनका [illegible] पी-एच० डी० के शोध के बाद किया था, और उनके अतिरिक्त कुछ [illegible] पिछले कुछ वर्षों में इन स्त्रियों की अभिवृत्तियों में हुए परिवर्तनों का प्र[illegible]

लिए चुना। उन्होंने एक बहुत ही चुनौती-भरे विषय—'विवाह, सेक्स और प्रेम के प्रति दृष्टिकोण' को चुना।

इस दिलचस्प अध्ययन में डॉ० प्रमिला कपूर ने विश्लेषण के अपने ठेठ तौर-तरीक़े अपनाकर उन बदलती हुई अभिवृत्तियों पर रोशनी डाली है, जो अब तक मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं के ऐसे अछूते, गूढ़ आन्तरिक, सर्वथा वर्जित और अतीव कोमलता से देखे जानेवाले पक्ष रहे हैं जो कि अनुसन्धान से सम्बद्ध स्त्रियों के जीवन को प्रभावित करते रहे हैं। डॉ० प्रमिला कपूर ने इन उत्तरदाताओं के मन की थाह तक पहुँचने की ओर धैर्यपूर्ण, जटिल और वस्तुनिष्ठ ढंग से विवाह, सेक्स और प्रेम के प्रति 500 के लगभग स्त्री-उत्तरदाताओं के विचारों को एकत्रित करने की कोशिश की है।

इस पुस्तक में पाँच अध्याय हैं और अन्त में अंग्रेज़ी के सन्दर्भ-ग्रन्थों की विस्तृत तालिका। डॉ० कपूर ने अपने विषय के प्रतिपादन का बहुत ही स्पष्ट प्रतिमान प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय 'संक्षिप्त विवरण और प्रविधि' में लेखिका ने अपनी प्रमुख मान्यताओं को, अपनी आधार-भूमिका और अपनी कार्य-प्रणाली की अपेक्षाओं की व्याख्या प्रस्तुत की है। डॉ० कपूर ने उन कारणों को स्पष्ट किया है कि क्यों उन्होंने अपने अन्वेषण के परिणामों को सांख्यिकीय रूप में न पेश कर व्यक्ति-अध्ययन की कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया। यदि परिशिष्ट में उन्होंने सांख्यिकीय सामग्री भी जोड़ दी होती तो लेखिका के निष्कर्षों का आधार अधिक दृढ़ होता। इससे अन्य विशेषज्ञों को उनके निष्कर्षों का मूल्यांकन करने में मदद मिलती और इस अध्ययन से सूत्र पाकर देश के दूसरे भागों में इसी समान क्षेत्र के अध्ययन करने में सुभीता रहता। लेखिका ने पर्याप्त पांडित्य का परिचय दिया है। उन्हें इस प्रकार के व्यक्ति-अध्ययनों की कठिनाइयों का भी ज्ञान है और उनकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने अन्य अनुसन्धाताओं को कुछ विभिन्न खतरों से बचने की सलाह दी है जिनमें कि वे पड़ सकते हैं।

दूसरे, तीसरे तथा चौथे अध्याय क्रमशः 'प्रेम', 'विवाह' और 'सेक्स' से—जैसा कि इन श्रमजीवी स्त्रियों ने उन्हें समझा—सम्बन्ध रखते हैं। डॉ० कपूर की व्याख्या का ढांचा तर्कपूर्ण है और उनके उद्देश्य से उनका सामंजस्य है। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में उन्होंने बहुत विस्तार से सुप्रतिष्ठित दार्शनिकों, सामाजिक-विचारकों और समाज-अन्वेषियों के अधिगमों का सामान्य धारणाओं की जटिलता दिखलाने के लिए पुनरावलोकन किया है। फिर वे बतलाने की कोशिश करती हैं कि किस प्रकार वे इन धारणाओं को अपने अनुसन्धान के व्यावहारिक उपकरण के रूप में कार्यान्वित करती हैं। तब कुछ व्यक्ति-अध्ययनों को डॉ० कपूर अपने निष्कर्षों के दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करती हैं, और अन्ततः अपने व्यापक कथ्य का, जिसमें उनके निष्कर्ष सम्मिलित होते हैं, उल्लेख करती हैं। अपने कथ्य के दौरान वे अपने निष्कर्षों को अन्तर्राष्ट्रीय

और भारतीय विद्वानों के निष्कर्षों के साथ बड़ी सूझ-बूझ से एकाकार करती चलती हैं। उन्हें इसका भान है कि कुछ वे व्यक्ति-अध्ययन, जिनकी तरफ़ उनका संकेत है, सही तौर पर समतुल्य नहीं हैं। लेकिन क्योंकि उन अध्ययनों का ध्येय आधुनिक और शिक्षित स्त्रियों की बदलती हुई मनोवृत्तियों की खोज है, इसलिए इन्हीं प्रकरणों को—यद्यपि विभिन्न प्रसंग में—वे तर्कसंगत ढंग से मान लेती हैं कि उन निष्कर्षों में प्रवृत्तियों को तलाशने में मदद मिल सकती है।

इन अध्यायों में डॉ० कपूर इन धारणाओं से अपने सच्चे द्वन्द्व को अनेक अन्य विचारकों के लेखन की प्रचुर छानबीन में प्रदर्शित करती चलती हैं। सम्पर्क सामंजस्य बना लेने में भी वे अपना कौशल दिखलाती हैं। विवाहित श्रमजीवी स्त्रियों की प्रतिक्रियाओं में सूक्ष्म मतभेद की परतों को उघाड़ने में भी वे अपनी योग्यता दिखलाती हैं। अभिवृत्तियों में हो रहे परिवर्तनों की ओर एक कलाकार की दक्षता से डॉ० कपूर इशारा करने में सफल रही हैं। उनके कई सुझाव आनेवाले अनुसन्धाताओं के मार्ग को प्रशस्त करेंगे।

इतने विद्वत्तापूर्ण, विवेकशील और दिलचस्प अध्ययन के लिए डॉ० कपूर हमारी प्रशंसा की अधिकारिणी हैं।

पुस्तक के अन्तिम अध्याय में डॉ० कपूर ने अपने निष्कर्षों का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया है। 'सिंहावलोकन' शीर्षक अध्याय के प्रायः तीन अनुच्छेद हैं। पहले अनुच्छेद में अपने निष्कर्षों का उन्होंने संश्लिष्ट प्रारूप पेश किया है। दूसरे अनुच्छेद में उन्होंने मनोवैज्ञानिक-सामाजिक, व्यक्तिगत और परिवेश से सम्बद्ध तत्त्वों को छाँटने की कोशिश की है, ताकि विवाहित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों की अभिवृत्तियों में उनके दो अध्ययनों के बीच की अवधि में हुए परिवर्तनों के कारणों को रेखांकित किया जा सके। अन्तिम अनुच्छेद में डॉ० कपूर ने अनेक ऐसे विमर्श प्रस्तुत किये हैं जिन्हें वे अपने अध्ययन के निष्कर्षों तथा इस विषय के तथा इतिहास के अध्ययन से उपजा मानती हैं।

इस अध्याय के आरम्भिक अनुच्छेद योग्यतापूर्ण एवं वैध हैं। मैं चाहता हूँ कि इसी अध्याय के उत्तरार्ध में किये गये सामान्यीकरणों से, जिनका कि सम्बन्ध उनके अध्ययन से नहीं है, डॉ० कपूर बची रहतीं।

डॉ० कपूर के अध्ययन का क्षेत्र शिक्षित और श्रमजीवी विवाहित हिन्दू स्त्रियाँ हैं। नयी परिस्थितियों को स्वीकारते हुए, कि स्त्रियों को दो भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं, लेखिका ने मूल रूप से उनके बदलते हुए दृष्टिकोण को लेखनीबद्ध करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने पर्यवेक्षण को परिवार के घेरे में अभिवृत्तियों में हो रहे परिवर्तनों पर केन्द्रित किया है। आधुनिक-पूँजीवादी नगरीय आर्थिक एवं सामाजिक ढाँचे के सन्दर्भ में एक व्यक्तिवादी, प्रतियोगी-मनोविज्ञान और नगदी तथा संविदा आ[illegible] बंध और विह्लासित लेकिन तीव्रीकृत प्रकार्यों का सम्मिश्रण सामने आया है। ले[illegible] ने अनेक स्थलों पर बतलाया है कि किस प्रकार श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों

दृष्टिकोण में अनुकूलन की सही भावना की, अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता की, समान व्यवहार की अपेक्षा की और नैतिकता के दोहरे मानदंडों के विरुद्ध बढ़ रही विरुचि की झलक देखने को मिलती है। उन्होंने यह भी दरशाया है कि किस प्रकार उच्च जाति और उच्च तथा मध्यमवर्गों की हिन्दू स्त्रियाँ विसम्बन्ध की भावना का, एकाकीपन की भावना का और अपने जीवन-साथियों से सम्मानित, हर सुख-सुविधा से परिपूर्ण तथा आर्थिक दृष्टि से उच्च स्तर का जीवन पा सकने की मृगतृष्णा जैसी खोज का अनुभव कर रही हैं। भारत की नारी के सामने जो विशाल समस्याएँ हैं उनके प्रसंग में वैयक्तिक सुख-सुविधा की इस लालसा को उन्हें अपने चिन्तन का आधार बनाना चाहिए था। जैसा कि प्रोफ़ेसर गाडगिल तथा अन्य विद्वानों ने बताया है, आत्महत्याओं तथा तलाक़ों की बढ़ती हुई संख्या और सवेतन कोटि के अतिरिक्त अन्य कोटियों में नौकरी पाने के क्रमशः घटते हुए अवसरों की उभरती हुई पृष्ठभूमि के प्रसंग में देखा जाये तो अधिकांश स्त्रियों के लिए शिक्षा के अवसरों का जो अभाव है और निम्न वर्ग की कोटिसंख्यक स्त्रियों को घर बसाने के लिए जो नगण्य सामाजिक, सांस्कृतिक तथा चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उनके बीच इतना अधिक अन्तर है कि मध्यम वर्ग तथा ऊँची जाति की ये हिन्दू स्त्रियाँ एक ऐसे चेतना-विधान की परिचायक लगती हैं जो उन विशाल लक्ष्यों की पृष्ठभूमि में, जिनका कि भारत की स्त्रियों को सामना करना पड़ रहा है, सापेक्ष रूप से स्वार्थपूर्ण तथा सतही हैं।

मैं चाहता हूँ कि डॉ० कपूर अपने अगले शोध-कार्यों में अपना ध्यान भारत की विवाहित श्रमजीवी स्त्रियों के इन पहलुओं पर केन्द्रित करें। मैं डॉ० प्रमिला कपूर से अनुरोध करना चाहूँगा कि वे अपने अभिवृत्तिमूलक अन्वेषण का क्षेत्र विस्तृत करके तनाव उत्पन्न करने वाले ढाँचे की उस परिधि में प्रवेश करें जो उन स्त्रियों के लिए अनियत परिस्थितियों की प्रेरक होती हैं जिनके सामने दो भूमिकाएँ निभाने की समस्या है। मैं उनसे यह भी अनुरोध करना चाहूँगा कि वे अपना ध्यान सफ़ेदपोश परिवारों की ओर से हटाकर कारखानों में काम करनेवालों के परिवारों की ओर केन्द्रित करें।

डॉ० प्रमिला कपूर इस विचारोत्तेजक अन्वेषण के लिए बधाई की पात्र हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि यह पुस्तक व्यापक रूप से पढ़ी जायेगी।

—ए० आर० देसाई

समाजशास्त्र विभाग,
बम्बई विश्वविद्यालय
बम्बई—29

आमुख

प्रेम, विवाह तथा सेक्स के बारे में चर्चा करना तथा मत व्यक्त करना भारत में अपेक्षाकृत नयी बात है। आमतौर पर अब लोग यह जानने के लिए उत्सुक होते जाते रहे हैं कि समाज के विभिन्न वर्गों के लोग इन महत्त्वपूर्ण समस्याओं के बारे में क्या सोचते हैं, क्या महसूस करते हैं और क्या करते हैं। मानव-जीवन के इन महत्त्वपूर्ण पहलुओं के प्रति समकालीन अभिवृत्तियों अथवा व्यवहार के बारे में या इन अभिवृत्तियों में हो रहे परिवर्तनों के बारे में किसी वैज्ञानिक तथा विस्तृत अध्ययन के अभाव में लोग आमतौर पर अटकलों तथा अवैज्ञानिक स्थूल मान्यताओं को अपनी धारणाओं तथा अपनी जानकारी का आधार बना लेते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में यह मानकर चला गया है कि किसी भी व्यक्ति की अभिवृत्तियाँ उसके आत्मगत जीवन का आधारभूत अंग होती हैं और बहुत बड़ी हद तक उसके विचारों तथा व्यवहार को निर्धारित करती हैं। इस पुस्तक में मैंने प्रेम तथा सेक्स-जीवन के सम्बन्ध में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के वास्तविक व्यवहार तथा आचरण के ब्योरे की बातों पर प्रकाश नहीं डाला है। परन्तु चूंकि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी समूह के प्रत्यक्ष तथा प्रच्छन्न व्यवहार पर अभिवृत्तियों का दूरगामी प्रभाव पड़ता है, इसलिए इस पुस्तक में मैंने इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया है कि शिक्षित श्रमजीवी युवतियाँ इन तीन मुख्य पहलुओं के बारे में क्या अनुभव करती हैं तथा सोचती हैं।

इस अध्ययन का सूत्रपात 1959 में हुआ था जब मैं अपने पी-एच० डी० के शोध-निबन्ध के लिए आधार-सामग्री एकत्रित कर रही थी, जिसमें शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू युवतियों की अभिवृत्तियों का अध्ययन किया गया था। मैंने अपना पी-एच० डी० का कार्य सुविख्यात समाजविज्ञानी प्रोफ़ेसर आर० एन० सक्सेना के योग्य मार्गदर्शन में आगरे के समाज-विज्ञान संस्थान में किया था। उस अध्ययन में स्त्रियों की शिक्षा, रोज़गार, विवाह, संस्कृति, धर्म, मनोरंजन, नैतिकता, राजनीति और सम्पूर्ण जीवन के

प्रति उनकी अभिवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। जिस समय मैं प्रश्नावली का का पूर्व-परीक्षण कर रही थी और उत्तरदाताओं से नैतिक मानदण्डों के प्रति उनके विचार मालूम करने का प्रयत्न कर रही थी, उस समय मैंने शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की प्रतिक्रियाओं में बिल्कुल चुप्पी साधे रहने से लेकर काफी स्पष्टवादिता तक बहुत विविधता देखी, और मैंने यह महसूस किया कि यद्यपि वे अपने विचार व्यक्त करने में संकोच करती हैं लेकिन वे निश्चित रूप से प्रेम तथा सेक्स के बारे में और अधिक बातें कहना चाहती हैं। थोड़ी घनिष्ठता स्थापित हो जाने पर मैंने उनसे अपने जीवन तथा अनुभवों के बारे में बताने को कहा। उस समय मैंने महसूस किया कि मुझे प्रेम तथा सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्तियों का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। इस-लिए मैंने अलग से एक प्रश्नमाला तैयार करके अपने उत्तरदाताओं के सामने रखी जिसमें विवाह, प्रेम तथा सेक्स के बारे में अधिक विस्तार के साथ कुछ और प्रश्न पूछे गये थे। जब मैंने आधार-सामग्री का विश्लेषण करना तथा पी-एच० डी० के लिए अपना शोध-प्रबन्ध लिखना आरम्भ किया तो मेरा पूरा इरादा था कि मैं अपनी इस तरी प्रश्नमाला के निष्कर्षों को भी उसमें शामिल करूँगी। लेकिन जब मैंने सौ व्यक्ति-ध्ययन तैयार कर लिये तो मैंने देखा कि इन समस्याओं की विस्तृत विवेचना किये मना ही शोध-प्रबन्ध बहुत बड़ा हो गया है। इसलिए मैंने इस आधार-सामग्री को ागे चलकर कभी इस्तेमाल करने के लिए रख छोड़ने का निश्चय किया।

प्रोफ़ेसर एस० सी० दुबे ने, जिनसे मैं पहली बार उस समय मिली थी जब ह मेरे पी-एच० डी० के परीक्षक होकर इंस्टीच्यूट में आये थे, मुझे बधाई दी कि मैंने ्यक्ति-अध्ययनों का उपयोग बहुत प्रभावशाली ढंग से किया था और उन्हें अध्ययन के ाष्कर्षों की व्याख्या करने तथा उन्हें दृष्टान्तों से पुष्ट करने के लिए इस्तेमाल किया ा। उन्होंने बहुत जोर देकर यह सुझाव रखा कि मैं अपना शोध-प्रबन्ध प्रकाशित राऊँ। उन्होंने मुझे यह बहुमूल्य परामर्श देकर मेरे साथ बड़ा उपकार किया कि मैं ल पाठ में किस प्रकार कुछ प्रतिनिधि व्यक्ति-अध्ययनों को शामिल करके उसे पुस्तक ा रूप दे सकती हूँ। मेरी मौखिक परीक्षा के कुछ ही दिन बाद मेरे पति गाज़ा से ाट आये जहाँ वह संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनाओं की भारतीय टुकड़ी के सेनापति की सियत से काम कर रहे थे। ज्यों ही मैं अपने शोध-प्रबन्ध को पुस्तक का रूप देने के न पर फिर से विचार करने की स्थिति में हुई, मुझे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से नियर रिसर्च फ़ेलोशिप मिल गयी और मैं पी-एच० डी० के बाद श्रमजीवी स्त्रियों ववाहिक समायोजन की समस्या का अध्ययन करने के वृहद कार्य में व्यस्त हो गयी। 67 के अन्त में अपना शोध-प्रबन्ध लिखने के तुरन्त बाद मैं अपने पति के पास ाणी वियतनाम चली गयी, जहाँ वे अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण तथा निरीक्षण आयोग प्रधान सेनापति के पद पर नियुक्त थे। मैंने बहुत अधिक विलम्ब हो जाने से पहले पी-एच० डी० के बाद अपने इस शोध-प्रबन्ध को प्रकाशित कराने का दृढ़ निश्चय किया था। इसलिए वापस लौटने पर मैंने इस अध्ययन को लगभग पूरी तरह फिर

से लिख डाला और 1970 में वह **मैरेज एंड द वर्किंग वुमेन इन इण्डिया** ["भारत में विवाह और कामकाजी-महिलाएँ" (हिन्दी में 1976 में)] के नाम से प्रकाशित हुआ।

1969 में मैंने इस बात को और भी अधिक उग्र रूप से अनुभव किया कि यद्यपि अभिवृत्ति-परिवर्तन से सम्बन्धित सिद्धान्तों में अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन के स्वरूप तथा विभिन्न कारकों के बारे में अत्यन्त विविध तथा व्यापक सामग्री प्रस्तुत की जाती है परन्तु इस परिवर्तन को लाने में योग देनेवाले अधिक व्यापक वास्तविक मनोगत सामाजिक अनुभवों के बारे में अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। प्रेम तथा सेक्स के प्रति अभिवृत्तियों के बारे में प्राय: कोई भी अध्ययन नहीं थे और इन पहलुओं के प्रति शिक्षित स्त्रियों की अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही थीं। इसके अतिरिक्त भारत में इस प्रकार के प्राय: कोई भी विस्तृत अध्ययन उपलब्ध नहीं थे जिनमें दो विभिन्न समयों पर सीधी छानबीन करके अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों की प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर विवेचना की गयी हो। इसलिए उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए मैंने पाँच सौ शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू युवतियों के एक प्रतिनिधि नमूने की अभिवृत्तियों का अध्ययन करने का निश्चय किया जो वैज्ञानिक दृष्टि से उन स्त्रियों के अनुरूप हो जिनका अध्ययन मैंने दस वर्ष पहले 1959 में किया था। इसलिए मैंने उनके सामने भी वही प्रश्नमाला रखी जो मैंने पांच सौ शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के पहले वाले नमूने के लिए इस्तेमाल की थी परन्तु जिनके उत्तरों का मैंने विश्लेषण नहीं किया था और उन्हें अपने पी-एच० डी० के शोध प्रबन्ध में विस्तारपूर्वक प्रस्तुत नहीं किया था। इन दोनों ही छानबीनों में मैंने इन स्त्रियों से साक्षात्कार किया और इस बात का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया कि इन समस्याओं के प्रति उनकी संकल्पना तथा अभिवृत्तियों में किस हद तक और किस ढंग से परिवर्तन हुआ है। ऐसा इस उद्देश्य से किया गया था कि दस वर्ष के अन्तराल के बाद उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन को व्यवस्थित ढंग से जांचा जा सके। इस कार्य की कल्पना इस रूप में की गयी थी और इस वैज्ञानिक मूल्यांकन का प्रतिफल इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सुविधा की दृष्टि से और विश्लेषण तथा प्रस्तुतीकरण के उद्देश्यों से भी पुस्तक को पांच स्पष्ट अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहले अध्याय में विषय का परिचय दिया गया है और आधार-सामग्री एकत्रित करने तथा उसका विश्लेषण करने की पद्धति का व्योरा प्रस्तुत किया गया है। दूसरे, तीसरे तथा चौथे अध्यायों में क्रमश: प्रेम, विवाह तथा सेक्स के विभिन्न पहलुओं के प्रति बदलती हुई अभिवृत्तियों की विवेचना की गयी है। अन्तिम अध्याय में इस अध्ययन के निष्कर्षों को सार-रूप में प्रस्तुत किया गया है और प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्तियों के निरूपण तथा उन अभिवृत्तियों में परिवर्तन में योग देनेवाले सामाजिक-मानसिक और साथ ही स्थितिमूलक कारकों का विश्लेषण किया गया है।

प्रति उनकी अभिवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। जिस समय मैं प्रश्नावली का का पूर्व-परीक्षण कर रही थी और उत्तरदाताओं से नैतिक मानदण्डों के प्रति उनके विचार मालूम करने का प्रयत्न कर रही थी, उस समय मैंने शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की प्रतिक्रियाओं में बिलकुल चुप्पी साधे रहने से लेकर काफी स्पष्टवादिता तक बहुत विविधता देखी, और मैंने यह महसूस किया कि यद्यपि वे अपने विचार व्यक्त करने में संकोच करती हैं लेकिन वे निश्चित रूप से प्रेम तथा सेक्स के बारे में और अधिक बातें कहना चाहती हैं। थोड़ी घनिष्ठता स्थापित हो जाने पर मैंने उनसे अपने जीवन तथा अनुभवों के बारे में बताने को कहा। उस समय मैंने महसूस किया कि मुझे प्रेम तथा सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्तियों का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। इसलिए मैंने अलग से एक प्रश्नमाला तैयार करके अपने उत्तरदाताओं के सामने रखी जिसमें विवाह, प्रेम तथा सेक्स के बारे में अधिक विस्तार के साथ कुछ और प्रश्न पूछे गये थे। जब मैंने आधार-सामग्री का विश्लेषण करना तथा पी-एच० डी० के लिए अपना शोध-प्रबन्ध लिखना आरम्भ किया तो मेरा पूरा इरादा था कि मैं अपनी इस दूसरी प्रश्नमाला के निष्कर्षों को भी उसमें शामिल करूँगी। लेकिन जब मैंने सौ व्यक्ति-अध्ययन तैयार कर लिये तो मैंने देखा कि इन समस्याओं की विस्तृत विवेचना किये बिना ही शोध-प्रबन्ध बहुत बड़ा हो गया है। इसलिए मैंने इस आधार-सामग्री को आगे चलकर कभी इस्तेमाल करने के लिए रख छोड़ने का निश्चय किया।

प्रोफ़ेसर एस० सी० दुबे ने, जिनसे मैं पहली बार उस समय मिली थी जब वह मेरे पी-एच० डी० के परीक्षक होकर इंस्टीच्यूट में आये थे, मुझे बधाई दी कि मैंने व्यक्ति-अध्ययनों का उपयोग बहुत प्रभावशाली ढंग से किया था और उन्हें अध्ययन के निष्कर्षों की व्याख्या करने तथा उन्हें दृष्टान्तों से पुष्ट करने के लिए इस्तेमाल किया था। उन्होंने बहुत ज़ोर देकर यह सुझाव रखा कि मैं अपना शोध-प्रबन्ध प्रकाशित कराऊँ। उन्होंने मुझे यह बहुमूल्य परामर्श देकर मेरे साथ बड़ा उपकार किया कि मैं मूल पाठ में किस प्रकार कुछ प्रतिनिधि व्यक्ति-अध्ययनों को शामिल करके उसे पुस्तक का रूप दे सकती हूँ। मेरी मौखिक परीक्षा के कुछ ही दिन बाद मेरे पति गाज़ा से लौट आये जहाँ वह संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनाओं की भारतीय टुकड़ी के सेनापति की हैसियत से काम कर रहे थे। ज्यों ही मैं अपने शोध-प्रबन्ध को पुस्तक का रूप देने के प्रश्न पर फिर से विचार करने की स्थिति में हुई, मुझे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सीनियर रिसर्च फ़ेलोशिप मिल गयी और मैं पी-एच० डी० के बाद श्रमजीवी स्त्रियों के दाम्पत्य समायोजन की समस्या का अध्ययन करने के वृहद कार्य में व्यस्त हो गयी। 1967 के अन्त में अपना शोध-प्रबन्ध लिखने के तुरन्त बाद मैं अपने पति के पास दक्षिणी वियतनाम चली गयी, जहाँ वे अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण तथा निरीक्षण आयोग के प्रधान सेनापति के पद पर नियुक्त थे। मैंने बहुत अधिक विलम्ब हो जाने से पहले ही पी-एच० डी० के बाद अपने इस शोध-प्रबन्ध को प्रकाशित कराने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। इसलिए वापस लौटने पर मैंने इस अध्ययन को लगभग पूरी तरह फिर

से लिख डाला और 1970 में वह **मैरेज एंड द वकिंग वुमेन इन इण्डिया** ["भारत में विवाह और कामकाजी-महिलाएँ" (हिन्दी में 1976 में)] के नाम से प्रकाशित हुआ।

1969 में मैंने इस बात को और भी अधिक उग्र रूप से अनुभव किया कि यद्यपि अभिवृत्ति-परिवर्तन से सम्बन्धित सिद्धान्तों में अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन के स्वरूप तथा विभिन्न कारकों के बारे में अत्यन्त विविध तथा व्यापक सामग्री प्रस्तुत की जाती है परन्तु इस परिवर्तन को लाने में योग देनेवाले अधिक व्यापक वास्तविक मनोगत सामाजिक अनुभवों के बारे में अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। प्रेम तथा सेक्स के प्रति अभिवृत्तियों के बारे में प्राय: कोई भी अध्ययन नहीं थे और इन पहलुओं के प्रति शिक्षित स्त्रियों की अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही थीं। इसके अतिरिक्त भारत में इस प्रकार के प्राय: कोई भी विस्तृत अध्ययन उपलब्ध नहीं थे जिनमें दो विभिन्न समयों पर सीधी छानबीन करके अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों की प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर विवेचना की गयी हो। इसलिए उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए मैंने पाँच सौ शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू युवतियों के एक प्रतिनिधि नमूने की अभिवृत्तियों का अध्ययन करने का निश्चय किया जो वैज्ञानिक दृष्टि से उन स्त्रियों के अनुरूप हो जिनका अध्ययन मैंने दस वर्ष पहले 1959 में किया था। इसलिए मैंने उनके सामने भी वही प्रश्नमाला रखी जो मैंने पाँच सौ शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के पहले वाले नमूने के लिए इस्तेमाल की थी परन्तु जिनके उत्तरों का मैंने विश्लेषण नहीं किया था और उन्हें अपने पी-एच० डी० के शोध प्रबन्ध में विस्तारपूर्वक प्रस्तुत नहीं किया था। इन दोनों ही छानबीनों में मैंने इन स्त्रियों से साक्षात्कार किया और इस बात का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया कि इन समस्याओं के प्रति उनकी संकल्पना तथा अभिवृत्तियों में किस हद तक और किस ढंग से परिवर्तन हुआ है। ऐसा इस उद्देश्य से किया गया था कि दस वर्ष के अन्तराल के बाद उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन को व्यवस्थित ढंग से जाँचा जा सके। इस कार्य की कल्पना इस रूप में की गयी थी और इस वैज्ञानिक मूल्यांकन का प्रतिफल इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सुविधा की दृष्टि से और विश्लेषण तथा प्रस्तुतीकरण के उद्देश्यों से भी पुस्तक को पाँच स्पष्ट अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहले अध्याय में विषय का परिचय दिया गया है और आधार-सामग्री एकत्रित करने तथा उसका विश्लेषण करने की पद्धति का ब्योरा प्रस्तुत किया गया है। दूसरे, तीसरे तथा चौथे अध्यायों में क्रमश: प्रेम, विवाह तथा सेक्स के विभिन्न पहलुओं के प्रति बदलती हुई अभिवृत्तियों की विवेचना की गयी है। अन्तिम अध्याय में इस अध्ययन के निष्कर्षों को सार-रूप में प्रस्तुत किया गया है और प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्तियों के निरूपण तथा उन अभिवृत्तियों में परिवर्तन में योग देनेवाले सामाजिक-मानसिक और साथ ही स्थितिमूलक कारकों का विश्लेषण किया गया है।

यह मुख्यतः एक गुणात्मक अध्ययन है और मेरा पूर्ण विश्वास है कि ठोस दृष्टान्त दूसरों तक जानकारी पहुँचाने का सबसे सफल साधन हैं। इसलिए अपने अध्ययनों के निष्कर्षों को दृष्टान्तों से पुष्ट करने तथा उनकी व्याख्या करने के लिए मैंने बहुत बड़ी हद तक व्यक्ति-अध्ययनों का सहारा लिया है।

इस अध्ययन की एक कमी जिसका उल्लेख किया जा सकता है वह यह है कि कुछ प्रक्षेपीय परीक्षणों की सहायता से अचेतन मन की गहराइयों का अन्वेषण करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। परन्तु चूंकि इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इस बात की छानबीन करना था कि श्रमजीवी स्त्रियाँ सचेतन मन से क्या सोचतीं, विश्वास करतीं तथा अनुभव करती हैं—उनके विचारों, आस्थाओं तथा परिप्रेक्ष्य का उनका आत्मपरक जगत्—इसलिए इस कमी को अनदेखा किया जा सकता है।

अध्ययन के कम ही क्षेत्र ऐसे होंगे जो शोधकर्ता तथा शोध के "पात्रों" दोनों ही के लिए इतने रोचक हों जितना कि बुनियादी महत्त्व की समस्याओं के प्रति आत्मपरक अभिवृत्तियों का अध्ययन। प्रत्यक्ष छानबीन के दौरान मुझे जो कठिन परिश्रम करना पड़ा और जो अपमान सहने पड़े उनके बावजूद मुझे उत्तरदाताओं से बातें करने तथा उनकी बातें सुनने में भरपूर आनन्द आया। कुछ मुलाक़ातों के बाद उत्तरदाताओं ने भी यही बताया कि उन्हें भी यह सब बहुत रोचक लगा।

मैं उत्तरदाताओं की आभारी हूँ जिन्होंने अनौपचारिक तथा औपचारिक दोनों ही स्तरों पर बहुत धैर्यपूर्वक मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया और अपने बारे में मुझे बताते समय मुझ पर पूरी तरह विश्वास किया। कुल मिलाकर उन्होंने मुझे पूरा सहयोग दिया। उनकी स्नेहपूर्ण सद्भावना तथा सहयोग के बिना न तो मैं अपना यह शोध-कार्य आरम्भ ही कर सकती थी और न ही उसे सन्तोषजनक ढंग से पूरा कर सकती थी।

अपने घर के लोगों में मैं अपने माता-पिता का हार्दिक आभार मानती हूँ, विशेष रूप से अपने स्वर्गीय पिता श्री हरिकृष्णलाल धवन का जिन्होंने मेरे बेटों की देखभाल करने में मेरा बहुत हाथ बँटाया, जो आधार-सामग्री जमा करने के प्रथम चरण के दौरान बहुत छोटे थे और उन्हें देखभाल की बहुत आवश्यकता थी। मेरे मन में अपने पति ब्रिगेडियर तेग बहादुर कपूर, ए० बी० एस० एम०, के प्रति हार्दिक प्रशंसा तथा कृतज्ञता का भाव है, जिन्होंने न केवल कोई शिकायत किये बिना उन अनेक असुविधाओं को सहन किया जो मेरे अपने काम में बहुत व्यस्त रहने के कारण उत्पन्न हुईं, बल्कि बड़ी सद्भावना के साथ मुझे प्रोत्साहित भी किया कि मैं पूरी लगन के साथ इस पुस्तक को लिखूं और इसके लिए उन्होंने शोध तथा सृजनात्मक कार्य के कष्टसाध्य लक्ष्य को पूरा करने के लिए घर पर अत्यन्त अनुकूल वातावरण बनाये रखा। मुझे इस पुस्तक की मूल पांडुलिपि को अन्तिम रूप देने में अपने दोनों पुत्रों त्रिभुवन और विक्रम से बहुत सहायता मिली और उन दोनों के धैर्य तथा परिश्रम के लिए उन्हें धन्यवाद देने तथा उनकी सराहना करने के लिए मेरे पास समुचित शब्द नहीं हैं।

उन सभी मित्रों के नाम गिनाना मेरे लिए कठिन है जिन्होंने अपने उत्साह-भरे

नैतिक समर्थन, प्रोत्साहन और रचनात्मक सुझावों से मुझे इस अध्ययन का बीड़ा उठाने और उसे पूरा करने में सहायता दी। परन्तु अन्त में मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगी कि जिन लोगों ने भी मुझे इस काम को पूरा करने में योगदान किया उन सबके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ।

मैं आशा करती हूँ कि इससे एक ऐसे विषय के बारे में, जो हर पहलू से बहुत महत्त्वपूर्ण है, और अधिक चिन्तन तथा शोध को बढ़ावा मिलेगा। यह पुस्तक केवल समाज-शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, नौकरियाँ देने वालों, शिक्षकों तथा विद्वानों को ही नहीं बल्कि उन सभी लोगों को लक्ष्य करके लिखी गयी है जिन्हें आज के भारत में दिलचस्पी है, और जो सभी मनुष्यों के जीवन में इतना अधिक महत्त्व रखने वाले विषय के बारे में उपयोगी, विश्वस्त तथा तथ्यपरक जानकारी एकत्रित करने में रुचि रखते हैं।

—प्रमिला कपूर

के-37-ए, ग्रीन पार्क,
नई दिल्ली-110016

1

संक्षिप्त विवरण और प्रविधि

समाज का लक्षण है गतिशीलता। गतिरोध से उसे बैर है। परिवर्तन उसका सार-तत्त्व है। वह कभी गतिहीन नहीं रहा, नहीं तो उसका अस्तित्व ही मिट चुका होता। परन्तु परिवर्तन का वेग और दिशा निरन्तर बदलती रही है। मूलतः आज की दुनिया पहले की तुलना में बड़ी तेज़ी से बदलती हुई दुनिया है और परिवर्तन सभी दिशाओं में हुआ है। हमारी दृष्टि के सामने नये क्षितिज उभरे हैं और मनुष्य के लिए नये कार्य-क्षेत्रों का विकास हुआ है। यह परिवर्तन मानव-जीवन के भौतिक और अ-भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में हुआ है। बदली हुई भौतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक गतिविधियां और लोगों की बदली हुई अभिवृत्तियां तथा मूल्य एक-दूसरे का कारण तथा परिणाम हैं। इस प्रकार अभिवृत्तियाँ—प्रच्छन्न व्यवहार—और प्रत्यक्ष व्यवहार एक ही समय में एक-दूसरे पर प्रभाव डालते भी हैं और एक-दूसरे से प्रभावित होते भी हैं। बदली हुई भौतिक-अभौतिक परिस्थिति में मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन इसलिए होता है कि वह तनाव में कमी करके अपने मानसिक सन्तुलन को बनाये रखने की आवश्यकता अनुभव करता है। बदलते हुए समय और बदलती हुई दुनिया के परिवर्तनों तथा चुनौतियों का सामना करने के लिए उसे निरन्तर अपने को नयी परिस्थितियों के अनुसार ढालना पड़ता है। परिवर्तन प्राणी-मात्र का जीवन है, जिसके बिना जीवन गतिहीन हो जायेगा और जो भी चीज़ गतिहीन होती है वह मर जाती है।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) की प्रगति, जनव्यापी प्रसार के साधनों और परिवहन तथा संचार के तीव्रगामी साधनों ने सारी दुनिया को संकुचित करके एक बड़ी-सी सुगठित इकाई का रूप दे दिया है। इस प्रकार जब भी संसार के किसी भाग में कोई प्रौद्योगिक-वैज्ञानिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक-धार्मिक या

सामाजिक-मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होता है तो देर-सवेर संसार के अन्य भागों के मनोवैज्ञानिक सांचों में भी उसका प्रवेश हो जाता है। यह प्रतिक्रिया-क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक कि सभी भाग परिवर्तन की क्रियात्मक, परस्पर क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक प्रतिक्रियाओं में सम्मिलित नहीं हो जाते।

सामाजिक दृष्टि से, नारी की मुक्ति एक सबसे अधिक उल्लेखनीय परिवर्तन रहा है—गृहस्थी के संकुचित घरौंदे से बाहर निकलकर उसका बाहरी दुनिया की गतिविधियों के क्षेत्र में आना। पिछली लगभग पांच शताब्दियों के दौरान भारत के जीवन के लगभग हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। भारत के स्वतन्त्र होने से परिवर्तन की गति बहुत तेज हो गयी है और उसकी गतिविधियों के क्षेत्र और भी व्यापक हो गये हैं। उद्योगों, नगरों और धर्म-निरपेक्षता के विकास की प्रक्रियाओं के फलस्वरूप लोगों की जीवन-पद्धति और अभिवृत्तियों में, विशेष रूप से नगरवासियों के बीच, राजनीतिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक-मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हुए हैं। स्वतन्त्रता के बाद की बदली हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से मध्यम वर्ग की स्त्रियों के लिए आवश्यक हो गया है कि वे जीविकोपार्जन के लिए कोई काम करें। भारत की स्वतन्त्रता के बाद एक सबसे आधारभूत तथा दूरगामी सामाजिक परिवर्तन यह हुआ है कि स्त्रियां अपनी परम्परागत जीवनचर्या से मुक्त हो गयी हैं और विशेष रूप से यह कि मध्यम तथा उच्च वर्गों की स्त्रियों ने जीविकोपार्जन के ऐसे व्यवसायों में प्रवेश किया है जिन पर अब तक मुख्यतः पुरुषों का एकाधिकार माना जाता था। भारत में स्त्रियों की सामाजिक-आर्थिक मुक्ति के फलस्वरूप उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और उनके दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है।

यह मुक्ति उनके जीवन में—उनकी भूमिका, उनकी प्रतिष्ठा और जीवन-पद्धतियों में—होने वाले परिवर्तनों का परिणाम भी है और उन परिवर्तनों को लाने वाला साधन भी। और उनके जीवन में यह परिवर्तन वैयक्तिक तथा सामाजिक गतिविधियों के हर क्षेत्र के बारे में उनके विचारों तथा उनकी व्यवहार-पद्धतियों को प्रभावित कर भी रहा है और उनसे प्रभावित हो भी रहा है। क्योंकि इस प्रकार का आधारभूत परिवर्तन—जो वस्तुतः एक सामाजिक क्रान्ति है—न केवल परिवार के ढांचे और सम्बन्धों को प्रभावित करता है, बल्कि सामाजिक गतिविधियों के अन्य सभी—आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में प्रविष्ट हो जाता है।

विवाह और परिवार सबसे प्राचीन और सबसे आधारभूत परम्पराएँ हैं और किसी भी समाज-विशेष के सामाजिक-आर्थिक जीवन के विभिन्न दूसरे क्षेत्रों में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। न्यूकोम (1965) और पार्सन्स (1956) जैसे भूमिका-सिद्धान्तविदों के अनुसार भूमिका-सिद्धान्त की एक आधारभूत मान्यता यह है कि सामाजिक व्यवस्था में किसी व्यक्ति की जो भूमिका होती है उसका उसकी अभिवृत्ति पर प्रभाव पड़ता है। सीवरमैन (1956) जैसे समाज-विज्ञानियों ने जो वैज्ञानिक अध्ययन किये हैं उनसे इस मान्यता की पुष्टि होती

है। उन्होंने अभिवृत्तियों पर भूमिकाओं के प्रभाव की छानबीन की और इस बात का पता लगाया कि भूमिका में होनेवाले परिवर्तनों के फलस्वरूप रवैये में किस हद तक परिवर्तन आते हैं। उन्होंने यह देखा कि भूमिका में परिवर्तन से उस भूमिका का निर्वाह करनेवाले के कार्य में, और उसके विभिन्न प्रकार के व्यवहारों तथा क्रियाओं में परिवर्तन होता है और फिर इससे उसकी अभिवृत्तियाँ प्रभावित होती हैं (लीवरमैन, 1956, पृष्ठ 385-402)।

हाल ही में प्राप्त किये गये सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक-कानूनी अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के आधार पर भारत में स्त्रियों ने समाज में एक नयी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, जो उनकी वर्तमान भूमिकाओं में श्रमजीवी नारी की भूमिका और जुड़ जाने के कारण, चीजों को देखने के उनके ढंग को भी बदल देगी। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि शिक्षित स्त्रियों के, विशेष रूप से शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के रवैयों में काफी परिवर्तन हुआ है, विशेष रूप से विवाह तथा परिवार के सम्बन्ध में और स्वयं उनके अपने सामाजिक पद के बारे में। (हाटे, 1930, 1946 और 1969; मर्चेंट, 1935; कापडिया, 1954, 1955, 1958 और 1959; कपूर, 1960; दुबे, 1963; और देसाई, 1957)।

सबसे पहले सामाजिक अभिवृत्तियों का अध्ययन टामस और ज्नानिएच्की (1918) नामक समाजशास्त्रियों ने किया था और अभिवृत्ति की संकल्पना के उस रूप के बहुत निकट पहुँचे थे जिस रूप में उसका प्रयोग आजकल सामाज-मनोवैज्ञानिक करते हैं। रेमर्स ने लिखा है, "उस समय से समाजविज्ञानी, विशेष रूप में मनोवैज्ञानिक, अभिवृत्तिमूलक अध्ययन की ओर अधिकाधिक ध्यान देते रहे हैं, क्योंकि सिद्धान्त रूप में अभिवृत्तियाँ प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न हर प्रकार के व्यवहार का अंग होती हैं" (रेमर्स, 1954, पृष्ठ 3)। आज, किसी भी जन-समुदाय की सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक गतिविधियों, व्यवहार या समस्याओं को समझने के लिए और इसके साथ ही व्यक्ति के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अथवा भावात्मक व्यवहार तथा समस्याओं को समझने के लिए अभिवृत्तियों का अध्ययन तथा उनकी जानकारी शायद सबसे विशिष्ट और अनिवार्य आवश्यकता है। इस प्रकार उपचारात्मक तथा उपचारेतर दोनों ही उद्देश्यों के लिए न केवल विशिष्ट सामाजिक-मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में, बल्कि मानव-व्यवहार तथा सम्बन्धों के लगभग सभी क्षेत्रों में अभिवृत्तियों को समझना केन्द्रीय तत्त्व बन गया है।

अभिवृत्तियों के बारे में बहुत-सा साहित्य उपलब्ध है, परन्तु यहाँ पर हमारा उद्देश्य उसकी संकल्पना पर विचार करना नहीं है। इसलिए इस संकल्पना के स्पष्टीकरण के लिए नीचे केवल संक्षेप में कुछ परिभाषाएँ दी जा रही हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि "व्यक्ति बहुधा किसी 'दृष्टिकोण' के प्रसंग में काम करता है, उसके सामने जो समस्याएँ होती हैं उनके प्रति उसकी एक अभिवृत्ति या परिप्रेक्ष्य होता है। इन तथ्यों का उल्लेख करते समय हम एक स्थूल तथा व्यापक शब्द का प्रयोग करते हैं—अभिवृत्ति" (ऐश, 1952, पृष्ठ 529)।

किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति या उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया करने की अवाप्त की हुई, सीखी हुई अथवा स्थापित प्रवृत्तियाँ ही अभिवृत्तियाँ होती हैं। वे अपने को निकट आने या दूर हटने की प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त करती हैं और वे सामाजिक मूल्यों की ओर उन्मुख होती हैं (न्यूमेयर, 1953, पृष्ठ 169)।

क्रेच और क्रचफील्ड (1948, पृष्ठ 152) ने अभिवृत्ति की परिभाषा "व्यक्ति के जगत के किसी पक्ष विशेष के प्रसंग में अभिप्रेरक, संवेगात्मक, बोधात्मक तथा सज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के चिरस्थायी संगठन" के रूप में की है। (देखिये कीसलर, कोलिंस और मिलर, 1969, पृष्ठ 1)।

एक और परिभाषा के अनुसार "किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति एक विशेष ढंग से सोचने, या उसके बारे में अनुभव करने तथा कार्य करने की तत्परता की स्थिति" उस वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति हमारी अभिवृत्ति होती है (देखिये सार्टेन आदि, 1958, पृष्ठ 80-81)।

"यह एक प्रकार का पूर्वग्रह होता है, जिसके अनुसार हम वस्तुओं या व्यक्तियों का बोध करते हैं और तदनुसार उनके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं।...'अभि-वृत्ति' का शब्द उस तत्परता का उल्लेख करने का केवल एक सुविधाजनक उपाय है जो किसी भावी गतिविधि के लिए हमारे तन्त्र के अन्दर मौजूद रहती है..." (रेमर्स, 1954, पृष्ठ 5)।

"...प्रत्यक्ष व्यवहार के 'उत्पादन' पक्ष और जानकारी प्राप्त करने से सम्बन्धित क्षेत्रों के 'उत्पादन' पक्ष दोनों ही पर अभिवृत्तियों के प्रभाव काफी दूरगामी होते हैं" (न्यूकोम, टर्नर और कानवर्स, 1965, पृष्ठ 79)।

"मैं अभिवृत्ति की परिभाषा किसी मनोभावात्मक वस्तु के पक्ष में या उसके विरुद्ध सकारात्मक अथवा नकारात्मक भाव की गहनता के रूप में करता हूँ। मनो-भावात्मक वस्तु कोई ऐसा प्रतीक, व्यक्ति, वाक्यांश, नारा या विचार होती है जिसके प्रति विभिन्न व्यक्तियों का सकारात्मक अथवा नकारात्मक भाव अलग-अलग होता है" (थर्स्टन 1946, पृष्ठ 39)।

"संक्षेप में वस्तुओं की किसी श्रेणी को पहले से बताये जा सकनेवाले ढंग से अनुभव करने, उससे प्रेरित होने और उसके प्रतिक्रिया करने की पूर्ववृत्ति को अभि-वृत्ति कहते हैं" (स्मिथ, ब्रूनर और व्हाइट, 1964. पृष्ठ 33)। और यह स्पष्ट है कि "अभिवृत्तियाँ क्रियाएं नहीं बल्कि कुछ करने की प्रवृत्तियाँ होती हैं। फिर भी अभिवृत्तियाँ व्यवहार के नियन्त्रण के लिए सशक्त उपकरण होती हैं, क्योंकि बहुत-से उदाहरणों में वे अपनी प्रवृत्ति का अनुसरण करती हैं और इसका परिणाम होता है प्रत्यक्ष क्रिया" (वेबर, 1958, पृष्ठ 3)।

"अभिवृत्तियों की अधिकांश परिभाषाएँ हमें यही बताती हैं कि अभिवृत्तियाँ प्रत्यक्ष व्यवहार में योग देती हैं। यदि हम उद्दीपन की दशा को स्थिर रखें तो विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार में उतना ही अन्तर होना चाहिए जितना उनकी अभिवृत्ति में

अन्तर हो। इस तर्क के अनुसार हर व्यक्ति अभिवृत्ति का मापदण्ड होता है।..." (कीसलर, कालिंस और मिलर, 1969, पृष्ठ 23)। "परन्तु, इस बात का कोई आश्वासन होते हुए भी कि अभिवृत्तियों की परिणति तदनुरूप क्रिया के रूप में होगी ही, अभिवृत्ति-सम्बन्धी अध्ययनों को अब भी बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है" (वेबर, 1958, पृष्ठ 5)।

अध्ययनों से पता चलता है कि अभिवृत्तियों को बदला जा सकता है और वे बदलती भी हैं। (बक, 1936, पृष्ठ 12-19; पीटर्सन और थर्स्टन, 1933; नोअर, 1935, पृष्ठ 315-347, रेमर्स, 1934, 1936 और 1938)। और यही तथ्य सामाजिक नवीनताओं, सामाजिक तनावों और सामाजिक परिवर्तनों का कारण होते हैं।

पिछली अर्ध-शताब्दी के दौरान सेक्स, प्रेम और विवाह के प्रति अभिवृत्तियों में बहुत बड़े परिवर्तन हुए हैं। एक प्रतिक्रिया-क्रम आरम्भ हो गया है और जनव्यापी प्रसार के साधनों, बड़े पैमाने पर यात्राओं और विभिन्न देशों के लोगों के बीच विनिमय के कार्यक्रमों के माध्यम से और पारस्परिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से अधिक उन्नत देशों की अभिवृत्तियाँ अन्य देशों की अभिवृत्तियों को प्रभावित कर रही हैं। आम तौर पर लोग आज प्रेम, विवाह और सेक्स के बारे में अपने विचार पहले की अपेक्षा अधिक उन्मुक्त भाव से व्यक्त करते हुए पाये जाते हैं। यह अपने-आप में एक बहुत बड़ा परिवर्तन है। यद्यपि समाज के विभिन्न अंग बहुत काफी समय से अनुमान लगाते रहे हैं कि उनकी अभिवृत्तियों में किस-किस ढंग से और किस-किस दिशा में परिवर्तन हुए हैं, फिर भी भारत में इन बदलती हुई अभिवृत्तियों के बारे में शायद ही कोई वैज्ञानिक छानबीन की गयी है।

प्रेम, विवाह और सेक्स के प्रति बदलती हुई अभिवृत्तियों का अध्ययन इसलिए किया जा रहा है कि वे हर पुरुष और स्त्री के जीवन में केन्द्रीय रुचि के विषय हैं। वे न केवल समाज के सामाजिक जीवन के अस्तित्व, संगठन और कार्यशीलता के लिए बल्कि उन मानव प्राणियों की उत्पत्ति, पोषण तथा निरन्तर अस्तित्व के लिए भी सबसे अधिक आधारभूत महत्त्व रखते हैं जिनसे मिलकर समाज बनता है। इन आधारभूत समस्याओं के प्रति अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन समाज के उस खण्ड-विशेष के ऐसी अभिवृत्तियाँ रखनेवाले लोगों के सामाजिक जीवन तथा सामाजिक व्यवहार को नये साँचे में ढाल देते हैं। और फिर इसके फलस्वरूप पारस्परिक क्रिया तथा पारस्परिक प्रतिक्रिया की प्रक्रिया के माध्यम से समाज के अन्य भागों में परिवर्तन होते हैं।

व्यक्तियों के किसी समूह की अभिवृत्तियों और उनके व्यवहार के ढंग में अन्तर हो सकता है। फिर भी चूँकि "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मूल्यों, रीति-रिवाजों, आस्थाओं, आदर्शों को, संक्षेप में अभिवृत्ति के विविध रूपों को, सामाजिक व्यवहार का गतिशास्त्र कहा जा सकता है" (रेमर्स, 1954, पृष्ठ 14), इसलिए अभिवृत्तियों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है ताकि प्रेम, विवाह और सेक्स के बारे में सामाजिक व्यवहार की

वर्तमान तथा भावी दोनों ही प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त की जा सके। जीवन-साथी चुनने, विवाह करने, प्रेम के सम्बन्ध रखने में व्यवहार के विविध रूपों का अध्ययन करने के लिए, और समाज के किसी समूह विशेष के सेक्स-सम्बन्धी व्यवहार का मूल्यांकन करने के लिए उन समस्याओं के प्रति उसकी अभिवृत्तियों का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। सामाजिक परिवर्तन के किसी भी अध्ययन में आधारभूत सामाजिक संस्थाओं तथा व्यवहार के प्रति समाज के विभिन्न अंगों की अभिवृत्तियों को जानना आवश्यक है क्योंकि अभिवृत्तियों से ही इस प्रकार के परिवर्तन की भावी दिशा का संकेत मिलता है।

शिक्षित श्रमजीवी युवती स्त्रियों की अभिवृत्तियों का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। विवाह, परिवार, सेक्स तथा प्रेम के बारे में युवा-वर्ग के लोगों के विचार जानना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि निकट-भविष्य में प्रेम, विवाह तथा सेक्स-सम्बन्धों के, संक्षेप में सभी अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों तथा व्यवहार के, नये प्रतिमानों को वही ढालेंगे। किसी भी प्रगतिशील देश में सबसे अधिक सम्भावना इसी बात की होती है कि लोगों के सोचने, अनुभव करने और काम करने के ढंग को युवा-वर्ग, विशेष रूप से शिक्षित युवा-वर्ग ही प्रभावित करेगा। शिक्षित युवा-वर्ग को इसलिए चुना गया है कि बहुधा उसी को वास्तविक अथवा सम्भावी नेतृत्व प्रदान करनेवाला और प्रगति का ध्वजा-वाहक और अधिक सुन्दर सभ्यता का निर्माता माना जाता है। यदि इसका एक अंश भी सत्य है तो यह जानना आवश्यक है कि वे क्या सोचते हैं और उनके विचारों तथा उनके विश्वासों में क्या परिवर्तन हो रहे हैं।

चूंकि भारत में बहुत ही कम स्त्रियाँ ऐसी हैं जो उस अर्थ में शिक्षित हों जिस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग इस अध्ययन में किया गया है, इसलिए सरसरी तौर पर विचार करनेवाले को ऐसा प्रतीत हो सकता है कि अध्ययन के उद्देश्य के लिए वे सर्वथा महत्त्वहीन हैं। यद्यपि संख्या की दृष्टि से उनका महत्त्व अपेक्षाकृत कम है, फिर भी गुण की दृष्टि से वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त वे जनसंख्या में एक बढ़ता हुआ भाग हैं। और चूंकि शिक्षित श्रमजीवी स्त्री एक सशक्त आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक तथा समाजशास्त्रीय बल बन चुकी है, इसलिए उसके परिवार पर और उस समाज पर जिसका वह एक अंग है, उसका और विशेष रूप से उसकी अभिवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक-सामाजिक-आर्थिक प्रभाव विशेष रुचि तथा महत्त्व का विषय है और इसलिए उसकी छानबीन करना आवश्यक है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि काफी वर्षों के दौरान शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का आज तक कोई विशद अध्ययन नहीं किया गया है। वर्तमान अध्ययन ऐसे ही प्रयास का— शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू नारी की अभिवृत्तियों की सामान्य दिशा और उनमें होनेवाले विस्तृत परिवर्तनों को निर्धारित करने के प्रयास का— प्रतिफल है।

इस अध्ययन का विषय भारत में श्रमजीवी नारी के विचार-जगत के वे क्षेत्र हैं जिनके बारे में अब तक कोई खोज नहीं की गयी है, विशेष रूप से प्रेम तथा सेक्स के

बारे में, जिनके बारे में विचार व्यक्त करना भारत में दीर्घकाल से वर्जित माना गया है।

विचारों, विश्वासों और मूल्यों पर देश के सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक-आर्थिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है और दूसरी ओर वे उस वातावरण को प्रभावित भी करते हैं और भारतीय समाज जैसे लोकतन्त्रीय समाज में तो शब्द तथा अभिव्यक्त मत और भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। यद्यपि इनमें से कुछ प्रत्यक्ष व्यवहार के घटित होने से पहले कुछ अभिवृत्तियों को बदल सकते हैं पर अन्य नहीं करते, और इससे उनके सामाजिक व्यवहार के प्रत्याशित प्रतिरूपों का चित्र प्राप्त होगा। "किसी भी समाज के नैतिक मानदंड उसकी स्त्रियों के हाथ में होते हैं। यह बात सेक्स-सम्बन्धी नैतिक मानदंडों के बारे में विशेष रूप से सच है" (घुर्ये, 1956, पृष्ठ 9)। प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ विवाहों, वैवाहिक सम्बन्धों और समाज के सेक्स-सम्बन्धी नैतिक मानदंडों के न केवल प्रचलित प्रतिरूप प्रतिबिम्बित करेंगी बल्कि उनकी भावी प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत करेंगी।

मध्यमवर्गीय शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्ति में होनेवाले परिवर्तनों का अध्ययन इसलिए किया गया कि इस वर्ग में परिवर्तन की प्रक्रियाएँ—उभरती हुई प्रवृत्तियाँ—नये सामाजिक संभ्रान्त व्यक्तियों को जन्म देती हैं जिनका प्रभाव धीरे-धीरे सामाजिक परिवर्तनों की प्रक्रिया में प्रवेश कर जाता है और उसकी गति को वेग प्रदान करता है। मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों के मत पर ही विविधतम तथा परस्पर-विरोधी मूल्यों का प्रभाव पड़ता है और उन्हीं का मत समाज में परिवर्तन की गति तथा दिशा का निर्धारण करता है। किर्कपैट्रिक ने पारिवारिक परिवर्तन के अपने अध्ययन के लिए मध्यम तथा उच्च-मध्यम वर्गों के पात्रों को यह मानकर चुना कि बहुधा परिवार में परिवर्तनों का सूत्रपात इसी स्तर पर होता है। और जो कुछ यहाँ से हो रहा है उससे इस बात का संकेत मिल सकता है कि समाज-व्यवस्था के अन्य स्तरों में आगे चलकर क्या परिवर्तन हो सकते हैं (किर्कपैट्रिक, 1963, पृष्ठ 144)। किर्कपैट्रिक ने जो कुछ परिवार में परिवर्तन के बारे में कहा है वही अभिवृत्तियों में परिवर्तन के बारे में भी कहा जा सकता है। और इसीलिए और भी अभिवृत्ति-परिवर्तन के इस अध्ययन के लिए मध्यमवर्गीय श्रमजीवी महिलाओं को चुना गया।

बदलते हुए सामाजिक व्यवहार और भावी सेक्स-सम्बन्धी तथा वैवाहिक व्यवहार की प्रवृत्तियों का पता लगाने के लिए प्रेम, विवाह तथा सेक्स जैसी आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण समस्याओं के प्रति बदलती हुई अभिवृत्तियों का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

हिल (1964), एडवर्ड्स (1967), लार्सन (1970) और [illegible] आदि अनेक परिवार-सिद्धान्तकारों ने संकेत दिया है कि "[illegible] के परिवार में होनेवाले परिवर्तनों के विशिष्ट लक्षण होंगे। अधिकाधिक [illegible] सेक्स-गत भूमिकाओं में अधिक समानता, श्रम के [illegible] सेक्स-क्रिया में भाग लेने में अधिक समानता" ([illegible]

पृष्ठ 76)। यद्यपि इन सभी अध्ययनों का सम्बन्ध पश्चिमी देशों से है और भा
अभी तक इस प्रकार के कोई विस्तृत अध्ययन नहीं किये गये हैं, फिर भी इस अ
में प्रयास किया गया है कि इनमें से कुछ प्रवृत्तियों का सम्बन्ध उस आधार-साम
साथ जोड़ा जाये जो प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति प्रत्यक्ष रूप से देखी गयी
अभिवृत्तियों के प्रसंग में शिक्षित श्रमजीवी युवा स्त्रियों के इस अध्ययन से प्राप्त हु

इस अध्ययन में कुछ ऐसे उपादानों को निर्धारित करने का भी प्रयास
गया है जो संभवतः इन अभिवृत्तियों के निर्माण में योगदान करते हैं और उन
प्रभाव डालते हैं। अर्थात् इस अन्वेषण का उद्देश्य इस बात का अध्ययन करन
है कि जाँच के इस आयाम के क्षेत्र में आनेवाले विषयों के बारे में किसी व्यक्ति के
को कौन-से तत्त्व निर्धारित करते हैं। संक्षेप में, इस अध्ययन का उद्देश्य है—
अभिवृत्तियों में परिवर्तन की प्रवृत्तियों और उनके सामाजिक-मनोवैज्ञानिक निध
की छानबीन करना, और उन प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना जिनके माध्यम से स
तिक मूल्यों के साथ सामाजिक सम्बन्धों की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती है
अभिवृत्तियों के विविध प्रतिरूप उत्पन्न होते हैं। इसकी परिधि में उनकी अभिवृ
के सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन भी सम्मिलित है, और इस
का भी कि वे स्त्रियों के उस समूह-विशेष के जीवन-दर्शन को किस प्रकार प्रभा
करते हैं।

किसी अभिवृत्ति के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए पहले यह
श्यक होता है कि हम यह पता लगायें कि किसी विषय-विशेष के बारे में किसी व्य
के विश्वास और आस्थाएँ क्या हैं, और यह पता लगाने के लिए हमें यह मालूम क
होगा कि कुछ समस्याओं अथवा वस्तुओं के बारे में उसकी भावनाएँ, विचार और स
क्या हैं। संक्षेप में, आवश्यकता केवल यह जानने की है कि विशिष्ट वस्तुओं अ
व्यक्तियों के बारे में उसका क्या मत है, क्योंकि मत "अभिव्यक्त अभिवृत्ति" होते हैं
वे अभिवृत्तियों के सूचक माने जा सकते हैं। अभिवृत्तियों का वह मुख्य पक्ष जिसे न
में समाजशास्त्रियों की रुचि होती है, वह है जो भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त मतों
रूप धारण करता है। हमारा सम्बन्ध मतों का रूप धारण करनेवाले मौखिक व्यव
और व्यवहार के अन्य रूपों के साथ उन मतों के संभावित पारस्परिक सम्बन्ध को म
की प्रणालियों से है।

अभिवृत्तियों तथा मतों की थाह लेने के प्रयास समाज की उत्पत्ति के सम
ही किये जा रहे हैं। छोटे-छोटे समूहों के बीच यह काम अनौपचारिक वैयक्तिक
से किया जा सकता है। संचार के द्रुतगामी साधनों के विकास और उसके फलस्व
उत्पन्न होनेवाली सुदूरस्थ समूहों की परस्पर निर्भरता के कारण मतों को मापने
अधिक औपचारिक तथा सुव्यवस्थित प्रणालियों की आवश्यकता पैदा हुई है। इस
भूति ने कि विश्व के विभिन्न पक्षों के बारे में व्यक्ति की भावना के रूप में अभिवृ
कदाचित इस विश्व की केवल संज्ञानात्मक समझ की अपेक्षा व्यवहार को अधिक

तक निर्धारित करती हैं, अभिवृत्ति-मापन के महत्त्व तथा बहुमूल्यता को बहुत स्पष्ट बना दिया है।

सभी परिवर्तनशील मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की तरह विश्वासों तथा अभिवृत्तियों के मापन में विलक्षण और बहुधा अत्यन्त जटिल समस्याएं सामने आती हैं। उनका मापन आवश्यक रूप से परोक्ष होता है। दोनों को व्यक्ति के व्यवहार तथा तात्कालिक अनुभवों से निकाले गये निष्कर्षों के आधार पर परोक्ष विधि से ही मापा जा सकता है। चूँकि उन्हें परोक्ष विधि से ही मापना होता है, इसलिए यह स्पष्ट है कि इन मापनों के लिए कई अलग-अलग प्रणालियाँ हो सकती हैं। इसके लिए दो प्रकार की प्रणालियाँ हैं। एक तो है किसी व्यक्ति के प्रत्यक्ष अ-मौखिक तथा मौखिक व्यवहार का किसी स्थिति-विशेष के प्रसंग में अध्ययन करना और इस प्रकार उसकी अभिवृत्तियों का अनुमान लगाना। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकार की अनेक प्रणालियाँ हैं जिनकी सहायता से इनको मापा जा सकता है। अन्य प्रणालियों के ब्योरे में जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यहाँ हमारा अभीष्ट केवल यह जानना है कि इस अध्ययन के लिए कौन-सी प्रणाली अपनायी गयी है।

यद्यपि अभिवृत्तियों का अनुमान प्रत्यक्ष व्यवहार से लगाया जा सकता है, फिर भी एक सुव्यवस्थित सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययन में अभिवृत्तियों के सूचकों के रूप में अभिव्यक्त अथवा समर्थित मतों की ओर ध्यान देना पड़ता है। लेखिका ने उत्तरदाताओं द्वारा अभिव्यक्त मतों और विश्वासों और भावनाओं को विभिन्न वस्तुओं और अपने सहित विभिन्न व्यक्तियों के प्रति उनकी "अभिव्यक्त अभिवृत्तियों" के रूप में ग्रहण किया है। चूंकि अचेतन प्रावरोध, औचित्य-स्थापना और निराधार कल्पनाएं अभिवृत्तियों की निष्कपट अभिव्यक्ति में बाधक हो सकती हैं, इसलिए इस अध्ययन में अन्वेषण तथा विश्लेपण के लिए पुनरावृत्त साक्षात्कार और व्यक्ति-अध्ययन की प्रणालियाँ अपनायी गयीं। उन्हें मुख्यत: इसलिए चुना गया है कि प्रचलित अभिवृत्तियों के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक निर्धारकों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है और यह तभी किया जा सकता है जब "पात्र" को अपने बारे में—अपने जीवन, अपनी रुचियों, अपनी अरुचियों, अपने विश्वासों, मतों तथा विभिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में अपनी भावनाओं के बारे में— बात करने पर प्रवृत्त किया जाये।

लोगों के सामान्य व्यवहार के आधार पर हम निरन्तर उन पर कुछ अभिवृत्तियाँ आरोपित करते रहते हैं। किसी व्यक्ति के पिछले व्यवहार के बारे में और उन परिस्थितियों के बारे में जिनमें वह व्यवहार किया गया, जितनी ही पूर्ण जानकारी होगी, उतना ही सही-सही हम उसकी अभिवृत्तियों को समझ सकेंगे। अभिवृत्तियाँ या तो व्यक्ति के व्यवहार में प्रतिबिम्बित हो सकती हैं या उसके तात्कालिक अनुभव में। इसलिए मापन के लिए व्यवहारात्मक विश्लेपण और अन्तर्निरीक्षणात्मक विश्लेपण दोनों ही का प्रयोग किया जा सकता है। इस अध्ययन के लिए लेखिका ने व्यक्ति-अध्ययन प्रणाली को चुना है जो अपने कार्य के लिए कई अन्य प्रणालियों का प्रयोग करती है।

अभिवृत्तियों का अध्ययन तथा मापन मुख्यतः गणितीय परिमाणन के माध्यम से नहीं बल्कि गुणात्मक आधार-सामग्री के माध्यम से किया गया है।

"सामाजिक विज्ञानों में व्यक्ति-अध्ययन की प्रणालीतन्त्रीय सार्थकता" के बारे में हेटिन के शोध-ग्रन्थ के सार में यह मत व्यक्त किया गया है :

> भौतिक वैज्ञानिक जिस गणितीय वस्तुनिष्ठता और आनुभविक परिमाणन पर आग्रह करते हैं, शायद उससे प्रतिस्पर्द्धा करने के सामाजिक वैज्ञानिक के उत्साह के कारण साधनों ने सैद्धान्तिक लक्ष्य को धूमिल कर दिया है। भौतिक विज्ञान के कठोर वैज्ञानिक अनुष्ठान और उसके साथ आधार-सामग्री के प्रक्रमण की एलेक्ट्रॉनिक विधि के उद्भव के फलस्वरूप सारा ध्यान प्रणालीतन्त्रीय साधनों पर ही दिया जाने लगा है और नियमोन्वेषी उपागम पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाने लगा है, जबकि मानव-व्यवहार को समझने के लिए व्यक्त्यंकन उपागम के महत्त्व को कम करके आंका जा रहा है। वास्तव में इन दोनों उपागमों का अन्तर मनमाना और ऊपर से थोपा हुआ होता है, इसलिए यह द्विभाजन उत्पन्न होता है (हेटिन, 1970, पृष्ठ 452-ए-1)।

सामाजिक विज्ञानों में प्रगति के लिए व्यक्ति-अध्ययन के बहुविध उपयोगों तथा योगदानों का उल्लेख करते हुए यह तर्क दिया जाता है :

> गोटशाल्क, क्लुकहाह्न और ऐंजेल ने यह सिद्ध किया है कि सामाजिक विज्ञानों में प्रगति के लिए व्यक्ति-अध्ययन प्रणाली के बहुविध उपयोग तथा योगदान हैं। गैर-आदर्शक व्यवहार के अध्ययन में व्यक्ति-अध्ययन और वैयक्तिक दस्तावेज़ों का विशेष महत्त्व होता है क्योंकि उनसे अनुसंधानकर्ता को ऐसी बहुमूल्य आधार-सामग्री मिलती है जिस तक अन्यथा उनकी पहुँच न हो सकती। कुछ भी हो, सामाजिक विज्ञानों का वास्तविक लक्ष्य केवल विश्लेषण करना, चीज़ों को अलग-अलग कोटियों तथा वर्गों में बांट देना नहीं बल्कि उनको समझना है।
>
> (हेटिन, 1970, पृष्ठ 492-ए-1)।

आगे चलकर यह भी तर्क दिया गया है :

> सैद्धान्तिक स्थापनाएँ उस समय तक अपूर्ण रहती हैं जब तक वैयक्तिक जीवनों के साथ उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध न स्थापित किया जा सके। सिद्धान्त की तरह ज्ञान भी व्यक्ति के अनुभवों से अलग रहकर शक्तिहीन हो जाता है, और वह तभी सप्राण हो उठता है जब उसे व्यक्ति-अध्ययन के माध्यम से प्राप्त की गयी व्यक्त्यंकन-सम्बन्धी समझदारी से पुष्ट किया जाये (हेटिन, 1970, पृ० 492-ए-2)।

इस प्रणाली को इसलिए चुना गया है कि "किसी आदमी का व्यक्ति-अध्ययन, जिसमें उसके अपने जीवन की कहानी भी शामिल होती है, उसकी आन्तरिक आकांक्षाओं

उसकी जीवन-पद्धति, उसे क्रियाशील बनाने वाले अभिप्रायों, 'उसे विफल करनेवाली या उसे उत्प्रेरित करनेवाली अथवा चुनौती देनेवाली बाधाओं और उसे सफलता प्रदान करनेवाली और निर्देशित करनेवाली उस सृजनात्मक बुद्धि' (पॉर्टरफ़ील्ड, 1941 पृष्ठ 6) का रहस्योद्घाटन करने की क्षमता रखता है कि वह किसी दत्त सामाजिक परिस्थिति में एक विशिष्ट व्यवहार अपनाये (यंग, 1956, पृष्ठ 231)। और चूंकि विचाराधीन विषय के लिए इस प्रकार की छानबीन आवश्यक है, इसलिए व्यक्ति-अध्ययन प्रणाली के बारे में यह समझा गया है कि वह अभिवृत्तियों का सबसे अधिक रहस्योद्घाटन करती है और वही सबसे अच्छी प्रणाली है जिसका प्रयोग किया जा सकता है। यह प्रणाली एक प्रकार से प्रेक्षण-प्रश्नावली-साक्षात्कार की सम्मिलित प्रणाली है।

जांच को स्पष्ट और अध्ययन के लिए उपयुक्त बनाने के प्रयास में व्यक्ति-अध्ययन प्रणाली से सुविधा हुई। व्यक्ति-अध्ययन प्रणाली से लेखिका ने न केवल दो विभिन्न समयों पर स्त्रियों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन का पता लगाया बल्कि एक ही स्त्री के जीवनवृत्त का और इस बात का अध्ययन करके कि उसके जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में—एक बच्ची के रूप में, एक लड़की-रूप में, जीविकोपार्जन से पहले और जीविकोपार्जन करते हुए—उसकी अभिवृत्तियां किस प्रकार भिन्न थीं, उस स्त्री की अभिवृत्ति में परिवर्तन का भी पता लगाया। साक्षात्कार के दौरान ऐसे तथ्यों का पता लगाना संभव हो सका जो केवल प्रश्नावली प्रणाली से कदाचित न मालूम किये जा सकते।

अभिवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए अ-निर्देशित जीवन-वृत्त प्रणाली नहीं बल्कि "निर्देशित" व्यक्ति-अध्ययन प्रणाली अपनायी गयी, जिसमें नियन्त्रित तथा व्यवस्थित साक्षात्कारों का आयोजन किया गया जिनमें इस उद्देश्य के लिए तैयार किये गये विस्तृत साक्षात्कार कार्यक्रम के मानक प्रश्नों के उत्तर समरूप ढंग से अंकित किये गये। गेजल, मेयो, कोमारोव्स्की, किंज़ आदि जैसे सामाजिक वैज्ञानिकों ने ऐसी समस्याओं के अध्ययन के लिए, जो विचाराधीन है, बहुत फलप्रद और उपयोगी पाया है।

यह पुस्तक भारत में युवा शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों की छानबीन करने का प्रयत्न है। यह बताने से पहले कि नमूने किस प्रकार चुने गये और आधार-सामग्री किस प्रकार एकत्रित की गयी तथा किस प्रकार उसका विश्लेषण किया गया, लेखिका कुछ शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या देना चाहती है, जिन अर्थों में इस अध्ययन के लिए उनका उपयोग किया गया है। इस अध्ययन में "परिवर्तन" का अर्थ होगा विभिन्नता—एक अभिवृत्ति की जगह दूसरी अभिवृत्ति का प्रतिस्थापन। "अभिवृत्ति" की संक्षिप्त परिभाषा किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति अनुकूल अथवा नकारात्मक ढंग से प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति के रूप में दी जा सकती है। इस अनुसन्धान के लिए "युवा" का अर्थ है 20 से 40 वर्ष तक की स्त्रियां जिनमें विवाहित और अविवाहित दोनों ही प्रकार की स्त्रियां शामिल हैं। "शिक्षित" से

परिधि में वे स्त्रियाँ आती हैं जिनकी न्यूनतम शैक्षिक योग्यता मैट्रिकुलेशन, हायर सेकेंडरी या आई० एस-सी० स्तर की हो। "श्रमजीवी स्त्रियों" से अभिप्राय उन सभी स्त्रियों से है जो "सफ़ेदपोश" नौकरियों में जीविकोपार्जन कर रही हैं—अध्यापन, चिकित्सा, पत्रकारिता और हर स्तर तथा हर प्रकार की दफ्तरों की नौकरियाँ। यद्यपि "हिन्दू" शब्द की निश्चयात्मक परिभाषा देना इतना सरल नहीं है, फिर भी इस अध्ययन में उन सभी स्त्रियों को "हिन्दू" माना जायेगा जिन्हें 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम में हिन्दू की कोटि में सम्मिलित किया गया है—अर्थात् जो लोग जम्मू तथा कश्मीर को छोड़कर भारत में अधिवासी हैं, उनमें से जो भी व्यक्ति मुस्लिम, ईसाई, यहूदी अथवा पारसी नहीं है उसे हिन्दू समझा जायेगा। इसमें सिख, बौद्ध तथा जैन सम्मिलित हैं।

अनुसन्धान-स्थल के लिए दिल्ली और आगरा को चुना गया, क्योंकि इन दो स्थानों में मिलाकर विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक तथा सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों वाली हर प्रकार की शिक्षित श्रमजीवी महिलाएँ मिल सकती थीं। इसके अतिरिक्त, इन दो स्थानों को चुनने से उनकी अभिवृत्तियों पर दिल्ली जैसे सर्वदेशीय नगर और उत्तर प्रदेश के आगरा जैसे प्रांतीय नगर में काम करने के प्रभाव का फलप्रद तुलनात्मक अध्ययन करने का अवसर उपलब्ध हो गया।

नमूने का स्वरूप

यह सच है कि "प्रतिनिधि नमूने को चुनना आज सामाजिक सर्वेक्षण के काम का शायद अकेला सबसे कठिन पक्ष है, और यह बात सेक्स तथा विवाह के क्षेत्र में सर्वेक्षण के प्रसंग में विशेष रूप से सार्थक है" (चेसर, 1969, पृष्ठ 23), परन्तु इस अध्ययन में एक पूर्णतः प्रतिनिधि नमूने का होना न तो व्यावहारिक समझा गया और न नितान्त आवश्यक ही। यह व्यावहारिक इसलिए नहीं था कि अकेले एक आदमी के लिए नमूने की जांच करने में बहुत अधिक समय और पैसा लगता है। इसके अतिरिक्त यह बहुत आवश्यक भी नहीं था क्योंकि ऐसे गुणात्मक अध्ययन में, जिसमें अध्ययन का उद्देश्य जितना स्वयं अभिवृत्तियों का विश्लेषण करना हो, उतना ही विशिष्ट व्यक्तियों की अभिवृत्तियों को प्रभावित करनेवाले उपादानों के प्रसंग में उनसे सम्बन्धित ब्योरे की बातों का विश्लेषण करना भी हो, शुद्धतः प्रतिनिधि नमूने का होना न तो आवश्यक है और न व्यवहारतः संभव ही। फिर भी इस बात का पूरा प्रयत्न किया गया कि परिस्थितियों के अनुसार यथासंभव बड़े से बड़ा और अधिक से अधिक प्रतिनिधि नमूना प्राप्त किया जाये।

चेसर का कहना है कि यह बात "आश्चर्यजनक भले ही प्रतीत हो कि विश्वस्त अनुमान अपेक्षाकृत छोटे नमूनों पर आधारित हो सकते हैं फिर भी यह बात सत्य है" (चेसर, 1969, पृष्ठ 11)। चूंकि अध्ययन एक समजातीय समूह के बारे में था और विश्लेषण के लिए जो प्रणाली चुनी गयी थी वह गुणात्मक थी, इसलिए अपेक्षाकृत छोटे नमूने की ही आवश्यकता थी। इसलिए सुव्यवस्थित रूप से 500 श्रमजीवी स्त्रियों का

नमूना नीचे बताये गये ढंग से चुना गया।

पहले, दिल्ली और आगरा में काम करने की जगहों का एक नमूना सोद्देश्य आधार पर चुना गया, अर्थात्, ऐसे शिक्षण-संस्थान, अस्पताल और कार्यालय—निजी, सरकारी तथा अर्ध-सरकारी—चुने गये जहाँ काफी संख्या में स्त्रियाँ काम करती हों। फिर इन जगहों में काम करनेवाली अनेक स्त्रियों के बीच एक बहुत छोटी-सी प्रश्नावली बाँट दी गयी जिसमें पूछा गया था कि वे कितने वर्षों से नौकरी कर रही हैं और उनकी आयु, शिक्षा, वैवाहिक स्थिति तथा धर्म क्या है। इन स्त्रियों में से केवल उनको चुना गया जो हिन्दू थीं, कम से कम दो वर्ष से काम कर रही थीं, जिनकी आयु 20 और 40 वर्ष के बीच थी और जिनकी न्यूनतम शैक्षिक योग्यता मैट्रिकुलेशन, हायर सेकेंडरी अथवा आई० एस-सी० के स्तर की थी। केवल हिन्दू स्त्रियों को इसलिए चुना गया कि अध्ययन के लिए एक समजातीय समूह मिल सके और अध्ययन का क्षेत्र परिसीमित रह सके।

इनमें से नमूने की जाँच के आधार पर 500 स्त्रियों को चुन लिया गया। इसके बाद स्त्रियों के इस नमूने को आयु-वर्गों के आधार पर चार स्तरों में विभाजित कर दिया गया—20 से 24 वर्ष तक, 24 से 29 वर्ष तक, 29 से 34 वर्ष तक, 34 से 40 वर्ष तक और उससे अधिक। और फिर इन चार आयु-वर्गों में से प्रत्येक से नमूने की जाँच के आधार पर 25-25 स्त्रियों को चुन लिया गया ताकि विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के लिए 100 स्त्रियों का एक छोटा नमूना मिल सके। इस प्रकार अध्ययन के लिए स्त्रियों को चुनने के लिए सुव्यवस्थित बहुचरणी प्रतिचयन का सहारा लिया गया।

मानव नमूनों पर आधारित किसी भी अध्ययन में शत-प्रतिशत प्रत्युत्तर पाने की संभावना बहुत कम रहती है। यह प्रायः अनिवार्य ही है कि जिन लोगों को नमूने के लिए चुना गया हो उनमें से कुछ प्रतिशत साक्षात्कार के लिए तैयार न हों। फिर भी समझा-बुझाकर और धीरज से काम लेकर इंकार करनेवालों की संख्या न्यूनतम रखने का प्रयत्न किया। औसत से साक्षात्कार करनेवाला हर प्रत्यार्थी के पास तीन बार मिलने गया। इन स्त्रियों में से केवल तीन प्रतिशत ऐसी थीं जिन्होंने अन्त तक साक्षात्कार में भाग लेने से इंकार किया। वे इस प्रकार के अनुसन्धान को अपने निजी जीवन तथा गोपनीयता के क्षेत्र में अतिक्रमण समझती थीं और कभी-कभी इन्होंने साक्षात्कार करनेवाले के प्रति बड़ी अशिष्टता तथा उदासीनता भी दिखायी। उसे अपमान भी सहने पड़े, फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी और उनको साक्षात्कार के लिए सहमत करने की कोशिश करती रही। पर जब उन्होंने बार-बार इंकार किया या मिलने का वादा करके भी निश्चित समय और स्थान पर नहीं आयीं तो उनकी जगह इस काम के लिए चुनी गयी शेष श्रमजीवी स्त्रियों में से नमूने की जाँच प्रणाली से चुनी गयी दूसरी स्त्रियों को रख लिया गया। यद्यपि यह नमूना सर्वथा दोषरहित नहीं है, फिर भी इस बात का पूरा प्रयत्न किया गया है कि पैसे और समय की सीमाओं

के भीतर उसे यथासम्भव प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाया जाये।

समय और परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ और बदली हुई सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों में अभिवृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। जिन स्त्रियों का अध्ययन किया जा रहा था उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए लेखिका ने इस बात की जाँच की कि दो विभिन्न समयों पर उनकी अभिवृत्तियाँ क्या थीं। यह मुख्यतः दस वर्ष के अन्तराल से दो विभिन्न समयों पर—1959 में और 1969 में—किया गया पुनरावृत्त प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन था। आंशिक रूप से यह एक तालिका अध्ययन था क्योंकि दस साल बाद के नमूने में भी कई वही उत्तरदाता चुने गये थे। तालिका विधि के अनेक गुणों के बावजूद अनन्य रूप से केवल उसी का प्रयोग इसलिए नहीं किया जा सकता था कि तालिका में से कुछ लोग "मृत सूची" में आ जाते थे और फिर एक आवश्यक शर्त यह थी कि उत्तरदाता की आयु 20 और 40 वर्ष के बीच हो। इसलिए नीचे बतायी गयी रीति से एक पुनरावृत्त प्रतिनिध्यात्मक और आंशिक रूप से अनुदैर्घ्य अध्ययन किया गया।

लेखिका ने 1956 से 1960 तक की अवधि में अपनी डॉक्टरेट की डिग्री के शोध-प्रबन्ध के लिए श्रमजीवी स्त्रियों का अभिवृत्तिक अध्ययन किया था। उस समय उसने ऊपर बतायी गयी रीति से चुने गये श्रमजीवी स्त्रियों के नमूने के जीवन-वृत्तों का अध्ययन किया था और शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद, नौकरी कर लेने के बाद और जीवन के अन्य अनुभवों के साथ उसी व्यक्ति की अभिवृत्ति में होनेवाले परिवर्तन का विश्लेषण किया था। लेखिका उस समय विभिन्न समयावधियों में एकत्रित की गयी सचमुच तुलनात्मक आधार-सामग्री की सहायता से बदलती हुई प्रवृत्तियों का विश्लेषण और तुलना नहीं कर सकी थी क्योंकि उससे पहले भारत में अभिवृत्तियों का, विशेष रूप से प्रेम, सेक्स और विवाह के प्रसंग में, कोई अध्ययन नहीं किया गया था। इस कारण एक ओर जहाँ अध्ययन रोचक और समन्वेषी हो गया, वहीं दूसरी ओर पूर्ववर्ती आधार-सामग्री के साथ कोई तुलना सम्भव नहीं हो सकी, जिससे प्रवृत्तियों की रूपरेखा तैयार करने में सुविधा होती।

विभिन्न समस्याओं के प्रति, विशेष रूप से प्रेम और सेक्स के प्रति, अभिवृत्तियों के बारे में जो प्रश्न पूछे गये थे और जो आधार-सामग्री एकत्रित की गयी थी उस सबका प्रयोग लेखिका ने डॉक्टरेट की डिग्री के लिए अपने शोध-प्रबन्ध में नहीं किया था। उस शोध-प्रबन्ध में जो प्रश्नावली दी गयी थी उसमें वे सभी प्रश्न दिये भी नहीं गये थे जो वास्तव में पूछे गये थे। इन समस्याओं के बारे में जो आधार-सामग्री जमा की गयी थी उसे बहुत सँभालकर रखा गया था क्योंकि उस समय भी लेखिका की यह योजना और इच्छा थी कि दस वर्ष बीत जाने के बाद श्रमजीवी स्त्रियों के वैसे ही समूह को लेकर इन्हीं समस्याओं के प्रति अभिवृत्तियों का अध्ययन किया जाये। इस प्रकार 1969 में लगभग उतनी ही श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन किया गया जितनी स्त्रियों का अध्ययन 1959 में किया गया था, जो उन्हीं संस्थाओं और कार्यालयों में काम कर रही थीं

और जिन्हें मूलतः उसी ढंग से चुना गया था। उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए लेखिका ने नमूना लेने की वैसी ही विधि के आधार पर, ठीक उसी ढंग से जैसे दस वर्ष पहले किया गया था और जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, एक और वैसा ही नमूना तैयार किया। उन्होंने श्रमजीवी स्त्रियों के इस समेल नमूने के साथ बार-बार पहले ही जैसे ढंग से साक्षात्कार किया और उनसे वही प्रश्न पूछे। उनके जीवन-वृत्तों का और उनके मतों तथा दृष्टिकोणों का अध्ययन किया गया और उनके व्यक्ति-अध्ययन तैयार किये गये। लेखिका ने लगभग दस वर्ष बाद अभिवृत्ति-सम्बन्धी उसी प्रश्नावली को स्त्रियों के समरूप समूह के सामने, और कभी-कभी तो उन्हीं स्त्रियों के सामने रखकर श्रमजीवी स्त्रियों के प्रत्युत्तरों की तुलना की है और इस अवधि के दौरान जो परिवर्तन हुए हैं उनकी सामान्य प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। दो विभिन्न समयों पर किये गये इस कालक्रमिक प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन से भारत में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के सोचने और चीज़ों को देखने के ढंग में बदलती हुई प्रवृत्तियों की सुव्यवस्थित ढंग से रूपरेखा तैयार करने में बड़ी सुविधा होती है।

आधार-सामग्री एकत्रित करने के उपकरण

प्रस्तुत अन्वेषण में दो उपकरणों का प्रयोग किया गया है: (1) एक विशद प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार तालिका, जिसमें मुख्यतः नियत उत्तर श्रेणियों वाली मदें थीं। अधिकांश प्रश्नों में ऐसी मदें थीं जिनके लिए लिकर्ट-पद्धति के अनुरूप पाँच विभिन्न प्रकार के प्रत्युत्तरों में से किसी एक को चुना जा सकता था, जिनमें अभिवृत्तियों के मापन के लिए ये कोटियाँ थीं—दृढ़ सहमति, सहमति, अनिर्णीत, असहमति और दृढ़ असहमति। ऐसा इसलिए किया गया कि इस प्रकार अभिवृत्ति की दिशा—अनुकूल अथवा प्रतिकूल—निर्धारित की जा सकती थी और साथ ही यह भी निर्धारित किया जा सकता था कि वह दिशा कितनी प्रबल है। (2) एक साक्षात्कार मार्गदर्शिका जिसमें अंशतः संरचित परन्तु अधिकांशतः अ-संरचित मदें थीं।

साक्षात्कार तालिका का निर्माण

प्रश्नावली-साक्षात्कार तालिका निरूपित करते समय इस बात का प्रयत्न किया गया कि उसमें ऐसे प्रश्न सम्मिलित किये जायें जिनसे प्रेम, विवाह और सेक्स के विभिन्नि पक्षों के प्रति, और पूरे जीवन के प्रति, इन स्त्रियों की अभिवृत्तियों के बारे में प्रत्युत्तर प्राप्त हो सकें। प्रश्नों के वास्तविक निरूपण के लिए लेखिका ने विवाह, परिवार और सदाचार के प्रति अभिवृत्तियों के पूर्ववर्ती अध्ययनों का सामान्य सर्वेक्षण किया। और चूंकि भारत में सेक्स और प्रेम के प्रति अभिवृत्तियों के प्रायः कोई भी वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किये गये थे, इसलिए लेखिका ने अध्ययन के इस अज्ञात क्षेत्र के बारे में कुछ अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए विभिन्न कोटियों की श्रमजीवी स्त्रियों के साथ अनौपचारिक ढंग से बातचीत की। प्रश्नावली का प्रथम प्रस्तावित प्रारूप, जिसमें उनसे

के भीतर उसे यथासम्भव प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाया जाये।

समय और परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ और बदली हुई सामाजि सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों में अभिवृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। जिन स्त्रियों का अ यन किया जा रहा था उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का अध्ययन करने लिए लेखिका ने इस बात की जाँच की कि दो विभिन्न समयों पर उनकी अभिवृत्ति क्या थीं। यह मुख्यतः दस वर्ष के अन्तराल से दो विभिन्न समयों पर—1959 में अ 1969 में—किया गया पुनरावृत्त प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन था। आंशिक रूप से यह तालिका अध्ययन था क्योंकि दस साल बाद के नमूने में भी कई वही उत्तरदाता गये थे। तालिका विधि के अनेक गुणों के बावजूद अनन्य रूप से केवल उसी का प्र इसलिए नहीं किया जा सकता था कि तालिका में से कुछ लोग "मृत सूची" में जाते थे और फिर एक आवश्यक शर्त यह थी कि उत्तरदाता की आयु 20 और वर्ष के बीच हो। इसलिए नीचे बतायी गयी रीति से एक पुनरावृत्त प्रतिनिध्या और आंशिक रूप से अनुदैर्घ्य अध्ययन किया गया।

लेखिका ने 1956 से 1960 तक की अवधि में अपनी डॉक्ट्रेट की डिग्री के श प्रबन्ध के लिए श्रमजीवी स्त्रियों का अभिवृत्तिक अध्ययन किया था। उस समय ऊपर बतायी गयी रीति से चुने गये श्रमजीवी स्त्रियों के नमूने के जीवन-वृत्त अध्ययन किया था और शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद, नौकरी कर लेने के बाद जीवन के अन्य अनुभवों के साथ उसी व्यक्ति की अभिवृत्ति में होनेवाले परिवर्त विश्लेषण किया था। लेखिका उस समय विभिन्न समयावधियों में एकत्रित की सचमुच तुलनात्मक आधार-सामग्री की सहायता से बदलती हुई प्रवृत्तियों का विश और तुलना नहीं कर सकी थी क्योंकि उससे पहले भारत में अभिवृत्तियों का, विशे से प्रेम, सेक्स और विवाह के प्रसंग में, कोई अध्ययन नहीं किया गया था। इस कारण ओर जहाँ अध्ययन रोचक और समन्वेषी हो गया, वहीं दूसरी ओर पूर्ववर्ती आ सामग्री के साथ कोई तुलना सम्भव नहीं हो सकी, जिससे प्रवृत्तियों की रूपरेखा करने में सुविधा होती।

विभिन्न समस्याओं के प्रति, विशेष रूप से प्रेम और सेक्स के प्रति, अभिवृ के बारे में जो प्रश्न पूछे गये थे और जो आधार-सामग्री एकत्रित की गयी थ सबका प्रयोग लेखिका ने डॉक्टेट की डिग्री के लिए अपने शोध-प्रबन्ध में नहीं था। उस शोध-प्रबन्ध में जो प्रश्नावली दी गयी थी उसमें वे सभी प्रश्न दिये न गये थे जो वास्तव में पूछे गये थे। इन समस्याओं के बारे में जो आधार-सामग्री ज गयी थी उसे बहुत सँभालकर रखा गया था क्योंकि उस समय भी लेखिका व योजना और इच्छा थी कि दस वर्ष बीत जाने के बाद श्रमजीवी स्त्रियों के समूह को लेकर इन्हीं समस्याओं के प्रति अभिवृत्तियों का अध्ययन किया जाये। इस 1969 में लगभग उतनी ही श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन किया गया जितनी स्त्रि अध्ययन 1959 में किया गया था, जो उन्हीं संस्थाओं और कार्यालयों में काम कर

और जिन्हें मूलतः उसी ढंग से चुना गया था। उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए लेखिका ने नमूना लेने की वैसी ही विधि के आधार पर, ठीक उसी ढंग से जैसे दस वर्ष पहले किया गया था और जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, एक और वैसा ही नमूना तैयार किया। उन्होंने श्रमजीवी स्त्रियों के इस समेल नमूने के साथ बार-बार पहले ही जैसे ढंग से साक्षात्कार किया और उनसे वही प्रश्न पूछे। उनके जीवन-वृत्तों का और उनके मतों तथा दृष्टिकोणों का अध्ययन किया गया और उनके व्यक्ति-अध्ययन तैयार किये गये। लेखिका ने लगभग दस वर्ष बाद अभिवृत्ति-सम्बन्धी उसी प्रश्नावली को स्त्रियों के समरूप समूह के सामने, और कभी-कभी तो उन्हीं स्त्रियों के सामने रखकर श्रमजीवी स्त्रियों के प्रत्युत्तरों की तुलना की है और इस अवधि के दौरान जो परिवर्तन हुए हैं उनकी सामान्य प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। दो विभिन्न समयों पर किये गये इस कालक्रमिक प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन से भारत में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के सोचने और चीज़ों को देखने के ढंग में बदलती हुई प्रवृत्तियों की सुव्यवस्थित ढंग से रूपरेखा तैयार करने में बड़ी सुविधा होती है।

आधार-सामग्री एकत्रित करने के उपकरण

प्रस्तुत अन्वेषण में दो उपकरणों का प्रयोग किया गया है : (1) एक विशद प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार तालिका, जिसमें मुख्यतः नियत उत्तर श्रेणियों वाली मदें थीं। अधिकांश प्रश्नों में ऐसी मदें थीं जिनके लिए लिकर्ट-पद्धति के अनुरूप पांच विभिन्न प्रकार के प्रत्युत्तरों में से किसी एक को चुना जा सकता था, जिनमें अभिवृत्तियों के मापन के लिए ये कोटियां थीं—दृढ़ सहमति, सहमति, अनिर्णीत, असहमति और दृढ़ असहमति। ऐसा इसलिए किया गया कि इस प्रकार अभिवृत्ति की दिशा—अनुकूल अथवा प्रतिकूल—निर्धारित की जा सकती थी और साथ ही यह भी निर्धारित किया जा सकता था कि वह दिशा कितनी प्रबल है। (2) एक साक्षात्कार मार्ग-दर्शिका जिसमें अंशतः संरचित परन्तु अधिकांशतः अ-संरचित मदें थीं।

साक्षात्कार तालिका का निर्माण

प्रश्नावली-साक्षात्कार तालिका निरूपित करते समय इस बात का प्रयत्न किया गया कि उसमें ऐसे प्रश्न सम्मिलित किये जायें जिनसे प्रेम, विवाह और सेक्स के विभिन्न पक्षों के प्रति, और पूरे जीवन के प्रति, इन स्त्रियों की अभिवृत्तियों के बारे में प्रत्युत्तर प्राप्त हो सकें। प्रश्नों के वास्तविक निरूपण के लिए लेखिका ने विवाह, परिवार और सदाचार के प्रति अभिवृत्तियों के पूर्ववर्ती अध्ययनों का सामान्य सर्वेक्षण किया। और चूंकि भारत में सेक्स और प्रेम के प्रति अभिवृत्तियों के प्रायः कोई भी वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किये गये थे, इसलिए लेखिका ने अध्ययन के इस अज्ञात क्षेत्र के बारे में कुछ अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए विभिन्न कोटियों की श्रमजीवी स्त्रियों के साथ अनौपचारिक ढंग से बातचीत की। प्रश्नावली का प्रथम प्रस्तावित प्रारूप, जिसमें उनसे

अधिक प्रश्न थे जितने कि वास्तव में इस्तेमाल किये जानेवाले थे, देश के कुछ प्रमुख समाज-विज्ञानियों को दिखाया गया और कुछ प्रश्नों को काट देने, कुछ को नये शब्दों में ढाल देने और कुछ अन्य प्रश्न जोड़ देने के बारे में उनसे परामर्श किया गया। इस प्रकार विशेषज्ञों के परामर्श से परीक्षात्मक प्रश्नावली और साक्षात्कार संदर्शिका तैयार की गयी। परीक्षात्मक प्रश्नावली और साक्षात्कार संदर्शिका को वास्तविक परिस्थितियों में एक बार फिर परखा गया। अर्थात्, विभिन्न कोटियों की श्रमजीवी स्त्रियों पर, जैसे अध्यापिकाओं, डाक्टरों, व्यापारी स्त्रियों, दफ्तरों में काम करनेवाली स्त्रियों पर, जिन्हें नमूने में सम्मिलित किया जानेवाला था, इस प्रस्तावित प्रश्नावली और साक्षात्कार संदर्शिका का पूर्व-परीक्षण किया गया। उन सभी प्रश्नों को जो अस्पष्ट पाये गये या जिनके प्रत्युत्तर अनिश्चित रहे, उन्हें निकाल दिया गया। जहाँ भी यह अनुभव किया गया कि साक्षात्कार के प्रवाह में बाधा पड़ती है वहाँ प्रश्नों के क्रम में सुधार करके उन्हें नये ढंग से व्यवस्थित किया गया। श्रमजीवी स्त्रियों से प्रश्नावली पर टिप्पणी करने, प्रश्नों की आलोचना करने को कहा गया और उनको प्रश्न जोड़ने, निकालने या उन्हें नये ढंग से ढालने के बारे में सुझाव देने का निमंत्रण दिया गया। उसके बाद इस पूर्व-परीक्षण के परिणामों और अनुभवों के अनुसार प्रश्नावली को अन्तिम रूप दिया गया और निरूपित किया गया।

वैधता की समस्या

कोई भी सामाजिक अनुसंधानकर्ता इस बात के बारे में पूर्णतः आश्वस्त नहीं हो सकता कि उसके परिणाम उस जन-समुदाय का पूर्णतः यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है, जिसका कि उसने नमूना लिया था। वैधीकरण की समस्याओं का सभी अनुसंधान-कर्ताओं को समान रूप से सामना करना पड़ता है, विशेष रूप से ऐसे अनुसन्धान में जिनका सम्बन्ध प्रेम, विवाह और सेक्स जैसी घनिष्ठतम समस्याओं के बारे में लोगों के निजी विचारों और अभिवृत्तियों से हो, जहाँ उत्तरदाता, सचेतन अथवा अचेतन रूप से, सम्भवतः हमेशा अपनी वास्तविक अभिवृत्तियाँ बताने के बजाय वे अभिवृत्तियाँ बतायें जो "सामाजिक रूप से अनुमोदित" और "अनुकूल" हों।

इस बात का पूरा प्रयत्न किया गया कि इस अनिवार्य परिसीमन को घटाकर न्यूनतम रखा जाये और इसलिए साक्षात्कार के समय ऐसा वातावरण उत्पन्न करने की कोशिश की गयी जिसमें इस बात की अधिक सम्भावना हो कि उत्तरदाता वही बात कहेंगे जिसे वे साक्षात्कार करनेवाले द्वारा उनके सामने प्रस्तुत की गयी विभिन्न समस्याओं के बारे में अपना मत समझते हों और जो कुछ वे इन समस्याओं के बारे में वस्तुतः अनुभव करते हों और सोचते हों। और लेखिका ने जो कुछ वे कहते, सोचते और विश्वास करते हैं उसी का उल्लेख और विश्लेषण किया है। आधार-सामग्री की वैधता का परीक्षण करने के लिए जहाँ एक ओर ऐसी मदें थीं जिनसे साक्षात्कार के दौरान उत्तर देनेवाली किसी स्त्री द्वारा परस्पर सम्बन्धित समस्याओं के बारे में दिये

गये विवरण की आन्तरिक संगतियों अथवा असंगतियों का अध्ययन किया जा सकता था, वहीं प्रश्नावली में प्रतिपरीक्षण के लिए भी कुछ मदें थीं। इसके अतिरिक्त नीचे बतायी गयी अन्वेषण की प्रणाली ही ऐसी थी कि उससे वैध आधार-सामग्री संग्रह करने में सहायता मिली।

अन्वेषण की प्रणाली

प्रश्नावलियाँ इन स्त्रियों को भेजी नहीं गयीं क्योंकि भारत में प्रश्नावलियों के प्रत्युत्तर के सम्बन्ध में कई समाज-विज्ञानियों का पिछला अनुभव बहुत निराशाजनक रहा था। आधुनिक गुजराती जीवन में नारी के अपने अध्ययन (1945) में जी० बी० देसाई ने, हिन्दू नारी की स्थिति के बारे में अपने अध्ययन (1946) में हेट ने, और विवाह और परिवार के बारे में बदलते हुए मतों के बारे में अपने अध्ययन (1935) में मर्चेन्ट ने प्रश्नावलियों का प्रयोग किया था और उन्हें अपने-अपने अध्ययनों के लिए क्रमशः केवल 4.9 प्रतिशत, 17.1 प्रतिशत और 18.7 प्रतिशत प्रत्युत्तर मिले थे। ग्रेट ब्रिटेन में भी चेसर सर्वेक्षण (1956) में जितनी प्रश्नावलियाँ भेजी गयी थीं उनमें से केवल 33 प्रतिशत वापस आयी थीं, जबकि ब्रामली और ब्रिटेन के अध्ययन (1938) में अस्वीकृतियों की दर 80 प्रतिशत थी। किंसे तथा अन्य लोग अपने अध्ययनों (1948, 1953) के प्रसंग में अस्वीकृतियों के प्रभावों का अनुमान इसलिए नहीं लगा सके कि उन्होंने स्वैच्छिक उत्तरदाताओं का सहारा लिया था। पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त हिन्दू स्त्रियों के बारे में अपने अन्वेषण के अनुभवों के आधार पर मेहता ने भी अपने अध्ययन में (1970, पृष्ठ 5) बताया है कि अभिवृत्तियों के बारे में किसी जाँच-पड़-ताल में बाद में गहराई से लिये गये साक्षात्कार के बिना केवल प्रश्नावली का प्रयोग पर्याप्त नहीं होता है।

अन्य समाज-विज्ञानियों के अनुभव को और एक सामाजिक अनुसन्धानकर्ता के रूप में स्वयं अपने अनुभव का लाभ उठाकर लेखिका इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्रेम, विवाह और सेक्स के प्रति अभिवृत्तियों के बारे में आधार-सामग्री प्राप्त करने का सबसे अच्छा उपाय गहन साक्षात्कार ही होगा। परिष्कृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों और स्वयंप्रयोजन प्रश्नावलियों के उपलब्ध होने के बावजूद लेखिका की दृढ़ धारणा यही थी कि निजी और आत्मीय समस्याओं के प्रति उनकी अभिवृत्तियों के बारे में सार्थक जानकारी केवल लम्बे और बार-बार आमने-सामने किये गये साक्षात्कारों से ही प्राप्त की जा सकती है।

इस अध्ययन में साक्षात्कार तालिकाओं को, जिनमें से अधिकांश में मानकीकृत प्रश्न और उनके साथ नियत प्रत्युत्तर कोटियाँ थीं, लेखिका ने प्रत्येक समक्ष साक्षात्कार के तुरन्त बाद स्वयं भरा था। जिन स्त्रियों को विस्तृत अध्ययन के लिए चुना गया था उनके दुबारा साक्षात्कार करने के लिए मुक्तोत्तर प्रश्नों वाली साक्षात्कार मार्गदर्शिका का भी प्रयोग किया गया। प्रश्नावली या साक्षात्कार तालिका और साक्षात्कार

निर्देशिका परिशिष्ट के रूप में नहीं दी गयी है। इसके बजाय, उन्हें इस पुस्तक में प्रस्तुत किये गये व्यक्ति-अध्ययनों के पूरे विस्तार में उत्तरदाता से पूछे गये प्रश्नों के रूप में वितरित कर दिया गया है।

पूरे नमूने में से नमूने की इकाइयों के साक्षात्कारों के दौरान यद्यपि अधिकांश समय प्रश्न के एक मानकीकृत रूप का प्रयोग किया गया था, फिर भी उत्तरदाताओं को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया गया और कभी-कभी तो उन्हें समझा-बुझाकर इसके लिए तत्पर भी करना पड़ा कि वे प्रश्न का केवल सीधा-सादा उत्तर देने के अतिरिक्त और कुछ भी कहें। और इससे लेखिका सामाजिक मनोविश्लेषण के लिए कुछ अत्यन्त बहुमूल्य अप्रत्याशित आधार-सामग्री प्राप्त कर सकी। श्रमजीवी स्त्रियों के उप-प्रतिचयन के विस्तृत अध्ययन के लिए अधिकांश साक्षात्कार इस प्रकार के थे जिन्हें मनोवैज्ञानिक "मुक्तोत्तर" कहते हैं। अर्थात्, प्रश्न इस ढंग से पूछे गये थे कि उनका उत्तर कई शब्दों में देना पड़े। उदाहरण के लिए ऐसे प्रश्न कि "मुझे अपने बारे में सब कुछ बताइये" या "बचपन के बाद से आप क्या कुछ करती रही हैं?" जिनसे बहुत-सी ऐसी जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया जो शायद उत्तरदाता जान-बूझकर न देता या जिसे देने का वह विरोध तक करता।

उन्हें यह समझा दिया गया कि इनके कोई सही या ग़लत उत्तर नहीं हैं और यह भी कि यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वे केवल अपनी अभिवृत्तियों को व्यक्त करें, उन अभिवृत्तियों को नहीं जिनके बारे में वे सोचती हों कि दूसरे लोग उनका अनुमोदन करेंगे। उन्हें इस बात का पूरा विश्वास दिला दिया गया कि जो भी जानकारी वे देंगी वह सर्वथा गोपनीय रखी जायेगी, और उनके नामों को पूर्णतः गुप्त रखने का आश्वासन इस प्रकार कर दिया गया कि प्रश्नावली या तालिका के किसी भी भाग पर उनका नाम नहीं लिखा गया। चूंकि साक्षात्कर्ता और उत्तरदाता दोनों ही स्त्रियाँ थीं इसलिए भी स्पष्ट उत्तर प्राप्त करने में सहायता मिली। बेन्नी, राइसमैन और स्टार (1956) ने भी इसे अधिक प्रभावी पाया।

प्रस्तुत अध्ययन में लगभग सभी (97 प्रतिशत) साक्षात्कार सफल रहे और लेखिका उनकी अभिवृत्तियों के बारे में यथासम्भव अधिकतम यथार्थ जानकारी प्राप्त कर सकी, यद्यपि उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और कभी-कभी तो उसे एक ही उत्तरदाता के पास कई-कई बार जाना पड़ा, तब जाकर वह उसके प्रश्न के बारे में सन्तुष्ट हुआ। कुछ संकोचशील और शान्त स्वभाव के उत्तरदाता अपनी अभिवृत्तियों के बारे में, विशेष रूप से सेक्स के प्रति कुछ भी बताने को तैयार नहीं होते थे और वांछित घनिष्ठता स्थापित करने के लिए ताकि लेखिका उनकी अभिवृत्तियों का पता लगा सके, अत्यन्त सौहार्दपूर्ण और मित्रतापूर्ण वातावरण उत्पन्न करना पड़ता था कभी-कभी ऐसा भी होता था कि लेखिका का पाला किसी बहुत ही वाचाल पात्रों से पड़ जाता था और उसे बड़ी चतुराई से उन्हें इस प्रकार अभीष्ट की सीमा में रखना पड़ता था कि बातचीत में उनकी पूरी रुचि भी बनी रहे।

उत्तरदाता के साथ बेहतर सौहार्द स्थापित करने के लिए लेखिका ने प्रश्नों को और अधिकांश प्रश्नों के क्रम को लगभग कंठस्थ कर लिया था। इससे उसे इस बात में बहुत सहायता मिली कि वह बात करते समय उत्तरदाता की ओर देखती रह सके और प्रश्नों को पढ़ने के लिए अनावश्यक और ऊटपटांग ढंग से बीच में रुकने के बजाय बातचीत का क्रम निरन्तर बनाये रख सके।

अधिकांश उत्तरदाता स्त्रियां इस बात के बारे में बहुत सतर्क थीं कि साक्षात्कर्ता कहीं उनकी बातचीत को टेप न कर ले या उनके उत्तरों को लिखित रूप में दर्ज न कर ले। इसलिए व्यवसाय, आयु, नौकरी करने की अवधि आदि जैसे वस्तुपरक प्रश्नों को छोड़कर अन्य सभी प्रश्नों को उत्तर-कोटियों को साक्षात्कर्ता ने या तो इस ढंग से अंकित किया कि उत्तरदाता देख न पाये या फिर उन्हें साक्षात्कार के तुरन्त बाद दर्ज कर लिया गया। साक्षात्कार की ब्योरे की बातें और उत्तरदाताओं की कही हुई विशिष्ट बातों को दर्ज करने के लिए लेखिका भागकर पास के किसी रेस्टोरां या पार्क में जाकर बैठ जाती थी और पूछे गये प्रश्नों के प्रत्युत्तर लिख लेती थी।

यह मानना होगा कि एक बार सौहार्द स्थापित हो जाने के बाद उनमें से अधिकांश ने बहुत सहयोग का परिचय दिया और लेखिका पर पूरा भरोसा करके उसे सब बातें बतायीं। फिर भी विशेष रूप से प्रेम तथा सेक्स के बारे में अपने विचार व्यक्त करने में श्रमजीवी स्त्रियों के दोनों नमूनों के बीच संकोच की मात्रा के मामले में बहुत अन्तर था। सामान्यत: जिनका इन्टरव्यू दस वर्ष पहले लिया गया था उनमें संकोच कहीं अधिक था और वे "खुलने" में कहीं अधिक समय लेती थीं, जबकि जिनका इन्टरव्यू दो वर्ष बाद लिया गया उनमें ऐसी स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक थी जिन्होंने अपने विचार व्यक्त करने में अधिक संकोच नहीं किया और उन्हें इस बात पर प्रसन्नता हुई कि वे एक सहानुभूति रखनेवाले अजनबी और धीरज से बात सुनने वाले के साथ ऐसी निजी समस्याओं के बारे में खुलकर बात कर सकती हैं।

नमूने में से एक-एक नाम को लेकर वास्तविक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने और उनमें से प्रत्येक को साक्षात्कार के लिए तैयार करने का पूरा प्रयत्न किया गया, भले ही इसके लिए उस व्यक्ति के पास बार-बार जाना पड़ा और सम्बन्धित उत्तरदाता को जो समय और स्थान सबसे अधिक सुविधाजनक हो उसी के अनुसार अपना कार्यक्रम बनाना पड़ा। यह प्रणाली समय और धन दोनों ही की दृष्टि से महँगी तो बहुत है पर इससे परिणाम सन्तोषजनक निकलते हैं। इस प्रकार उनसे मिलने का समय निश्चित कर लिया जाता था और भेंट के लिए उनकी पसन्द का कोई स्थान —दफ्तर, रेस्टोरां या उनका घर—तय कर लिया जाता था। उनमें से अधिकांश ने या तो अपनी काम करने की जगह पर या किसी रेस्टोरां में चाय या कॉफ़ी पीते हुए ही साक्षात्कर्ता से बात करना अधिक पसन्द किया।

लेखिका ने उनके घरों पर उनसे साक्षात्कार करने से यथासम्भव बचने की कोशिश की क्योंकि वहां एकान्त के लिए और परिवार के दूसरे सदस्यों की ओर से

विघ्न-बाधा के बिना बातचीत करने के लिए अनुकूल वातावरण बना पाना कठिन हो जाता है। श्रमजीवी स्त्रियाँ या तो अपनी काम करने की जगह पर या किसी रेस्टोरां में, जहाँ कोई उनकी बातचीत न सुन रहा हो, अधिक उन्मुक्त प्रतीत हुई क्योंकि निजी ढंग के प्रश्नों का उत्तर देते समय पूर्ण एकान्त आवश्यक होता है। ताइएत्ज़ (1962) का भी यही अनुभव था कि परिवार के सदस्यों के सामने उत्तरदाता में अपने उत्तरों को कुछ बदल देने की प्रवृत्ति आ जाती है।

इस बात का ध्यान रखा गया कि बातचीत सर्वाधिक अवैयक्तिक विषयों और वस्तुपरक प्रश्नों से आरम्भ की जाये। उदाहरण के लिए, बातचीत उनकी काम करने की जगह, पिता के व्यवसाय, किस प्रकार की शिक्षा पायी और उनकी नौकरी से सम्बन्धित प्रश्नों से आरम्भ की गयी। प्रेम, विवाह और नैतिकता जैसे आत्मपरक विषयों के बारे में उनके मतों तथा विश्वासों के बारे में केवल उस समय पूछा गया जब पर्याप्त घनिष्ठता स्थापित हो गयी और साक्षात्कर्ता में उत्तरदाता का विश्वास स्थापित हो गया। उत्तरदाता को आश्वासन दिया गया कि उसके मतों और विचारों को अनामक रखा जायेगा और उन्हें इस बात का विश्वास दिला दिया गया कि उनकी दी हुई जानकारी का उपयोग शुद्धतः अनुसन्धान के उद्देश्यों के अतिरिक्त और किसी काम के लिए नहीं किया जायेगा। ये सारी सावधानियाँ बरतने के बावजूद लेखिका को इस बात में बहुत कठिनाई हुई कि वह स्त्रियों को, विशेष रूप से अविवाहित स्त्रियों को विशेषतः सेक्स के बारे में अपने मत और अभिवृत्तियाँ व्यक्त करने के लिए तत्पर कर सके।

फिर भी, जब उन्हें साक्षात्कर्ता के निष्कपट उद्देश्यों का विश्वास हो जाता था और जब वे अपने विचार और मत व्यक्त करना शुरू कर देती थीं तो उनमें से अधिकांश बहुत ईमानदारी और स्पष्टवादिता का परिचय देती थीं और प्रारम्भिक संकोच के दूर हो जाने के बाद बहुत खुलकर बात करती थीं। उन्हें संकोच के इस आवरण से बाहर निकलने में उनकी आयु, शिक्षा, व्यवसाय और वैवाहिक स्थिति के अनुसार अलग-अलग समय लगता था, विशेष रूप से इस प्रसंग में कि उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि क्या है और उनका पालन-पोषण तथा शिक्षा किस सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में हुआ है और उनका समसमूह क्या है। कुल मिलाकर जिन लोगों का साक्षात्कार किया गया उनके प्रत्युत्तर बहुत अच्छे रहे और अपनी बातचीत में उन्होंने स्पष्टवादिता और मैत्री-भाव का परिचय दिया जिससे लेखिका विभिन्न महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति उनकी अभिवृत्तियों का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण कर सकी। इनमें से कई साक्षात्कार विश्वास और हार्दिकता के अनुकूल वातावरण में एक से दो घंटे तक चलते रहे। इनमें से कुछ तो दो-तीन घंटे से भी अधिक समय तक चलते रहे।

फिर भी, सीधे प्रश्नों के माध्यम से लेखिका उत्तरदाताओं के अवचेतन अथवा अचेतन मन में उतनी गहराई तक नहीं पहुंच सकी जितना कि वह चाहती थी और इसलिए कभी-कभी उसने असन्तोष भी अनुभव किया। परन्तु चूंकि इस अध्ययन का

मुख्य उद्देश्य इन समस्याओं के प्रति सचेतन अभिवृत्तियों के बारे में उनके प्रत्यक्ष ज्ञान का पता लगाना था, और चूंकि पुनरावृत्त साक्षात्कारों के दौरान उनकी बातों और वक्तव्यों में भावना तथा अन्तर्दृष्टि के सूक्ष्म भेद निकलते थे, इसलिए लेखिका ने काफी सन्तोष अनुभव किया।

अभिवृत्तियों के अधिकांश अध्ययनों का सम्बन्ध आधार-सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण से होता है परन्तु इस अध्ययन का सम्बन्ध मुख्यतः गुणात्मक विश्लेषण से है। यह "सांख्यिकीय" अध्ययन नहीं है। इसके विपरीत यह अध्ययन युवा शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई अभिवृत्तियों में कुछ प्रवृत्तियों का पता लगाने के लिए किया गया है। इस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और भावात्मक मूल्यों के प्रति उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन का गुणात्मक ढंग से अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है।

यह मनोवैज्ञानिक-सामाजिक अध्ययन वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित ढंग से इस बात का पता लगाने के लिए किया गया था कि प्रेम, विवाह और सेक्स के प्रति श्रमजीवी स्त्रियों के कौन-से सामान्यतः स्वीकृत विश्वास और अभिवृत्तियाँ सत्य हैं, कौन-से अंशतः मिथ्या और भ्रामक और पूर्णतः अटकलों पर आधारित हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य प्रेम, विवाह या सेक्स के प्रति किन्हीं विशिष्ट अभिवृत्तियों को उचित ठहराना या उनकी निन्दा करना नहीं है। मुख्यतः इसका सम्बन्ध इन अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन की प्रवृत्तियों और उन्हें प्रभावित करनेवाले कारकों का विश्लेषण करने से है।

चूँकि आशा यह की जाती है कि इस अध्ययन में न केवल समाजविज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों, अध्यापकों या पारिवारिक परामर्शदाताओं को बल्कि उन साधारण पाठकों को भी रुचि होगी जो बुनियादी महत्त्व और चिन्ता की समस्याओं के प्रति भारत में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई अभिवृत्तियों की प्रवृत्तियाँ जानना चाहते हैं, इसलिए जहाँ कहीं भी सांख्यिकीय पद्धति का सहारा लिया गया है उसे साधारण प्रतिशत अनुपातों तक ही सीमित रखा गया है और कहीं भी उसे तालिकाओं के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। वैयक्तिक साक्षात्कारों से एकत्रित की गयी जानकारी और इस प्रकार जमा की गयी आधार-सामग्री को विभिन्न अभिवृत्तियों और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक गति-सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए व्यक्ति-अध्ययनों के रूप में या उत्तरदाताओं के मौखिक वक्तव्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। और इस पुस्तक में जिन अभिवृत्तियों पर विचार किया गया है उनका सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी इन्हीं के आधार पर किया गया है।

इस अन्वेषण का मुख्य उद्देश्य युवा शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की कुछ अभिवृत्तियों के बारे में तथ्य प्राप्त करना और फिर उनका कार्यात्मक विश्लेषण करना था। तथ्यों का पता लगाना बहुत आवश्यक है क्योंकि "तथ्यों के बिना जन-साधारण के मन में नाना प्रकार की निराधार धारणाएं पनपती रहती हैं..." (कंफर्ट, 1963),

विघ्न-बाधा के बिना बातचीत करने के लिए अनुकूल वातावरण बना पाना कठिन हो जाता है। श्रमजीवी स्त्रियाँ या तो अपनी काम करने की जगह पर या किसी रेस्टोरां में, जहाँ कोई उनकी बातचीत न सुन रहा हो, अधिक उन्मुक्त प्रतीत हुईं क्योंकि निजी ढंग के प्रश्नों का उत्तर देते समय पूर्ण एकान्त आवश्यक होता है। ताइएत्ज़ (1962) का भी यही अनुभव था कि परिवार के सदस्यों के सामने उत्तरदाता में अपने उत्तरों को कुछ बदल देने की प्रवृत्ति आ जाती है।

इस बात का ध्यान रखा गया कि बातचीत सर्वाधिक अवैयक्तिक विषयों और वस्तुपरक प्रश्नों से आरम्भ की जाये। उदाहरण के लिए, बातचीत उनकी काम करने की जगह, पिता के व्यवसाय, किस प्रकार की शिक्षा पायी और उनकी नौकरी से सम्बन्धित प्रश्नों से आरम्भ की गयी। प्रेम, विवाह और नैतिकता जैसे आत्मपरक विषयों के बारे में उनके मतों तथा विश्वासों के बारे में केवल उस समय पूछा गया जब पर्याप्त घनिष्ठता स्थापित हो गयी और साक्षात्कर्ता में उत्तरदाता का विश्वास स्थापित हो गया। उत्तरदाता को आश्वासन दिया गया कि उसके मतों और विचारों ो अनामक रखा जायेगा और उन्हें इस बात का विश्वास दिला दिया गया कि उनकी ी हुई जानकारी का उपयोग शुद्धतः अनुसन्धान के उद्देश्यों के अतिरिक्त और किसी ाम के लिए नहीं किया जायेगा। ये सारी सावधानियाँ बरतने के बावजूद लेखिका ो इस बात में बहुत कठिनाई हुई कि वह स्त्रियों को, विशेष रूप से अविवाहित ़्त्रियों को विशेषतः सेक्स के बारे में अपने मत और अभिवृत्तियाँ व्यक्त करने के लिए त्पर कर सके।

फिर भी, जब उन्हें साक्षात्कर्ता के निष्कपट उद्देश्यों का विश्वास हो जाता था ौर जब वे अपने विचार और मत व्यक्त करना शुरू कर देती थीं तो उनमें से अधि- ांश बहुत ईमानदारी और स्पष्टवादिता का परिचय देती थीं और प्रारम्भिक संकोच ़ दूर हो जाने के बाद बहुत खुलकर बात करती थीं। उन्हें संकोच के इस आवरण से ाहर निकलने में उनकी आयु, शिक्षा, व्यवसाय और वैवाहिक स्थिति के अनुसार लग-अलग समय लगता था, विशेष रूप से इस प्रसंग में कि उनकी पारिवारिक पृष्ठ- ूमि क्या है और उनका पालन-पोषण तथा शिक्षा किन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश ं हुआ है और उनका समसमूह क्या है। कुल मिलाकर जिन लोगों का साक्षात्कार िया गया उनके प्रत्युत्तर बहुत अच्छे रहे और अपनी बातचीत में उन्होंने स्पष्टवादिता ौर मैत्री-भाव का परिचय दिया जिससे लेखिका विभिन्न महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति नकी अभिवृत्तियों का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण कर सकी। इनमें से कई ाक्षात्कार विश्वास और हार्दिकता के अनुकूल वातावरण में एक से दो घंटे तक चलते हे। इनमें से कुछ तो दो-तीन घंटे से भी अधिक समय तक चलते रहे।

फिर भी, सीधे प्रश्नों के माध्यम से लेखिका उत्तरदाताओं के अवचेतन अथवा ेतन मन में उतनी गहराई तक नहीं पहुँच सकी जितना कि वह चाहती थी और सलिए कभी-कभी उसने असन्तोष भी अनुभव किया। परन्तु चूँकि इस अध्ययन का

मुख्य उद्देश्य इन समस्याओं के प्रति सचेतन अभिवृत्तियों के बारे में उनके प्रत्यक्ष ज्ञान का पता लगाना था, और चूँकि पुनरावृत्त साक्षात्कारों के दौरान उनकी बातों और वक्तव्यों में भावना तथा अन्तर्दृष्टि के सूक्ष्म भेद निकलते थे, इसलिए लेखिका ने काफी सन्तोष अनुभव किया।

अभिवृत्तियों के अधिकांश अध्ययनों का सम्बन्ध आधार-सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण से होता है परन्तु इस अध्ययन का सम्बन्ध मुख्यतः गुणात्मक विश्लेषण से है। यह "सांख्यिकीय" अध्ययन नहीं है। इसके विपरीत यह अध्ययन युवा शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई अभिवृत्तियों में कुछ प्रवृत्तियों का पता लगाने के लिए किया गया है। इस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और भावात्मक मूल्यों के प्रति उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन का गुणात्मक ढंग से अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है।

यह मनोवैज्ञानिक-सामाजिक अध्ययन वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित ढंग से इस बात का पता लगाने के लिए किया गया था कि प्रेम, विवाह और सेक्स के प्रति श्रमजीवी स्त्रियों के कौन-से सामान्यतः स्वीकृत विश्वास और अभिवृत्तियाँ सत्य हैं, कौन-से अंशतः मिथ्या और भ्रामक और पूर्णतः अटकलों पर आधारित हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य प्रेम, विवाह या सेक्स के प्रति किन्हीं विशिष्ट अभिवृत्तियों को उचित ठहराना या उनकी निन्दा करना नहीं है। मुख्यतः इसका सम्बन्ध इन अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन की प्रवृत्तियों और उन्हें प्रभावित करनेवाले कारकों का विश्लेषण करने से है।

चूँकि आशा यह की जाती है कि इस अध्ययन में न केवल समाजविज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों, अध्यापकों या पारिवारिक परामर्शदाताओं को बल्कि उन साधारण पाठकों को भी रुचि होगी जो बुनियादी महत्त्व और चिन्ता की समस्याओं के प्रति भारत में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई अभिवृत्तियों की प्रवृत्तियाँ जानना चाहते हैं, इसलिए जहाँ कहीं भी सांख्यिकीय पद्धति का सहारा लिया गया है उसे साधारण प्रतिशत अनुपातों तक ही सीमित रखा गया है और कहीं भी उसे तालिकाओं के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। वैयक्तिक साक्षात्कारों से एकत्रित की गयी जानकारी और इस प्रकार जमा की गयी आधार-सामग्री को विभिन्न अभिवृत्तियों और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक गति-सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिए व्यक्ति-अध्ययनों के रूप में या उत्तरदाताओं के मौखिक वक्तव्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। और इस पुस्तक में जिन अभिवृत्तियों पर विचार किया गया है उनका सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी इन्हीं के आधार पर किया गया है।

इस अन्वेषण का मुख्य उद्देश्य युवा शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की कुछ अभिवृत्तियों के बारे में तथ्य प्राप्त करना और फिर उसका कार्यात्मक विश्लेषण करना था। तथ्यों का पता लगाना बहुत आवश्यक है क्योंकि "तथ्यों के बिना जन-साधारण के मन में नाना प्रकार की निराधार धारणाएं पनपती रहती हैं..." (कंफर्ट, 1963).

और हमारे सामने जो कुछ आता है उसमें "आग्रहपूर्ण मत तो होते हैं पर विश्वसनीय आधार-सामग्री बहुत थोड़ी होती है" (कार्सटेयर्स, 1963)।

हमेशा दो वास्तविकताएँ होती हैं—एक है लोगों का व्यवहार और दूसरी यह है कि वे क्या सोचते हैं। कभी-कभी और कुछ क्षेत्रों में अधिक महत्त्वपूर्ण तात्कालिक वास्तविकता यह होती है कि लोग क्या सोचते हैं। परन्तु ये दोनों ही वास्तविकताएँ परस्पर-निर्भर होती हैं। चूँकि लेखिका मन की वास्तविकता को भी उतना ही महत्त्व देती है, इसलिए उसने इस बात के उद्धरण देकर कि लोग कुछ चीज़ों के बारे में जो कुछ सोचते हैं या अनुभव करते हैं उसके बारे में वे क्या कहते हैं, इस बात का वर्णन और विवेचन किया है कि समाज का कोई भाग विशेष क्या अनुभव करता है या सोचता है। इस प्रकार इस अध्ययन में भारत की युवा शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बदलते हुए "मानसिक जगत" को प्रस्तुत किया गया है, या हम यह भी कह सकते हैं कि इसमें उनकी दुनिया की "सुगन्ध" प्रस्तुत की गयी है। इसमें पाठक को कुछ प्रमुख सामाजिक संस्थाओं के बारे में उनकी विचार-पद्धति के प्रसंग में समकालीन स्थिति से परिचित कराने का प्रयास किया गया है और साथ ही पाठक को हमारे समाज की कुछ बुनियादी समस्याओं के प्रति उनकी बदलती हुई संकल्पनाओं, विश्वासों और अभिवृत्तियों की प्रवृत्तियों से भी परिचित कराने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक का काफी बड़ा भाग व्यक्ति-अध्ययनों का या साक्षात्कारों के दौरान उत्तरदाताओं के वक्तव्यों के उद्धरणों का है, जिन्हें शब्दश: ज्यों का त्यों दिया गया है। इस पूरे अध्ययन में उत्तरदाताओं के जितने भी नाम दिये गये हैं वे कल्पित हैं और जिस किसी वैयक्तिक अथवा अन्य ब्योरे से उत्तरदाता को पहचानने में सुविधा होने की सम्भावना थी उसे जान-बूझकर और सावधानी के साथ बदल दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाली आधार-सामग्री प्रदान करनेवाली प्राय: कोई भी आनुभविक संदर्शिका नहीं उपलब्ध थी। इस प्रकार इस अध्ययन को प्रेम, सेक्स और एक प्रथा के रूप में विवाह से सम्बन्धित कुछ बदलती हुई अभिवृत्तियों की समन्वेषी जाँच समझना उचित ही होगा।

आरम्भ में यह अनुसन्धान कार्य बहुत धीमा और रोचक होते हुए भी कष्टसाध्य था। परन्तु शीघ्र ही लेखिका ने अनुभव किया कि यह कार्य आकर्षक होने के साथ ही उत्साहवर्द्धक और सन्तोषप्रद भी है।

प्रेम, सेक्स और विवाह एक-दूसरे में मिले हुए और परस्पर-निर्भर ऐसे परिवर्तनशील तत्त्व हैं कि इन पर अलग-अलग विचार करना कठिन है। परन्तु प्रस्तुतीकरण तथा विश्लेषण के लिए अगले तीन अध्यायों में इन पर अलग-अलग, किन्तु अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों के पूरे समूह के विभिन्न अंगों के रूप में विचार किया जायेगा।

2

प्रेम—एक कालदोष ?

क्या हमें प्रेम के वारे में पर्याप्त जानकारी है ? प्रेम की संकलपनाओं के वारे में—जो मानव-सम्बन्धों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष और एक महत्त्वपूर्ण भावात्मक घटना है—इतना कम ज्ञात है कि हमें आश्चर्य होता है कि ऐसा क्यों है । अंशतः इसका कारण यह हो सकता है कि ईश्वर के प्रति आस्था की तरह प्रेम को भी वैज्ञानिक अध्ययन की पहुँच के बाहर समझा जाता था, और कुछ हद तक अब भी ऐसा ही समझा जाता है ।

वोंसटेट्टेन ने कई वर्ष पहले लिखा था, "कोई भी शब्द इतना अधिक नहीं बोला जाता है जितना कि प्रेम, फिर भी कोई विषय इससे अधिक रहस्यमय नहीं है । जो चीज़ हमें अधिक निकट से छूती है उसके वारे में हम सबसे कम जानते हैं । हम सितारों की गति तो नाप लेते हैं पर यह नहीं जानते कि हम प्रेम कैसे करते हैं" (देखिये एलिस, 1936, पृष्ठ 136) । प्रेम एक अत्यन्त जटिल संवेग है जिसने मनुष्य को आदिकाल से उत्कृष्ट किया है, परन्तु उसके वारे में वैज्ञानिक छानबीन अभी हाल ही में आरम्भ की गयी है । "प्रेम और सेक्स मनुष्य की चिरस्थायी ऐतिहासिक पहेलियाँ हैं" (रेमी और वूग, 1964, पृष्ठ 7) ।

प्रेम के स्वरूप और वास्तविक अर्थ के वारे में वहुत उलझाव हैं । इसका मुख्य कारण यह प्रचलित धारणा है कि प्रेम मूलतः अज्ञात और अज्ञेय है और यह कि प्रेम का स्वरूप मनुष्य की समझ से परे है (देखिये श्रुक्साल और मेरिल, 1947, पृष्ठ 121-130), और इस महत्त्वपूर्ण वैयक्तिक घटना के वारे में किसी वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की सम्भावना नहीं है । लेंट्ज़ और सिडर लिखते हैं, "यह विज्ञान-विरोधी मत न केवल अज्ञान का वल्कि मानव-सम्बन्धों के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष को समझने के वारे में—पूर्ण निराशा का भी सूचक है" (लेंट्ज़ और सिडर, 1960, पृष्ठ 109) । निःस

व्यवहार-विज्ञानी प्रेम के बारे में तो जानकारी प्रदान करते हैं पर प्रेम के अनिवार्य स्वरूप के बारे में शायद ही कभी कुछ बताते हों। यह बात समझ में आ सकती है क्योंकि प्रेम की संकल्पना एक अत्यन्त जटिल विषय है।

यद्यपि प्रेम के बारे में काफी प्रकाशित सामग्री उपलब्ध है, परन्तु प्रेम के बारे में साहित्य का सबसे बड़ा भंडार या तो काव्यात्मक, मानवतावादी तथा साहित्यिक है या फिर कामुक और अश्लील है, और उसमें प्रेम का वर्णन एक आवेशपूर्ण अनुभव के रूप में किया गया है। गूड (1959) के अनुसार कवियों तथा कथाकारों के अतिरिक्त वात्स्यायन, ओविड, कैपैलैनस और अन्य लोगों ने जो पुस्तकें लिखी हैं वे न्यूनाधिक रूप में "कैसे करें" कोटि की पुस्तकें हैं जिनमें यह बताया गया है कि प्रेम के सम्बन्धों में व्यक्ति का आचरण किस प्रकार का होना चाहिए और यह कि काम-क्रीड़ा में दूसरे पक्ष को कैसे सन्तुष्ट किया जाये। ऐसी रचना शायद ही कभी मिलती है जिसमें प्रेम की ओर गम्भीर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ध्यान दिया गया हो।

कोल्ब (1948, पृष्ठ 451-456) और बाईगेल (1951, पृष्ठ 326-334) जैसे कुछ समाजशास्त्रियों ने यह सिद्ध किया है कि हमारे समाज में प्रेम के हितकर प्रभाव होते हैं। गूड (1959, पृष्ठ 38-47) कुछ लेखकों की प्रस्तुत की हुई ऐसी प्रस्थापनाओं का उल्लेख करते हुए जिनमें बताया गया है कि प्रेम के सम्बन्ध किन परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं, लिखते हैं कि प्रेम को जन्म देनेवाली परिस्थितियों की अधिकांश व्याख्याएँ मनोवैज्ञानिक हैं जिनका स्रोत फ्रायड (1922, पृष्ठ 72) के इस मत में मिलता है कि "लक्ष्य-कुंठित सेक्स" ही प्रेम है। उदाहरण के लिए यही विचार वालर (1938, पृष्ठ 189-192) ने व्यक्त किया है, जो कहते हैं कि प्रेम एक आदर्शीकृत आवेग है जो सेक्स की विफलता से विकसित होता है। यह प्रस्थापना व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है, यद्यपि इसे कुछ भोंडे रूप में प्रस्तुत किया गया है और एक सामान्य व्याख्या के रूप में नही भी नहीं है।

फ्रायड यह धारणा उत्पन्न करते हैं कि प्रेम सेक्स की इच्छा का दमन करने से प्रसंगवश उत्पन्न होनेवाली कोई चीज है, परन्तु सेक्स-जन्य प्रेम से परे भी तो कुछ प्रेम होते हैं। चेसर कहते हैं कि हमारी मूल प्रवृत्तियों को "मोटे तौर पर में तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : अहं प्रवृत्तियाँ, जैसे आत्म परिरक्षण, सेक्स-प्रवृत्तियाँ, जिनमें मातृत्व की प्रवृत्ति शामिल है, और सामाजिक प्रवृत्तियाँ जिनमें मनुष्य के प्रसंग में परोपकार की भावना सम्मिलित है" (चेसर, 1964, पृष्ठ 156)। इससे पहले वह मत व्यक्त करते हैं, "शताब्दियों से नीतिवादी प्रेम और सेक्स के बीच अन्तर करने की समस्या को हल करने का प्रयत्न करते रहे हैं। प्रेम को शुद्धत: आध्यात्मिक और इसलिए सच्चरित्रता का परिचायक समझा जाता था। सेक्स की इच्छा से दूषित हो जाने पर उसे यदि दुष्टता का परिचायक नहीं तो सन्दिग्ध अवश्य समझा जाने लगता था" (चेसर, 1964, पृष्ठ 7)।

पहली बार सोचने पर तो प्रेम और सेक्स दोनों एक ही चीज प्रतीत हो सकते

हैं। पर हो सकता है कि ऐसा न हो। दोनों की परिभाषाएँ इस उलझाव को दूर कर सकती हैं, यद्यपि इनकी परिभाषा करना बहुत कठिन है। प्रेम ऐसी जटिल भावना-मनोग्रन्थि है कि कोई भी परिभाषा इस पूरी जटिल घटना का अति-सरलीकरण ही होगी। प्रेम एक स्थूल संकल्पना है जिसका अर्थ अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग हो सकता है।

जब भी जननांग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उद्दीप्त होते हैं तब प्रेम को सेक्स से सम्बन्धित माना जाता है, परन्तु जब भी प्रेम का सम्बन्ध जननांगों से नहीं होता है तो उसे सेक्स से असम्बन्धित समझा जाता है। प्रेम केवल सेक्स-प्रवृत्ति का दूसरा नाम नहीं है जैसा कि बहुत-से लोग समझते हैं। यह प्रवृत्ति तो मनुष्य में प्रेम करने की क्षमता विकसित होने से बहुत पहले भी मौजूद थी।

जैसा कि चेसर ने समझाया है, सेक्स की प्रवृत्ति तो मानव-जाति की उत्पत्ति के समय से सदैव ही रही है और पशुओं की तरह मनुष्य भी आँख बन्द करके समागम के अपने आवेश का अनुसरण करता था, जो एक स्त्री-संगिनी के साथ, जो कि "शारीरिक इच्छा की पूर्ति के अनाम माध्यम" से अधिक कुछ नहीं होती थी, प्रजनन की अंतःप्रेरणा के विवेकहीन अनुसरण के रूप में मैथुन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता था। मानव विकास की प्रक्रिया के दौरान लगभग दस लाख वर्ष पहले मानव चेतना में एक परिवर्तन हुआ जिसने मनुष्य में दूसरों के साथ सहयोग करने तथा उनकी सहायता करने और इसके साथ ही दूसरों की चिन्ता करने के लिए अपनी तत्परता की चेतना जागृत की। इस विकास के साथ मनुष्य एक विशिष्ट स्त्री-संगिनी के साथ सहचारिता की आवश्यकता अनुभव करने लगा, और वह एक अनाम मानव के साथ अंधी सेक्स प्रवृत्ति की शुद्धतः शारीरिक तुष्टि से अधिक किसी चीज़ की इच्छा करने लगा। इस उदीयमान मानव आवश्यकता ने मैथुन-क्रिया में एक नये अर्थ का समावेश कर दिया। इसने उसमें एक नयी कोमलता और निष्ठा की एक नयी भावना भर दी। मानव-विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुँच जाने के बाद ही मानव-जाति में एक उदीयमान गुण तथा क्षमता के रूप में प्रेम का उद्भव हुआ। इसका उद्भव उसी ढंग से हुआ जिस ढंग से मानव-विकास के उच्चतर स्तर पर पहुँचकर मस्तिष्क के अधिक विकसित हो जाने के बाद प्रज्ञा और तर्क-शक्ति का उद्भव हुआ (देखिये चेसर, 1964, पृष्ठ 6-8 और 216)। प्रेम की भावनाओं की उत्पत्ति के बारे में अनुमान लगाते हुए स्टीफेंस लिखते हैं :

> प्रेम के संवेग (या संवेगों) का उद्गम क्या है ? कुछ समाजों में इस संवेग का सर्वथा, या लगभग सर्वथा, अभाव क्यों रहता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें प्रेम-भावनाओं के व्यक्तित्व-उद्गमों को जानना होगा—जो एक ऐसा विषय है जिसके बारे में सिद्धान्त तो कई हैं पर जानकारी न होने के बराबर है। इस प्रकार के एक सिद्धान्त के अनुसार प्रेम करने की क्षमता वियोग की चिन्ता से—माँ के प्रेम से

व्यवहार-विज्ञानी प्रेम के बारे में तो जानकारी प्रदान करते हैं पर प्रेम के अनिवार्य स्वरूप के बारे में शायद ही कभी कुछ बताते हों। यह बात समझ में आ सकती है क्योंकि प्रेम की संकल्पना एक अत्यन्त जटिल विषय है।

यद्यपि प्रेम के बारे में काफी प्रकाशित सामग्री उपलब्ध है, परन्तु प्रेम के बारे में साहित्य का सबसे बड़ा भंडार या तो काव्यात्मक, मानवतावादी तथा साहित्यिक है या फिर कामुक और अश्लील है, और उसमें प्रेम का वर्णन एक आवेशपूर्ण अनुभव के रूप में किया गया है। गूड (1959) के अनुसार कवियों तथा कथाकारों के अतिरिक्त वात्स्यायन, ओविड, कैपेलैनस और अन्य लोगों ने जो पुस्तकें लिखी हैं वे न्यूनाधिक रूप में "कैसे करें" कोटि की पुस्तकें हैं जिनमें यह बताया गया है कि प्रेम के सम्बन्धों में व्यक्ति का आचरण किस प्रकार का होना चाहिए और यह कि काम-क्रीड़ा में दूसरे पक्ष को कैसे सन्तुष्ट किया जाये। ऐसी रचना शायद ही कभी मिलती है जिसमें प्रेम की ओर गम्भीर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ध्यान दिया गया हो।

कोल्ब (1948, पृष्ठ 451-456) और बाईगेल (1951, पृष्ठ 326-334) जैसे कुछ समाजशास्त्रियों ने यह सिद्ध किया है कि हमारे समाज में प्रेम के हितकर प्रभाव होते हैं। गूड (1959, पृष्ठ 38-47) कुछ लेखकों की प्रस्तुत की हुई ऐसी प्रस्थापनाओं का उल्लेख करते हुए जिनमें बताया गया है कि प्रेम के सम्बन्ध किन परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं, लिखते हैं कि प्रेम को जन्म देनेवाली परिस्थितियों की अधिकांश व्याख्याएँ मनोवैज्ञानिक हैं जिनका स्रोत फ्रायड (1922, पृष्ठ 72) के इस मत में मिलता है कि "लक्ष्य-कुंठित सेक्स" ही प्रेम है। उदाहरण के लिए यही विचार वालर (1938, पृष्ठ 189-192) ने व्यक्त किया है, जो कहते हैं कि प्रेम एक आदर्शीकृत आवेश है जो सेक्स की विफलता से विकसित होता है। यह प्रस्थापना व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है, यद्यपि इसे कुछ भोंडे रूप में प्रस्तुत किया गया है और एक सामान्य व्याख्या के रूप में सही भी नहीं है।

फ्रायड यह धारणा उत्पन्न करते हैं कि प्रेम सेक्स की इच्छा का दमन करने से प्रसंगवश उत्पन्न होनेवाली कोई चीज है, परन्तु सेक्स-जन्य प्रेम से परे भी तो कुछ प्रेम होते हैं। चेसर कहते हैं कि हमारी मूल प्रवृत्तियों को "मोटे तौर पर में तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : अहं प्रवृत्तियाँ, जैसे आत्म परिरक्षण, सेक्स-प्रवृत्तियाँ, जिनमें मातृत्व की प्रवृत्ति शामिल है, और सामाजिक प्रवृत्तियाँ जिनमें मनुष्य के प्रसंग में परोपकार की भावना सम्मिलित है" (चेसर, 1964, पृष्ठ 156)। इससे पहले वह मत व्यक्त करते हैं, "शताब्दियों से नीतिवादी प्रेम और सेक्स के बीच अन्तर करने की समस्या को हल करने का प्रयत्न करते रहे हैं। प्रेम को शुद्धतः आध्यात्मिक और इसलिए सच्चरित्रता का परिचायक समझा जाता था। सेक्स की इच्छा से दूषित हो जाने पर उसे यदि दुष्टता का परिचायक नहीं तो सन्दिग्ध अवश्य समझा जाने लगता था" (चेसर, 1964, पृष्ठ 7)।

पहली बार सोचने पर तो प्रेम और सेक्स दोनों एक ही चीज प्रतीत हो सकते

हैं। पर हो सकता है कि ऐसा न हो। दोनों की परिभाषाएँ इस उलझाव को दूर कर सकती हैं, यद्यपि इनकी परिभाषा करना बहुत कठिन है। प्रेम ऐसी जटिल भावना-मनोग्रन्थि है कि कोई भी परिभाषा इस पूरी जटिल घटना का अति-सरलीकरण ही होगी। प्रेम एक स्थूल संकल्पना है जिसका अर्थ अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग हो सकता है।

जब भी जननांग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उद्दीप्त होते हैं तब प्रेम को सेक्स से सम्बन्धित माना जाता है, परन्तु जब भी प्रेम का सम्बन्ध जननांगों से नहीं होता है तो उसे सेक्स से असम्बन्धित समझा जाता है। प्रेम केवल सेक्स-प्रवृत्ति का दूसरा नाम नहीं है जैसा कि बहुत-से लोग समझते हैं। यह प्रवृत्ति तो मनुष्य में प्रेम करने की क्षमता विकसित होने से बहुत पहले भी मौजूद थी।

जैसा कि चेसर ने समझाया है, सेक्स की प्रवृत्ति तो मानव-जाति की उत्पत्ति के समय से सदैव ही रही है और पशुओं की तरह मनुष्य भी आँख बन्द करके समागम के अपने आवेश का अनुसरण करता था, जो एक स्त्री-संगिनी के साथ, जो कि "शारीरिक इच्छा की पूर्ति के अनाम माध्यम" से अधिक कुछ नहीं होती थी, प्रजनन की अंतःप्रेरणा के विवेकहीन अनुसरण के रूप में मैथुन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता था। मानव विकास की प्रक्रिया के दौरान लगभग दस लाख वर्ष पहले मानव चेतना में एक परिवर्तन हुआ जिसने मनुष्य में दूसरों के साथ सहयोग करने तथा उनकी सहायता करने और इसके साथ ही दूसरों की चिन्ता करने के लिए अपनी तत्परता की चेतना जागृत की। इस विकास के साथ मनुष्य एक विशिष्ट स्त्री-संगिनी के साथ सहचारिता की आवश्यकता अनुभव करने लगा, और वह एक अनाम मानव के साथ अंधी सेक्स प्रवृत्ति की शुद्धतः शारीरिक तुष्टि से अधिक किसी चीज़ की इच्छा करने लगा। इस उदीयमान मानव आवश्यकता ने मैथुन-क्रिया में एक नये अर्थ का समावेश कर दिया। इसने उसमें एक नयी कोमलता और निष्ठा की एक नयी भावना भर दी। मानव-विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुँच जाने के बाद ही मानव-जाति में एक उदीयमान गुण तथा क्षमता के रूप में प्रेम का उद्भव हुआ। इसका उद्भव उसी ढंग से हुआ जिस ढंग से मानव-विकास के उच्चतर स्तर पर पहुँचकर मस्तिष्क के अधिक विकसित हो जाने के बाद प्रज्ञा और तर्क-शक्ति का उद्भव हुआ (देखिये चेसर, 1964, पृष्ठ 6-8 और 216)। प्रेम की भावनाओं की उत्पत्ति के बारे में अनुमान लगाते हुए स्टीफेंस लिखते हैं :

> प्रेम के संवेग (या संवेगों) का उद्गम क्या है? कुछ समाजों में इस संवेग का सर्वथा, या लगभग सर्वथा, अभाव क्यों रहता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें प्रेम-भावनाओं के व्यक्तित्व-उद्गमों को जानना होगा—जो एक ऐसा विषय है जिसके बारे में सिद्धान्त तो कई हैं पर जानकारी न होने के बराबर है। इस प्रकार के एक सिद्धान्त के अनुसार प्रेम करने की क्षमता वियोग की चिन्ता से—माँ के प्रेम से

व्यवहार-विज्ञानी प्रेम के बारे में तो जानकारी प्रदान करते हैं पर प्रेम के अनिवार्य स्वरूप के बारे में शायद ही कभी कुछ बताते हों। यह बात समझ में आ सकती है क्योंकि प्रेम की संकल्पना एक अत्यन्त जटिल विषय है।

यद्यपि प्रेम के बारे में काफी प्रकाशित सामग्री उपलब्ध है, परन्तु प्रेम के बारे में साहित्य का सबसे बड़ा भंडार या तो काव्यात्मक, मानवतावादी तथा साहित्यिक है या फिर कामुक और अश्लील है, और उसमें प्रेम का वर्णन एक आवेशपूर्ण अनुभव के रूप में किया गया है। गूड (1959) के अनुसार कवियों तथा कथाकारों के अतिरिक्त वात्स्यायन, ओविड, कैपेलैनस और अन्य लोगों ने जो पुस्तकें लिखी हैं वे न्यूनाधिक रूप में "कैसे करें" कोटि की पुस्तकें हैं जिनमें यह बताया गया है कि प्रेम के सम्बन्धों में व्यक्ति का आचरण किस प्रकार का होना चाहिए और यह कि काम-क्रीड़ा में दूसरे पक्ष को कैसे सन्तुष्ट किया जाये। ऐसी रचना शायद ही कभी मिलती है जिसमें प्रेम की ओर गम्भीर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ध्यान दिया गया हो।

कोल्ब (1948, पृष्ठ 451-456) और बाईगेल (1951, पृष्ठ 326-334) जैसे कुछ समाजशास्त्रियों ने यह सिद्ध किया है कि हमारे समाज में प्रेम के हितकर प्रभाव होते हैं। गूड (1959, पृष्ठ 38-47) कुछ लेखकों की प्रस्तुत की हुई ऐसी प्रस्थापनाओं का उल्लेख करते हुए जिनमें बताया गया है कि प्रेम के सम्बन्ध किन परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं, लिखते हैं कि प्रेम को जन्म देनेवाली परिस्थितियों की अधिकांश व्याख्याएँ मनोवैज्ञानिक हैं जिनका स्रोत फ्रायड (1922, पृष्ठ 72) के इस मत में मिलता है कि "लक्ष्य-कुंठित सेक्स" ही प्रेम है। उदाहरण के लिए यही विचार वालर (1938, पृष्ठ 189-192) ने व्यक्त किया है, जो कहते हैं कि प्रेम एक आदर्शीकृत आवेश है जो सेक्स की विफलता से विकसित होता है। यह प्रस्थापना व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है, यद्यपि इसे कुछ भोंडे रूप में प्रस्तुत किया गया है और एक सामान्य व्याख्या के रूप में सही भी नहीं है।

फ्रायड यह धारणा उत्पन्न करते हैं कि प्रेम सेक्स की इच्छा का दमन करने से प्रसंगवश उत्पन्न होनेवाली कोई चीज है, परन्तु सेक्स-जन्य प्रेम से परे भी तो कुछ प्रेम होते हैं। चेसर कहते हैं कि हमारी मूल प्रवृत्तियों को "मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : अहं प्रवृत्तियां, जैसे आत्म परिरक्षण, सेक्स-प्रवृत्तियां, जिनमें मातृत्व की प्रवृत्ति शामिल है, और सामाजिक प्रवृत्तियां जिनमें मनुष्य के प्रसंग में परोपकार की भावना सम्मिलित है" (चेसर, 1964, पृष्ठ 156)। इससे पहले वह मत व्यक्त करते हैं, "शताब्दियों से नीतिवादी प्रेम और सेक्स के बीच अन्तर करने की समस्या को हल करने का प्रयत्न करते रहे हैं। प्रेम को शुद्धतः आध्यात्मिक और इसलिए सच्चरित्रता का परिचायक समझा जाता था। सेक्स की इच्छा से दूषित हो जाने पर उसे यदि दुष्टता का परिचायक नहीं तो सन्दिग्ध अवश्य समझा जाने लगता था" (चेसर, 1964, पृष्ठ 7)।

पहली बार सोचने पर तो प्रेम और सेक्स दोनों एक ही चीज प्रतीत हो सकते

> अलग हो जाने के बाल्यावास्था के भय से—उत्पन्न होती है (राइक, 1944)। एक और सिद्धान्त में कहा गया है कि रूमानी प्रेम इडिपसीय प्रेम का—शैशव काव्य में बेटे के अपनी माता के प्रति या बेटी के अपने पिता के प्रति सेक्स प्रेम का—ही क्रम होता है (फेनिचेल, 1945)। (स्टीफ़ेंस, 1963, पृष्ठ 206)।

राइस ने रूमानी प्रेम का इतिहास जिस रूप में प्रस्तुत किया है (1960, पृष्ठ 53-56) उसका सारांश देते हुए स्टीफ़ेंस लिखते हैं :

> रूमानी प्रेम के आन्दोलन में कई अवसरों पर यह भी समझा गया है कि प्रेम की निष्पत्ति सेक्स समागम के रूप में करना प्रेम को नष्ट कर देना है। स्थायी रहने के लिए प्रेम को विवाह और सेक्स से मुक्त रहना चाहिए।...
>
> दरबारी प्रेम की प्रारम्भिक अवस्थाओं में बहुधा सेक्स के तत्त्व का समावेश नगण्य होता था। वह मुख्यतः दूर से सराहना के रूप में होता था, जिसके साथ वीरतापूर्ण कर्त्तव्यपालन या किसी नये रचे हुए अथवा अच्छे ढंग से गाये गये गीत के पुरस्कार के रूप में बस माथे पर एक चुम्बन दे दिया जाता था। सूरमा और चारण, कम से कम कुछ समय के लिए, अपने प्रेम के आदर्शवादी तत्त्व से सन्तुष्ट रहते थे और अपने इस आत्म-त्याग में गौरव तक अनुभव करते थे।...
>
> सोलहवीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते, प्रेमियों के पराक्रमों का पुरस्कार नियमित रूप से केवल माथे पर एक चुम्बन के बताये दैहिक अनुग्रहों के रूप में दिया जाने लगा।
>
> कुछ ही शताब्दियों के भीतर यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी और सेक्स समागम ही पुरस्कार बन गया, जिसे अनौपचारिक रूप से ग्रहण किया जाता था; सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते विवाहेतर संसर्ग औपचारिक रूप से पुरस्कार के रूप में दिया जाने लगा (राइस, 1960, पृष्ठ 55-56)।...
>
> परन्तु धीरे-धीरे दरबारी प्रेम की परम्पराएँ 'भ्रष्ट' हो गयीं, अर्थात् उसका सेक्स वाला अंश कम उदात्त होता गया और प्रेम तथा सेक्स और प्रेम तथा विवाह एक-दूसरे से सम्बद्ध हो गये। (स्टीफेंस, 1963, पृष्ठ 202-203)।

उसका उद्गम कुछ भी हो, प्रेम निःसन्देह मनुष्य की बुनियादी तथा आधारभूत आवश्यकताओं में से एक है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के जन्म के समय से ही उसमें प्रेम का गुण होता है और बुनियादी तौर पर हर आदमी में प्रेम की क्षमता होती है। इतना आवश्यक है कि प्रेम करने की पूर्ववृत्ति विकसित होती है, समाजीकरण के आचरण—अर्थात् वे तरीके जिनसे समाज प्रेम के लिए किसी व्यक्ति का समाजीकरण करता है—प्रेम को जन्म देते हैं, और उसे एक निश्चित रूप प्रदान करते हैं। यह

आधारभूत क्षमता मनुष्य में उस समय तक प्रसुप्त रहती है जब तक कि उसे जागृत न किया जाये और वह अपने निकटतम परिवेश में अपने "महत्त्वपूर्ण पात्रों" के साथ सामाजिक अंतःक्रिया के प्रारम्भिक अनुभवों के माध्यम से प्रेम करना सीख नहीं लेता।

लेकिन प्रेम है क्या ? विभिन्न विद्वानों ने प्रेम की जो परिभाषाएँ और व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं : "सेक्स से 'कुछ अधिक' के लिए मनुष्य की वह अनन्य लालसा, अर्थात् जिसे हम प्रेम कहते हैं" (चेसर 1964, पृष्ठ 126) ।

"जब किसी व्यक्ति के लिए किसी दूसरे व्यक्ति की तुष्टि अथवा सुरक्षा उतनी ही महत्त्वपूर्ण बन जाती है जितनी कि स्वयं उसकी अपनी सुरक्षा, तब प्रेम की स्थिति का अस्तित्व होता है" (सलिवान, 1947) ।

"किसी व्यक्ति से प्रेम का अर्थ उस व्यक्ति पर अधिकार करना नहीं, बल्कि उस व्यक्ति को पूर्णतः स्वीकार करना होता है। इसका अर्थ होता है उस व्यक्ति को सहर्ष उसके अनन्य मनुष्यत्व का पूर्ण अधिकार प्रदान करना। यह नहीं हो सकता कि हम किसी व्यक्ति से सचमुच प्रेम भी करते हों और उसे अपना दास बनाने का भी प्रयत्न करें—कानून के सहारे, या निर्भरता तथा आधिक्य के बन्धनों के सहारे। जब कभी हम अनन्य प्रेम अनुभव करते हैं तब हमें यह रूपान्तरकारी अनुभव सद्भावना की क्षमता की दिशा में प्रेरित करता है" (ओवरस्ट्रीट, 1949) ।

"एक-दूसरे की अखंडता के परिरक्षण की परिस्थिति में दो मनुष्यों के बीच आत्मीयता की अभिव्यक्ति प्रेम होती है" (फ्राम्प, 1947) ।

स्पेंसर ने अपनी पुस्तक **प्रिंसिपल्ज़ ऑफ़ साइकोलॉजी** (मनोविज्ञान के सिद्धान्त) में प्रेम का विश्लेषण नौ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों में किया है : (1) सेक्स का शारीरिक आवेग; (2) सौन्दर्य की भावना; (3) स्नेह; (4) श्लाघा और सम्मान; (5) अनुमोदन की चाह; (6) आत्म-प्रतिष्ठा; (7) स्वामित्व की भावना; (8) वैयक्तिक सीमाओं के अभाव से उत्पन्न क्रिया की विस्तारित स्वतन्त्रता; और (9) सहानुभूतियों का उत्कर्ष। "यह आवेश उनमें से अधिकांश प्रायमिक उत्तेजनों को जिनकी हममें क्षमता होती है, एक में मिलाकर एक विशाल समुच्चय के रूप में ढाल देता है" (स्पेंसर, 1855) ।

"प्रेम से हमारा अभिप्राय उस अंतःप्रेरणा के संवेगात्मक सहवर्ती से होता है जो हमें व्यक्तियों के साथ सन्निकट वैयक्तिक सम्पर्क की ओर ले जाती है। प्रेम के साथ कोमलता की भावनाएँ हो भी सकती हैं और नहीं भी" (ब्राउन, 1940, पृष्ठ 133) । फ्रायड ने बताया है कि प्रेम करने और प्रेम का पात्र बनने की इच्छा मनुष्य के लिए मुख्य अभिप्रेरणा शक्ति होती है। स्टीफ़ेंस के अनुसार "प्रेम", अथवा "रोमांटिक प्रेम" आगे दी हुई चीज़ों में से किसी एक, कई या सभी का द्योतक हो सकता है : (1) किसी एक व्यक्ति के प्रति गहरा आकर्षण और लगाव, जिसके साथ सेक्स की सचेतन इच्छा हो भी सकती है, और नहीं भी; (2) अधिकार की भावना : सेक्स-[illegible]

निष्ठा और सेक्स-सम्बन्धी ईर्ष्या की क्षमता; (3) विषमतम मनःस्थितियाँ : उल्लास और कभी अवसाद; (4) प्रेम के पात्र को आदर्श समझना (देखिये स्टीफ़ेंस, 1963, पृष्ठ 204)।

"रोमांटिक प्रेम मुख्यतः सामान्य प्रेम की गहन अभिव्यक्ति होता है, जिसमें घनिष्ठ आत्मीयता की और समकालीन संसर्ग-प्रेम के विशेष लक्षणों से उत्पन्न होने-वाली विशेषताएँ प्राप्त करने का आग्रह होता है। विशेष रूप से, रोमांटिक प्रेम इन चीज़ों को अतिरंजित कर देता है : (क) प्रेम के सूचकों के रूप में उत्तेजना और उद्विग्नता तथा उल्लासोन्माद की भावनाओं पर निर्भरता, (ख) संसर्ग के पात्र को आदर्श मानना और इस सम्बन्ध की निष्कलंकता, (ग) व्यक्ति पर किन्हीं विरोधी दावों की तुलना में रोमांटिक प्रेम के नैतिक दावे की श्रेष्ठता, और (घ) तर्कसंगत निर्णय से अलग प्रेम पर भरोसा करना और सफल विवाह को सुनिश्चित बनाने की योजना बनाना" (टर्नर, 1970, पृष्ठ 317)। रूजमांट (1940) ने भी रोमांटिक प्रेम का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।

भारत के प्राचीन शास्त्रीय साहित्य ने ऐंद्रिय तथा रोमांटिक प्रेम को आदर्श-रूप में प्रस्तुत किया है। केवल परवर्ती साहित्य में ही जाकर हमें प्रेम के प्रति कुछ अधिक नीरस अभिवृत्ति की दिशा में बढ़ने की प्रवृत्ति दिखायी देती है। फिर भी कुछ बातों की दृष्टि से रोमांटिक प्रेम कार्यात्मक होता है, क्योंकि वह संवेगात्मक आवश्यकताओं की, विशेष रूप से प्रेम की वैयक्तिक आवश्यकता की तुष्टि करता है। और विशेष रूप से आज की परिस्थितियों में, वह व्यक्ति को उस अत्यधिक खिंचाव तथा विकृति से भार-मुक्त कर देता है जो अधिकाधिक निर्वैयक्तिक तथा व्यक्ति-निरपेक्ष होती हुई औद्योगिक तथा नगरीय दिशावाली सभ्यता व्यक्ति पर थोप देती है।

प्रेम दो प्रकार का होता है, एक वह जिसका सम्बन्ध विवाह से होता है और जिसमें दायित्व पर बल दिया जाता है, और दूसरा जिसका सम्बन्ध सेक्स से होता है और जिसमें आवेग पर बल दिया जाता है (देखिये टर्नर, 1970, पृष्ठ 330)। टर्नर का मत है : "हर प्रकार के पारिवारिक प्रेम में—वैवाहिक, पितृीय, सन्तानीय और सहोदर—अमरीका मध्य-वर्गीय संस्कृति के कुछ आधारभूत लक्षण होते हैं। प्रेम (क) स्थायी, (ख) व्यापक, (ग) घनिष्ठ, (घ) विश्वासमूलक, (ङ) परार्थवादी, (च) अनुकम्पामय, (छ) सहमतिजन्य, (ज) अनुक्रियाशील, (झ) प्रशंसात्मक, (ञ) स्वतःस्फूर्त, और (ट) मूल्यवान होता है। प्रेम के सांस्कृतिक प्रतिमान भर्त्सना द्वारा और अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करके सिखाये जाते हैं और उनके लिए इस बात की आवश्यकता होती है कि सीखने वाला उस उपयुक्त व्यवहार तथा परिस्थितियों से परिचित हो जाये जिन पर वह प्रतिमान लागू होता हो और वह कुछ आन्तरिक संवेदनों को प्रेम के संकेतों के रूप में पहचाने" (टर्नर, 1970, पृष्ठ 343)।

इस प्रसंग में सैक्सटन ने बताया है :

विवाह के युगल सम्बन्ध में, प्रेम के चार मुख्य घटक होते हैं : परार्थ

> प्रेम, सहचारी प्रेम, सेक्स प्रेम और रोमांटिक प्रेम। परार्थ प्रेम में दूसरे के कल्याण पर बल दिया जाता है।...प्रेमी को स्वयं अपने शारीरिक कल्याण की व्यवस्था करने की अपेक्षा दूसरे के लिए व्यवस्था करने में अधिक सन्तोष मिलता है।...सहचारी प्रेम का सम्बन्ध उस सन्तोष से होता है जो केवल दूसरे व्यक्ति के साथ रहने से, उसकी उपस्थिति में प्राप्त होता है—साथ-साथ बातें करते हुए, खेलते हुए, काम करते हुए या किसी चीज का निर्माण करते हुए।...सेक्स प्रेम में प्रेम और सेक्स एक-दूसरे से मिलकर एकाकार हो जाते हैं : एक ही समय में वही व्यक्ति सेक्स का पात्र भी होता है और प्रेम का पात्र भी; जब किसी व्यक्ति को एक साथ दोनों का अनुभव होता है तभी इस घटना को सेक्स-प्रेम कहते हैं। अपनी चरम परिणति में सेक्स प्रेम से उत्पन्न इतना सन्तोष और इतना गहरा लगाव उत्पन्न हो सकता है जिसकी तीव्रता प्रायः एक पहेली होती है।...
>
> रोमांटिक प्रेम, अर्थात् दूसरे को आदर्श मानना, कदाचित प्रेम के संवेग की सबसे जटिल अभिव्यक्ति है।...रोमांटिक प्रेम के मूल्य वैयक्तिक होते हैं; विवाह में मूल्य पारिवारिक होते हैं। रोमांस सर्वथा निजी, उद्वेगपूर्ण और मनमौजी होता है और तीव्र अनुभव तथा अभिन्नता उसकी लाक्षणिक विशेषताएँ हैं; विवाह प्रकट, स्थिर, नैत्यिक और बहुधा सांसारिक होता है (सैक्सटन, 1970, पृष्ठ 53)।

परार्थ प्रेम और सेक्स प्रेम की विवेचना करते हुए सोरोकिन लिखते हैं :

> यदि सेक्स-प्रेम में दोनों पक्षों के अहंभाव परस्पर विलीन होकर एक ही प्रेममय 'हम' का रूप धारण कर लें और दोनों प्रणयी एक-दूसरे को अंत्य मूल्य मानकर एक-दूसरे के प्रति वैसा ही आचरण रखें तो सेक्स-प्रेम परार्थ-प्रेम का एक रूप बन जाता है। जब ये लक्षण नहीं पाये जाते और जब दोनों प्रणयी एक-दूसरे को केवल सुख प्राप्त करने का साधन या एक उपयोगी वस्तु समझते हैं और परस्पर ऐसा ही आचरण रखते हैं, तो सेक्स-प्रेम एक ऐसा सम्बन्ध बन जाता है जो परार्थ प्रेम से सर्वथा वंचित रहता है (सोरोकिन, 1970, पृष्ठ 78)।

सेक्स और प्रेम के बीच अन्तर करते हुए राधाकृष्णन् लिखते हैं, "जब प्रेम की स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति का मार्गदर्शन मस्तिष्क और हृदय, बुद्धि और विवेक करते हैं तो उसका परिणाम प्रेम होता है। प्रेम न तो रहस्यमय आराधना है और न ही पाशविक भोग। वह सर्वोच्च भावों के मार्गदर्शन के आधीन एक मनुष्य के प्रति दूसरे मनुष्य का आकर्षण होता है" (राधाकृष्णन् 1956, पृष्ठ 146)। आगे चलकर उन्होंने यह चेतावनी भी दी है कि आवेशपूर्ण प्रेम की उद्विग्नता को गहरा अनुराग नहीं समझ लेना चाहिए, क्योंकि वह सर्वथा भिन्न अनुभव होता है। वह लिखते हैं, "प्रेम कोई

मादक पदार्थ नहीं होता जिसमें दोनों जैविक स्तर पर एक-दूसरे में रखे जायें; और न ही मनुष्य प्रजाति-परिरक्षण का उपकरण मात्र है" (पृष्ठ 152)। आगे चलकर वह कहते है :

> प्रेम केवल सेक्स के सुख, वंश-वृद्धि या सहचर्य से बढ़कर होता है। यह एक निजी मामला है जिसमें ऐसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते हैं जो एक पाशविक आवश्यकता की तुष्टि, या एक परिवार की स्थापना या स्वार्थपूर्ण सुख से अधिक मूल्यवान होते हैं।...प्रेम केवल दो ज्वालाओं का मिलन नहीं होता, बल्कि वह एक आत्मा द्वारा दूसरी आत्मा का आवाहन होता है। शुद्ध प्रेम बदले में कुछ नहीं चाहता। वह किसी प्रतिबन्ध या संकोच के बिना मैदान में कूद पड़ता है। वह कभी थकता नहीं, किसी भी काम को असम्भव नहीं समझता और सब कुछ सहने को तैयार रहता है। ऐसा प्रेम शाश्वत होता है (1956, पृष्ठ 154)।

सोरोकिन के अनुसार, "शुद्ध प्रेम को किसी सौदे, किसी पुरस्कार की चिन्ता नहीं होती। वह बदले में कुछ नहीं माँगता।...'सौदेबाजी के प्रेम' के सभी रूप, जिनमें वह विषमलिंगी प्रेम भी सम्मिलित है जिसमें सेक्स-क्रिया के दूसरे भागीदार से केवल इसलिए प्रेम किया जाता है कि पुरुष या स्त्री सुख देती है या उपयोगी होती है, 'अशुद्ध' प्रेम के उदाहरण हैं। कभी-कभी इस प्रकार का प्रेम परार्थमूलक तत्त्वों से सर्वथा रिक्त हो जाता है और पतित होकर शत्रुता तथा घृणा के सम्बन्ध का रूप धारण कर लेता है" (सोरोकिन 1970, पृष्ठ 78)।

गेड्डीज़ का मत है, "प्रेम एक सुन्दर शब्द है। इसका अर्थ प्राय: कुछ भी हो सकता है और हम उसका जो भी अर्थ लगाना चाहें लगा सकते हैं। यह मैथुन के लिए एक शिष्ट शब्द है। यह उस भावना के लिए एक शब्द है जो बच्चे के प्रति माँ की होती है। यही वह शब्द है जिसका प्रयोग ईश्वर की अपनी सन्तान के प्रति भावना के लिए किया जाता है। यदि हमें चाकलेट-आइसक्रीम से विशेष रुचि हो तो चाकलेट-आइसक्रीम के लिए हमारे मन में जो भाव होता है उसे भी प्रेम कहते हैं।...यही वह शब्द है जो देशभक्ति को व्यक्त करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का जो प्रेम होता है—समस्त मानव-जाति का प्रेम—उसके प्रसंग में भी इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है" (गेड्डीज, 1954, पृष्ठ 27)। इस प्रसंग में विडाल लिखते हैं : "प्रेम अपनी जाति का परिरक्षण करने की मूल प्रवृत्ति की स्वाभाविक, स्वत:स्फूर्त अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यह सरासर एक फंदा है जिसे प्रकृति ने परम सुख की हमारी लालसा के माध्यम से उस जाति के जनन के लिए हमको फांसने के उद्देश्य से तैयार किया है" (विडाल, 1941, पृष्ठ 10)।

"प्रेम" का अभिप्राय है कुछ प्रकार के व्यवहार जिनमें भावना भी सम्मिलित है और कुछ प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध अथवा अन्त:क्रिया जो इस व्यवहार पर आधारित प्रतीत होते हैं। प्रेम की भावनाएं बहुधा पारस्परिक होती हैं, पर ऐसा होना

आवश्यक नहीं है। प्रेम के बारे में चेसर कहते हैं :

> जैसा कि मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है, प्रेम उभयभावी होता है। सच तो यह है कि बिजली के धनात्मक तथा ऋणात्मक ध्रुवों की तरह प्रेम और घृणा एक ही मनःऊर्जा के दो विपरीत ध्रुव हैं। यही कारण है कि प्रेम न पा सकने पर मनुष्य बहुधा क्रूर और आक्रामक हो जाता है।...

अन्तिम विश्लेषण में प्रेम हमारी भावप्रवण सुरक्षा की आवश्यकता को तुष्ट करता है (चेसर, 1974 पृष्ठ 8-9)।

वह आगे चलकर कहते हैं, "उस व्यापक अर्थ में प्रेम की परिभाषा एक ऐसे सकारात्मक सम्बन्ध की स्थापना करने की तत्परता के रूप में की जा सकती है जिसका लक्षण है देना न कि पाना (चेसर, 1964, पृष्ठ 19)।

स्त्री के लिए प्रेम उसका धर्म बन जाता है। "रहस्यमय प्रेम की तरह मानव प्रेम का भी सर्वोच्च लक्ष्य है प्रेम के पात्र के साथ तादात्म्य" (राइक, 1945)..."प्रेम करने वाली स्त्री कोई आकस्मिक विपत्ति पड़ने पर अपने जगत को ढह जाने देती है, क्योंकि वास्तव में वह अपने प्रेमी के जगत में रहती है" (बोवा, 1969, पृष्ठ 384-385)। इस प्रसंग में स्टेकेल ने यह मत व्यक्त किया है : "अन्तिम विश्लेषण में प्रेम का अर्थ केवल यह है : दूसरे व्यक्ति के अन्दर अपने-आपको पाना। कोई भी व्यक्ति अपने-आपको या तो अपने अहंभाव के आधीन कर देता है या फिर उसके द्वि-ध्रुवीय विलोम के आधीन। हमारा आदर्श हमारे सेक्स अहंभाव का विलोम होता है। वह दूसरा स्व वह होता है जैसा कि हम बनना चाहते हैं (यदि हम दूसरे सेक्स के होते)" (1941, पृष्ठ 50)।

कामरे ने, जिसने अपना सारा जीवन एक ऐसे सकारात्मक दर्शन की रचना करने में व्यतीत किया जो सर्वथा वास्तविक हो, लिखा है, "संसार में प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी वास्तविक नहीं है। हम सोचते-सोचते थक जाते हैं, कुछ करते-करते भी थक जाते हैं, पर हम प्रेम करते कभी नहीं थकते, और न ऐसा कहने में थकते हैं..." (देखिये एलिस, 1936, पृष्ठ 141)। एलिस ने बताया है कि "विभिन्न विचारक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सेक्स-प्रेम (जिसके साथ माता-पिता का और विशेष रूप से माता का प्रेम भी सम्मिलित है) जीवन की प्रमुख अभिव्यक्तियों का स्रोत है।..." आगे चलकर वह कहते हैं, "वे सभी यही कहते हुए प्रतीत होते हैं कि प्रेम ही एक ऐसी चीज़ है जो सर्वाधिक सार्थक है" (एलिस, 1936, पृष्ठ 140-142)।

प्रेम करनेवाले व्यक्ति को इसके कारण जो कष्ट और विपत्तियां झेलनी पड़ती हैं उनके बावजूद प्रेम जीवन का परम वरदान है। जैसा कि राधाकृष्णन् ने अपनी प्रख्यात पुस्तक रीलिजन एण्ड सोसायटी (धर्म और समाज) (1956) में अनेक स्थानों पर कहा है, "सुख का कोई भी स्रोत इतना सच्चा और विश्वस्त नहीं है जितना कि एक मनुष्य के लिए दूसरे मनुष्य का प्रेम। इसके माध्यम से हम उससे अधिक समझदार बन जाते हैं जितना कि हम समझते हैं, उससे अधिक अच्छे बन जाते हैं जितना कि हम अनुभव करते हैं, उससे अधिक उदात्त बन जाते हैं जितना कि हम हैं" (पृष्ठ

156)। "जब हम किसी ऐसे व्यक्ति के साथ होते हैं जिससे हमें बहुत गहरा प्रेम होता है तो हम संतुष्ट रहते हैं, और यह नहीं पूछते कि हम क्यों जीवित हैं या हमारा जन्म क्यों हुआ; हम जानते हैं कि हमारा जन्म प्रेम और मित्रता के लिए हुआ था" (पृष्ठ 157)। भारत में प्रेम की जो अनेक भूमिकाएँ बतायी जाती हैं या उसका जो बहु-पक्षीय महत्त्व बताया जाता है उसे समझ सकना पश्चिम के लोगों के लिए अलग-अलग परम्परागत पृष्ठभूमियों के कारण कुछ कठिन है। "सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही की दृष्टि से भारत में प्रेम का जो महत्त्व है उसकी कल्पना करना भी हमारे लिए असम्भव है" (एलिस, 1970, पृष्ठ 129)।

प्रेम के बारे में रसेल का मत है:

> मैं प्रेम को मानव-जीवन की एक सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु मानता हूँ, और मैं हर उस व्यवस्था को बुरा समझता हूँ जो इसके उन्मुक्त विकास में अनावश्यक हस्तक्षेप करती है।...
>
> *प्रेम*, यदि इस शब्द का उचित ढंग से *प्रयोग किया जाये*, सेक्सों के बीच हर सम्बन्ध का द्योतक नहीं, बल्कि केवल उस एक सम्बन्ध का द्योतक है जिसमें पर्याप्त संवेग का समावेश हो, और उस सम्बन्ध का भी जो मानसिक भी होता है और शारीरिक भी। वह तीव्रता के किसी भी स्तर तक पहुंच सकता है (रसेल, 1959, पृष्ठ 80)।

प्रेम के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए चित्रे लिखते हैं, "अपने यथार्थ को बनाये रखकर एक-दूसरे को उद्दीप्त तथा आलोकित करने की क्षमता और इसी प्रकार एक-दूसरे को उसके यथार्थ रूप में स्वीकार करने की योग्यता ही पारस्परिक प्रेम का सारतत्त्व है" (चित्रे, 1971, पृष्ठ 49)। फ्राम्म ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है: "इस बिन्दु पर प्रेम से हमारा अभिप्राय है लोगों के प्रति अनुक्रियाशीलता की सभी अनुकूल भावनाएँ, न कि वह उत्कृष्ट वशीकरण संवेग जिसका उल्लेख रोमांटिक साहित्य में मिलता है।..." आगे चलकर वह व्याख्या करते हैं: "प्रेम एक ऐसा संवेग है जिसे उस व्यक्ति के प्रसंग में ही समझा जा सकता है जो उसे अनुभव करता है। प्रेम से हमारी सुरक्षा की भावना बढ़ती है।...हम जितनी ही अच्छी तरह स्वयं अपने को समझेंगे उतनी ही अच्छी तरह हम अपने प्रेम को भी समझ सकते है।...हम दूसरे लोगों की विभिन्न लाक्षणिक विशेषताओं का जो मूल्यांकन करते हैं वह स्वयं हमारी जीवन-पद्धति को भी प्रतिबिम्बित करता है" (फ्राम्म, 1955, पृष्ठ 43)।

विभिन्न उपलब्ध स्रोतों के अनुसंधान के आधार पर प्रेस्काट (1970) ने प्रेम से सम्बन्धित जिन स्थापनाओं को विकसित किया है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

(1) "प्रेम करनेवाले को अपने प्रेम के पात्र के कल्याण, सुख और विकास में बहुत गहरी दिलचस्पी रहती है। यह दिलचस्पी इतनी गहरी होती है कि वह प्रेम करने वाले व्यक्ति के संगठित व्यक्तित्व या उसकी 'स्व' संरचना का एक प्रमुख मूल्य बन जाती है।"

(2) "प्रेम करने वाले को अपने साधन अपने पात्र के लिए उपलब्ध करके सुख मिलता है, ताकि वह अपने कल्याण, सुख और विकास को बढ़ावा देने के लिए उनका उपयोग कर सके। शक्ति, समय, धन, बुद्धि—वास्तव में सभी साधन—सहर्ष पहले प्रेम के पात्र के उपयोग के लिए दे दिये जाते हैं। प्रेम करनेवाले व्यक्ति को अपने प्रेम के पात्र के कल्याण, सुख तथा विकास की न केवल गहरी चिंता रहती है बल्कि वह जब भी सम्भव होता है इन्हें बढ़ावा देने के लिए वस्तुतः कुछ करता भी है।"

(3) "प्रेम सबसे सहजता से और बहुधा परिवार की परिधि में उत्पन्न होता है पर उसकी परिधि को बढ़ाकर उसमें अन्य व्यक्तियों, या लोगों की अन्य कोटियों, या समस्त मानवता को भी सम्मिलित किया जा सकता है। श्वाइट्ज़र तो उसमें समस्त प्राणियों और सृष्टि की समस्त सृजनात्मक शक्तियों—अर्थात् ईश्वर को भी सम्मिलित मानता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति असंख्य अन्य मनुष्यों तथा प्राणियों से प्रेम-लाभ का अनुभव कर सकता है। निःसन्देह, कुछ व्यक्तियों से भी सच्चा पूर्ण प्रेम प्राप्त करना कठिन होता है।...परन्तु यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि उसकी प्रक्रियाओं को अधिक विज्ञान-सम्मत समझदारी प्राप्त करके हम उसे व्यापक बनाने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं उत्पन्न कर सकते।"

(4) "प्रेम के सद्प्रभाव प्रेम के पात्र तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि वे प्रेम करनेवाले के सुख तथा और अधिक विकास को भी बढ़ावा देते हैं। प्रेम करनेवाले के लिए प्रेम परार्थपरक, आत्मत्यागी और परिसीमनकारी नहीं होता। इसके विपरीत वह परस्पर गतिवान होता है जो दोनों के जीवन को बहुत समृद्ध बना देता है।"

(5) "प्रेम की जड़ें मुख्यतः सेक्स-मूलक गत्यात्मकता अथवा हार्मोन-सम्बन्धी अंतर्नोद में नहीं होतीं, यद्यपि उसमें कामुकता के काफी बड़े अंश भी हो सकते हैं, चाहे वह माता-पिता और बच्चों के बीच हो, या बच्चों के बीच, या वयस्कों के बीच। फ्राम्म जब यह कहते हैं कि उत्पादनशील प्रेम से सम्बन्ध चाहे किसी का हो पर उसका सारतत्त्व सदा वही रहता है तब वह इसी स्थिति का समर्थन करते हुए-से लगते हैं" (प्रेस्काट, 1970, पृष्ठ 68)।

पुरुषों और स्त्रियों के बीच जो प्रेम होता है वह मानव-प्रेम के विभिन्न पहलुओं में से एक है। मानव-जीवन में स्त्री के प्रेम के अत्यधिक महत्त्व को व्यक्त करते हुए राधाकृष्णन् लिखते हैं :

> विश्व की महान् उपलब्धियों के लिए प्रेरणा स्त्री के प्रेम से मिली है। कालिदास जैसे प्रतिभाशाली पुरुष, नेपोलियन जैसे विजेता, माइकेल फ़ैरेडे जैसे वैज्ञानिक और अन्य कई विश्व-निर्माता तथा संसार से विरक्त हो जानेवाले इस बात के साक्षी हैं कि उनके जीवन में प्रेम की कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। जो चीज सुमधुर कविताएँ रचनेवालों की कल्पना को श्रेष्ठतम उड़ानों के लिए आंदोलित करती है वह [illegible] उल्लास, प्रेम का फलप्रद संतोष और साथ ही उसका घात

> रामायण में राम और रावण के बीच संघर्ष का केन्द्र एक स्त्री ही थी, और ट्राय का युद्ध भी एक स्त्री पर अधिकार जमाने के लिए ही लड़ा गया था। प्रेम का आवेग स्वयं जीवन के मर्म की ज्वाला है, वह समस्त सृजनात्मकता का स्वर है।...
>
> ...और विद्यापति के गीतों की प्रेरणा भी एक रानी से मिली। बीथोवेन ने भी अपने संगीत की सारी निधि अपनी 'अमर प्रियतम' पर ही उंडेल दी थी (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 146)।

प्रेम और सेक्स का प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में करते हुए भी लुंडिन ने एक स्त्री के जीवन में प्रेम के महत्त्व पर ज़ोर दिया है। "प्रेम स्त्री का जीवन भी होता है और उसकी जीविका भी, उसकी मूल प्रवृत्ति भी और वृत्ति भी, उसका उद्देश्य भी और सुख भी, उसकी रुचि भी और उसका अस्त्र भी। स्त्री के लिए अंततोगत्वा हर वस्तु का निर्धारण प्रेम के माध्यम से होता है; और उसका अर्थ यह है कि जीवन की सभी अवस्थाओं तथा उसके सभी पक्षों का सम्बन्ध सेक्स के अव्यक्त अथवा तुष्ट स्वप्नों के साथ होता है।...वे स्त्रियां भी जो नैतिक अथवा धार्मिक कारणों से कभी मैथुन नहीं करतीं, सेक्स को ही अपने जीवन का केन्द्र-बिन्दु बनाती हैं, क्योंकि जहां दूसरी स्त्रियां तुष्टि की कामना करती हैं ये स्त्रियां उपरति अथवा विरक्ति को अपने जीवन का केन्द्र बनाती हैं" (लुंडिन, 1967, पृष्ठ 332)।

प्रेम आवश्यक रूप से पसन्द या रुचियों की समानता पर निर्भर नहीं रहता। वह शारीरिक अथवा आध्यात्मिक आकर्षण से भी प्रेरित हो सकता है—जैसे भागवत में जहां प्रेम-भावना के उल्लेख भक्ति-भाव के रूप में, मोक्ष प्राप्त करने के एक साधन के रूप में व्यक्त किये गये हैं।

पोपेनोए के शब्दों में : "प्राथमिक सेक्स संसृष्टि का तीसरा तत्त्व वह है जिसे मैं सेक्स-रंजित साहचर्य कहूंगा। इससे मेरा अभिप्राय है वह कोमलता और स्नेह जो दो विषमलिंगी व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति अनुभव करते हैं; जिसे मनोविज्ञानी विलियम मैक्डूगल ने कोमल संवेग कहा है। उसके कारण हम अपने साथी की सबसे बुरी बातों के बजाय उसकी सबसे अच्छी बातों को देखते हैं। यह एक ऐसा संवेग है जो जैविक मैथुन के आवेग के घट जाने के बहुत बाद तक बना रहता है और अधिक मूल्यवान हो जाता है।...यह सेक्स-रंजित साहचर्य इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि लोग बहुधा इसे 'प्रेम' कहते हैं" (पोपेनोए, 1963, पृष्ठ 36-37)। प्रेम के बारे में दूर्किंग का मत है :

> (प्रेम) केवल एक रोमांटिक भावना नहीं है जो अपनी प्रकृति के कारण ही किसी व्यक्ति को एक प्रकार के उल्लास की मादकता की अवस्था में पहुंचा दे, और कुछ समय बीतने पर उस व्यक्ति को प्रतिदिन के जीवन की तुच्छ बातों के बीच लौटा लाये। वह उसके लिए अस्तित्व के एक अधिक उदात्त रूप का, सामान्यतम वस्तुओं के रूपांतरण का द्योतक होता है, जो इस बात का परिणाम होता है कि दोनों

> साझेदारों को इस बात का पूरा आभास रहता है कि उसे अपनी प्रतिष्ठा तथा आत्म-सम्मान को सुरक्षित रखने में दूसरे का सहारा प्राप्त है (शूविकग, 1969, पृष्ठ 47)।

प्रेम के विभिन्न तत्त्व कुछ भी हों पर एक आधारभूत तत्त्व सदा स्थिर रहता है—सचेतन अथवा अचेतन आवश्यक पूर्तियों का एक ऐसा समूह जो किसी व्यक्ति को एक विशिष्ट वस्तु अथवा व्यक्ति से प्राप्त होता है, जैसे पत्नी, भाई, माँ, घर-बार या देश से। अर्थात् व्यक्ति किसी वस्तु अथवा व्यक्ति विशेष से इसलिए प्रेम करना आरम्भ करता है कि उस व्यक्तिय। वस्तु से प्रेम करते हुए उसकी कुछ ऐसी सचेतन अथवा अचेतन आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है जिन्हें वह महत्त्वपूर्ण समझता है। राधाकृष्णन् लिखते हैं, "प्रेम प्रधानतः एक आत्मगत अनुभव होता है, जिसके आधारभूत अंग हैं कल्पना और कामना।...प्रेम के कारण का बहुत कुछ अंश तो प्रेम करनेवाले में होता है, और उसका पात्र तो केवल एक संयोग होता है" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 170)।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम के आधारभूत अनुभव की जड़ें व्यक्तियों की आवश्यकताओं में होती हैं। स्थूल रूप में, हम प्रेम की कल्पना एक ऐसी संवेगात्मक भावना के रूप में कर सकते हैं जो आवश्यकता-पूर्तियों की एक जटिल संसृष्टि से उत्पन्न होती है (देखिये लैंज़ और सिडर, 1969, पृष्ठ 104)। वास्तव में जन्म लेने के क्षण से ही बच्चा अपने परिवेश के केवल उन्हीं "महत्त्वपूर्ण विषयों" से प्रेम करना सीखता है जो भोजन तथा संरक्षण की उसकी आधारभूत आवश्यकताओं की तुष्टि अथवा आपूर्ति से रंजित होते हैं। जिस समय वह बढ़ता रहता है, और उसकी शारीरिक, संवेगात्मक, मानसिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की परिधि व्यापक होती जाती है, उस समय भी हार्दिकता तथा कोमलता की यह संवेगात्मक भावना जिसे 'प्रेम' कहते हैं, आवश्यकता-पूर्तियों की बहुपक्षीय संसृष्टि के माध्यम से ही अनुभव की जाती है। "अन्य महत्त्वपूर्ण लोगों" से प्राप्त होनेवाली यही हार्दिकता तथा कोमलता उसके जीवन को जीने योग्य बनाती है।

समाज-विज्ञान के अनुसंधानों से इस बात के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त किये गये हैं कि किसी के व्यक्तित्व की—उसके प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रतिक्रियाओं, संज्ञान और उसके भावात्मक व्यवहार की भी—रचना पर जिस चीज़ का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है वह यह है कि उस व्यक्ति को प्रेम की—हार्दिकता तथा कोमलता की संवेगात्मक भावना की—तुष्टि किस मात्रा में प्राप्त हुई है या किस मात्रा में वह उससे वंचित रहा है। किसी व्यक्ति का आत्म-तादात्म्य स्थापित करने में जो स्व के विकास मात्र के लिए ही बहुत महत्त्वपूर्ण होता है, उसकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। सैक्सटन ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है :

> अलग-अलग दृष्टिकोण रखते हुए भी लगभग सभी प्रेक्षक इस बात पर सहमत हैं कि शिशु के जीवित रहने के लिए और प्रौढ़ावस्था में उसके कल्याण के लिए प्रेम महत्त्वपूर्ण और प्रकटतः आवश्यक है। शैशवकाल

> में पालन-पोषण तथा परार्थपरक प्रेम प्राप्त करके व्यक्ति में प्रेम कर की क्षमता उत्पन्न होती है। जब वह यह अनुभव करता है कि उस प्रेम किया जा रहा है तो वह अपने को प्रेम किये जाने योग्य औ दूसरों को प्रेमभाव से परिपूर्ण समझता है। दूसरे शब्दों में स्वयं अप से प्रेम करना सीख लेने के बाद ही वह दूसरों से प्रेम कर सकता है।..
>
> अपनी समस्त अभिव्यक्तियों में प्रेम एक अत्यन्त उपयुक्त तथ जटिल, और साथ ही प्रबल तथा बाध्यकारी संवेग होता है। इसकी ऊर्ज और इसके अभिप्रेरण उन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भावनाओं में से हैं ज मनुष्य अनुभव कर सकता है (सैक्सटन, 1970, पृष्ठ 53)।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रेम वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ह प्रकार के कल्याण तथा सुख के लिए महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक है, क्योंकि व्यवहार विज्ञानी इस बात को सिद्ध कर चुके हैं। 3,000 किशोर-वयस्कों के अपने अध्ययन के आधार पर दूवाल ने यह पता लगाया था कि प्रेम में व्यक्ति की तादात्म्य की खोज से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होने की प्रवृत्ति होती है (दूवाल, 1964, पृष्ठ 226-229)। मानव-विकास में प्रेम की बहुपक्षीय भूमिकाओं के सम्बन्ध में समाज-विज्ञानियों के अवलोकनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेम उस व्यक्ति को जो प्रेम का पात्र होता है, उसके लिए नितान्त आवश्यक आधारभूत सुरक्षा प्रदान करता है और उसके लिए स्वयं अपने से तथा दूसरों से प्रेम करना सीखना सम्भव बनाता है। वह उसे समूह का भाग बनकर रहने और माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों, अध्यापकों तथा साथियों से तादात्म्य स्थापित करने में सहायता देता है और इस प्रकार उसे उस समाज-व्यवस्था के विभिन्न मूल्यों को आत्मसात करने में सहायता देता है जिसमें वह रहता है। "केवल विलक्षण वैयक्तिक घटना के रूप में ही नहीं बल्कि सामाजिक घटना के रूप में भी प्रेम की सम्भावना के प्रति आस्था रखना मनुष्य की प्रकृति के बारे में अंतर्दृष्टि पर आधारित एक तर्कसंगत आस्था है" (फ्राम्म, 1956)।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम एक जटिल घटना है, फिर भी वह अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों के लिए और इस बात को समझने के लिए भी सार्थक तथा महत्त्वपूर्ण है कि यदि हम किसी सामाजिक समूह के लोगों की अन्तर्वैयक्तिक अन्तःक्रिया के सामाजिक मनोवैज्ञानिक आयामों को समझना चाहते हैं तो यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि उस समूह विशेष के विभिन्न लोगों के विचार तथा संकल्पनाएँ उसके बारे में क्या हैं। इस अध्याय में लेखिका ने अपनी छानबीन अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रेम के प्रति शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बदलते हुए विचारों पर केन्द्रित की है। इसी अध्याय में प्रेम के बारे में विभिन्न विद्वानों के विचार भी प्रस्तुत किये गये हैं। इस अध्ययन में प्रेम का उल्लेख वर्णात्मक ढंग से किया गया है और कोई मूल्यांकन नहीं किये गये हैं। यद्यपि प्रेम शब्द का प्रयोग किसी भी प्रबल उल्लास के लिए किया जाता है, जैसे यह कहना कि "मुझे मिठाई से प्रेम है", वर्तमान प्रसंग में उसका प्रयोग सामान्यतः ऐसे उदाहरणों

में किया गया है जब स्वयं अपने अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप में या प्रतीक रूप में भावनाओं का पात्र होता है। प्रेम के विषमलिंगी व्यक्तियों के बीच अनुराग, गहरी रुचि, लगाव और भावावेश आदि विभिन्न अर्थ लगाये जाते हैं। प्रेम एक भावना है और इसलिए यह जानना आवश्यक है कि कोई व्यक्ति उसे किस प्रकार अनुभव करता है। इस अध्याय में प्रेम के बारे में युवा हिन्दू शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की भावनाएँ तथा विचार दृष्टान्त-मूलक व्यक्ति-अध्ययनों के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं।

लेखिका ने उन व्यक्तियों के अनुभवों तथा अभिवृत्तियों के बारे में स्वयं अपना निर्णय देने का कोई प्रयास नहीं किया है, जिनके व्यक्ति-अध्ययन अथवा विचार यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। उनकी अभिवृत्तियों के सम्भावित औचित्य अथवा अनौचित्य के बारे में उसने कोई नैतिक विवेचन भी नहीं किया है। उत्तरदाताओं के विचारों को प्रस्तुत करने के लिए उसने अधिकांशतः उनके वक्तव्यों का शब्दशः प्रयोग किया है, क्योंकि उसका विश्वास है कि न केवल उनके जीवन के तथ्यों को बल्कि उनकी अभिवृत्तियों की सूक्ष्म लाक्षणिक विशेषताओं को व्यक्त करने का सबसे प्रभावी उपाय यही है।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 19 तथा 55 ऐसी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनका अध्ययन लेखिका ने दस वर्ष पहले किया था, लेकिन व्यक्ति-अध्ययन संख्या 10 और 15 ऐसी स्त्रियों के लाक्षणिक उदाहरण हैं जिनका साक्षात्कार तथा अध्ययन दस वर्ष बाद किया गया था। ज्योति का व्यक्ति-अध्ययन श्रमजीवी स्त्रियों के उस समूह का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें कुछ पारम्परिक तथा रूढ़िवादी पारिवारिक पृष्ठभूमिवाली स्त्रियाँ हैं; कंचन का व्यक्ति-अध्ययन ऐसी कोटि की स्त्रियों का है जिनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि न तो बहुत कट्टरपंथी तथा पारम्परिक है और न ही बहुत उन्नत, जबकि वासना तथा पमिला के व्यक्ति-अध्ययन स्त्रियों के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें आधुनिक तथा पाश्चात्य प्रभाववाली पारिवारिक पृष्ठभूमि की स्त्रियाँ शामिल होती हैं।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 19

ज्योति लड़कियों के कालेज में पढ़ाती थी। वह छब्बीस वर्ष की थी और बी० ए०, बी० टी० पास थी। वह लगभग पूरे चार वर्ष से काम कर रही थी और 400 रुपये प्रति माह कमा रही थी। उसकी शक्ल-सूरत साधारण थी पर शरीर कुछ भारी था। उसका पहनावा सादा था और वह सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग प्रायः बिल्कुल नहीं करती थी। आरम्भ में तो वह बहुत शान्त रही पर विश्वास स्थापित हो जाने पर वह खुलकर स्पष्टवादिता से बातें करने लगी। वह गम्भीर थी लेकिन कुछ उदास भी। कुल मिलाकर वह बहुत अच्छी लड़की थी, दूसरों का काफी ध्यान रखनेवाली और बात करने में विनम्र।

ज्योति का जन्म और पालन-पोषण सामान्य साधनों तथा रूढ़िवादी विचारों वाले मध्यम वर्ग के एक परिवार में हुआ था। उसके पिता बहुत थोड़ा वेतन पानेवाले सरकारी कर्मचारी थे, पर उसके दादा काफी अच्छे पद पर थे और उनकी पैतृक सम्पत्ति भी थी। उसके चार बहनें और दो भाई थे। वह अपने माता-पिता की सबसे ज्येष्ठ सन्तान थी। वह अपने दादा-दादी के साथ रहती थी और उसे उनका भरपूर स्नेह प्राप्त था। लेकिन उसके दादा-दादी बहुत रूढ़िवादी थे और चूंकि उसके दादा को यह पसन्द नहीं था कि दस वर्ष की आयु के बाद लड़कियां घर के बाहर शिक्षा प्राप्त करने जाएँ, इसलिए उसने बी० ए० तक की सारी शिक्षा घर पर ही प्राप्त की थी। अपने जीवन का अधिकांश भाग उसने उत्तर प्रदेश के छोटे-छोटे शहरों में ही बिताया था।

चूंकि उसके दादा की नौकरी ऐसी थी कि उनकी बदली होती रहती थी और उन्हें एक जगह से दूसरी जगह जाना पड़ता था, इसलिए अपनी सहेलियों से बिछुड़कर वह बहुत उदास हो जाती थी। इसके फलस्वरूप कुछ समय बाद वह बहुत गम्भीर और संकोचशील हो गयी थी और आसानी से सहेलियां नहीं बनाती थी। उसके दादा कठोर अनुशासन में विश्वास रखते थे। वह बहुत ही आज्ञाकारी और भीरु बच्ची थी क्योंकि उसके दादा उनसे पूर्ण आज्ञापालन की आशा रखते थे और इसके बदले में उनके प्रति बहुत हार्दिकता दिखाते थे और उसका बहुत ध्यान रखते थे।

अपने विवाह के प्रस्तावों से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख करते हुए उसने बताया कि बी० ए० की पढ़ाई पूरी करने से पहले ही उसके दादा-दादी ने उसका विवाह करने के लिए एक सम्पन्न परिवार का लड़का पसन्द किया था। वह बी० ए० तक भी नहीं पढ़ा था और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी भी नहीं था। उसने बताया कि उसे ऐसे आदमी के साथ विवाह करने का विचार बिलकुल पसन्द नहीं था ज आर्थिक दृष्टि से अपने माता-पिता पर आश्रित हो और बहुत अधिक पढ़ा-लिखा भी न हो, पर चूंकि उसके दादा चाहते थे कि उसके और उस लड़के के बीच औपचारिक साक्षात्कार हो जाये, इसलिए उसने इन्कार नहीं किया। उसके मान को इस बात से कुछ ठेस अवश्य लगी कि उस लड़के तथा उनके माता-पिता ने उसे बहू बनाने योग्य नहीं समझा, फिर भी वह काफी खुश थी कि उसे इस परिस्थिति से छुटकारा मिल गया।

जब ज्योति ने अपनी बी० ए० की पढ़ाई पूरी की उस समय तक उसके दादा के विचार कुछ-कुछ बदलने लगे थे और जब उन्होंने देखा कि बहुत-सी लड़कियां उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगी थीं और काम करने लगी थी तो उन्होंने भी उसे एक महिला संस्थान से बी० एड० करने की अनुमति दे दी। उन्होंने उसे एम० ए० इस डर से नहीं पास करने दिया कि अगर वह अधिक उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेगी तो अधिक शिक्षित वर खोजने में कठिनाई होगी। बी० एड० कर लेने के बाद घर में बैठे-बैठे गृहस्थी के काम-काज में अपनी दादी का हाथ बँटाते हुए वह बहुत ऊबता जाती

थी। वह चाहती थी कि कोई नौकरी कर ले जिससे उसे घर से वाहर निकलने का अवसर भी मिले और स्वतन्त्र रूप से उसकी अपनी कुछ आय भी होने लगे। उसके दादा ने उसे घर के पास ही महिलाओं के एक प्राइवेट कालेज में पढ़ाने की अनुमति दे दी, ताकि उसे घर से वहुत दूर न जाना पड़े। वहाँ उसके साथ काम करनेवाली अधिकांश दूसरी स्त्रियाँ भी कुछ कट्टरपन्थी परिवारों की थीं जिनमें लड़कियों को अभी तक एक वोझा समझा जाता था।

उसे इस वात की वड़ी चिन्ता रहती थी कि लोग उसके वारे में क्या कहेंगे या सोचेंगे। चूँकि उसके दादा-दादी वहुत धर्मपरायण थे, इसलिए वह भी काफी धार्मिक विचारों वाली हो गयी और ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था रखने लगी। वह अन्ध-विश्वासी भी थी। उसने वताया कि चूँकि अधिकांश समय उसने घर पर रहकर ही निजी रूप से शिक्षा पायी थी, इसलिए जव उसने नयी-नयी नौकरी की तो उसे कुछ घवराहट भी हुई, लेकिन लगभग साल-भर वाद उसने अपने-आपको नयी परिस्थितियों के अनुसार ढाल लिया और उसका संकोच दूर हो गया और साहस आ गया। उसने कुछ सहेलियाँ भी वनाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उसके निजी विचारों तथा सोचने के ढंग का विकास होता गया। उसके साथ एक अध्यापिका काम करती थी जिससे उसे विशेष लगाव हो गया और वह उसके घर जाने लगी। उसकी इस सहेली के एक छोटा भाई था जो वी० ए० पास था और किसी दफ़्तर में मामूली वेतन पर नौकर था। वह दूसरी जाति का था और उम्र में ज्योति से दस वर्ष वड़ा भी था। उसे दो-एक वार देखने के वाद वह उसकी ओर वहुत आकृष्ट होने लगी। वह हर समय उसके वारे में ही सोचती रहती और अगर कभी वह उसे प्यार-भरी नज़रों से देख लेता तो उसे वहुत रोमांच होता। उसने वताया, "एक वार जव मैं अपनी सहेली के घर पर थी तो वह मुझे छोड़कर अन्दर कोई किताव या कुछ और लेने चली गयी। इसी वीच उसका भाई आया और मुझसे पूछने लगा कि कालेज में काम करना मुझे कैसे लगता है, और फिर हल्के से मेरा कन्धा छूकर उसने कहा कि वह मुझे वहुत चाहता है। इस वात का मुझ पर ऐसा चामत्कारिक प्रभाव पड़ा जिसे मैं समझा नहीं सकती, और मुझे ऐसा लगा कि मैं उसके प्रेम में पागल हो गयी हूँ।"

उसने वताया कि वह उसके घर अक्सर जाने लगी और चोरी-छुपे उससे वातें भी कर लेती थी। वह उसके जीवन का सवसे वड़ा उल्लास था। वह दिन-रात उसी के स्वप्न देखती रहती और उसके लिए कुछ भी करने को तैयार रहती। एक वार जव वह वीमार पड़ा तो उसका जी चाहता कि हर समय उसकी सेवा-शुश्रूषा करती रहे, लेकिन चूँकि वह काम के समय ही कालेज से भागकर ही उसके घर जा सकती थी, इसलिए वह लगभग हर समय ही दुखी और वेचैन रहती। उसे न भूख लगती और न नींद आती; यहाँ तक कि वह भी वीमार पड़ गयी। जव दोनों स्वस्थ हो गये तो उन्होंने विवाह कर लेने का निर्णय किया पर वह अपने दादा-दादी की अनुमति ले

लेकिन बड़ी मुश्किल से उसने अपनी सहेली से यह बात अपनी दादी से कहलवायी औ
उन्होंने फिर दादा को इसकी सूचना दी। घर पर बड़ा कुहराम मचा और उसके दाद
दादी ने उसे दोष दिया कि उसने घर की इज़्ज़त मिट्टी में मिला दी और अप
निर्लज्ज आचरण से उनके नाम को बट्टा लगा दिया। उन दोनों के विवाह के विरु
उनका तर्क यह था कि वह लड़का सम्पन्न परिवार का नहीं था और दूसरी जाति क
था। उसने बताया कि उसे उससे इतना अधिक प्रेम था कि वह उसके साथ भाग जा
को भी तैयार थी, पर वह अपने दादा-दादी का दिल नहीं दुखाना चाहती थी, जिन्हो
उसे बड़े लाड़-प्यार से पाल-पोसकर बड़ा किया था। उसके दादा अपनी धुन के पक
थे और वे किसी प्रकार सहमत नहीं हुए, इसलिए उस लड़के के साथ विवाह करने क
विचार छोड़ देना पड़ा। इससे उसका दिल इतना टूट गया कि इस आघात के कार
वह काफी समय तक बीमार रही और इस साक्षात्कार के समय तक वह उसे भूला नह
सकी थी, हालांकि उसने बाद में किसी दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया था।

जब उससे पूछा गया, "तुम किस प्रकार के आदमी को अपने पति के रूप मे
सबसे अधिक पसन्द करोगी?" तो उसने कहा कि काम आरम्भ करने से पहले वह
हमेशा यही सोचती थी कि उसके दादा-दादी या माता-पिता जो भी आदमी उसके लि
पसन्द कर देंगे उसी के साथ विवाह कर लेगी, इसलिए उसने कभी यह सोचा भी नहीं
कि वह किस प्रकार के आदमी को अपना पति बनाना चाहती है। लेकिन कुछ समय
काम कर लेने के बाद वह निश्चित रूप से उन गुणों के बारे में सोचने लगी जो उसके
पति में होने चाहिए। उसने बताया, "मैं ऐसा पति चाहती हूँ जो बहुत प्यार करने
वाला और सुहृदय हो और मुझसे सचमुच प्रेम करता हो और यह तो है ही कि वह
पढ़ा-लिखा हो और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो ताकि विवाह के बाद अपने परिवार
का भरण-पोषण कर सके।"

जब इसके बाद उससे पूछा गया, "तुम्हारे लिए प्रेम का क्या अर्थ है?" तो
उसने उत्तर दिया, "प्रेम मनुष्य के जीवन की सबसे उदात्त भावना है, चाहे वह माता
पिता और सन्तान के बीच हो, या भाइयों और बहनों के बीच, सहेलियों के बीच या किसी
पुरुष और स्त्री के बीच। निकट सम्बन्धियों और प्रियजनों के प्रेम के बिना जीवन का
कोई मूल्य नहीं है। लेकिन मैं समझती हूँ कि प्रौढ़ हो जाने पर विषमलिंगी व्यक्ति के
प्रेम की बहुत आवश्यकता होती है। और मेरे लिए पुरुष और स्त्री का यह प्रेम वह
बेबस कर देनेवाली भावना है कि जिस व्यक्ति से हम प्रेम करते हैं उसके बिना जीवन
असम्भव हो जाये। सेक्स से परे किसी चीज़ के लिए उस दूसरे व्यक्ति के साहचर्य की
विलक्षण लालसा या अनोखी इच्छा ही प्रेम है। वह प्रेम के पात्र को पूरी तरह समझने
और उसे अत्यधिक चाहने की भावना होती है। मेरे लिए सच्चा प्रेम उस प्रकार की
शक्ति और बल है जो उस व्यक्ति को जो उसे अनुभव करता है, प्रेम के पात्र का प्रेम प्राप्त
करने के लिए सब-कुछ त्याग देने के लिए या कुछ भी करने के लिए तत्पर कर दे। मैं
समझती हूँ कि किसी व्यक्ति की आवश्यकता अनुभव करना और उसे सब कुछ दे देने

की इच्छा रखना ही प्रेम है। मेरे लिए प्रेम करने का अर्थ है कुछ देना, कुछ त्याग करना, उसका अर्थ है प्रेम के पात्र के हित तथा सुख के लिए ही सोचना, काम करना और अपना अस्तित्व लगभग उसी को अर्पित कर देना।" वह कहती रही, "प्रेम तभी बना रह सकता है जब उसके साथ लाभ का कोई विशिष्ट स्वार्थपूर्ण प्रयोजन न हो। इसमें सन्देह नहीं कि यह पारस्परिक लगाव का सम्बन्ध है और यदि वह एक व्यक्ति की ओर से दूसरे को भुगतान के रूप में हो तो वह सदा बना नहीं रह सकता। लेकिन निश्चित रूप से यह बदले का व्यापार भी नहीं है, जिसमें एक व्यक्ति प्रेम देता है और दूसरे व्यक्ति से उसे प्रेम के अतिरिक्त कोई और चीज मिलती है। मैं समझती हूँ कि सच्चे प्रेम का अस्तित्व अब भी है, लेकिन उसके लिए आवश्यक यह है हम पूरी तरह आत्म-समर्पण कर दें। मैं केवल प्रेम करना चाहती हूँ, और जिस व्यक्ति से मुझे प्रेम हो उससे प्रेम के बदले में कुछ मांगे बिना मैं अपने को पूरी तरह उसे समर्पित कर देना चाहती हूँ। मेरे लिए प्रेम का अर्थ है दूसरों की आवश्यकताओं का बड़ी कोमलता से ध्यान रखना और पूरे मन से उनमें लीन हो जाना और इस अवस्था से सन्तोष प्राप्त करना।" उसने आगे चलकर कहा, "प्रेम वह भावना है जिसे मैं जीवन में सबसे अधिक मूल्यवान समझती हूँ और मैं आसानी से किसी के प्रेम में नहीं पड़ती क्योंकि मैं इसे अत्यन्त बहुमूल्य समझती हूँ।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "क्या तुम शुद्धतः प्लेटोनिक या निष्काम प्रेम में विश्वास रखती हो, अर्थात् ऐसा प्रेम जिसमें सेक्स का अंश न हो ?" उसने कहा, "हाँ, मैं सेक्स-रहित प्रेम मे विश्वास करती हूँ। मैं तो आध्यात्मिक प्रेम और ईश्वर के प्रेम तक में विश्वास रखती हूँ। लेकिन मैं समझती हूँ कि पुरुष और स्त्री के बीच प्रेम यदि विवाह के बाद आरम्भ हो तो अच्छा है। हमारे धर्म की और हमारे माता-पिता की शिक्षा भी तो यही है कि जिस पुरुष से लड़की का विवाह होता है उसके प्रति निःस्वार्थ भक्ति के फलस्वरूप ही प्रेम उत्पन्न होता है। परन्तु यदि कोई लड़की किसी पुरुष से विवाह से पहले ही प्रेम करने लगे तो उसे सेक्स से मुक्त रखा जाना चाहिए और इस प्रेम-सम्बन्ध की परिणति विवाह में होनी चाहिए। केवल विवाह के बाद ही सेक्स-सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं। मैं अपनी घनिष्ठतम सहेलियों के इन विचारों से पूरी तरह सहमत हूँ कि पुरुष और स्त्री के पारस्परिक प्रेम को केवल कल्पना में नहीं बनाये रखा जा सकता, और यदि एक पुरुष और एक स्त्री वास्तव में एक-दूसरे से प्रेम करते हैं तो उनमें निश्चित रूप से एक-दूसरे का होकर रहने और विवाह के बन्धन में बँधकर एक हो जाने की उत्कट लालसा होगी, परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है कि विवाह तक प्रेम सेक्स से मुक्त होना चाहिए।" इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम्हारी राय में, किसी स्त्री के जीवन में, आमतौर पर शारीरिक प्रेम की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण होती है ?" उसने कहा, "मैं नहीं समझती कि उसकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। पूरे प्रेम-सम्बन्ध के एक अंश के रूप में उसका महत्त्व होता है, लेकिन अपने-आप में उसका कोई महत्त्व नहीं है।"

जब उससे पूछा गया कि वह किस चीज़ के पक्ष में है, सेक्स से मुक्त प्रेम, या प्रेम-रहित सेक्स-सम्बन्ध, या सेक्स-सम्बन्ध सहित प्रेम, या प्रेम हो जाने के बाद सेक्स-सम्बन्ध, तो उसने उत्तर दिया, "मैं विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्धों से मुक्त प्रेम की और विवाह के बाद सेक्स-सम्बन्ध सहित प्रेम की दृढ़ समर्थक हूँ, और मैं विवाह की परिधि के अन्दर प्रेम के साथ सेक्स-सम्बन्धों को भी उचित समझती हूँ, लेकिन मैं विवाह से पहले प्रेम के बिना सेक्स-सम्बन्ध की दृढ़ विरोधी हूँ और विवाह के बाद पति के साथ भी इस प्रकार के सम्बन्ध को बहुत उचित नहीं समझती।" जब उससे पूछा गया, "क्या तुम समझती हो कि कोई स्त्री एक ही समय में एक से अधिक पुरुषों से प्रेम कर सकती है?" तो उसे कुछ अटपटा-सा लगा और उसने कहा कि यह अनैतिक प्रश्न है और फिर बहुत सकुचाते हुए बोली, "नहीं, मैं नहीं समझती कि वह एक ही समय में एक से अधिक पुरुष के साथ सच्चाई के साथ और पूरे मन से प्रेम कर सकती है, क्योंकि वह उनमें से किसी के भी साथ पूरा न्याय नहीं कर सकेगी और वह दोनों की खींचातानी का शिकार रहेगी और वह स्वयं अपने लिए भी और उन दोनों पुरुषों के लिए भी समस्याएँ पैदा कर सकती है। उसके मन में दोनों के प्रति समान निष्ठा और लगन नहीं हो सकती, और ऐसा करना उचित नहीं होगा।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम्हारी राय में, साधारणतया किसी पुरुष के प्रेम का स्त्री के जीवन में क्या योगदान होता है?" उसने उत्तर दिया, "यदि कोई चीज़ ऐसी है जो स्त्री को यौवनमय, स्फूर्तिमय और उत्साहमय बना सकती है, तो वह प्रेम है। मूलतः प्रेम शारीरिक आकर्षण से आरम्भ होता है परन्तु शीघ्र ही विकसित होकर वह उससे कहीं अधिक कुछ बन जाता है। प्रेम एक कोमल भावना है जो स्त्री के जीवन को कोमलता प्रदान करती है। प्रेम नारी के अस्तित्व को सार्थक बनाता है। परन्तु यदि किसी स्त्री को अपने प्रेम के पात्र से अलग रहने पर विवश किया जाये या यदि उसे अपने प्रेमी का प्रेम प्राप्त न हो तो यह स्थिति उसके जीवन में सचमुच विषाद उत्पन्न कर सकती है और गहरी निराशा तथा असन्तोष का स्रोत बन सकती है। लेकिन फिर भी मैं समझती हूँ कि प्रेम स्त्री के जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करता है।"

उसके बाद उससे पूछा गया, "तुम्हें किसी को अपना प्रेम देकर अधिक सन्तोष मिलता है या किसी का प्रेम पाकर?" उसने उत्तर दिया, "ऐसा है कि सन्तोष तो प्रेम देने और प्रेम पाने दोनों ही में बहुत मिलता है, लेकिन मैं समझती हूँ कि दूसरों का प्रेम पाने की अपेक्षा मुझे दूसरों को अपना प्रेम दे सकने पर अधिक प्रसन्नता होती है।" जब उससे पूछा गया, "सुखी होने के लिए तुम्हें किन चीज़ों की सबसे अधिक आवश्यकता है? प्राथमिकता के क्रम से तीन चीज़ों के नाम बताओ", तो उसने कहा, "सबसे पहले तो मुझे प्रेम चाहिए, लेकिन मैं समझती हूँ कि सुखी रहने के लिए मुझे अच्छा स्वास्थ्य भी चाहिए और सुखी होने के लिए कम से कम कुछ अच्छे ढंग से और थोड़े आराम के साथ जीवन व्यतीत करना आवश्यक है जिसके लिए पैसा चाहिए।

लेकिन सुखी रहने के लिए मुझे पति का प्रेम चाहिए, अर्थात् सुखी रहने के लिए मैं एक प्रेम करनेवाले और सम्पन्न व्यक्ति से विवाह करना चाहती हूँ।" बाद में उसने बताया कि उसकी सबसे अच्छी सहेलियाँ भी, जिनका वह बहुत सम्मान करती है, ऐसे ही विचार रखती हैं।

अन्त में उसने बताया कि कुल मिलाकर जीवन निराशाजनक नहीं है और जबसे उसने काम करना आरम्भ किया है तब से वह अधिक सुखी और स्वस्थ अनुभव करती है। परन्तु वह अपने विवाह के प्रसंग में भविष्य की अनिश्चितता के बारे में काफी चिन्तित थी, और इसके बारे में भी कि विवाह के बाद जीवन किस प्रकार का होगा, आगे चलकर उसका जीवन सुखी होगा या दुःखी। उसे इस बात से भी बड़ी निराशा थी कि उसे ऐसा लगता था कि जिस प्रकार के आदमी को वह अपना पति बनाना चाहती थी शायद वैसा आदमी उसे न मिले और यह कि इतना समय निकल जाये कि उसे कोई उचित वर मिल ही न सके। यह छुपा हुआ भय कि शायद अवसर हमेशा के लिए उसके हाथ से निकल जाये, उसके अन्दर निरन्तर एक तनाव और बेचैनी पैदा कर रहा था। और उसने कहा कि आर्थिक स्वतन्त्रता, काफी अच्छी नौकरी, और दादा-दादी तथा सहकर्मियों के प्रेम के बावजूद एक जीवन-साथी और स्वयं अपने घर के बिना वह बेहद अकेली और खोयी-खोयी-सी महसूस करती थी।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 55

सलोनी-सुन्दर, 28-वर्षीया कंचन सुशिक्षित, सुसंस्कृत और सुलक्षणा थी। वह एम० ए० पास थी और अंग्रेजी भाषा के ज्ञान में पूरी तरह निपुण होने के अतिरिक्त जर्मन और फ्रांसीसी भाषाएँ भी काफी अच्छी तरह जानती थी। वह एक सरकारी दफ़्तर में अच्छे पद पर काम कर रही थी और प्रतिमाह 600 रुपये पाती थी। वह पिछले दो वर्ष से यह नौकरी कर रही थी और उससे काफ़ी सन्तुष्ट थी। उसमें आत्मविश्वास और निश्चिन्तता थी और वह शालीन थी।

उसका परिवार कुछ रूढ़िवादी था जिसमें बेटियों को घूमने-फिरने की छूट नहीं थी और उनकी गतिविधियों पर कुछ प्रतिबन्ध थे। उसके माता-पिता धर्म-परायण और कुछ हद तक अन्धविश्वासी भी थे। वह ईश्वर में आस्था रखती थी और हर धर्म को सम्मान की दृष्टि से देखती थी। वह ज्योतिष में भी विश्वास रखती थी। उसके पिता उस समय रेल मन्त्रालय में काम करते थे और लगभग 500 रुपये महीना पाते थे। उसकी माँ का जीवन पूरी तरह अपने पति और बच्चों को अर्पित था। कंचन की छः बहनें और थीं, जो सभी उससे छोटी थीं। वह सबसे बड़ी सन्तान थी और उसके कोई भाई नहीं था।

चूँकि उसके बचपन में उसके पिता के पास काफी पैसा नहीं था और परिवार में बहुत-से बच्चे थे, इसलिए उसका बचपन कुछ अभावग्रस्त तथा उल्लासहीन रहा था। पैसे की हमेशा तंगी रहती और यद्यपि माता-पिता अपने बच्चों से काफी प्यार

जब उससे पूछा गया कि वह किस चीज़ के पक्ष में है, सेक्स से मुक्त प्रेम, या प्रेम-रहित सेक्स-सम्बन्ध, या सेक्स-सम्बन्ध सहित प्रेम, या प्रेम हो जाने के बाद सेक्स-सम्बन्ध, तो उसने उत्तर दिया, "मैं विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्धों से मुक्त प्रेम की और विवाह के बाद सेक्स-सम्बन्ध सहित प्रेम की दृढ़ समर्थक हूँ, और मैं विवाह की परिधि के अन्दर प्रेम के साथ सेक्स-सम्बन्धों को भी उचित समझती हूँ, लेकिन मैं विवाह से पहले प्रेम के बिना सेक्स-सम्बन्ध की दृढ़ विरोधी हूँ और विवाह के बाद पति के साथ भी इस प्रकार के सम्बन्ध को बहुत उचित नहीं समझती।" जब उससे पूछा गया, "क्या तुम समझती हो कि कोई स्त्री एक ही समय में एक से अधिक पुरुषों से प्रेम कर सकती है?" तो उसे कुछ अटपटा-सा लगा और उसने कहा कि यह अनैतिक प्रश्न है और फिर बहुत सकुचाते हुए बोली, "नहीं, मैं नहीं समझती कि वह एक ही समय में एक से अधिक पुरुष के साथ सच्चाई के साथ और पूरे मन से प्रेम कर सकती है, क्योंकि वह उनमें से किसी के भी साथ पूरा न्याय नहीं कर सकेगी और वह दोनों की खींचातानी का शिकार रहेगी और वह स्वयं अपने लिए भी और उन दोनों पुरुषों के लिए भी समस्याएँ पैदा कर सकती है। उसके मन में दोनों के प्रति समान निष्ठा और लगन नहीं हो सकती, और ऐसा करना उचित नहीं होगा।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम्हारी राय में, साधारणतया किसी पुरुष के प्रेम का स्त्री के जीवन में क्या योगदान होता है?" उसने उत्तर दिया, "यदि कोई चीज़ ऐसी है जो स्त्री को यौवनमय, स्फूर्तिमय और उत्साहमय बना सकती है, तो वह प्रेम है। मूलतः प्रेम शारीरिक आकर्षण से आरम्भ होता है परन्तु शीघ्र ही विकसित होकर वह उससे कहीं अधिक कुछ बन जाता है। प्रेम एक कोमल भावना है जो स्त्री के जीवन को कोमलता प्रदान करती है। प्रेम नारी के अस्तित्व को सार्थक बनाता है। परन्तु यदि किसी स्त्री को अपने प्रेम के पात्र से अलग रहने पर विवश किया जाये या यदि उसे अपने प्रेमी का प्रेम प्राप्त न हो तो यह स्थिति उसके जीवन में सचमुच विषाद उत्पन्न कर सकती है और गहरी निराशा तथा असन्तोष का स्रोत बन सकती है। लेकिन फिर भी मैं समझती हूँ कि प्रेम स्त्री के जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करता है।"

उसके बाद उससे पूछा गया, "तुम्हें किसी को अपना प्रेम देकर अधिक सन्तोष मिलता है या किसी का प्रेम पाकर?" उसने उत्तर दिया, "ऐसा है कि सन्तोष तो प्रेम देने और प्रेम पाने दोनों ही में बहुत मिलता है, लेकिन मैं समझती हूँ कि दूसरों का प्रेम पाने की अपेक्षा मुझे दूसरों को अपना प्रेम दे सकने पर अधिक प्रसन्नता होती है।" जब उससे पूछा गया, "सुखी होने के लिए तुम्हें किन चीज़ों की सबसे अधिक आवश्यकता है? प्राथमिकता के क्रम से तीन चीज़ों के नाम बताओ", तो उसने कहा, 'सबसे पहले तो मुझे प्रेम चाहिए, लेकिन मैं समझती हूँ कि सुखी रहने के लिए मुझे अच्छा स्वास्थ्य भी चाहिए और सुखी होने के लिए कम से कम कुछ अच्छे ढंग से और थोड़े आराम के साथ जीवन व्यतीत करना आवश्यक है जिसके लिए पैसा चाहिए।

लेकिन सुखी रहने के लिए मुझे पति का प्रेम चाहिए, अर्थात् सुखी रहने के लिए मैं एक प्रेम करनेवाले और सम्पन्न व्यक्ति से विवाह करना चाहती हूँ।" बाद में उसने बताया कि उसकी सबसे अच्छी सहेलियाँ भी, जिनका वह बहुत सम्मान करती है, ऐसे ही विचार रखती हैं।

अन्त में उसने बताया कि कुल मिलाकर जीवन निराशाजनक नहीं है और जबसे उसने काम करना आरम्भ किया है तब से वह अधिक सुखी और स्वस्थ अनुभव करती है। परन्तु वह अपने विवाह के प्रसंग में भविष्य की अनिश्चितता के बारे में काफी चिन्तित थी, और इसके बारे में भी कि विवाह के बाद जीवन किस प्रकार का होगा, आगे चलकर उसका जीवन सुखी होगा या दुःखी। उसे इस बात से भी बड़ी निराशा थी कि उसे ऐसा लगता था कि जिस प्रकार के आदमी को वह अपना पति बनाना चाहती थी शायद वैसा आदमी उसे न मिले और यह कि इतना समय निकल जाये कि उसे कोई उचित वर मिल ही न सके। यह छुपा हुआ भय कि शायद अवसर हमेशा के लिए उसके हाथ से निकल जाये, उसके अन्दर निरन्तर एक तनाव और बेचैनी पैदा कर रहा था। और उसने कहा कि आर्थिक स्वतन्त्रता, काफी अच्छी नौकरी, और दादा-दादी तथा सहकर्मियों के प्रेम के बावजूद एक जीवन-साथी और स्वयं अपने घर के बिना वह बेहद अकेली और खोयी-खोयी-सी महसूस करती थी।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 55

सलोनी-सुन्दर, 28-वर्षीया कंचन सुशिक्षित, सुसंस्कृत और सुलक्षणा थी। वह एम० ए० पास थी और अंग्रेजी भाषा के ज्ञान में पूरी तरह निपुण होने के अतिरिक्त जर्मन और फ्रांसीसी भाषाएँ भी काफी अच्छी तरह जानती थी। वह एक सरकारी दफ़्तर में अच्छे पद पर काम कर रही थी और प्रतिमाह 600 रुपये पाती थी। वह पिछले दो वर्ष से यह नौकरी कर रही थी और उससे काफ़ी सन्तुष्ट थी। उसमें आत्मविश्वास और निश्चिन्तता थी और वह शालीन थी।

उसका परिवार कुछ रूढ़िवादी था जिसमें बेटियों को घूमने-फिरने की छूट नहीं थी और उनकी गतिविधियों पर कुछ प्रतिबन्ध थे। उसके माता-पिता धर्म-परायण और कुछ हद तक अन्धविश्वासी भी थे। वह ईश्वर में आस्था रखती थी और हर धर्म को सम्मान की दृष्टि से देखती थी। वह ज्योतिष में भी विश्वास रखती थी। उसके पिता उस समय रेल मन्त्रालय में काम करते थे और लगभग 500 रुपये महीना पाते थे। उसकी माँ का जीवन पूरी तरह अपने पति और बच्चों को अर्पित था। कंचन की छः बहनें और थीं, जो सभी उससे छोटी थीं। वह सबसे बड़ी सन्तान थी और उसके कोई भाई नहीं था।

चूँकि उसके बचपन में उसके पिता के पास काफी पैसा नहीं था और परिवार में बहुत-से बच्चे थे, इसलिए उसका बचपन कुछ अभावग्रस्त तथा उल्लासहीन रहा था। पैसे की हमेशा तंगी रहती और यद्यपि माता-पिता अपने बच्चों से काफी प्यार

करते थे, लेकिन उन्हें पुत्र की चिन्ता सताती रहती थी और केवल बेटियाँ होने पर वे कुछ उदास भी रहते थे। उसे कोई भौतिक सुख-सुविधा तो नहीं मिली पर माता-पिता के स्नेह के कारण उसे उनसे बहुत लगाव हो गया। वह शुरू से ही बहुत प्रतिभाशाली थी और उसके मन में पढ़ने और उच्च शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट इच्छा थी।

उसे पढ़ने के लिए एक साधारण स्कूल में भेजा गया। वह पढ़ने में तेज़ थी और पढ़ाई में बहुत रुचि दिखाती थी। बड़ी कठिनाई से उसके पिता ने उसे मैट्रिक तक पढ़ाया, क्योंकि उनकी आय बहुत थोड़ी थी और उन्हें सभी बच्चों का भरण-पोषण करना था और वह हर बच्चे को एक जैसी शिक्षा देने में विश्वास रखते थे। उनकी आय में यह सम्भव नहीं था कि सभी बेटियों को मैट्रिक के बाद उच्च शिक्षा दिलायी जा सके। कंचन को गहरी निराशा हुई, विशेष रूप से उस समय जब उसके सगे सम्बन्धियों ने उसकी उच्च शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता देने से इंकार कर दिया पर वह आगे पढ़ने का दृढ़ संकल्प कर चुकी थी, चाहे इसके लिए उसे स्वयं ही क्यों न पैसा कमाना पड़े। इसलिए उसने अपने लिए कोई उचित नौकरी खोजना शुरू कर दिया। सौभाग्य से आकाशवाणी में एक समाचार पढ़कर सुनानेवाले की नौकरी खाली थी और उसे वह मिल गयी।

वह आरम्भ से ही निडर व साहसी थी और उसकी बहनों पर लगा रखे गये अनेक प्रतिबन्धों और आर्थिक सहायता देने से उसके सगे-सम्बन्धियों के इन्कार के कारण उसने भी ज़िद पकड़ ली और एक ऐसी नौकरी कर ली जो उसके परिवार की परम्पराओं के विरुद्ध थी। ऐसा करते हुए उसकी यह सबसे बड़ी इच्छा पूरी हो रही थी कि वह स्वयं आगे पढ़ सके और अपनी छोटी बहनों को आगे पढ़ाने में सहायता दे सके। अपनी नौकरी के साथ-साथ उच्चतर शिक्षा की अपनी कामना पूरी करने के लिए उसने सन्ध्याकालीन कक्षाओं में नाम लिखा लिया। नौकरी करते हुए उसने एम० ए० तक की अपनी कालेज की पढ़ाई पूरी की। पढ़ाई के साथ-साथ उसने विदेशी भाषाएँ भी सीखीं। उसे अपनी अधिकांश आय अपने माता-पिता पर और अपनी बहनों की पढ़ाई पर और स्वयं अधिक ज्ञान अर्जित करने पर खर्च करना अच्छा लगता था। उसे ठेठ भारतीय पहनावा तथा वेश-भूषा पसन्द थी और वह सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग अल्प मात्रा में ही करती थी।

उसने बताया कि जब वह कालेज में थी और सन्ध्याकालीन कक्षाओं में पढ़ने जाती थी तो एक सुन्दर नौजवान से उसकी मित्रता हो गयी जो उससे भिन्न जाति-बिरादरी का था। उसकी नौकरी में वेतन भी अधिक नहीं मिलता था। लेकिन उसने बताया, "वह मेरे प्रति प्रेम की अपार भावनाएँ व्यक्त करता था। मैं भी उसके प्रति अधिक आकृष्ट हो गयी। मुझे ऐसा लगता था कि मैं उसके प्रेम में पागल हो गयी हूँ। मैं हरदम उसी के बारे में सोचती रहती थी और उसे देख-भर पाने से मुझे बहुत हर्ष होता था और उसे न देखती तो उदास हो जाती और बहुत रोती थी और अगर वह मुझे दिलासा देता और मेरे गाल को चूम लेता तो मुझे बड़ा रोमांच होता और मुझे

पर इसका कल्पनातीत प्रभाव पड़ता। मेरा सब कुछ उसी का था और ऐसा लगता था कि उसके बिना मेरा जीवन राख का ढेर है। मैं उसके साथ जितना भी सम्भव होता अपना समय व्यतीत करती और कभी-कभी तो अपने दफ़्तर के काम की भी परवाह न करती। उसने वचन दिया था कि वह मुझसे शादी करेगा और मैं भविष्य के ऐसे कल्पना-लोक में रह रही थी जिसमें हर्ष और उल्लास और साथ-साथ रहने के सुख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होगा।" वह कहती रही, "मैं उसके साथ अपने विवाह के दिवा-स्वप्नों में ही डूबी हुई थी कि अचानक उसने अपने माँ-बाप की पसन्द की एक लड़की से ब्याह करने का फ़ैसला कर लिया, जो एक धनी परिवार की थी और उसी की जाति की थी। इससे मुझे बहुत आघात पहुँचा और मेरा जी चाहा कि मैं मर जाऊँ। मेरा मन बहुत निराश और उदास हो गया और मैंने अपने जीवन को समाप्त करने का प्रयत्न किया। लेकिन धीरे-धीरे मैं अपना ध्यान सांस्कृतिक गतिविधियों की ओर मोड़ने लगी और मैंने मानव-सम्बन्धों से अपना नाता तोड़ लिया। मैं सबसे अलग-अलग रहने लगी और अपने सहकर्मियों के साथ बहुत कम हँसती-बोलती थी।"

फिर उसे सरकारी नौकरी मिल गयी और पिछले दो वर्ष से वह अपनी यह नौकरी कर रही है। कई वर्षों के अनुभव और उच्च शिक्षा की बदौलत उसमें बहुत आत्म-विश्वास और निर्भीकता पैदा हो गयी और वह काउंसिल ऑफ़ वर्ल्ड अफ़ेयर्स, काउंसिल ऑफ़ कल्चरल अफ़ेयर्स और दूसरी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाओं की सदस्य बन गयी जहाँ उसका काम के बाद का सारा समय बीत जाता था। सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रति उसे हमेशा से रुचि रही थी। अगर उसने विवाह करने की कोई जल्दी नहीं दिखायी तो इसका एक कारण यह था कि उसे इस बात की बड़ी उत्सुकता थी कि विवाह करने और घर बसाने से पहले वह अपनी सब बहनों को पढ़ा-लिखा दे। जिन दिनों वह आकाशवाणी में काम करती थी, एक सैनिक अफ़सर ने उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा लेकिन बात बनी नहीं, क्योंकि उसके माता-पिता ने दोनों की जन्म-कुंडली मिलवायी और वे एक-दूसरे से मेल न खा सकीं। इससे उसे बहुत निराशा हुई। फिर भी उसे इस बात का सन्तोष था कि वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी थी और अपनी तथा अपनी बहनों की सहायता कर रही थी और इस प्रकार पिता का भी हाथ बँटा रही थी, जिससे उसे बहुत [illegible] था। अपनी आय के कारण उसे अपनी सांस्कृतिक रुचियों को सन्तुष्ट करने और बहुत ऊँचे-ऊँचे अफ़सरों के बीच उठने-बैठने का अवसर मिलता था, क्योंकि वह स्वयं काउंसिल ऑफ़ वर्ल्ड अफ़ेयर्स और काउंसिल ऑफ़ कल्चरल अफ़ेयर्स की सदस्य थी। इसी की बदौलत उसे ऊँचे-ऊँचे [illegible] से मिलने और उनके बीच उठने-बैठने का अवसर मिलता था। वह किसी [illegible] कोई नौकरी भी करने [illegible] सकती थी।

उसने बताया कि कुछ समय बाद उसके चाचा और [illegible] वर के लिए उसी की जाति-बिरादरी के एक लड़के का चुनाव [illegible] सम्बन्धियों की [illegible] परवाह न करते हुए उसने [illegible]

इंकार कर दिया क्योंकि वह लड़का न तो सूरत-शक्ल का अच्छा था और न ही कोई अच्छे वेतनवाली नौकरी ही करता था। एक वर्ष बाद किसी पार्टी में उसकी मुलाक़ात एक सरकारी अफ़सर से हो गयी और धीरे-धीरे उसने उससे बहुत मित्रता पैदा कर ली और वह उससे विवाह करना चाहता था। शुरू-शुरू में वह भी उसे बहुत पसन्द था, लेकिन अधिक निकट से जानने पर उसे पता चला कि वह बहुत दब्बू है और उसमें कोई निडर क़दम उठाने का साहस नहीं है। उसके बारे में जो चीज़ उसे नापसन्द थी वह यह थी कि वह न तो उसके घर आता था और न उसे अपने घर बुलाता था। इसके बजाय वह हमेशा यही चाहता था कि वह उससे कहीं बाहर मिला करे या उसके साथ सिनेमा देखने, मोटर की सैर के लिए या कहीं और चला करे, जबकि वह चाहती थी कि वह उसके घर आया करे। इसके अलावा उसके मन में अपने जीवन के बारे में कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं थी, और वह दायित्व संभालने से कतराता था। वह अकसर उसके दफ़्तर आकर घण्टों बैठा रहता और कोई भी समझदारी की बातचीत न करता, जिस पर उसे कभी-कभी बड़ी झुंझलाहट होती और कभी-कभी तो उसे नफ़रत भी होने लगती। वह बड़ी दुविधा में पड़ी रही क्योंकि कभी-कभी उसका भी जी चाहता था कि उससे विवाह र ले क्योंकि वह आई० ए० एस० अफ़सर था, धनी परिवार का था, उसके प्रति म की भावनाएँ व्यक्त करता था और उससे विवाह करना चाहता था। लेकिन इसक ाथ ही वह यह भी महसूस करती थी कि उसे उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए योंकि वह उससे पर्याप्त प्रेम नहीं करती थी और वह गैर-ज़िम्मेदार था और उसमें तना भी साहस नहीं था कि अपने माता-पिता को यह बता सके कि वह उससे विवाह रना चाहता है। यह दुविधा उसके लिए एक यातना बन गयी थी और अन्त में सने उससे विवाह करने का विचार त्याग दिया क्योंकि वह इस दिशा में कोई क़दम ी नहीं उठा रहा था। कंचन ने बताया कि प्रेम के ये सारे अनुभव उसके लिए बहुत राशाजनक थे।

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम किस प्रकार के आदमी को अपने पति के रूप सबसे अधिक पसन्द करोगी?" उसने कहा, "मैं चाहती हूँ कि वह सुसंस्कृत और ज्जन आदमी हो, खूब पढ़ा-लिखा हो, प्रेम करनेवाला हो और यह तो मैं चाहूँगी ही कि ह कोई अच्छे वेतनवाली नौकरी या व्यापार करता हो।"

जब उससे पूछा गया कि प्रेम का उसके लिए क्या अर्थ है तो उसने कहा, "प्रेम क संवेगात्मक भावना है जो माता-पिता तथा बच्चों के बीच, बहनों के बीच और ी समलिंगी अथवा विषमलिंगी मित्रों के बीच भी अनुभव की जा सकती है। माता-ता की हार्दिकता और लगाव और अपने बच्चों के लिए उनके निःस्वार्थ प्रेम को नुभव करना निश्चित रूप से बहुत मूल्यवान है। वास्तव में बच्चों के व्यक्तित्व के नर्माण का स्रोत ही यही है।" इसके बाद उसने अपना उदाहरण दिया और कहा कि बचपन में उसे अपने माता-पिता के लाड़-प्यार के अतिरिक्त और कोई सुख नहीं मिला और अकेले उस स्नेह ने उसे इतना विश्वास और शक्ति दी कि वह अपने पैरों पर खड़ी

हो सकी, अपनी छोटी बहनों को सहारा दे सकी और अपने माता-पिता की सहायता कर सकी। उसने कहा कि माता-पिता के बिना बच्चों में संवेगात्मक सुरक्षा की वह भावना नहीं उत्पन्न हो सकती जो आत्म-विश्वास तथा चरित्र की दृढ़ता का एकमात्र स्रोत होती है।

पुरुष और स्त्री के बीच प्रेम के प्रसंग में उसने कहा, "जब मैं अपनी अपरिपक्व किशोरावस्था के दिनों के बारे में सोचती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि निष्काम तथा रोमांटिक सम्बन्धों के वे विचार मूर्खतापूर्ण भावुक भ्रमों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। रोमांटिक प्रेम में जिस व्यक्ति से प्रेम किया जाता है उसे एक लुभावने धुँधलके के पार देखा जाता है, उस रूप में नहीं जैसा कि वह वास्तव में होता या होती है। लेकिन अब मैं सोचती हूँ किसी पुरुष और स्त्री के बीच यह सारा भावुक प्रेम उनके बीच एक प्रकार के आकर्षण या मोह के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, जिसके कारण कुछ समय के लिए वे कल्पनाओं और रोमांस की दुनिया में रहते हैं और जैसे ही वे जीवन को ठोस व्यावहारिक ढंग से देखना आरम्भ करते हैं या कई उदाहरणों में जैसे ही वे सम्भोग आरम्भ कर देते हैं ये रोमांटिक भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। उसके बाद एक-दूसरे के लिए दोनों का आकर्षण समाप्त हो जाता है। हाँ, अगर उसके बाद भी उनमें एक-दूसरे के लिए हार्दिकता की गहरी भावनाएँ, चिन्ता और इच्छा बनी रहे तो वह सच्चा प्रेम होता है और वह सम्बन्ध इस योग्य होता है कि उसे बनाये रखा जाये। शारीरिक रूप के प्रति और मानसिक अभिवृत्तियों के प्रति भी पारस्परिक आकर्षण प्रेम होता है।"

आगे चलकर उसने कहा, "मैं बड़ी दृढ़ता से यह मानती हूँ कि किसी स्त्री को किसी पुरुष के लिए अपने प्रेम को अपने जीवन की तर्कसंगत योजना में बाधक नहीं होने देना चाहिए और यदि वह ऐसा होने देती है तो वह मूर्ख है। प्रेम के बारे में जहाँ तक भी सम्भव हो यथार्थनिष्ठ होने की कोशिश करना चाहिए।" इसी प्रसंग में उसने यह भी कहा कि जब वह कालेज में पढ़ती थी तो समझती थी कि सच्चा प्रेम वह प्रेम होता है जिसमें जिस व्यक्ति से प्रेम किया जाता है उसे पाने के लिए हम सब कुछ त्याग देने के लिए और कुछ भी कर डालने के लिए तैयार रहते हैं और यह कि प्रेम एक अनवरत लालसा होती है। लेकिन अब, उसने बताया, प्रेम उसके लिए बलिदानों का क्रम और बिना किसी शर्त के एकतरफ़ा भक्ति नहीं है और न ही अब उसका जीवन एक निरन्तर पीड़ा है। अब उसकी राय में, प्रेम आदान-प्रदान का सौदा है। अगर वह किसी को अपना प्रेम देती है तो उसके बदले में वह आशा करती है कि वह व्यक्ति उसके प्रति हार्दिकता दिखायेगा, उसकी ओर ध्यान देगा और उसका ध्यान रखेगा। उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि प्रेम एक साझेदारी है, कुछ देना, कुछ लेना, दूसरे को अपने वश में कर लेना और दूसरे के वश में हो जाना। प्रेम का अर्थ है पारस्परिक आस्था और एक-दूसरे पर विश्वास। वह मानसिक तथा शारीरिक रूप से दूसरे के साथ एकाकार हो जाने की भावना है।"

उससे पूछा गया, "तुम्हें अधिक सन्तोष किसी को अपना प्रेम देकर मिलता है या किसी का प्रेम पाकर ?" उसने उत्तर दिया, "मुझे प्रेम तथा स्नेह देने और पाने में बराबर सन्तोष मिलता है लेकिन मैं एकतरफ़ा प्रेम में और बदले में प्रेम पाये बिना किसी पर अपना प्रेम लुटाते रहने में विश्वास नहीं करती। और मुझे बदले में प्रेम दिये बिना किसी का प्रेम पाकर भी बहुत आनन्द नहीं मिलता लेकिन मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। मेरे सबसे अच्छे मित्रों का भी यही विचार है।"

जब उससे प्राथमिकता के क्रम के अनुसार उन तीन चीजों के नाम बताने को कहा गया जिनकी उसे सुखी होने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता है, तो उसने कहा, "मैं एक अच्छा सम्पन्न पति और रहने के लिए एक आरामदेह घर चाहती हूँ। लेकिन निश्चित रूप से उसके अलावा और भी कुछ चाहिए। मुझे इसकी भी आवश्यकता है कि कोई मेरा ध्यान रखे, मुझे सराहे और मुझसे प्रेम करे और इसके लिए आवश्यक है कि वह प्रेम करनेवाला हो और मेरे प्रति निष्ठा रखता हो। लेकिन सुखी होने के लिए मुझे अपने माता-पिता, बहनों और स्त्रियों के प्रेम की भी आवश्यकता है और इस बात की भी कि दूसरे मुझे सराहें और मुझे स्वीकार करें।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम्हारी राय में साधारणतया किसी पुरुष के प्रेम का स्त्री के जीवन में क्या योगदान होता है ?" उसने कहा, "अगर प्रेम सच्चा और हार्दिक हो तो स्त्री के जीवन में आधारभूत सन्तोष प्रदान करने में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। परन्तु किसी पुरुष का सच्चा प्रेम पाना आसान नहीं होता है और इसलिए वह स्त्री के जीवन में निराशाएँ और असन्तोष पैदा कर देता है। फिर भी स्त्री के लिए पुरुष का प्रेम बहुमूल्य होता है और वह निश्चित रूप से उसकी कामना करती है और जब वह उसे मिल जाता है तो आमतौर पर वह सन्तोष अनुभव करती है। मेरे मित्रों के विचार भी ऐसे ही हैं।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम्हारी राय में किसी स्त्री के जीवन में आमतौर पर शारीरिक प्रेम की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण होती है ?" उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि स्त्री के जीवन में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लेकिन अगर इसे केवल अलग करके देखा जाये तो स्त्री के जीवन में उसकी भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती। मैं समझती हूँ कि शारीरिक प्रेम से परे का प्रेम भी बहुत महत्त्वपूर्ण होता है और उसके बिना शारीरिक प्रेम भी स्त्री के लिए बहुत सन्तोषप्रद नहीं होता।" जब उससे पूछा गया, "तुम किस चीज के पक्ष में हो, सेक्स से मुक्त प्रेम, या प्रेम-रहित सेक्स-सम्बन्ध या सेक्स-सम्बन्ध सहित प्रेम या प्रेम हो जाने के बाद सेक्स-सम्बन्ध ?" तो वह कुछ देर तो चुप रही और फिर कुछ सोचकर बोली, "मैं सेक्स के बिना प्रेम को भी उचित समझती हूँ और सेक्स-सम्बन्ध सहित प्रेम को भी, लेकिन मैं प्रेम के बिना सेक्स-सम्बन्ध के पक्ष में बिल्कुल नहीं हूँ, उन उदाहरणों को छोड़कर जिनमें विवाह माता-पिता के तय कर देने से हो जाता है और दोनों का एक-दूसरे को सचमुच जानना आरम्भ करने से भी पहले पति और पत्नी के बीच सेक्स-सम्बन्ध होना अनिवार्य होता है।"

जब उससे पूछा गया कि, "क्या तुम शुद्धतः प्लेटोनिक या निष्काम प्रेम में विश्वास रखती हो, अर्थात् ऐसा प्रेम जिसमें सेक्स का अंश न हो ?" तो उसने उत्तर दिया, "जी नहीं, मैं स्त्री और पुरुष के बीच शुद्धतः निष्काम प्रेम में विश्वास नहीं रखती, इस अर्थ में कि उनके बीच किसी प्रकार की शारीरिक घनिष्ठता हो ही नहीं। लेकिन मेरा यह विश्वास अवश्य है कि सेक्स-सम्भोग के बिना भी प्रेम हो सकता है, विशेष रूप से यदि आगे चलकर दोनों की विवाह कर लेने की योजना हो, या यदि आरम्भ से ही यह बात स्पष्ट कर दी गयी हो कि दोनों के बीच शारीरिक घनिष्ठता का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, या दोनों के नैतिक मानदण्ड या सिद्धान्त बहुत उच्च स्तर के हों।"

जब उससे पूछा गया, "क्या तुम समझती हो कि कोई स्त्री एक ही समय में एक से अधिक पुरुषों से प्रेम कर सकती है ?" तो उसने उत्तर दिया, "शारीरिक दृष्टि से मैं नहीं समझती कि वह एक साथ एक से अधिक पुरुषों से प्रेम कर सकती है, लेकिन अगर प्रेम का अर्थ शारीरिक घनिष्ठता के बिना केवल एक-दूसरे को बहुत पसन्द करना समझा जाये, तो मैं समझती हूँ कि वह एक ही समय में, एक से अधिक पुरुषों से प्रेम कर सकती है। लेकिन मैं समझती हूँ कि हार्दिक प्रेम में इतना समय, इतना विचार और इतना ध्यान लग जाता है कि एक से अधिक पुरुष स प्रेस करने की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती।" उसने यह भी कहा कि उसके सबसे अच्छे मित्रों का भी यही मत है।

अपनी नौकरी, अपने दफ़्तर के और निजी जीवन के साथ, जिसमें वह व्यस्त और संतुष्ट रहती थी, कंचन को जीवन काफी रोचक लगता था। अपनी उपलब्धियों और गर्व की आवश्यकता की तुष्टि से उसे सुखी रहने की बहुत प्रेरणा मिलती थी। उसकी यह दृढ़ भावना थी कि अपने जीवन को बनाना या बिगाड़ना पूरी तरह उस व्यक्ति के हाथ में होता है। वह जो कुछ भी थी पूर्णतः अपने ही प्रयासों से बनी थी। वह विपत्तियों का सामना साहस और निडरता के साथ करती थी। कभी-कभी वह बहुत दुःखी भी हो जाती थी और बहुधा उसे यह भी नहीं पता चलता था कि इसका कारण क्या है। वह एक अस्पष्ट-सा विचलित कर देनेवाला अनुभव होता था। वह जीवन में सबसे अधिक आशा प्रेम और सम्पदा की करती थी। अगर उसके बस में होता तो वह थोड़ी-सी लम्बी और हो जाना चाहती थी। वह अकसर दूसरों की समस्याओं के बारे में सोचती थी और यथासंभव जो कुछ भी वह कर सकती थी वह करके उनकी सहायता करने को भी तैयार रहती थी। उसे पीठ-पीछे किसी की बुराई करना या किसी को बदनाम करना पसन्द नहीं था। वह ऊँचे स्वर में व्यर्थ की बातें करने में तनिक भी विश्वास नहीं रखती थी। उसे निरन्तर इस बात की चिन्ता सताती रहती थी कि जीवन-साथी के सम्बन्ध में उसका भविष्य अनिश्चित था। कुछ लड़कियों और लड़कों से उसकी मित्रता थी। लेकिन उसे अपनी सहेलियों की अपेक्षा अपने मित्र [illegible] भी कि लड़कों के साथ रहने में अधिक आनन्द आता था क्योंकि वह अनुभव [illegible]

[illegible] प्रज्ञा के

योग दे सकते हैं। लेकिन, उसने बताया कि मित्रों तथा सगे-सम्बन्धियों का इतना बड़ा वृत्त होने के बावजूद वह बहुत अकेलापन अनुभव करती थी और एक पति और अपने घर की आवश्यकता को बहुत गहराई से अनुभव करती थी।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 10

पैंतीस-वर्षीया श्रीमती वासना आकर्षक भी थीं और तेज़ भी। उनके मन में हर चीज़ के बारे में उत्साह था और वह अपने भविष्य के बारे में आशावान थी। अपनी योग्यताओं के बारे में आवश्यकता से अधिक विश्वास और अपने स्पन्दनशील व्यक्तित्व के आभास के कारण उनमें दंभ की प्रवृत्ति भी थी। अपने हर काम में वह बहुत व्यावहारिक तथा दक्ष और बात करने में निडर और स्पष्टवादी थीं। पिछले 11 वर्ष से वह सरकारी नौकरी कर रही थीं। उन्होंने एम० ए०, बी० एड० पास किया था और 900 रुपये वेतन पाती थीं।

वासना का जन्म एक प्रबुद्ध तथा उदार विचारों वाले परिवार में हुआ था। उसके पिता भी सरकारी नौकरी करते थे। उन्होंने अपनी नौकरी के दौरान काफी पैसा कमाया था लेकिन चूँकि वह बहुत फ़जूलखर्च थे, इसलिए उन्होंने लगभग अपनी सारी कमाई अपनी नौकरी के दौरान ही खर्च कर दी थी और जिस समय उन्होंने नौकरी से अवकाश प्राप्त किया उस समय वासना और उसकी बहनें काफी छोटी थीं। उसके एक बड़ा भाई और दो छोटी बहनें थीं। उसकी माँ बहुत समझदार महिला थीं, जिन्होंने अपने पति की बेतुकी आदतों की वजह से बहुत दुःख झेले थे, और उनके बीच अकसर झगड़ा भी चलता रहता था।

चूँकि वासना का जन्म अपने बड़े भाई के जन्म के बारह वर्ष बाद हुआ था, इसलिए उसकी माँ उसे बहुत प्यार करती थीं। चूँकि उसे भी अपनी माँ से बहुत लगाव था, इसलिए वह अपने बाप से भी इस बात पर झगड़ा कर लेती थी कि वह उनके साथ सम्मानपूर्ण बरताव क्यों नहीं करते। रिटायर होने के बाद उसके बाप ने कहीं और नौकरी कर ली थी और उसकी पढ़ाई अच्छे स्कूलों में हुई थी। चूँकि वह सूरत-शक्ल की अच्छी और बहुत होशियार थी, इसलिए स्कूल में उसकी बहुत-सी सहेलियाँ थीं और उसे बहुत-से लोग पसन्द करते थे। जब उसने आई० एस-सी० की पढ़ाई पूरी कर ली तो उसके पिता की बड़ी इच्छा थी कि वह अपनी पढ़ाई समाप्त कर दे और विवाह कर ले। उसके भाई का विवाह हो चुका था और उन्होंने अपना घर बसा लिया था। वह अपनी छोटी बहनों के प्रति बहुत उदासीन थे। लेकिन उसकी माँ, जिन्होंने स्वयं बहुत दुःख झेले थे, उसे आगे पढ़ाने के लिए बहुत उत्सुक थीं। और वासना स्वयं भी यह ठान चुकी थी कि वह कालेज की शिक्षा प्राप्त करेगी और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनेगी। पिता की इच्छा के विरुद्ध उसकी माँ ने उसे बी० ए०, बी० एड० तक पढ़ाया।

बी० ए०, बी० एड० की परीक्षा पास करते ही उसने पढ़ाने की नौकरी कर ली

और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन गयी। उसने अपनी बहनों में भी यह चेतना पैदा की कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार के लिए लड़ें और उसने अपने पिता को मजबूर किया कि उन्हें कालेज की शिक्षा दिलायें। पढ़ाने की नौकरी करते हुए ही उसने एम० ए० पास किया और उसे अपने एक मित्र लड़के की सहायता से एक अर्ध-सरकारी संस्था में नौकरी मिल गयी। डेढ़ साल तक वहाँ काम करने के बाद उसने कोशिश करके एक सरकारी नौकरी प्राप्त कर ली। उसे इतनी अच्छी नौकरी पाने में सफलता इसलिए मिली कि वह जानबूझकर ऐसे लोगों से जाकर मिली थी जो कुछ महत्त्व रखते थे। और वह उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त ऐसे लोगों से मित्रता करती थी जो उसकी सहायता कर सकते थे। उसका कहना था, "मैं ऐसे लोगों को मित्र बनाने में विश्वास नहीं रखती थी जो किसी काम के न हों। मुझे ऐसे लोगों की संगत पसन्द है जिनके बड़े-बड़े लोगों से सम्बन्ध हों और जो स्वयं ऊँचे-ऊँचे पदों पर हों और साथ ही सहायता करने को भी तैयार हों। महत्त्वहीन और प्रभावहीन लोगों के साथ उठना-बैठना मैं समय की बर्बादी समझती हूँ।"

जब से उसने पढ़ाना आरम्भ किया था और उसके बाद भी जब वह अपनी इस नौकरी पर जम गयी थी, उसे इस बात का आभास था कि उसे कोई उचित वर ढूँढ़कर अपना घर बसा लेना चाहिए। अनेक मित्र और प्रशंसक होते हुए भी और अपनी निजी प्रतिष्ठा के साथ सुखी जीवन बिताने के बावजूद वह हमेशा विवाह कर लेने और एक पति तथा अपने घर की आवश्यकता अनुभव करती थी। इस पूरी अवधि में, जब वह पढ़ाई में, नौकरी खोजने में या अच्छी सरकारी नौकरी पाने के लिए जोड़-तोड़ करने में व्यस्त रही, उचित पति की खोज उसने कभी नहीं छोड़ी। और यद्यपि विभिन्न प्रकार के लड़कों से उसकी मित्रता थी और उसके सामने विवाह के दो-तीन प्रस्ताव आए भी किन्तु उसने विवाह न करने का निर्णय इसलिए किया कि जिन लोगों ने उसके सामने उनकी विवाह का प्रस्ताव रखा था उनके पास अच्छी नौकरियाँ नहीं थीं और समाज में हैसियत ऊँची नहीं थी या फिर उनका चरित्र अच्छा नहीं था।

उसने बताया, "दो बार मैंने दो अलग-अलग पुरुषों से मित्रता की, एक बार जब मैं पढ़ाती थी और दूसरी बार जब मैं अर्ध-सरकारी नौकरी कर रही थी, विशेष रूप से विवाह करने के उद्देश्य से। लेकिन पहलेवाले के बारे में मुझे पता चला कि यद्यपि उसकी नौकरी भी बहुत अच्छी थी और उसका व्यक्तित्व भी बहुत प्रभावशाली था पर उसे कई दूसरी लड़कियों में भी रुचि थी। पहले तो मैंने अपना सारा ध्यान और सारा समय उसे देकर और उसके साथ विनम्रता, हार्दिकता और सहिष्णुता का बरताव करके अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया कि वह दूसरी लड़कियों की ओर ध्यान देना छोड़ दे। मैंने जितना भी बन पड़ा उसके लिए आकर्षक बनने की भी कोशिश की और वह भी मुझे सराहता था और मुझ पर प्रशंसा की बौछार करता था। लेकिन बाद में मुझे पता चला कि उसकी प्रवृत्ति ही रस चूसकर उड़ जानेवाले भँवरे जैसी थी और वह दूसरी लड़कियों से भी उतना ही प्रेम जताता था और जिस समय वह मुझसे विवाह करने

की प्रबल इच्छा व्यक्त करता था उसी समय वह दूसरी लड़कियों से भी इसी प्रकार की इच्छा व्यक्त करता रहा था। इसलिए मैं धीरे-धीरे उससे खिचती गयी। मेरे अहंभाव को कुछ ठेस तो अवश्य लगी कि मैं उसे पूरी तरह अपना बना लेने में विफल रही थी, पर इससे मैं बहुत विचलित नहीं हुई।" दूसरे के बारे में उसने बताया कि वह इस प्रकार का आदमी निकला जो चाहता था कि उसकी पत्नी बहुत आज्ञाकारी, घरेलू और बँधी लीक पर चलनेवाली लड़की हो, लेकिन इसके साथ ही मनोरंजन और अच्छी संगत के लिए वह उन औरतों से भी दोस्ती करना चाहता था जो अपने व्यवहार तथा व्यक्तित्व में आधुनिक, चुस्त-चालाक, सम्पन्न और अपनी बात मनवा लेने-वाली हों।

चूंकि वह बहुत स्पष्टवादी और बहिर्मुखी स्वभाव की थी इसलिए उसने यह भी वर्णन किया कि एक संपन्न अफ़सर को अपना पति बनाने में वह कैसे सफल हुई। उसने कहा, "मैं दो आदमियों को अच्छी तरह जानती थी, एक बहुत अच्छे पद पर काम करनेवाला सरकारी अफ़सर था और दूसरा एक प्राइवेट कम्पनी में बहुत अच्छे वेतन पर काम कर रहा था, जिससे मेरा परिचय कई सरकारी आयोजनों में हुआ था। दोनों पढ़े-लिखे थे। एक बहुत हृष्ट-पुष्ट और लम्बे क़द का था और दूसरे का व्यक्तित्व तो इतना प्रभावशाली नहीं था पर उसकी नौकरी ज़्यादा अच्छी थी। मेरी उनसे मित्रता हो गयी और मैं दोनों के साथ बहुत अच्छा बरताव रखती थी। मैंने उन दोनों को जानने और समझने की कोशिश की और दोनों के साथ बड़े प्यार का व्यवहार करती थी और मैं उनको अलग-अलग विभिन्न स्थानों पर चाय पीने के लिए या खाना खाने के लिए बुलाती थी। मैं बारी-बारी से उन दोनों के साथ मोटर की लम्बी सैर पर या सिनेमा देखने जाती थी और अपने प्रति दोनों की रुचि तथा आकर्षण बनाये रखती थी क्योंकि मैं स्वयं यह निर्णय करना चाहती थी कि मेरे लिए पति के रूप में कौन अधिक उपयुक्त होगा। जिस क्षण मुझे यह लगा कि मेरा वह मित्र जिसका व्यक्तित्व कम प्रभावशाली पर नौकरी ज़्यादा अच्छी थी, मुझसे विवाह करने को ज़्यादा आसानी से तैयार हो जायेगा, उसी क्षण मैंने फ़ैसला कर लिया कि मैं उसे अपने साथ विवाह करने के लिए तैयार करने और उसमें इस बात की इच्छा जगाने की भरपूर कोशिश करूंगी। मेरे मन में उसके प्रति गहरी भावनाएँ भी उत्पन्न हो गयीं। और मैं उसकी ओर आकृष्ट भी होने लगी। मैं उस पर प्रशंसाओं की बौछार करने लगी और उसके प्रति प्रेम की भावनाएँ व्यक्त करने लगी। अपने दूसरे मित्र की अपेक्षा मैं उसके साथ अधिक समय बिताने लगी और उसकी ओर अधिक ध्यान देने लगी और मैंने बार-बार उससे यह भी कहा कि अगर उसने मुझसे विवाह न किया तो मेरा जीवन नरक बन जायेगा। लेकिन मैंने दूसरे के साथ भी मित्रता बनाये रखी ताकि अगर एक हाथ से निकल जाये तो कम से कम दूसरे का तो सहारा रहे। अन्त में मैं उसी का प्रेम जीत लेने में सफल हो गयी जिस पर मैं अपना अधिकांश समय, ध्यान और प्यार लुटा रही थी। और मुझे इस बात की खुशी है कि मैं उसके साथ विवाह कर लेने

में सफल भी हुई।"

वह बताती रही कि वह सज्जन भी, जो अब उसके पति थे, किस प्रकार उसमें दिलचस्पी लेने लगे और अन्त में उससे प्यार करने लगे। उसने बताया कि जब वह उनकी ओर ध्यान देने लगी और उनकी प्रशंसा करने लगी तो वह भी दिलचस्पी लेने लगे। "लेकिन," उसने बताया, "वह मुझसे विवाह करने पर केवल इसलिए तैयार नहीं हो गये कि वह मुझ से प्यार करने लगे थे, या इसलिए कि मैं सुन्दर और चुस्त-चालाक थी या केवल इसलिए कि मैं विवाह करना चाहती थी। इसके विपरीत, उन्होंने भी ठंडे दिमाग से पूरी स्थिति का अध्ययन किया था, मेरी शिक्षा और मेरे परिवार की पृष्ठभूमि के बारे में पता लगाया था और यह समझ लिया था कि मैं नौकरी करती हूँ और विवाह के बाद भी काम करते रहने की मेरी योजना है। जब उन्हें पूरा भरोसा हो गया कि मुझमें ऐसे गुण हैं जो उनके लिए लाभप्रद सिद्ध होंगे तो उन्होंने भी जान-बूझकर मुझसे मित्रता और प्रेम के सम्बन्ध बढ़ाये और तब हम दोनों ने एक साथ अपनी प्रेम की भावनाओं को विकसित करने की योजना बनायी और ऐसा कर लेने पर एक-दूसरे से विवाह कर लेने का निर्णय किया।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम किस प्रकार के आदमी को अपने पति के रूप में सबसे अधिक पसन्द करतीं ?" उसने कहा, "एक पति के रूप में मैं ऐसा आदमी चाहती जो किसी अच्छे पद पर हो, जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली हो और जिसकी सामाजिक हैसियत ऊँची हो, जिसकी रुचियाँ सुसस्कृत तथा परिष्कृत हों और जिसका दृष्टिकोण बहुत उदार तथा आधुनिक हो और जो मेरी भावनाओं का ध्यान रखे, मुझे प्रशंसा की दृष्टि से देखे और सराहे। बात यह है कि अच्छे से अच्छे विवाह के लिए भी प्रेम तो आवश्यक होता है। लेकिन विवाह एक ऐसी चीज होती है जिसमें आदमी से प्यार करना ही नहीं बल्कि उसके साथ रहना भी आवश्यक होता है। इसलिए किसी आदमी के साथ रहने के लिए वह उस प्रकार का होना चाहिए जैसा कि मैंने ऊपर बताया है। वह प्यार करनेवाला भी होना चाहिए लेकिन ईर्ष्यालु तथा एकाधिकारी प्रवृत्ति का न हो।" आगे चलकर उसने कहा, "मुझे अपने पति में ये सारे गुण तो नहीं लेकिन इनमें से बहुत-से गुण मिले हैं। मेरा जीवन इतना व्यस्त है कि मुझे इस बात पर विचार करने का समय ही नहीं मिलता कि उनमें किन-किन बातों की कमी है और हमें सुनियोजित तथा व्यावहारिक जीवन पसन्द है और हम जीवन का यथासंभव भरपूर उपयोग करते हैं।"

"सुखी रहने के लिए तुम्हें सबसे अधिक आवश्यकता किस चीज की है ? प्राथमिकता के क्रम के अनुसार तीन चीजों के नाम बताओ।" उससे जब यह प्रश्न किया गया तो उसने उत्तर दिया, "मुझे एक नेक और अच्छी हैसियत वाले पति के साथ भौतिक सुख-सुविधाएँ, घर-बार और बच्चे चाहिएँ। लेकिन मुझे दूसरों से ढेरों प्रशंसा तथा मान्यता और प्रतिष्ठा तथा ख्याति के साथ एक स्वतन्त्र हैसियत भी चाहिए।" वह कहती रही, "देखिये, मैं बहुत बड़े दिल की, उदार और [illegible] हूँ।

मेरी रुचियाँ बहुत परिष्कृत हैं और मैं बहुत सहृदय तथा प्यार करनेवाले स्वभाव की व्यक्ति हूँ। इसलिए मैं चाहती हूँ और मुझे इसकी आवश्यकता है कि मुझे दूसरों से ढेरों प्रशंसा और सराहना मिले और सुखी रहने के लिए मुझे ढेरों पैसा भी चाहिए। और चूँकि मुझे इनमें से अधिकांश चीजें प्राप्त हैं जिनकी मुझे सुखी रहने के लिए आवश्यकता है, इसलिए मैं सुखी रहती हूँ और मैंने अपने जीवन को और अधिक सफल तथा सुखी बनाने का संकल्प कर रखा है।"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि "तुम्हारे लिए प्रेम का क्या अर्थ है ?" उसने कहा, "बात यह है कि प्रेम एक बहुत व्यापक शब्द है जिसमें एक ओर पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच मुख्यतः काम-प्रेरित आकर्षण की भावनाओं से लेकर दूसरी ओर आध्यात्मिक प्रेम—ईश्वर से प्रेम—की भावनाओं तक सभी कुछ आ जाता है; जिसमें मनुष्यों के बीच हार्दिकता तथा पारस्परिक चिन्ता की प्रबल भावनाएँ भी शामिल हैं। प्रेम वस्तुतः एक प्रकार की आदत होती है जिसमें दूसरे के बिना संवेगात्मक तथा शारीरिक दृष्टि से जीवन ही असम्भव हो जाता है। मेरे लिए प्रेम का अर्थ है दो विपर्मलिंगी व्यक्तियों के बीच गहरा लगाव जो वैयक्तिक हित तथा सन्तोष के लिए विकसित किया जाता है। मैं समझती हूँ कि प्रेम का अर्थ है पारस्परिक सराहना तथा काम-भावना की संतुष्टि।" आगे चलकर उसने यह भी कहा, "मैं किसी को देखते ही उसे अच्छी तरह जाने बिना उससे प्यार करने लगने में विश्वास नहीं रखती। क्योंकि मैंने कई ऐसी नादान लड़कियों के बारे में सुना है और मैं कई ऐसी लड़कियों को जानती हूँ, जिनमें मेरी एक मौसी भी हैं, जो किसी आदमी को देखते ही मूर्खों की तरह उससे प्रेम करने लगीं और उन्होंने यह पता लगाये बिना ही उससे विवाह कर लिया कि वह करता क्या है और विवाह के बाद वह रुपये-पैसे की दृष्टि से क्या सुरक्षा और सुख-सुविधा प्रदान कर सकता है। नतीजा यह हुआ कि 'सुनहरी रातों के सपनों' और 'रोमांटिक कल्पना की उड़ानों' के समाप्त हो जाने पर दोनों ही को यह जानकर बड़ी निराशा हुई कि वे खाली हवा और प्रेम पर जीवित नहीं रह सकते जैसा कि उन्होंने शायद अनजाने में समझ रखा था। और चूँकि मेरी मौसी को सुख-सुविधा के जीवन की आदत थी, इसलिए जब उसे नौकरी करनी पड़ी और बहुत कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ा तो वह बहुत झुँझलाने लगी। धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे में दोष निकालने लगे और एक-दूसरे के बारे में इस बात पर जोर देने लगे कि वे विवाह से पहले जैसे लगते थे उसकी तुलना में काफी निराशाजनक और भिन्न थे। यद्यपि उन्होंने एक-दूसरे से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं किया है पर वे बहुत दुःखी रहते हैं और एक-दूसरे को बर्दाश्त नहीं कर सकते। इसलिए मैं समझती हूँ कि यदि प्रेम को सफल होना है तो उसमें जीवन की ठोस व्यावहारिकता का गुण होना चाहिए और उसके प्रति पूर्ण वास्तविकता का रवैया अपनाया जाना चाहिए। मैं किसी भी आदमी के साथ उसके गुणों तथा उसकी आर्थिक स्थिति के बारे में जाने बिना मित्रता या किसी प्रकार का लगाव पैदा नहीं करना चाहूँगी।"

आगे चलकर उसने कहा, "मैं निःस्वार्थ प्रेम या सब कुछ त्याग देनेवाले प्रेम में भी विश्वास नहीं करती। प्रेम कुछ देने और कुछ पाने का सौदा है और अगर हम किसी दूसरे पर कोई उपकार करते हैं तो उसे भी उसके बदले में वैसा ही करना चाहिए। नहीं तो प्रेम धीरे-धीरे मर जाता है।" वह कहती रही, "केवल वही लोग प्रेम कर सकते हैं और प्रेम पा सकते हैं जिनमें सजग रूप में प्रेम को खोजने तथा जीवन से सन्तुष्टि पाने की क्षमता हो। यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि सच्चे प्रेम का अर्थ अडिग श्रद्धा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ऐसा क्यों हो ? यह एक भावना है जिसे न्यूनाधिक रूप में अपने हित में विकसित किया जा सकता है और जब तक उससे लाभ होता रहता है तब तक वह बनी रहती है।" बातचीत के दौरान उसने बताया, "जीवन से सन्तोष प्राप्त कर सकने के लिए प्रेम को उन्मुक्त तथा निर्बन्ध होना चाहिए और जब तक उससे सम्बन्धित व्यक्तियों को संतोष मिलता रहे तब तक उसे बना रहना चाहिए। जैसे ही इस संवेग अथवा भावना का क्रम भंग हो जाये उसी क्षण यह सम्बन्ध भी समाप्त हो जाना चाहिए। परन्तु इसके साथ ही उसे लक्ष्यहीन या किसी ठोस उद्देश्य से रहित भी नहीं होना चाहिए। मैं ऐसे प्रेम में विश्वास नहीं करती जो मेरे विचार से केवल गल्प-साहित्य में पाया जाता है या उन लोगों के लिए होता है जिनमें वास्तविकताओं से जूझने और जीवन से अधिकतम सुख प्राप्त करने की क्षमता नहीं होती।"

लेकिन जब उससे पूछा गया, "क्या तुम्हें किसी को अपना प्रेम देने की अपेक्षा प्रेम प्राप्त करने में अधिक सन्तोष मिलता है ?" तो उसने उत्तर दिया, "मैं बिल्कुल स्पष्ट कहूँ तो मुझे किसी को अपना प्रेम देने की अपेक्षा प्रेम प्राप्त करने में अधिक सुख मिलता है। मुझे दूसरों को अपना स्नेह या प्रेम देकर भी आनन्द प्राप्त होता है; लेकिन अधिकांशतः उन लोगों को जिनके बारे में मैं चाहती हूँ कि किसी न किसी उद्देश्य से उनके साथ मेरा लगाव हो। मैं इसमें विश्वास नहीं करती कि मैं दूसरों पर अपना प्रेम लुटाती रहूँ और बदले में उनका ध्यान, प्रशंसा और प्रेम न प्राप्त कर सकूँ। मुझे उस स्थिति में भी दूसरे का प्रेम प्राप्त करके बहुत सन्तोष मिलता है जब मैं स्वयं इसके बदले में उसे अपना प्रेम न दूँ।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम्हारी राय में, साधारणतया किसी पुरुष के प्रेम का स्त्री के जीवन में क्या योगदान होता है ?" उसने कहा, "इससे शारीरिक सन्तोष में, प्रशंसा तथा प्रेम प्राप्त करने की आवश्यकता की तुष्टि में, पति, घर तथा बच्चे होने की आवश्यकता की तुष्टि में योगदान मिलता है। इससे स्त्री के अभिमान को भी सन्तोष मिलता है और आर्थिक तथा संवेगात्मक सुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है। परन्तु यदि प्रेम केवल वासना हो तो उससे केवल काम-वासना की तुष्टि होती है और सो भी तब यदि उस स्त्री को भी मुख्यतः शारीरिक तुष्टि के प्रति उतनी ही रुचि हो। अन्यथा इससे केवल उसके विश्वास तथा प्रेम का [illegible]।"

आगे चलकर उसने कहा कि वह किसी पुरुष और स्त्री के प्रेम [illegible]

के इस कथन से सहमत है कि प्रेम से डरना जीवन से डरना है और जो जीवन से डरते हैं वे यों ही आधे मर चुके होते हैं।

जब उससे पूछा गया, "तुम्हारी राय में, किसी स्त्री के जीवन में, आमतौर पर शारीरिक प्रेम की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण होती है?" तो उसने उत्तर दिया, "देखिये, मैं समझती हूँ कि उसकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है और यह कहना कि सच्चा प्रेम निष्काम होता है और शारीरिक प्रेम गन्दगी है सरासर ग़लत है। एक स्त्री की भी शारीरिक आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी तुष्टि होनी चाहिए। वास्तव में पति और पत्नी के बीच इसकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।" जब उससे पूछा गया, "तुम किस बात के पक्ष में हो, सेक्स से मुक्त प्रेम के या सेक्स-सम्बन्ध सहित प्रेम के?" तो उसने उत्तर दिया, "जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूँ, मैं बिना किसी अन्तिम उद्देश्य के प्रेम के पक्ष में बिल्कुल नहीं हूँ और यदि वह उद्देश्य पूरा होता रहे तो स्थिति के अनुसार मैं इन दोनों में से किसी के भी पक्ष में हूँ।" जब उससे पूछा गया, "क्या तुम शुद्धतः प्लेटोनिक या निष्काम प्रेम में विश्वास करती हो, अर्थात् ऐसा प्रेम जिसमें सेक्स का अंश न हो?" तो उसने उत्तर दिया, "मैं किसी भी स्त्री और पुरुष के बीच, उनको छोड़कर जिनमें आपस में रक्त के सम्बन्ध हों, निष्काम प्रेम में विश्वास नहीं करती। यदि वे एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और उन्हें अकसर अकेले में एक-दूसरे के साथ रहने का मौक़ा मिलता है तो स्वाभाविक रूप से कुछ समय बाद उनके बीच चाहे-अनचाहे सेक्स-सम्बन्ध विकसित हो जायेंगे।" इस प्रश्न के उत्तर में कि "क्या तुम समझती हो कि कोई स्त्री एक ही समय में एक से अधिक पुरुषों से प्रेम कर सकती है?" उसने कहा, "मैं नहीं जानती कि वास्तव में यह प्रेम है क्या चीज, लेकिन निश्चित रूप से कोई स्त्री किसी विशिष्ट उद्देश्य से एक ही समय में, एक से अधिक पुरुषों के साथ नेकी, प्रेम और घनिष्ठता का बरताव कर सकती है। परन्तु वह कोई उलझाव पैदा किये बिना भी ऐसा कर सकती है, शर्त केवल यह है कि वह इतनी बुद्धिमान हो कि स्थिति को बड़ी होशियारी से संभाले रहे।"

कुल मिलाकर वह बड़ी उत्साहमयी लड़की थी, जीवन के प्रति जिसका दृष्टिकोण व्यापक और विचार बहुत आशावान थे। उसे स्वयं अपने पर और अपनी क्षमताओं पर पूरा भरोसा था और चूँकि उसे अपने माता-पिता तथा मित्रों से हमेशा जो कुछ मिला था वह श्रेष्ठतम ही था, इसलिए उसे जीवन में अपना मार्ग ढूंढ़ लेने का भरपूर भरोसा था। चूँकि उसका पालन-पोषण धनी लोगों के परिवार में हुआ था और उसने देखा था कि उसकी मौसियों, बुआओं, मामाओं, चाचाओं और रिश्ते के भाई-बहनों के विवाह हो चुके थे और उन्हें वे सारी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं जो पैसे से ख़रीदी जा सकती हैं, इसलिए जीवन में उसकी सबसे प्रबल इच्छा किसी धनवान अफ़सर से विवाह करने की थी और उसने अपना यह लक्ष्य किसी भी प्रकार प्राप्त कर लिया था।

जीवन में उसकी अपनी निश्चित योजनाएँ थीं और उसे दूसरे लोगों की बहुत

अधिक चिन्ता नहीं थी। वह पूरी तरह अपनी ही योजनाओं में डूबी रहती थी और उसका सारा ध्यान और सारी शक्तियाँ अपने ही पर केन्द्रित रहती थीं। उसे अपने शारीरिक रंग-रूप, आकर्षण, प्रतिभा, योग्यताओं, बुद्धिमत्ता और उपलब्धियों का आवश्यकता से अधिक आभास था। वह एक प्रभावशाली व्यक्तित्ववाली सुसंस्कृत लड़की थी, जिसका सोचने का ढंग बहुत व्यावहारिक और जिसकी योजनाएँ बहुत सोची-समझी हुई तथा उद्देश्यपूर्ण थीं। यह निश्चित था कि वह जीवन से जो कुछ भी प्राप्त करना चाहेगी प्राप्त कर लेगी, क्योंकि उसकी यह दृढ़ धारणा थी कि किसी भी स्त्री या पुरुष को जीवन में अपना लक्ष्य, या अपने लक्ष्य प्राप्त करने में अन्य किसी भी चीज से बढ़कर सहायता महत्त्वाकांक्षा और दृढ़ संकल्प से मिलती है।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 15

पच्चीस-वर्षीया पमिला चुस्त-चालाक और आकर्षक लड़की थी। वह आधुनिक पोशाक पहने थी और उसका शरीर बहुत सुडौल तथा आकर्षक था। वह बहुत फुर्तीली तथा सजग थी और उसका चेहरा बहुत स्वस्थ तथा आभामय था। वह एम० ए० पास थी और 750 रुपये मासिक वेतन पर एक अर्ध-सरकारी नौकरी कर रही थी।

पमिला का जन्म एक सुशिक्षित तथा उन्नत विचारों वाले परिवार में हुआ था। उसने एक अच्छे पब्लिक स्कूल में शिक्षा पायी थी और अपने पिता की उच्च तथा महत्वपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण वह बहुत ही शिष्ट, सभ्य तथा सुसंस्कृत लोगों के बीच उठती-बैठती थी। स्कूल में उसके सभी मित्र, चाहे वे लड़के हों या लड़कियाँ, बहुत ही सम्पन्न तथा पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवारों के थे। वह अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी और उसके एक भाई था जो उससे केवल दो वर्ष बड़ा था। माता-पिता दोनों के साथ एक जैसा व्यवहार रखते थे, दोनों एक ही पब्लिक स्कूल में पढ़े थे और पढ़ाई के दौरान तथा उसके बाद भी, जब उसने अपनी पढ़ाई पूरी कर ली थी इंग्लैंड और अमेरिका हो आये थे। वह लंदन पढ़ाई के बाद अतिरिक्त प्रशिक्षण प्राप्त करने गयी थी। उसके बाद उसने नौकरी कर ली थी, अधिकतर अपने को उपयोगी ढंग से व्यस्त रखने तथा बौद्धिक सन्तोष और उद्दीपन के लिए और इसके साथ ही इस उद्देश्य से भी कि उसे अच्छे लोगों से मिलने-जुलने का अवसर मिलेगा और वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी रहेगी।

जब वह स्कूल में पढ़ती थी तभी से कई लड़कियों और लड़कों से उसकी दोस्ती थी। उसने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में यह भी बताया कि वह तीन-चार मर्दों से प्रेम करती थी—एक प्रोफेसर, एक कलाकार, एक राजनीतिज्ञ और एक [illegible] इनके प्रति उसके मन में बड़ा आदर था और वे सब भी उससे प्रेम करते थे। उसने बताया कि वह उनमें से प्रत्येक से उनके अलग-अलग गुणों से [illegible] और उनमें से प्रत्येक के साथ अपने सम्बन्धों से उसे अलग-अलग [illegible] मिलता था और उनमें से प्रत्येक के साथ रहने में उसे [illegible]

परन्तु अब तक उसे कोई ऐसा पुरुष नहीं मिला था, जिसके साथ वह विवाह करना चाहे। उसने यह भी कहा कि वह पारम्परिक अर्थ में विवाह करने की बात सोच भी नहीं रही थी।

प्रेम के अर्थ के बारे में और जीवन में सुख पैदा करने में, प्रेम के महत्त्व के बारे में, उसके विचारों तथा मतों से सम्बन्धित उससे जितने भी प्रश्न पूछे गये उन सबके उत्तर सारतः न्यूनाधिक रूप में वैसे ही थे जैसे वासना ने दिये थे (व्यक्ति-अध्ययन संख्या 10) और उसने लगभग वैसे ही मत व्यक्त किये। लेकिन प्रेम-सम्बन्धों की चर्चा करते हुए उसने कहा कि वह 'स्वच्छंद-प्रेम' में विश्वास रखती है। जब उससे पूछा गया कि स्वच्छन्द प्रेम से उसका क्या अभिप्राय है तो उसने कहा कि स्वच्छन्द प्रेम से उसका अभिप्राय है प्रतिबद्धताओं या दायित्वों के बिना किसी से भी प्रेम करने की स्वतन्त्रता। उसने कहा, "मेरा विश्वास है कि प्रेम स्वतःस्फूर्त तथा पारस्परिक होना चाहिए और प्रेम-सम्बन्ध केवल तभी तक रहना चाहिए जब तक वह उस सम्बन्ध में बँधे हुए दोनों व्यक्तियों को सन्तोष तथा उल्लास देता रहे और जिस क्षण उनमें से किसी एक को भी उससे सन्तोष तथा सुख मिलना बन्द हो जाये यह सम्बन्ध भी भंग हो जाना चाहिए।" आगे चलकर उसने कहा, "प्रेम को कर्तव्य नहीं समझा जाना चाहिए और वह किसी पर थोपा नहीं जाना चाहिए और सम्बन्धित व्यक्ति पर उसके कारण दायित्वों अथवा प्रतिबद्धताओं का बोझ नहीं पड़ना चाहिए। सभी व्यक्तियों को, लड़कों को भी और लड़कियों को भी, पारस्परिक सन्तोष के लिए इच्छानुसार किसी के भी साथ प्रेम के सम्बन्ध स्थापित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए और उन्हें पूरी सद्भावना के साथ और एक-दूसरे के प्रति किसी भी प्रकार के द्वेष अथवा कुत्सा के बिना इन सम्बन्ध को जब चाहे तोड़ देने की भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए।" उसने कहा, "प्रेम को प्रेम की मांग के अतिरिक्त और कोई मांग नहीं करनी चाहिए, और उसे किसी व्यक्ति के साथ उसी समय तक जारी रखा जाना चाहिए जब तक वह इस रूप में अनुभव किया जाता रहे।"

एक और बात जिस पर पमिला ने ज़ोर दिया वह थी 'प्रेम की निरवरोध अभिव्यक्ति।' उसने कहा, "मैं न केवल स्वच्छन्द प्रेम में विश्वास करती हूँ बल्कि प्रेम की उन्मुक्त अभिव्यक्ति में भी। मेरी दृढ़ भावना है कि लड़कों और लड़कियों में अकारण ही यह भावना नहीं पैदा की जानी चाहिए कि दूसरों की उपस्थिति में हार्दिक तथा सच्चे प्रेम की कोमल तथा नाज़ुक भावनाओं को आलिंगन अथवा चुम्बन जैसी स्वतः-स्फूर्त क्रियाओं से प्रकट अभिव्यक्ति लज्जास्पद तथा अनैतिक है। इससे वे केवल इस बात के लिए विवश हो जायेंगे कि अपनी भावनाओं को व्यक्त मात्र करने के लिए वे स्वजनों से भागकर सुदूर तथा गुप्त स्थानों की शरण लें, और इन तनावपूर्ण परि-स्थितियों में इसकी सम्भावना अधिक होगी कि उनका आचरण अवांछनीय हो।

उसने आग्रहपूर्वक कहा कि उसका दृढ़ विश्वास है कि यदि दो व्यक्तियों के बीच विवाह से पहले और विवाह के बाद भी एक-दूसरे के प्रति प्रेम, आदर, समवेदना तथा

लगाव की भावनाएं हों, तो उन्हें शारीरिक रूप से एक-दूसरे के सामीप्य की स्वतन्त्र होनी चाहिए—हाथ पकड़कर बैठना, गालों को चूमना, और दूसरों की उपस्थि में एक-दूसरे का आलिंगन करना। उसकी दृढ़ भावना थी कि प्रेम की अभिव्यकि निष्कपट तथा निरवरोध होनी चाहिए और केवल ऐसी अवस्था में ही लोग अपन भावनाओं तथा व्यवहार में साहस, ईमानदारी तथा सच्चाई पैदा कर सकते हैं, अन्यथ वे बेईमानी, झूठ और सबसे बढ़कर मक्कारी करने पर मजबूर हो जायेंगे। वह ऐ मक्कार लोगों को बिलकुल पसन्द नहीं करती थी, बल्कि उसने उनकी कड़ी आलोचन की, जो दूसरों के सामने तो एक-दूसरे से कई हाथ दूर बैठेंगे और आपस में बात भी नह करेंगे और ऐसा जतायेंगे मानो प्रेम या मित्रता तो दूर रही उनके बीच किसी प्रकार क अनौपचारिक सम्बन्ध भी नहीं है, जबकि दूसरों की नज़रों से दूर अकेले में वे घनिष्ठत शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने से भी नहीं चूकेंगे। उसने कहा कि लड़कों औ लड़कियों दोनों ही को यह सिखाया जाना चाहिए कि वे अपनी भावनाओं के बारे मे और अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में साहस तथा ईमानदारी का परिचय दें औ बिना किसी संकोच के सत्यनिष्ठ रहें।

अन्त में उसने बड़ी निर्भीकता से कहा, "मैं अपनी भावनाओं के बारे में हमेशा बहुत ईमानदार रही हूँ और मैं दूसरों के सामने भी अपने प्रेम के पात्र को बड़े प्यार से सम्बोधित करके और उसके प्रति प्यार तथा कोमलता का व्यवहार करके अपने संवेगों को स्वतःस्फूर्त ढंग से व्यक्त करती हूँ। परन्तु मुझे बहुधा इस बात पर बहुत निराशा हुई है, बल्कि क्रोध भी आया है, कि उन्हीं पुरुषों ने जिनसे मैं प्रेम करती रही थी मुझे इस बात पर झिड़क दिया है कि मैंने सबके सामने इस तरह खुलकर अपनी भावनाओं को क्यों व्यक्त किया। उनमें से अधिकांश का यही आग्रह रहा है कि सबके सामने तो मैं भोली और मासूम बनी रहूँ और दूसरों की उपस्थिति में हम एक-दूसरे के प्रति बिलकुल औपचारिक व्यवहार रखें और पर्दों के पीछे जब दोनों अकेले में हों तो एक-दूसरे की बाँहों में समा जाएँ। पारस्परिक हार्दिकता, कोमलता, सच्ची समवेदना तथा प्रेम व्यक्त करने के लिए नहीं बल्कि यथासम्भव न्यूनतम समय में शुद्धतः अपनी शारीरि भूख अथवा वासना को तुष्ट करने के लिए। और यह बात मेरे लिए सर्वथा घृणास्पद है।"

वह कहती रही, "मुझे ऐसे पुरुषों का अनुभव हुआ है और इसीलिए [illegible] किसी ऐसे पुरुष के साथ सम्बन्ध रखने से घृणा हो गयी है जो मक्कार हो और [illegible] अपने दृढ़ विश्वास को व्यक्त करने का साहस न हो और जिसे अपनी [illegible] की बड़ी चिन्ता लगी रहती हो। मैं समझती हूँ कि ऐसे कपटी लोगों ने [illegible] ही नहीं है कि प्रेम क्या होता है। उन्होंने केवल अकेले में दूसरे [illegible] लाभ उठाना और अपनी वासना को तृप्त करना सीखा है। [illegible] है कोमलता, सहृदयता तथा सहिष्णुता का व्यवहार करना और [illegible] नाओं, भावों और उसके कल्याण की चिन्ता रखना, [illegible]

सेक्स-क्रिया नहीं है। अन्त में उसने कहा, "काश, ऐसे पुरुषों को इस बात का ज्ञान होता कि स्त्री से प्रेम कैसे किया जाता है और किस समय किसके साथ प्रेम किया जाना चाहिए।"

नीचे कुछ ऐसी श्रमजीवी महिलाओं के वक्तव्यों के रूप में, जिनके व्यक्ति-अध्ययनों का विस्तृत वर्णन अगले दो अध्यायों में—अध्याय तीन और चार में किया गया है, प्रेम के सम्बन्ध में कुछ प्रातिनिधिक विचार दिये जा रहे हैं।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 17 : सुमन ने कहा, "मैं चाहती हूं कि मेरा पति हो, घरबार हो, बच्चे हों। जहाँ तक प्रेम का सवाल है, हो सकता है कि वैवाहिक सम्बन्धों का सूत्रपात उससे न हो लेकिन बाद में चलकर वैवाहिक जीवन के दौरान कोशिश करके और धीरज के साथ उसे विकसित किया जा सकता है। मैंने अपने माता-पिता और उनके मित्रों के बारे में देखा है कि जब उनका विवाह हुआ था तो वे एक-दूसरे के लिए बिल्कुल अजनबी थे, परन्तु बाद में उनके बीच ऐसा प्रेम विकसित हुआ जो रोमांटिक न होते हुए भी वास्तविक तथा सन्तोषप्रद था। मैं देखती हूँ कि वे एक-दूसरे के साथ पूर्ण सामंजस्य के साथ रहते हैं और उनका वैवाहिक जीवन काफी सुखी है।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 32 : रश्मि ने कहा, "प्रेम के बिना प्रज्ञा पर्याप्त नहीं होती क्योंकि उससे मानवता में कुछ कमी पैदा होती है और वह इतनी नीरस रह जाती है कि सन्तोषप्रद नहीं होती है।" उसने आगे चलकर कहा, "मैं समझती हूँ कि स्त्री केवल सेक्स की भूखी नहीं होती बल्कि वह पूर्ण प्रेम चाहती है जो उसे शायद ही कभी मिलता हो।" उसने आगे चलकर कहा, "हाँ, मोह और प्रेम के बीच बहुत अन्तर होता है। प्रेम अपने-आप ही नहीं जाता। उसके लिए योजना बनानी पड़ती है और निर्णय करना पड़ता है और एक व्यक्ति को चुनकर उससे प्रेम किया जाता है।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 7 : सोनिया ने कहा, "रोमांटिक प्रेम में प्रेम के पात्र को कभी न पूरी हो सकने वाली आशाओं और स्वप्नों से सजा-सँवारकर चमक-दमक प्रदान की जाती है और उसे आदर्श बना दिया जाता है।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 24 : गीता ने कहा, "मैं समझती हूँ कि मानवता को अनुभव करने का सबसे अधिक सन्तोषप्रद तथा श्रेष्ठतम मार्ग लोगों के बीच विश्वास तथा प्रेम के सम्बन्ध का माध्यम है। इस प्रकार के सम्बन्ध से ऐसा अनुभव प्राप्त होता है जो लगभग आध्यात्मिक होता है, जिसके बिना मनुष्य विनाशकारी तथा उदास बन जाता है।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 7 : माया ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा, "मैं समझती हूँ कि यह सम्भव भी है और सामाजिक दृष्टि से वांछनीय भी कि एक स्त्री एक ही समय में एक से अधिक पुरुषों से और एक पुरुष एक से अधिक स्त्री से प्रेम करे। विवाह से किसी व्यक्ति की दूसरों के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करने की क्षमता समाप्त तथा अवरुद्ध नहीं हो जानी चाहिए।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 39 : आरती ने आग्रहपूर्वक कहा, "मैं समझती हूँ कि प्रेम का आधार सराहना है और कम से कम मैं तो केवल उसी व्यक्ति से प्रेम कर सकती हूँ जिसे मैं उसके हृदय तथा मस्तिष्क के गुणों के कारण सराह सकूँ।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 45 : शालिनी ने विचारमग्न होकर कहा, "यद्यपि मैं यह तो नहीं कहती कि प्रेम नैसर्गिक अथवा प्लेटोनिक या निष्काम होता है, लेकिन इसके साथ ही मेरा यह दृढ़ विश्वास भी है कि यदि दो विषमलिंगी व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों में सेक्स के तत्त्वों का प्रवेश हो जाये तो वैवाहिक बन्धन के बिना प्रेम को गहन तथा उदात्त रूप में अनुभव करते रहना सम्भव ही नहीं है। वास्तव में मेरा तो मत यह है कि प्रेम चिरस्थायी तथा आदरपूर्ण तभी रह सकता है, जिसमें दोनों में दूसरे को सुखी बनाने के लिए सब कुछ करने की इच्छा हो, जब दोनों एक-दूसरे के साथ काफी समय बिताने के बावजूद अपने पारस्परिक सम्बन्धों में सेक्स का प्रवेश न होने दें। सेक्स के तत्त्व का प्रवेश होने से पारस्परिक सम्मान तथा सराहना दूषित हो जाती है और साथ ही प्रेम का वह उदात्त रोमांटिक प्रभाव भी दूषित हो जाता है जिसका अपना अलग ही एक अनोखा आकर्षण होता है। मैं तो चाहती हूँ कि मैं किसी अन्य पुरुष के साथ गहरा पारस्परिक प्रेम का अनुभव कर सकती जिसमें उस समय तक सेक्स के तत्त्व का प्रवेश होता ही नहीं जब तक कि हमारा विवाह न हो जाता, यदि कभी भी हमारा विवाह होता। विवाह के बाद भी दूसरे पुरुष के साथ प्रेम हो सकता है, परन्तु उसके साथ शारीरिक घनिष्ठता स्थापित हुए बिना। लेकिन मैं ठीक से नहीं बता सकती कि इस प्रकार का सम्बन्ध वास्तविक है या केवल स्वप्न।"

प्रेम के बारे में अपनी संकल्पना व्यक्त करते हुए उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि प्रेम एक अनवरत भावना है जो बहुत गहरी तथा समय के बन्धन से मुक्त है। प्रेम में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि जिस व्यक्ति से आप प्रेम करें वह आपके साथ बिल्कुल एकाकार हो जाये और इस रूप में उसका सुख भी आपके लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण, शायद उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाये जितना कि आपका अपना सुख है और आप उसे सदा सुखी रखने की इच्छा करने लगें और उसके लिए पूरी कोशिश करें। और जिस व्यक्ति से आप प्रेम करें उसी के सुख में आपको भी सुख तथा सन्तोष मिले।"

अभिमत

इन व्यक्ति-अध्ययनों को पढ़ने पर, और विशेष रूप से जिन शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन किया गया उनसे पूछे गये प्रश्नों पर उनके प्रत्युत्तरों का अध्ययन करने पर, कुछ अभिवृत्तियाँ बार-बार सामने आती हैं और प्रेम के प्रति इन स्त्रियों की इन्हीं बार-बार सामने आनेवाली अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तन की यहाँ विवेचना की गयी है।

प्रेम की संकल्पना

'माता-पिता तथा सन्तान के प्रेम' की संकल्पना में तो प्रायः कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है, लेकिन यह देखा गया है कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में पुरुष-स्त्री की संकल्पना बदल गयी है। जिन दो विभिन्न समयों पर उनके विचारों का पता लगाया गया उन दोनों ही समयों पर उन्होंने यही मत व्यक्त किया कि सन्तान के प्रति माता-पिता का प्रेम एक उदात्त तथा कोमल भावना है जो त्यागपूर्ण, निःस्वार्थ तथा अच्छी है। वे यह भी अनुभव करती थीं कि हर व्यक्ति के लिए माता-पिता का प्रेम नितान्त आवश्यक है और किसी भी व्यक्ति को स्वस्थ, प्रेममय तथा सहिष्णु बनाने तथा बनाये रखने के लिए इसका बहुत महत्त्व है। उनका यह भी विश्वास था कि अपनी सन्तान के लिए माता-पिता का निःस्वार्थ बल्कि एकतरफ़ा लगाव तथा प्रेम ही सबसे पहले उसे आत्म-विश्वास प्रदान करता है और संवेगात्मक दृष्टि से उसमें सुरक्षा तथा संरक्षण का आभास उत्पन्न करता है। वह उसे संसार का सामना करने की शक्ति देता है और उसमें किसी का होकर रहने की भावना और साथ ही एक आत्म-बिम्ब उत्पन्न करता है। यद्यपि दोनों ही समयों पर शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में माता-पिता के प्रेम के प्रति उपर्युक्त अभिवृत्ति पायी गयी, परन्तु दस वर्ष पहले वे अपने माता-पिता के प्रति उससे अधिक सहिष्णु थीं, उनसे उनको उससे अधिक गहरा लगाव था और उन्हें उनकी भावनाओं तथा भावों की उससे अधिक चिन्ता थी, जितनी कि दस वर्ष बाद पायी गयी। स्त्रियों के जिस समूह का अध्ययन दस वर्ष बाद किया गया उनमें त्याग, चिन्ता तथा माता-पिता के सुख तथा आराम के लिए कुछ करने की अभिवृत्ति पहले की अपेक्षा कहीं कम थी। इस प्रकार सन्तान के मन में माता-पिता के लिए चिन्ता तथा प्रेम में तो परिवर्तन आ गया था जबकि सन्तान के प्रति माता-पिता का प्रेम लगभग पूर्ववत बना हुआ था।

दस वर्ष की अवधि बीत जाने पर पुरुष तथा स्त्री के बीच प्रेम के प्रति उनकी अभिवृत्ति में बहुत परिवर्तन पाया गया। पहले यह देखा गया था कि यह अभिवृत्ति इस बात पर केन्द्रित थी और उसकी मान्यता यह थी कि प्रेम मानव का सबसे उदात्त संवेग है जिसके बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है और जिसमें प्रेम को एक ऐसी शक्ति या बल माना जाता था जो उसे अनुभव करनेवाले व्यक्ति को प्रेम के लिए या प्रेम के पात्र की खातिर हर त्याग करने के लिए तत्पर कर देता था। प्रेम का अर्थ समझा जाता था कुछ देना, कुछ त्याग करना और जिसमें निजी लाभ अथवा हित का कोई विशिष्ट स्वार्थपूर्ण उद्देश्य न हो। प्रेम को हर प्रतिबन्ध से मुक्त एक ऐसी निष्ठा या लगन माना जाता था जो सर्वथा स्वार्थहीन होती थी और जिसमें प्रेम के बदले कुछ माँगे बिना प्रेम करने के आनन्द की खातिर सब कुछ त्याग देने की भावना रहती थी। दस वर्ष बाद यह देखा गया कि यह अभिवृत्ति प्रेम को एक ऐसा अनुभव या भावना मानने की हो गयी थी जो एक आदान-प्रदान का सौदा है, जिसमें प्रेम, सहिष्णुता, ध्यान तथा सुख प्रेम के बदले में ही दिया जाता है। उसकी कल्पना अब सब कुछ त्याग कर

देनेवाली या निःस्वार्थ नहीं रह गयी थी वल्कि उसे अव एक ऐसा लगाव माना जाने लगा था जो लगभग पूर्णतः निजी लाभ तथा सन्तोष और स्वयं अपनी सुविधा के लिए विकसित किया जाता था और उसका अस्तित्व तभी तक रहता था जव तक वह कोई लाभ देता रहे।

इस विश्वास में भी परिवर्तन पाया गया है कि प्रेम एक स्वतःस्फूर्त तथा अनैच्छिक संवेग है जो दूसरे व्यक्ति के लिए केवल प्रेम की ख़ातिर, केवल प्रेम के उल्लास तथा सन्तोष की ख़ातिर प्रेम-पात्र को अच्छी तरह जाने विना भी अनुभव किया जाता है। दस वर्ष वाद अभिवृत्ति यह विश्वास करने की थी कि प्रेम कोई लक्ष्यहीन संवेग नहीं है वल्कि वह किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा प्रयोजन को लक्ष्य मानकर विकसित किया जाता है। अर्थात् परिवर्तन यह हुआ है कि जहाँ पहले देखते ही प्रेम हो जाने या हृदय के आदेश के अनुसार प्रेम करने पर विश्वास किया जाता था वहाँ अव अन्धे प्रेम अथवा देखते ही प्रेम हो जाने पर विल्कुल भी विश्वास नहीं रह गया और उसे एक तर्क-संगत, भलीभाँति सोचा-समझा हुआ स्वैच्छिक संवेग माना जाने लगा जिसमें आदेश मस्तिष्क देता है। अव अधिक श्रमजीवी स्त्रियाँ यह विश्वास रखती हैं कि प्रेम को सफल तथा परिपक्व होने के लिए भावुक तथा रोमांटिक न होकर तर्कसंगत और व्यवहारमूलक होना चाहिए। दस वर्ष वाद पहले की तुलना में वहुत कम स्त्रियाँ ऐसी पायी गयीं जो रोमांटिक प्रेम में विश्वास रखती हैं। उनका विश्वास अव यह है कि परिपक्व प्रेम तर्कसंगत होता है और वह मोह, रोमांटिक भावों अथवा कल्पना पर न आधारित होकर प्रतिदिन के जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित होता है।

उत्तरदाताओं के उत्तरों तथा कथनों के विश्लेषण से यह वात भी स्पष्ट है कि प्रेम के प्रति उनकी अभिवृत्ति में पहला परिवर्तन तो यह हुआ कि वे अव यह नहीं समझतीं कि प्रेम केवल वही है जो कुछ हम अनुभव करते हैं वल्कि वह यह भी है जो कुछ हम करते हैं, और दूसरे यह कि वे यह नहीं मानतीं कि प्रेम का अर्थ केवल दूसरे को कुछ देना, या त्याग करना है, वल्कि वे उसे अपनी निजी आवश्यकताओं की स्वार्थ-पूर्ण पूर्ति का एक साधन अधिक मानती हैं, जो हद से हद एक आदान-प्रदान का मामला होता है। प्रेम के प्रति उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन इस रूप में भी हुआ है कि पहले जहाँ प्रेम को एक ऐसा घनिष्ठ और नाजुक सम्वन्ध समझा जाता था जिसे वही-खाते की मदों की तरह नहीं वरता जा सकता, वहाँ अव उसे अव एक प्रकार की विनिमय प्रणाली माना जाने लगा जिसमें जो कुछ दिया जाये उसके वदले में कुछ पाना सुनिश्चित रहे। अव उनमें से अधिकतर किसी व्यक्ति से उसी स्थिति में प्रेम करने को तैयार होती हैं जव इसके वदले में उन्हें कुछ मिल सके, जैसे संवेगात्मक सुरक्षा, आर्थिक [illegible] एक सुरक्षित भविष्य और प्रेम।

अपना प्रेम देकर और दूसरे का प्रेम पाकर उन्हें किस हद [illegible] है, इसमें भी किसी को अपना प्रेम देकर अधिक सन्तोष प्राप्त [illegible] प्रेम पाने में वरावर सन्तोष प्राप्त करने की अपेक्षा अव किसी को [illegible]

प्रेम की संकल्पना

'माता-पिता तथा सन्तान के प्रेम' की संकल्पना में तो प्रायः कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है, लेकिन यह देखा गया है कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में पुरुष-स्त्री की संकल्पना बदल गयी है। जिन दो विभिन्न समयों पर उनके विचारों का पता लगाया गया उन दोनों ही समयों पर उन्होंने यही मत व्यक्त किया कि सन्तान के प्रति माता-पिता का प्रेम एक उदात्त तथा कोमल भावना है जो त्यागपूर्ण, निःस्वार्थ तथा अच्छी है। वे यह भी अनुभव करती थीं कि हर व्यक्ति के लिए माता-पिता का प्रेम नितान्त आवश्यक है और किसी भी व्यक्ति को स्वस्थ, प्रेममय तथा सहिष्णु बनाने तथा बनाये रखने के लिए इसका बहुत महत्त्व है। उनका यह भी विश्वास था कि अपनी सन्तान के लिए माता-पिता का निःस्वार्थ बल्कि एकतरफ़ा लगाव तथा प्रेम ही सबसे पहले उसे आत्म-विश्वास प्रदान करता है और संवेगात्मक दृष्टि से उसमें सुरक्षा तथा संरक्षण का आभास उत्पन्न करता है। वह उसे संसार का सामना करने की शक्ति देता है और उसमें किसी का होकर रहने की भावना और साथ ही एक आत्म-बिम्ब उत्पन्न करता है। यद्यपि दोनों ही समयों पर शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में माता-पिता के प्रेम के प्रति उपर्युक्त अभिवृत्ति पायी गयी, परन्तु दस वर्ष पहले वे अपने माता-पिता के प्रति उससे अधिक सहिष्णु थीं, उनसे उनको उससे अधिक गहरा लगाव था और उन्हें उनकी भावनाओं तथा भावों की उससे अधिक चिन्ता थी, जितनी कि दस वर्ष बाद पायी गयी। स्त्रियों के जिन समूह का अध्ययन दस वर्ष बाद किया गया उनमें त्याग, चिन्ता तथा माता-पिता के सुख तथा आराम के लिए कुछ करने की अभिवृत्ति पहले की अपेक्षा कहीं कम थी। इस प्रकार सन्तान के मन में माता-पिता के लिए चिन्ता तथा प्रेम में तो परिवर्तन आ गया था जबकि सन्तान के प्रति माता-पिता का प्रेम लगभग पूर्ववत बना हुआ था।

दस वर्ष की अवधि बीत जाने पर पुरुष तथा स्त्री के बीच प्रेम के प्रति उनकी अभिवृत्ति में बहुत परिवर्तन पाया गया। पहले यह देखा गया था कि यह अभिवृत्ति इस बात पर केन्द्रित थी और उसकी मान्यता यह थी कि प्रेम मानव का सबसे उदात्त संवेग है जिसके बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है और जिसमें प्रेम को एक ऐसी शक्ति या बल माना जाता था जो उसे अनुभव करनेवाले व्यक्ति को प्रेम के लिए या प्रेम के पात्र की खातिर हर त्याग करने के लिए तत्पर कर देता था। प्रेम का अर्थ समझा जाता था कुछ देना, कुछ त्याग करना और जिसमें निजी लाभ अथवा हित का कोई विशिष्ट स्वार्थपूर्ण उद्देश्य न हो। प्रेम को हर प्रतिबन्ध से मुक्त एक ऐसी निष्ठा या लगन माना जाता था जो सर्वथा स्वार्थहीन होती थी और जिसमें प्रेम के बदले कुछ माँगे बिना प्रेम करने के आनन्द की खातिर सब कुछ त्याग देने की भावना रहती थी। दस वर्ष बाद यह देखा गया कि यह अभिवृत्ति प्रेम को एक ऐसा अनुभव या भावना मानने की हो गयी थी जो एक आदान-प्रदान का सौदा है, जिसमें प्रेम, सहिष्णुता, ध्यान तथा सुख प्रेम के बदले में ही दिया जाता है। उसकी कल्पना अब सब कुछ त्याग कर

देनेवाली या निःस्वार्थ नहीं रह गयी थी बल्कि उसे अब एक ऐसा लगाव माना जाने लगा था जो लगभग पूर्णतः निजी लाभ तथा सन्तोष और स्वयं अपनी सुविधा के लिए विकसित किया जाता था और उसका अस्तित्व तभी तक रहता था जब तक वह कोई लाभ देता रहे।

इस विश्वास में भी परिवर्तन पाया गया है कि प्रेम एक स्वतःस्फूर्त तथा अनैच्छिक संवेग है जो दूसरे व्यक्ति के लिए केवल प्रेम की खातिर, केवल प्रेम के उल्लास तथा सन्तोष की खातिर प्रेम-पात्र को अच्छी तरह जाने बिना भी अनुभव किया जाता है। दस वर्ष बाद अभिवृत्ति यह विश्वास करने की थी कि प्रेम कोई लक्ष्यहीन संवेग नहीं है बल्कि वह किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा प्रयोजन को लक्ष्य मानकर विकसित किया जाता है। अर्थात् परिवर्तन यह हुआ है कि जहाँ पहले देखते ही प्रेम हो जाने या हृदय के आदेश के अनुसार प्रेम करने पर विश्वास किया जाता था वहाँ अब अन्धे प्रेम अथवा देखते ही प्रेम हो जाने पर बिल्कुल भी विश्वास नहीं रह गया और उसे एक तर्क-संगत, भलीभाँति सोचा-समझा हुआ स्वैच्छिक संवेग माना जाने लगा जिसमें आदेश मस्तिष्क देता है। अब अधिक श्रमजीवी स्त्रियाँ यह विश्वास रखती हैं कि प्रेम को सफल तथा परिपक्व होने के लिए भावुक तथा रोमांटिक न होकर तर्कसंगत और व्यवहारमूलक होना चाहिए। दस वर्ष बाद पहले की तुलना में बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी पायी गयीं जो रोमांटिक प्रेम में विश्वास रखती हैं। उनका विश्वास अब यह है कि परिपक्व प्रेम तर्कसंगत होता है और वह मोह, रोमांटिक भावों अथवा कल्पना पर न आधारित होकर प्रतिदिन के जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित होता है।

उत्तरदाताओं के उत्तरों तथा कथनों के विश्लेषण से यह बात भी स्पष्ट है कि प्रेम के प्रति उनकी अभिवृत्ति में पहला परिवर्तन तो यह हुआ कि वे अब यह नहीं समझतीं कि प्रेम केवल वही है जो कुछ हम अनुभव करते हैं बल्कि वह यह भी है जो कुछ हम करते हैं, और दूसरे यह कि वे यह नहीं मानतीं कि प्रेम का अर्थ केवल दूसरे को कुछ देना, या त्याग करना है, बल्कि वे उसे अपनी निजी आवश्यकताओं की स्वार्थपूर्ण पूर्ति का एक साधन अधिक मानती हैं, जो हद से हद एक आदान-प्रदान का मामला होता है। प्रेम के प्रति उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन इस रूप में भी हुआ है कि पहले जहाँ प्रेम को एक ऐसा घनिष्ठ और नाजुक सम्बन्ध समझा जाता था जिसे बही-खाते की मदों की तरह नहीं बरता जा सकता, वहाँ अब उसे अब एक प्रकार की विनिमय प्रणाली माना जाने लगा जिसमें जो कुछ दिया जाये उसके बदले में कुछ पाना सुनिश्चित रहे। अब उनमें से अधिकतर किसी व्यक्ति से उसी स्थिति में प्रेम करने को तैयार होती हैं जब इसके बदले में उन्हें कुछ मिल सके, जैसे संवेगात्मक सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा, एक सुरक्षित भविष्य और प्रेम।

अपना प्रेम देकर और दूसरे का प्रेम पाकर उन्हें किस हद तक सन्तोष मिलता है, इसमें भी किसी को अपना प्रेम देकर अधिक सन्तोष प्राप्त करने या प्रेम देने तथा प्रेम पाने में बराबर सन्तोष प्राप्त करने की अपेक्षा अब किसी को अपना प्रेम देने के

ाद अधिक सन्तोष, दूसरे का प्रेम प्राप्त करके अधिक सन्तोष पाने पर अधिक वल
या जाने लगा है। इस अभिवृत्ति का स्थान कि दूसरों के साथ सुख प्राप्त करने के
ए पहली बुनियादी शर्त है, कुछ पाने की अपेक्षा कुछ देने के लिए अधिक तत्पर रहना
सके कारण निःस्वार्थ हो जाना आवश्यक होता है (देखिये, चौधरी, पृष्ठ 89) यह
भिवृत्ति लेती जा रही है कि जीवन से सन्तोष प्राप्त करने के लिए कोई व्यक्ति
तना प्रेम दे उससे अधिक प्रेम प्राप्त करने की उसे कोशिश करनी चाहिए। शिक्षित
न्दू श्रमजीवी स्त्रियों का झुकाव किसी को अपना प्रेम देने की अपेक्षा दूसरों का स्नेह
या प्रेम प्राप्त करके अधिक सन्तोष प्राप्त करने की ओर होता जा रहा है, जबकि
ारत में परम्परागत हिन्दू स्त्री की अभिवृत्ति सदा से अपना स्नेह दूसरों को देने की
ोर शायद ही कभी उसे दूसरों से प्राप्त करने की आशा करने की रही है। स्त्रियों
इस गुण के सम्बन्ध में अभिमत व्यक्त करते हुए मेयेर ने लिखा है :

> सारी दुनिया की तरह प्राचीन भारत की स्त्री में भी पुरुष की अपेक्षा प्रेम का गुण कहीं अधिक पाया जाता है, अर्थात् प्रेम को उसके अधिक उदात्त अर्थ में समझना, क्योंकि जो भावना सारे अस्तित्व में व्याप्त हो वह सुदृढ़ तथा चिरस्थायी होती है, निरन्तर गहरी होती जाती है, और उसमें परार्थमूलक तत्त्वों का गहरा पुट होता है। (मेयेर, 1952, पृष्ठ 277-278)

त्री के जीवन में पुरुष के प्रेम का योगदान

इस बात के बारे में भी श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्ति में परिवर्तन पाया गया
ि स्त्री के जीवन में मनुष्य के प्रेम का क्या योगदान रहता है। दस वर्ष पहले ऐसी
त्रियों की संख्या अधिक थी जो यह विश्वास रखती थीं कि पुरुष का प्रेम स्त्री के लिए
बसे मूल्यवान वस्तु है और यदि वह उसे मिल जाता है तो वह उसके जीवन को
मृद्ध तथा परिपूर्ण बना देता है। उनके लिए उसका अर्थ था एक ऐसा कोमल संवेग
ो स्त्री के जीवन में कोमलता भर देता है और उसके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण तथा
ाधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करता है और जो उसके लिए लगभग सब कुछ
ता है। यदि वह सच्चा और हार्दिक होता था तो वही उसका सारा जीवन और
स्तित्व होता था। अन्यथा वह उसके जीवन में निराशा तथा असन्तोष का स्रोत बन
ाता था। परन्तु सामान्यत. यह समझा जाता था कि पुरुष का प्रेम बहुधा निष्कपट
था सच्चा ही होता है।

इस अध्ययन के आधार पर हम देखते हैं कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में उनकी
भिवृत्तियों में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है कि पुरुष का सच्चा अथवा अहार्दिक
न स्त्री के जीवन में मुख्यतः सन्तोष लाता है अथवा असन्तोष। दोनों ही समूहों में
शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों का—जिस समूह का पहले अध्ययन किया गया था उसमें से
। प्रतिशत स्त्रियों का और जिनका बाद में अध्ययन किया गया उसमें से 65 प्रति-

शत स्त्रियों का—यह विश्वास था कि यदि पुरुष का प्रेम हार्दिक तथा सच्चा हो तो वह स्त्री के जीवन में मुख्यतः सन्तोष का योगदान करता है, जबकि यदि वह हार्दिक न हो तो वह उसके जीवन में मुख्यतः असन्तोष तथा निराशा का ही योगदान करता है। परन्तु निश्चित रूप से इस बात में परिवर्तन देखा गया कि बादवाले समूह में ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात अधिक था (59 प्रतिशत) जो यह समझती थीं कि पुरुष का प्रेम अधिकांश उदाहरणों में हार्दिक नहीं होता, जबकि पहलेवाले समूह में ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात कम (39 प्रतिशत) था।

और सबसे बढ़कर तो यह परिवर्तन देखा गया कि बादवाले समूह की अपेक्षा पहलेवाले समूह में ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बहुत अधिक था जो पुरुष के प्रेम के बारे में यह समझती थीं कि वह स्त्री के जीवन में [illegible] सन्तुष्टि और उसके उल्लास तथा आनन्द में योगदान करता है, जबकि बादवाले समूह की स्त्रियों में इस विश्वास की प्रधानता अधिक प्रचलित पायी गयी कि पुरुष का प्रेम स्त्री के जीवन की व्यावहारिक तथा भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने में योग देता है। परन्तु दोनों ही समूहों में ऐसी स्त्रियों की संख्या केवल 10 से 25 प्रतिशत तक ही थी जिन्होंने यह बताया कि पुरुष के प्रेम से स्त्री के जीवन को केवल असन्तोष मिलता है या यह कि उसका कोई खास योगदान नहीं होता। और दोनों ही समूहों में यह प्रतिशत-अनुपात उच्चतर आयु-वर्ग की स्त्रियों में बढ़ता जाता था। इस अध्ययन के आधार पर हम देखते हैं कि युवा हिन्दू शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ पुरुष के प्रेम को स्त्री के जीवन के लिए अब भी मूल्यवान समझती हैं, यद्यपि ऐसा करने के लिए उनके कारण तथा अभिप्रेरण काफ़ी बदल गये हैं।

शारीरिक प्रेम की भूमिका

पहले श्रमजीवी स्त्रियों का मत यह था कि स्त्री के जीवन में [illegible] प्रेम की कोई बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती और यह कि एक स्त्री के लिए वह प्रेम अधिक महत्त्वपूर्ण होता है जो शारीरिक प्रेम से परे होता है और यह कि [illegible] प्रेम के बिना केवल शारीरिक प्रेम से उसे तनिक भी सन्तोष नहीं मिलता [illegible] कि पूरे प्रेम-सम्बन्ध के एक भाग के रूप में ही वह महत्त्वपूर्ण बन सकता है। [illegible] इसमें परिवर्तन होकर उनका मत यह हो गया है कि वह पुरुष तथा स्त्री [illegible] प्रेम का बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है और यह कि एक स्त्री के जीवन में [illegible] महत्त्वपूर्ण होती है। पहले स्त्रियों के जिस समूह का अध्ययन किया [illegible] विपरीत बादवाले समूह में ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बहुत [illegible] समझती थीं कि शारीरिक प्रेम कोई गन्दी या ऐसी चीज़ नहीं है [illegible] इसके बजाय उसे स्त्री की शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के [illegible] जाता है और विशेष रूप से पति-पत्नी-सम्बन्ध का [illegible]

पहला मत, जिसके अनुसार शारीरिक प्रेम को स्त्री के जीवन का एक महत्त्वहीन भाग माना जाता था, पहलेवाले समूह की 59 प्रतिशत स्त्रियों में और बादवाले समूह की 31 प्रतिशत स्त्रियों में पाया गया। दूसरा मत, जिसके अनुसार शारीरिक प्रेम को स्त्री के जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था, पहले समूह की 35 प्रतिशत स्त्रियों की तुलना में बादवाले समूह की 65 प्रतिशत स्त्रियों ने व्यक्त किया। लेकिन दोनों ही समूहों में ऐसा कहनेवाली स्त्रियों का सबसे अधिक प्रतिशत-अनुपात 29 से 40 वर्ष तक के आयु-वर्ग में और सबसे कम प्रतिशत 20-24 वर्ष तक के आयु-वर्ग में था। इससे पता चलता है कि जब स्त्री बहुत अल्पवयस्क होती है तो उसमें कल्पनाओं की दुनिया में रहने और यह विश्वास करने की प्रवृत्ति पायी जाती है कि शारीरिक प्रेम की स्त्री के जीवन में कोई बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती। जब वह संवेगात्मक दृष्टि से प्रौढ़ हो जाती है। और स्त्री के जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं को समझने लगती है तब जाकर वह यह अनुभव करना आरम्भ करती है कि स्त्री के जीवन में उसकी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रेम सेक्स-सहित या सेक्स-रहित

सेक्स-सहित अथवा सेक्स-रहित प्रेम का अनुमोदन करने अथवा उसे अवांछनीय समझने के सम्बन्ध में भी उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन हुआ है। पहले वे अविवाहित जीवन में सेक्स-रहित प्रेम का और विवाह के बाद अपने पति के साथ प्रेम और सेक्स-सम्बन्ध का दृढ़तापूर्वक अनुमोदन करती थीं और यदि माता-पिता ने उनका विवाह तय करा दिया हो तो सेक्स-सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद भी प्रेम का अनुमोदन करती थीं, परन्तु वे बिना प्रेम के सेक्स-सम्बन्धों को या विवाह से पहले प्रेम होने पर भी सेक्स-सम्बन्धों का दृढ़तापूर्वक विरोध करती थीं और विवाह के बाद पति के साथ भी बिना प्रेम के सेक्स-सम्बन्ध को बहुत पसन्द नहीं करती थीं। यद्यपि 'सेक्स-रहित प्रेम' का और 'सेक्स-सहित प्रेम' का भी अनुमोदन करने की प्रवृत्ति पायी जाती थी, परन्तु 'प्रेम-रहित सेक्स' को बहुत नापसन्द किया जाता था, उस स्थिति को छोड़कर जब विवाह दूसरों ने तय करा दिया हो और पति के साथ इस प्रकार का सेक्स-सम्बन्ध स्थापित किया जाये। दस वर्ष बाद यह देखा गया कि यद्यपि यह ऊपर वाली प्रवृत्ति तो बनी रही, पर इसके साथ ही उनकी अभिवृत्ति में एक नयी प्रवृत्ति भी विकसित हुई और वह थी चारों ही प्रकार के प्रेम का अनुमोदन करने की अभिवृत्ति—सेक्स-रहित प्रेम, सेक्स-सहित प्रेम, प्रेम-रहित सेक्स, और प्रेम-सहित सेक्स—जिसका निर्णय इस आधार पर किया जाता था कि स्थिति क्या है और वह विशिष्ट लक्ष्य अथवा उद्देश्य क्या है जिसकी तुष्टि हो रही है या जिसे प्राप्त किया जा रहा है। यह प्रवृत्ति मुख्यतः इसलिए उभरी कि कुल मिलाकर अधिक स्त्रियां ऐसे प्रेम का अनुमोदन नहीं करती थीं जिसका कोई विशिष्ट प्रयोजन अथवा उद्देश्य न हो।

प्लेटोनिक अथवा निष्काम प्रेम—सेक्स-रहित प्रेम

दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया था जो प्लेटोनिक अथवा निष्काम प्रेम, अर्थात् सेक्स-रहित प्रेम या दो विपर्मलिंगी व्यक्तियों के बीच किसी भी प्रकार की शारीरिक घनिष्ठता के बिना प्रेम के अस्तित्व में विश्वास रखती थीं, जबकि ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बढ़ गया था जो प्लेटोनिक अथवा निष्काम प्रेम के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखती थीं। यह देखा गया कि पचपन प्रतिशत स्त्रियों का विश्वास यह था कि यद्यपि स्त्री और पुरुष के बीच प्लेटोनिक सम्बन्ध हो सकता है, अर्थात् सेक्स-सम्बन्ध स्थापित किये बिना दो व्यक्तियों के बीच प्रेम हो तो सकता है, परन्तु वह केवल हवा पर पनप नहीं सकता, और यह कि कोई भी प्रेम-सम्बन्ध दोनों पक्षों के लिए एक महत्त्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण अनुभव हो, इसके लिए शारीरिक उपस्थिति अथवा निकटता और प्रेम की किंचित् शारीरिक अभिव्यक्ति भी आवश्यक है। उनका विश्वास था कि किसी भी प्रकार की शारीरिक घनिष्ठता के बिना प्रेम सम्भव ही नहीं है परन्तु सेक्स-सम्बन्ध स्थापित किये बिना भी उसका अस्तित्व निश्चित रूप से सम्भव है यदि इस प्रकार के सम्बन्ध से जुड़े हुए लोगों के निश्चित सिद्धान्त हों या यदि उन्होंने विवाह करने की योजना बना रखी हो और विवाह हो जाने तक सेक्स-सम्बन्धों की स्थापना को स्थगित कर रखा हो।

इंग्लैंड में युवकों तथा युवतियों के एक अध्ययन में 57 प्रतिशत स्त्रियों ने बताया कि उनका विश्वास था कि प्लेटोनिक अर्थात् निष्काम प्रेम होता है। परन्तु इनमें हर तीन में से एक रोमांटिक प्रेम में विश्वास नहीं रखती थीं और केवल 40 प्रतिशत रोमांटिक प्रेम में विश्वास रखती थीं (चार्टहम, 1970, पृष्ठ 100)। इस अध्ययन में लेखिका ने दस वर्ष बाद जिन युवा शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों से साक्षात्कार किया उनमें ऐसी स्त्रियाँ भी पायी गयीं जो प्लेटोनिक अर्थात् निष्काम प्रेम में बिल्कुल भी विश्वास नहीं रखती थीं और उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि स्त्री और पुरुष के प्रेम में यदि उनका सम्पर्क बार-बार होता है और दीर्घकाल तक चलता है तो उनके बीच शारीरिक घनिष्ठता या कुछ हद तक सेक्स भी होना अनिवार्य है। ऐसी स्त्रियों का तर्क यह था कि प्रेम चूंकि एक साकार पुरुष तथा साकार स्त्री के बीच होता है और चूंकि प्रेम [illegible] काल्पनिक व्यक्ति न होकर वास्तविक होता है, अथवा उसका अस्तित्व [illegible] नहीं होता, इसलिए प्रेम-सम्बन्ध भी वास्तविक तथा पार्थिव ही [illegible]

एक साथ एक से अधिक व्यक्ति से प्रेम

किसी स्त्री की एक साथ एक से अधिक व्यक्ति [illegible] सम्भावना से सम्बन्धित अभिवृत्ति के बारे में बहुत छटपटा अनुभव [illegible] स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात उस समूह में अधिक था जिसका [illegible] किया गया था। जिस समूह का अध्ययन पहले किया गया था [illegible] की राय में यह बहुत छटपटा सवाल था परन्तु अपने प्रारम्भिक संकोच [illegible] की भावना पर काबू

पा लेने के बाद उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि यदि प्रेम शारीरिक न हो तो वह निश्चित रूप से एक साथ कई पुरुषों के साथ किया जा सकता है, लेकिन शारीरिक प्रेम, जिसमें शारीरिक संसर्ग प्रेम-सम्बन्ध का एक विभिन्न अंग हो, एक ही समय में एक से अधिक पुरुष से नहीं किया जा सकता। उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि हार्दिक तथा सच्चे प्रेम में इतना समय, विचार, शक्ति तथा ध्यान देना पड़ता है कि किसी भी स्त्री के लिए एक से अधिक पुरुषों के साथ हार्दिक प्रेम करना संभव ही नहीं है।

दस वर्ष बाद यह अभिवृत्ति तो बनी रही पर उसमें एक नया परिवर्तन आ गया। पहला यह कि अब ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात कम रह गया था जो यह प्रश्न पूछे जाने पर छटपटा या बेतुका अनुभव करती थीं। दूसरे, ऐसी स्त्रियों की संख्या बढ़ गयी थी जिनका विश्वास था कि विविध प्रकार तथा स्वरूप की तुष्टियों के लिए, एक स्त्री के लिए एक ही समय में एक से अधिक पुरुष से प्रेम करना सम्भव है। इस तरह की स्त्रियों ने, जैसे पमिला ने कहा कि कोई स्त्री बौद्धिक उद्दीपन तथा विचारों के आदान-प्रदान के लिए किसी प्रबुद्ध व्यक्ति से प्रेम कर सकती है, जबकि अपने सौन्दर्य-भाव की अथवा किसी भिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए वह किसी संगीत-कार अथवा कलाकार से प्रेम कर सकती है और इसके साथ ही संवेगात्मक तथा वित्तीय सुरक्षा के लिए और शारीरिक सन्तुष्टि तथा साहचर्य-भाव की सन्तुष्टि के लिए वह अपने पति के प्रति भी बहुत गहरा प्रेम रख सकती है। या जैसा कि वासना ने अपने व्यवहार तथा अपनी बातों से व्यक्त किया है, कोई लड़की अन्त में उनमें से अपना एक जीवन-साथी चुनने के विशिष्ट प्रयोजन से एक ही साथ दो-तीन पुरुषों के प्रति प्रेम-भाव रख सकती है। इस प्रकार नयी प्रवृत्ति यह है कि वे यह अनुभव करती हैं कि किसी विशिष्ट प्रयो-जन से या विभिन्न और विविध प्रकार की बौद्धिक अथवा अन्य तुष्टियों के लिए एक स्त्री एक साथ एक से अधिक पुरुष से प्रेम कर सकती है।

स्वच्छन्द प्रेम तथा प्रेम की निरवरोध अभिव्यक्ति

युवा शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियाँ 'स्वच्छन्द प्रेम' और 'प्रेम की निरवरोध अभिव्यक्ति' जैसी संकल्पनाओं को दस वर्ष पहले अपने मुंह से व्यक्त नहीं करती थीं। इस समूह में इन संकल्पनाओं का समावेश दस वर्ष बाद जाकर हुआ यद्यपि वे उन्हीं गिनी-चुनी स्त्रियों के बीच लोकप्रिय थीं जो अपने को प्रगतिशील समझती थीं और आधुनिक तथा उन्नत परिवारों से सम्बन्ध रखती थीं और जिनका पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य संस्कृति के वातावरण में हुई थी और उन पर इस संस्कृति का गहरा प्रभाव था। 'स्वच्छन्द प्रेम' से इस प्रकार की स्त्रियों का अभिप्राय था एक स्त्री और एक पुरुष के बीच ऐसा प्रेम जो दायित्वों या कर्तव्यों के बन्धनों में जकड़ा हुआ न हो और यह कि जीवन में सन्तोष प्राप्त करने के लिए प्रेम का स्वतःस्फूर्त तथा निर्बन्ध होना आवश्यक है और वह केवल उसी समय तक रहता है जब उसमें लिप्त दोनों व्यक्ति उससे सन्तोष प्राप्त करते हैं और किसी भी प्रकार के सामाजिक निषेधों अथवा प्रति-

न्धों के बिना उस सम्बन्ध को बनाये रखना चाहते हैं। उनके विचार के अनुसार ज्यों ही कोई व्यक्ति यह सोचने लगता है कि प्रेम करना उसका कर्त्तव्य है, प्रेम का अस्तित्व घट जाता है और किसी को प्रेम करने पर विवश नहीं किया जा सकता।

उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि सन्तोषप्रद प्रेम-सम्बन्ध के लिए "प्रेम की निरवरोध अभिव्यक्ति" आवश्यक है। उनका विश्वास था कि किसी से प्रेम करने और देना किसी संकोच के उसे व्यक्त करने से किसी व्यक्ति में जितनी गहराई और परिपक्वता आती है उतनी किसी और अनुभव से नहीं आ सकती, और यह स्वच्छन्द प्रेम तथा उन्मुक्त परिवेश में ही सम्भव है। वे यह अनुभव करती थीं कि प्रेम की अभिव्यक्ति निरवरोध होनी चाहिए और जो लोग एक-दूसरे से प्रेम करते हों उन्हें दूसरों की उपस्थिति में एक-दूसरे के निकट बैठने और स्वतःस्फूर्त ढंग से एक-दूसरे का आलिंगन तथा चुम्बन की स्वतन्त्रता अनुभव करना चाहिए। उनका विश्वास था कि यदि किसी पुरुष और स्त्री की भावनाएँ बहुत हार्दिक तथा स्नेहपूर्ण हैं तो उन्हें यह मक्कारी नहीं करनी चाहिए कि दूसरों की उपस्थिति में तो एक-दूसरे से कई हाथ की दूरी पर बैठें और अकेले में एक-दूसरे का चुम्बन और आलिंगन करें। उनका तर्क यह था कि स्नेह तथा प्रेम की भावनाएँ स्वतःस्फूर्त और सच्ची होती हैं और यदि सम्बन्धित व्यक्ति एक-दूसरे के हाथों या गालों पर प्यार करके या एक-दूसरे को गले लगाकर इस तरह की भावनाओं को थोड़ा-सा व्यक्त करना चाहें तो दूसरों की उपस्थिति में वे ऐसा क्यों न कर सकें। उनका विश्वास था कि यह अवरोध न रहने पर उन्हें एकान्त स्थानों में चोरी-छुपे मिलने और झूठ बोलकर या मक्कारी करके मन में अपराध की भावना पाले रखने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी, और यह कि प्रेम की निरवरोध अभिव्यक्ति के फलस्वरूप वे निष्कपट, निर्भीक तथा ईमानदार व्यक्ति बनेंगे। इन स्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया कि नौजवान लड़कों तथा लड़कियों के मन में जितना ही अधिक यह आभास उत्पन्न किया जायेगा कि दूसरों की उपस्थिति में उन्हें शारीरिक रूप से अत्यधिक संयत तथा एक-दूसरे से अलग रहना चाहिए, उतना ही अधिक वे दूसरों की उपस्थिति में एक-दूसरे के साथ रहने से कतरायेंगे और इस प्रकार वे अपने स्वजनों से दूर होते जायेंगे। यदि उन्हें दूसरों के सामने अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं करने दिया जायेगा, तो वे विवश होकर एक-दूसरे से मिलने के लिए एकान्त और गुप्त स्थान खोजेंगे और वहाँ इस तनाव तथा भय के वातावरण में कोई उन्हें देख न ले। वे सम्भवतः अपनी भावनाओं को अधिक अप्राकृतिक, स्वेच्छाचारी तथा अवांछनीय ढंगों से व्यक्त करेंगे। इसलिए विवाह से पहले भी और विवाह के बाद भी उन्हें हार्दिकता, दूसरे की चिन्ता तथा प्रेम की अपनी भावनाएँ व्यक्त करने में स्वतन्त्र तथा निष्कपट रहना चाहिए।

जीवन को सुखी बनाने में प्रेम की भूमिका

इस प्रश्न के उत्तर में कि "सुखी रहने के लिए तुम्हें जीवन में सबसे अधिक आवश्यकता किस चीज की है ?" दस वर्ष बाद केवल 21 प्रतिशत श्रमजीवी [illegible]

"प्रेम" को यह स्थान दिया, जबकि दस वर्ष पहले 39 प्रतिशत स्त्रियों ने उनके जीवन को सुखी बनाने के लिए आवश्यक उपकरणों में इसे सबसे महत्त्वपूर्ण बताया था। दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत अनुपात भी बहुत अधिक था जिन्होंने यह कहने के साथ ही कि उनके जीवन को सुखी बनाने के लिए जिस चीज़ की सबसे अधिक आवश्यकता है वह "प्रेम" है, यह भी कहा कि उन्हें सुखी रहने के लिए भौतिक सुख-सुविधाएँ चाहिएँ। जैसा कि हमने कंचन और वासना के उदाहरणों में देखा है, उनकी रोमांटिक संकल्पनाओं में भी प्रेम का विचार अकेले शायद ही कभी आता हो। आमतौर पर उसके साथ भौतिक सुख-सुविधा तथा वित्तीय सुरक्षा के प्रति लगाव जुड़ा रहता है। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच इस बदलती हुई प्रवृत्ति को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस समय यद्यपि वे प्रेम को उन्हें सुखी बनानेवाला एक "आवश्यक" कारक मानती हैं—फिर भी उनमें से 10 प्रतिशत से कुछ कम स्त्रियाँ ही सुखी रहने के लिए इसे एक "पर्याप्त" कारक मानती हैं। अर्थात् उनमें ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बहुत कम है जो यह समझती हों कि केवल "प्रेम के सहारे ही जीवन व्यतीत करके" वे सुखी हो सकती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई धारणाओं के अनुसार सुखी रहने के एक पर्याप्त आधार के रूप में प्रेम की भूमिका अब पहले की तुलना में बहुत कम रह गयी है, और अब उसे सुखी रहने के लिए आवश्यक कारकों में से केवल एक कारक माना जाता है, एकमात्र कारक नहीं।

जीवन-साथी चुनने में प्रेम की भूमिका

इस प्रश्न के साथ कि वे अपने जीवन को सुखी बनाने में प्रेम को कितना महत्त्व देती हैं, बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ यह प्रश्न भी है कि जीवन-साथी चुनने की कसौटी के रूप में वे किसी से प्रेम करने या किसी के पात्र होने को कितना महत्त्व देती हैं।

पहले भी जब भारत में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी, पति चुनने के बारे में उसकी अभिवृत्ति सर्वथा भिन्न थी। वह या तो किसी ऐसे आदमी को चुनती थी जो अपनी वीरता अथवा बुद्धिमत्ता सिद्ध कर सके, या किसी ऐसे को जो प्रतिष्ठित परिवार का हो और ख्यातिवान तथा चरित्रवान हो। लेकिन जैसा कि श्रमजीवी स्त्रियों के इन व्यक्ति-अध्ययनों को देखने से स्पष्ट है, अब स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ बदल गयी हैं। ये अभिवृत्तियाँ समय के साथ बदलती रही हैं। कुछ वर्ष पहले तक माता-पिता और उनकी बेटियाँ भी ऐसा आदमी चाहती थीं जिसके माँ-बाप पैसेवाले हों, चाहे वह स्वयं कुछ कमा सकता हो या न कमा सकता हो। उसके बाद एक प्रतिक्रिया हुई और भौतिक अभिवृत्ति बदलकर बिलकुल दूसरे छोर पर संवेगात्मक पक्ष में पहुँची, और तब विशेष रूप से शिक्षित श्रमजीवी लड़कियाँ उस आदमी को सबसे अधिक महत्त्व देने लगीं जिनसे उन्हें "प्रेम" होता था। लेकिन उनकी अभिवृत्तियाँ बदलती रही हैं। दस वर्ष पहले वे ऐसे आदमी को पसन्द करती थी जो "काफी वेतन पाता हो और स्नेहमय स्वभाव का

हो" या "अच्छी हैसियत का हो और सौन्दर्य-बोध रखता हो" या जो "बहुत पढ़ा-लिखा" हो, या "जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली हो" और वे जानबूझकर इस बात पर आग्रह-पूर्वक बहुत जोर देती थीं कि धन-दौलत को वे इतना अधिक महत्त्व नहीं देती हैं, हालांकि जब उनसे युक्तिपूर्वक बड़े प्यार से पूछा गया तो उनमें से अधिकांश ने ये स्वीकार किया कि वे ऐसा पति चाहती हैं जो "भौतिक सुख-सुविधाएँ" प्रदान कर सकने भर को काफी कमाता हो, और इस प्रकार वे उसकी "धनोपार्जन की क्षमता" और "पैसे" को भी ध्यान में रखती थीं। लेकिन दस वर्ष बाद उन्हें पूरी चेतना के साथ इस बात को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं हुआ कि वे अपने पति में सबसे अधिक यह बात चाहेंगी कि वह उच्च प्रतिष्ठावाले किसी अच्छे वेतनवाले पद पर हो और जहाँ तक उसके व्यवसाय अथवा व्यापार का सम्बन्ध है उसके भविष्य की संभावनाएँ उज्जवल हों। जिन स्त्रियों से दस वर्ष पहले साक्षात्कार किया गया उनकी तुलना में उन्होंने इस बात पर भी अधिक जोर दिया कि उसका "चरित्र अच्छा" हो और "व्यक्तित्व प्रभावशाली हो।"

अब जीवन-साथी चुनने में केवल किसी से प्रेम करना या किसी का प्रेम-पात्र होना एकमात्र महत्त्वपूर्ण आधार नहीं रह गये हैं, अब उसके लिए पर्याप्त पैसा और अच्छी सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यवसाय में सफलता अधिक महत्त्वपूर्ण कारक बन गये हैं। यद्यपि शिक्षित श्रमजीवी स्त्री इस बात को स्वीकार करती है कि अच्छे विवाह और निजी सन्तोष के लिए प्रेम बहुत आवश्यक है, परन्तु आज जीवन-साथी चुनने में प्रेम की भूमिका केवल गौण होती है। वह अपने भावी पति के चरित्र, शिक्षा, धनोपार्जन की क्षमता और सम्भावनाओं को अधिक महत्त्व देने लगी है। वह सुरक्षा और सुखद भविष्य के बारे में सोचती है और ऐसे जीवन-साथी के बजाय जिसके विचार उलझे हुए, मन उद्विग्न और दृष्टि भावुकता तथा रोमांटिक प्रेम से धूमिल हो ऐसा जीवन-साथी चुनती है जिसका स्वभाव शान्त तथा उद्वेग-रहित हो और जिसकी आँखें पूरी तरह खुली हों। आज वह ऐसा पति चाहती है जो उसकी "भौतिक" तथा "संवेगात्मक" दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। अब पहले की अपेक्षा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को अधिक प्रधानता प्राप्त है। अर्थात्, जीवन-साथी चुनने में रोमांटिक प्रेम—यह आधार कि जिस व्यक्ति को वह अपना जीवन-साथी चुने उससे वह प्रेम करती हो और वह भी उससे प्रेम करता हो—शिक्षित श्रमजीवी स्त्री के लिए अब उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है जितना दस वर्ष पहले था। केवल 11 प्रतिशत स्त्रियों ने इस बात पर जोर दिया कि जीवन-साथी चुनने की कसौटी यह है कि उस व्यक्ति से उन्हें प्रेम हो, जबकि दस वर्ष पहले ऐसी स्त्रियों की संख्या 35 प्रतिशत थी। अब केवल शारीरिक आकर्षण, सुन्दरता, रोमांस तथा मोह उनके प्रेम के विकसित होने तथा बने रहने का उतना अधिक आधार नहीं रह गया है जितना कि उस व्यक्ति के प्रति सम्मान का भाव जो अपनी श्रेष्ठतर शिक्षा, बुद्धि, प्रतिभा, धनोपार्जन की भावनाओं, क्षमताओं, चरित्र तथा व्यक्तित्व के कारण उनके मन में अपने प्रति सम्मान की भावना जागृत करता हो।

फ्रांसीसी जनमत संस्थान ने फ्रांसीसी स्त्रियों [illegible] अभिरुचियों के बारे

"प्रेम" को यह स्थान दिया, जबकि दस वर्ष पहले 39 प्रतिशत स्त्रियों ने उनके जीवन को सुखी बनाने के लिए आवश्यक उपकरणों में इसे सबसे महत्त्वपूर्ण बताया था। दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत अनुपात भी बहुत अधिक था जिन्होंने यह कहने के साथ ही कि उनके जीवन को सुखी बनाने के लिए जिस चीज़ की सबसे अधिक आवश्यकता है वह "प्रेम" है, यह भी कहा कि उन्हें सुखी रहने के लिए भौतिक सुख-सुविधाएँ चाहिएँ। जैसा कि हमने कंचन और वासना के उदाहरणों में देखा है, उनकी रोमांटिक संकल्पनाओं में भी प्रेम का विचार अकेले शायद ही कभी आता हो। आमतौर पर उसके साथ भौतिक सुख-सुविधा तथा वित्तीय सुरक्षा के प्रति लगाव जुड़ा रहता है। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच इस बदलती हुई प्रवृत्ति को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस समय यद्यपि वे प्रेम को उन्हें सुखी बनानेवाला एक "आवश्यक" कारक मानती हैं—फिर भी उनमें से 10 प्रतिशत से कुछ कम स्त्रियाँ ही सुखी रहने के लिए इसे एक "पर्याप्त" कारक मानती हैं। अर्थात् उनमें ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बहुत कम है जो यह समझती हों कि केवल "प्रेम के सहारे ही जीवन व्यतीत करके" वे सुखी हो सकती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई धारणाओं के अनुसार सुखी रहने के एक पर्याप्त आधार के रूप में प्रेम की भूमिका अब पहले की तुलना में बहुत कम रह गयी है, और अब उसे सुखी रहने के लिए आवश्यक कारकों में से केवल एक कारक माना जाता है, एकमात्र कारक नहीं।

जीवन-साथी चुनने में प्रेम की भूमिका

इस प्रश्न के साथ कि वे अपने जीवन को सुखी बनाने में प्रेम को कितना महत्त्व देती हैं, बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ यह प्रश्न भी है कि जीवन-साथी चुनने की कसौटी के रूप में वे किसी से प्रेम करने या किसी के पात्र होने को कितना महत्त्व देती हैं।

पहले भी जब भारत में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी, पति चुनने के बारे में उसकी अभिवृत्ति सर्वथा भिन्न थी। वह या तो किसी ऐसे आदमी को चुनती थी जो अपनी वीरता अथवा बुद्धिमत्ता सिद्ध कर सके, या किसी ऐसे को जो प्रतिष्ठित परिवार का हो और ख्यातिवान तथा चरित्रवान हो। लेकिन जैसा कि श्रमजीवी स्त्रियों के इन व्यक्ति-अध्ययनों को देखने से स्पष्ट है, अब स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ बदल गयी हैं। ये अभिवृत्तियाँ समय के साथ बदलती रही हैं। कुछ वर्ष पहले तक माता-पिता और उनकी बेटियाँ भी ऐसा आदमी चाहती थीं जिसके माँ-बाप पैसेवाले हों, चाहे वह स्वयं कुछ कमा सकता हो या न कमा सकता हो। उसके बाद एक प्रतिक्रिया हुई और भौतिक अभिवृत्ति बदलकर बिल्कुल दूसरे छोर पर संवेगात्मक पक्ष में पहुँची, और तब विशेष रूप से शिक्षित श्रमजीवी लड़कियाँ उस आदमी को सबसे अधिक महत्त्व देने लगीं जिनसे उन्हें "प्रेम" होता था। लेकिन उनकी अभिवृत्तियाँ बदलती रही हैं। दस वर्ष पहले वे ऐसे आदमी को पसन्द करती थीं जो "काफी वेतन पाता हो और स्नेहमय स्वभाव का

हो" या "अच्छी हैसियत का हो और सौन्दर्य-बोध रखता हो" या जो "बहुत पढ़ा-लिखा" हो, या "जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली हो" और वे जानबूझकर इस बात पर आग्रह-पूर्वक बहुत जोर देती थीं कि धन-दौलत को वे इतना अधिक महत्त्व नहीं देती हैं, हालांकि जब उनसे युक्तिपूर्वक बड़े प्यार से पूछा गया तो उनमें से अधिकांश ने यें स्वीकार किया कि वे ऐसा पति चाहती हैं जो "भौतिक सुख-सुविधाएँ" प्रदान कर सकने भर को काफी कमाता हो, और इस प्रकार वे उसकी "धनोपार्जन की क्षमता" और "पैसे" को भी ध्यान में रखती थीं। लेकिन दस वर्ष बाद उन्हें पूरी चेतना के साथ इस बात को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं हुआ कि वे अपने पति में सबसे अधिक यह बात चाहेंगी कि वह उच्च प्रतिष्ठावाले किसी अच्छे वेतनवाले पद पर हो और जहां तक उसके व्यवसाय अथवा व्यापार का सम्बन्ध है उसके भविष्य की संभावनाएँ उज्जवल हों। जिन स्त्रियों से दस वर्ष पहले साक्षात्कार किया गया उनकी तुलना में उन्होंने इस बात पर भी अधिक जोर दिया कि उसका "चरित्र अच्छा" हो और "व्यक्तित्व प्रभावशाली हो।"

अब जीवन-साथी चुनने में केवल किसी से प्रेम करना या किसी का प्रेम-पात्र होना एकमात्र महत्त्वपूर्ण आधार नहीं रह गये हैं, अब उसके लिए पर्याप्त पैसा और अच्छी सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यवसाय में सफलता अधिक महत्त्वपूर्ण कारक बन गये हैं। यद्यपि शिक्षित श्रमजीवी स्त्री इस बात को स्वीकार करती है कि अच्छे विवाह और निजी सन्तोष के लिए प्रेम बहुत आवश्यक है, परन्तु आज जीवन-साथी चुनने में प्रेम की भूमिका केवल गौण होती है। वह अपने भावी पति के चरित्र, शिक्षा, धनोपार्जन की क्षमता और सम्भावनाओं को अधिक महत्त्व देने लगी है। वह सुरक्षा और सुखद भविष्य के बारे में सोचती है और ऐसे जीवन-साथी के बजाय जिसके विचार उलझे हुए, मन उद्विग्न और दृष्टि भावुकता तथा रोमांटिक प्रेम से धूमिल हो ऐसा जीवन-साथी चुनती है जिसका स्वभाव शान्त तथा उद्वेग-रहित हो और जिसकी आँखें पूरी तरह खुली हों। आज वह ऐसा पति चाहती है जो उसकी "भौतिक" तथा "संवेगात्मक" दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। अब पहले की अपेक्षा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को अधिक प्रधानता प्राप्त है। अर्थात्, जीवन-साथी चुनने में रोमांटिक प्रेम—यह आधार कि जिस व्यक्ति को वह अपना जीवन-साथी चुने उससे वह प्रेम करती हो और वह भी उससे प्रेम करता हो—शिक्षित श्रमजीवी स्त्री के लिए अब उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है जितना दस वर्ष पहले था। केवल 11 प्रतिशत स्त्रियों ने इस बात पर जोर दिया कि जीवन-साथी चुनने की कसौटी यह है कि उस व्यक्ति से उन्हें प्रेम हो, जबकि दस वर्ष पहले ऐसी स्त्रियों की संख्या 35 प्रतिशत थी। अब केवल शारीरिक आकर्षण, सुन्दरता, रोमांस तथा मोह उनके प्रेम के विकसित होने तथा बने रहने का उतना अधिक आधार नहीं रह गया है जितना कि उस व्यक्ति के प्रति सम्मान का भाव जो अपनी श्रेष्ठतर शिक्षा, बुद्धि, प्रतिभा, धनोपार्जन की भावनाओं, क्षमताओं, चरित्र तथा व्यक्तित्व के कारण उनके मन में अपने प्रति सम्मान की भावना जागृत करता हो।

फ्रांसीसी जनमत संस्थान ने फ्रांसीसी स्त्रियों [illegible] बारे में [illegible]

अध्ययन किया था उसमें फ्रांसीसी स्त्रियों में भी यही प्रवृत्ति पायी गयी थी। इस अध्ययन में बताया गया है कि औसत फ्रांसीसी स्त्रियों के लिए जीवन-साथी चुनने में प्रेम की भूमिका केवल गौण होती है। वह विशिष्ट गुण जैसे उसके भावी पति का चरित्र, पर अधिक ध्यान देती हैं और वह सुरक्षा, सुख-सुविधा तथा भविष्य के बारे में सोचती हैं। वह आवेग-शील नहीं होतीं। अपने भावी पति के बारे में निर्णय करते समय वह तर्क, बुद्धि तथा ठंडे दिमाग से काम लेती हैं। वह जीवन-साथी चुनने में रोमांटिक प्रेम को अधिक महत्त्व नहीं देती। (रेगी और ब्रूग, 1964, पृष्ठ 18-19)। जीवन-साथी चुनने की यह कसौटी और वर्त-मान अध्ययन में उत्तरदाताओं द्वारा बतायी गयी कसौटी उस कसौटी से बिल्कुल भिन्न है जो संयुक्त राज्य अमेरिका के कालेज-छात्रों ने बतायी थी। जीवन-साथी चुनने में पसन्द की कसौटी के रूप में जिस गुण पर सबसे कम जोर दिया गया वह था "विवाह के समय धनवान हैं" केवल 5 प्रतिशत ने कहा कि वे इसे बहुत महत्त्वपूर्ण समझते है। "रोमांटिक प्रेम" जीवन-साथी चुनने की सबसे महत्त्वपूर्ण कसौटी है। लगभग प्रत्येक छात्र-छात्रा ने कहा कि जीवन-साथी चुनने में प्रेम करना और प्रेम का पात्र होना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कसौटी है। (गोल्डसेन, इत्यादि, 1960, पृष्ठ 81)। चेस्सर के अध्ययन में अधिकांश अंग्रेज स्त्रियों ने कहा कि वे इस बात को कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समझती हैं कि उनका भावी पति स्नेहमय, हार्दिक और दूसरे की भावनाओं को समझनेवाला हो, बजाय इसके कि वह देखने में सुन्दर और बलवान हो (चेस्सर, 1969, पृष्ठ 128)।

जैसा कि हिन्दू शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के प्रतिनिधि व्यक्ति-अध्ययनों से स्पष्ट है, विशेष रूप से वासना जैसी स्त्रियों के व्यक्ति-अध्ययन से, वे अब अपना पति चुनने के मामले में अधिक भौतिकवादी तथा हर ऊँच-नीच पहले से सोच लेनेवाली हो गयी हैं। उस व्यक्ति के लाक्षणिक गुणों के बारे में, जिससे वे प्रेम और विवाह करना चाहेंगी, अब उनके विचार अधिक सुनिश्चित हैं। वे ऐसे साथी के साथ प्रेम करने को अधिक "तत्पर" होंगी जो ठोस आवश्यकताओं को पूरा कर सकता हो: सामाजिक प्रतिष्ठा, सरकारी पद, पैसा, शिक्षा, स्वास्थ्य और अच्छा चरित्र। काफी हद तक ऐसा इसलिए है कि उनका प्रेम का ढर्रा बदल गया है। अब वे बहुत व्यावहारिक और ऊँच-नीच सोचनेवाली हो गयी हैं। वे भावी जीवन-साथी की सभी सम्भावनाओं पर अच्छी तरह विचार करती हैं और तब विवेकपूर्वक उससे प्रेम करना आरम्भ करती हैं। प्रेम में उनके हृदय से अधिक उनका मस्तिष्क काम करता है और प्रेम में भी वे तर्क-शक्ति से काम लेती हैं। यही कारण है कि अब शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच 'अन्धा प्रेम' पहले की अपेक्षा बहुत कम पाया जाता है।

जैसा कि वासना के उदाहरण में देखा गया है कि अब श्रमजीवी स्त्री कुल मिलाकर निर्णय लेने से पहले हर चीज का हिसाब लगा लेती है। रोमांस और प्रेम के मामले में भी वह असाधारण रूप से चतुर और ऊँच-नीच समझनेवाली हो गयी है और अब वह वैसी अन्धी नहीं रह गयी है जैसी कि "प्रेम-ग्रस्त" लड़कियाँ हुआ करती थीं। उसके लिए प्रेम अत्यन्त तर्कसंगत और व्यावहारिक हो गया है। पहले उसकी संकल्पना

के अनुसार प्रेम अन्धा होता था और "प्रेम-ग्रस्त" लड़कियाँ इस प्रकार की व्यावहारिक समस्याओं के बारे में शायद ही कभी सोचती थीं कि उनके जीवन-साथी की पैसा कमाने की क्षमता क्या है, उसकी दौलत और सूरत-शक्ल, उसकी शिक्षा और भविष्य की सम्भावनाएँ क्या हैं। उस समय उसके लिए प्रेम स्वतःस्फूर्त होता था जिसके बाद विवाह हो जाना चाहिए। अब "देखते ही प्रेम हो जाने" जैसी कोई चीज़ नहीं होती, बल्कि अब तो खूब अच्छी तरह सोचा-समझा हुआ प्रेम होता है। अब जिन बातों की ओर प्राथमिक रूप से ध्यान दिया जाता है वे हैं—जीवन-साथी की पैसा कमाने की क्षमता, शिक्षा, संस्कृति और चरित्र और उसके बाद सोच-समझकर प्रेम किया जाता है। यदि कोई स्वतःस्फूर्त प्रेम आरम्भ हो भी जाता है तो भी यदि उसमें वे सारे गुण नहीं होते जो वह अपने पति में चाहती है तो आवश्यक नहीं है कि उस प्रेम के फलस्वरूप विवाह भी हो जाये। जब विवाह का प्रश्न आता है तो वह ऐसे व्यक्ति से विवाह करती है जो व्यावहारिक दृष्टि से उसकी माँगों तथा आवश्यकताओं के अनुकूल हो।

लेकिन जैसा कि वासना के लाक्षणिक व्यक्ति-अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है यह परिवर्तन केवल शिक्षित श्रमजीवी लड़कियों की अभिवृत्ति में ही नहीं पाया जाता, समाज के मध्यम वर्ग तथा उच्च मध्यम वर्ग के शिक्षित नवयुवकों के बीच भी यह परिवर्तन उतनी ही हद तक पाया तथा अनुभव किया जाता है। वे भी आमतौर पर आँख मूँदकर प्रेम का शिकार नहीं हो जाते या किसी लड़की के मोह में नहीं पड़ जाते, और विशेष रूप से विवाह के मामले में वे भी उतने ही ऊँच-नीच सोचनेवाले तथा विवेकशील होते हैं। वे भी व्यावहारिक होते हैं और इस बात पर पूरी तरह विचार करते हैं कि वह लड़की उनमें से अधिकांश आवश्यकताओं तथा गुणों पर खरी उतरेगी या नहीं, जिन्हें वे अपने जीवन में भावी लाभ तथा हित के लिए आवश्यक समझते हैं। और वे भी जब तक स्वयं आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं हो जाते और यह अनुभव नहीं करने लगते कि वे विवाह करने की हैसियत रखते हैं और विवाहित तथा पारिवारिक जीवन का दायित्व सँभाल सकते हैं तब तक वे भी जल्दबाजी में किसी लड़की से विवाह करने का निर्णय नहीं करते।

विश्लेषण करने पर हमें यह सोचने पर विवश होना पड़ता है कि आज की युवा शिक्षित स्त्रियों तथा पुरुषों की प्रेम-भावनाएँ कितनी शान्त और विवेकपूर्ण हो गयी हैं, और वे एक ऐसा जीवन-साथी पाने के लिए कितनी योजना बनाते हैं जो वस्तुनिष्ठ दृष्टि से उनके लिए एक अच्छा जोड़ा हो। अब वे केवल उस व्यक्ति से प्रेम करने की कल्पना करती हैं जिनके बारे में वे सोचती हैं कि वह रुपये-पैसे की दृष्टि से और अन्य बातों की दृष्टि से भी एक लाभदायक जोड़ा होगा। ब्यौरे की अन्य सभी बातों पर ध्यान देने के बाद ही प्रेम की भावनाएँ प्रस्फुटित होती हैं। इस युग में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों तथा पुरुषों के बीच प्रेम ने एक भिन्न आकार तथा रूप धारण कर लिया है, यह बहुत तर्कसंगत तथा विवेकपूर्ण हो गया है।

यह परिवर्तन श्रमजीवी स्त्रियों के उन समूहों की अभिवृत्तियों [illegible] नहीं

पाया गया जिनका अध्ययन दस वर्ष के अन्तराल से किया गया था, बल्कि यह परिवर्तन एक ही स्त्री में उसके जीवन की अलग-अलग अवस्थाओं में भी पाया गया। किशोरावस्था में लड़कियों में यह भावना उत्पन्न होती है कि एक चुना हुआ पुरुष ऐसा होता है जिसे देखते ही वे उससे प्रेम करने लगेंगी, और वे अनुभव करती हैं कि प्रेम हर समस्या को हल कर देता है और इन अभिवृत्तियों में आस्था तथा विश्वास रखने से उन्हें प्रेम, विवाह तथा सुख का आश्वासन दिखायी देता है (विच, 1952, पृष्ठ एफ-367)। परन्तु अब वे पहले से भिन्न हो गयी हैं। ऐसी लड़कियों का प्रतिशत-अनुपात, जो किशोरावस्था में भी ऐसा अनुभव करती थीं, घटता जा रहा है और उनकी संख्या तो बहुत घट गयी है जो किशोरावस्था को पार करने के बाद भी ऐसा अनुभव करती रहती हैं। अब देखते ही प्रेम हो जाने से या इस विचार से उनका अधिक लगाव नहीं रह गया है कि प्रेम सभी समस्याओं को हल कर देता है। इसके बजाय वे अनुभव करती हैं कि "प्रेम उन आकर्षणों से विकसित होता है जो लोग एक-दूसरे के प्रति अनुभव करते हैं और आकर्षण मानव अन्तःक्रिया से उत्पन्न होते हैं। आकर्षणों...की जड़ें विशेष प्रकार की आवश्यकतापूर्तियों में जमी होती हैं। अन्ततः प्रेम करने लगने और प्रेम करते रहने को पूरी प्रक्रिया को एक गतिवान प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जिसमें दो व्यक्तियों के बीच समायोजन और पुनर्समायोजन की आवश्यकता होती है। यह बादवाला दृष्टिकोण उन व्यक्तियों का लाक्षणिक गुण है जिन्होंने प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने की क्षमता विकसित कर ली है" (लैंट्ज़ और सिडर, 1969, पृष्ठ 118)। परन्तु इस अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ अपनी प्रेम करने लगने की क्षमता विवेकपूर्ण ढंग से विकसित कर रही हैं।

शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के विचार अब भी उलझे हुए हैं क्योंकि वे आज भी प्रेम करने लगने और प्रेम करते रहने में अन्तर नहीं कर पातीं। जैसा कि लैंट्ज़ और सिडर ने समझाया है :

> प्रेम करने लगना आसान होता है क्योंकि बहुधा वह मुख्यतः सेक्स-सम्बन्धी विचारों पर आधारित होता है, प्रेम करते रहने के लिए एक स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने तथा उसे बनाये रखने की योग्यता आवश्यक होती है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि वह चाहता क्या है, उसे अपनी इच्छाओं को समझना चाहिए और उनमें भावना को निरन्तर बनाये रखने और उस सम्बन्ध के दूसरे साझेदारों में होनेवाले परिवर्तनों तथा विकास के प्रति संवेदनशील होने की योग्यता होनी चाहिए (लैंट्ज और सिडर, 1969, पृष्ठ 102)।

किसी प्रेम-सम्बन्ध को किस हद तक प्रौढ़ अथवा अ-प्रौढ़ समझा जाये, इसका निर्धारण इस बात से होता है कि इसमें निहित आवश्यकताएँ किस हद तक उस जोड़े के बौद्धिक तथा संवेगात्मक विकास में सहायक हैं और किस हद तक उनकी जड़ें वास्तविकता में जमी हुई हैं। बर्जेस और लॉक ने इस प्रकार की आवश्यकताओं का

वर्गीकरण इस रूप में किया है : (1) साहचर्य; (2) संचार तथा क्रियाशीलता की स्वतन्त्रता; (3) संवेगात्मक परस्पर निर्भरता, और (4) सेक्स-सम्बन्धी कामनाएँ; और यह प्रौढ़ आवश्यकताओं के प्रतिरूप का द्योतक है, क्योंकि ये आवश्यकताएँ यथार्थ-मूलक हैं और सम्बन्धित व्यक्तियों को सर्वांगीण बौद्धिक तथा संवेगात्मक विकास प्रदान करने के लिए पर्याप्त व्यापक हैं (देखिये बर्जेस और लॉक, 1960, पृष्ठ 322-326)। और वह प्रेम अ-प्रौढ़ होता है जिसमें वे आवश्यकताएँ जो पूरी हो रही हैं अवास्तविक हों और बौद्धिक तथा संवेगात्मक विकास को बढ़ावा देने तक सीमित हों (लैंट्ज़ और स्निडर, 1969, पृष्ठ 107)।

प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने की क्षमता पारिवारिक, सामाजिक वातावरण में, और पारिवारिक अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों में विकसित होती है, और इससे भी बढ़कर वह समाज के मूल्यों द्वारा विकसित होती है। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में जिस पक्ष का महत्त्व बढ़ता हुआ पाया गया है वह यह है कि वह प्रेम जो केवल भावुकता या केवल एकतरफ़ा निष्ठा के बजाय पारस्परिक सम्मान पर आधारित होता है वह गौरवशाली, गम्भीर तथा स्वीकार्य होता है और सामान्यत: उसके फलस्वरूप विवाह की परिधि के भीतर भी और बाहर भी, बहुत सन्तोष तथा सुख मिलता है। अब उनमें से अधिकांश यह अनुभव करती हैं कि प्रेम-सम्बन्ध के सन्तोषप्रद तथा सफल होने के लिए किसी भी मानव-सम्बन्ध की भाँति इस सम्बन्ध की गत्यात्मकता के प्रति भी एक संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है।

सम्पदा तथा ख्याति का प्रेम

साक्षात्कार के दौरान यह पाया गया कि प्रेम के अतिरिक्त—जिसके मूल्य की शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ दस वर्ष पहले बहुत समर्थक थीं और जिसे वे अपनी आधार-भूत आवश्यकता समझती थीं—वे अब जीवन से सबसे अधिक इच्छा सम्पदा तथा ख्याति की रखती हैं। यद्यपि जब उनसे पूछा गया "सुखी रहने के लिए तुम्हें सबसे अधिक आवश्यकता किस चीज़ की है ?" तो स्पष्ट रूप से इसका उत्तर "सम्पदा" देनेवाली श्रमजीवी स्त्रियों की संख्या पहले समूह में उतनी अधिक नहीं थी जितनी कि दूसरे समूह में। उन्होंने "प्रेम" और "ख्याति" पर बल दिया था। परन्तु दूसरे समूह में, जिनका अध्ययन दस वर्ष बाद किया गया, उनके विचारों तथा व्यवहार से यह संकेत मिला कि वे दस वर्ष पहले की तुलना में अब "सम्पदा" को अधिक मूल्यवान समझने लगी थीं। प्रख्यात और मान्य होने की नयी लालसा अधिक प्रमुख हो गयी थी। और शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात कहीं अधिक है जो अब पहले की अपेक्षा इस बात की बहुत गहरी इच्छा अनुभव करती हैं कि उन्हें महत्त्वपूर्ण समझा जाये और वे सुविख्यात हों। अंग्रेज दार्शनिक एडम स्मिथ ने, जो दो शताब्दी पहले हुआ था, एक बार कहा था कि "मनुष्य में एक प्रबल प्रेरक शक्ति है दूसरों द्वारा मान्य तथा स्वीकार्य होने की आवश्यकता" (एजलेर्नन, 1969, पृष्ठ 14)। यह लालसा...

किसी के प्रेम का पात्र होने की आवश्यकता तथा अहंभाव की तुष्टि की अचेतन अभिव्यक्ति होती है, शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की प्रसिद्ध तथा सुविख्यात होने की सचेतन इच्छा तथा महत्त्वाकांक्षा के रूप में अधिकाधिक मुखर होती जा रही है।

लोगों के दिमाग में इन अभिवृत्तियों का पोषण करने में आमतौर पर पूरे समाज की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। चलचित्र, साहित्य, पत्रिकाओं के लेख तथा उपन्यास सभी की अपनी भूमिका होती है। एक ऐसे समाज में, जिसके मूल्य भीतरी गुणों—आन्तरिक स्वभाव—के बजाय बाहरी गुणों तथा प्रत्यक्ष रूप पर, चमक-दमक तथा निखार पर और लोगों को क्रय-वस्तु समझने पर ज़ोर देते हैं—एक ऐसा दृष्टिकोण जिसके अनुसार कोई व्यक्ति बदले में कुछ पाने को महत्त्व देते हैं, वहाँ किसी मानव-सम्बन्ध के प्रति गहरी संवेगात्मक प्रतिबद्धता से कतराया जाता है (देखिये फ्राम्म, 1956, अध्याय 1)।

इसके अतिरिक्त जैसा कि लैंट्ज़ और स्निडर का मत है, "भौतिकवादी तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक मूल्य...प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने की क्षमता के विकास के लिए, तनिक भी अनुकूल नहीं होते। जब पुरुष-स्त्री सम्बन्ध में भौतिकवादी दृष्टिकोण पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया जाता है तो उससे यह भ्रान्त धारणा उत्पन्न हो सकती है कि भौतिक सम्पदाएँ प्रेम को सुनिश्चित बनाती हैं" (लैंट्ज़ और स्निडर, 1969, पृष्ठ 120)। भौतिकवाद तथा वाह्य रूप पर बल देना वे विशिष्ट मूल्य हैं जो अधिक शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों ने परसंस्कृति-ग्रहण की प्रक्रिया के ज़रिये और जनव्यापी संचार के साधनों के माध्यम से अन्य संस्कृतियों के संपर्क में आने के कारण तेज़ी से अपना लिये हैं। इससे प्रेम-सम्बन्ध सहित मानव-सम्बन्धों का उनका प्रतिमान दूसरे रंग में रंजित हो गया है। प्रतिस्पर्द्धा की भावना ने उन्हें अधिक अहंकेन्द्रिक बना दिया है, और ऐसी स्त्रियों को कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दूसरों को रौंदकर आगे बढ़ जाने में भी कोई संकोच नहीं होता। उनके लिए लक्ष्य उन साधनों से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं जिनकी सहायता से वे लक्ष्य प्राप्त किये जाते हैं। उनके लिए प्रेम-सम्बन्ध में शोषणात्मक होने की प्रवृत्ति हो जाती है क्योंकि वे स्वयं अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपने साथी का लाभ उठाती हैं। वे अपने जीवन-साथियों का प्रयोग अपनी निजी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करती हैं और इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं देतीं कि उन पर भी बदले में ऐसा ही आचरण करने का दायित्व है।

लैंट्ज़ और स्निडर के अनुसार संवेगात्मक रूप में अप्रौढ़ व्यक्ति की प्रमुख लाक्षणिकता है "स्पष्ट स्वकेन्द्रीयता जो उसे, प्रौढ़ प्रेम को अनुभव करने में अक्षम बना देती है। वह आमतौर पर अपनी ही चिन्ताओं तथा भय को दूर करने में इतना अधिक व्यस्त रहता है कि उसमें दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान रखने की क्षमता ही नहीं रह जाती" (लैंट्ज़ और स्निडर, 1969, पृष्ठ 132)। इस प्रकार का व्यक्ति हमेशा अपनी ही निजी समस्याओं तथा आवश्यकताओं में डूबा रहता है—दूसरों को कैसे प्रभावित करना और अपने निजी सन्तोष के लिए विभिन्न वस्तुओं को कैसे प्राप्त करना—और उसके लिए दूसरों के साथ लिप्त होने की प्रायः कोई भी अभिप्रेरणा नहीं

रह जाती ।

"जो व्यक्ति सचमुच दूसरों से प्रेम करता है वह अपने आपसे भी प्रेम करता है; वह जीवन से प्रेम करता है" (फ्राम्म, 1955)। दस वर्ष बाद पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों में यह बात देखी गयी कि उन्हें अपने ही गौरवान्वित रूप से प्रेम था। इसलिए वे न दूसरों से प्रेम कर सकती थीं, न अपने आपसे और न ही वास्तविक अर्थ में जीवन से प्रेम कर सकती थीं। यह पाया गया है कि प्रेम की उनकी संकल्पना नार्सिसीय अथवा आत्मरति थी। यह स्वयं अपने से प्रेम करने के अर्थ में आत्म-प्रेम नहीं है जिसमें अपने-आपको गरिमामय तथा सम्मान-योग्य स्वीकार किया जाता है और अपनी चिन्ता करने तथा स्वयं अपने से प्रेम करने की योग्यता से सम्पन्न माना जाता है (फ्राम्म, 1956, पृष्ठ 57-63), और जिसमें यह भावना रहती है कि प्रेम-सम्बन्ध में वह केवल पानेवाला ही नहीं है बल्कि उसके पास बदले में कुछ देने को भी है। बल्कि यह तो स्वयं अपने में नार्सिसीय अथवा आत्मरतिक अंतर्लयन है, जिसका लक्षण होता है स्वयं अपनी आदर्शीकृत अथवा गौरवान्वित प्रतिमा से प्रेम करना, और फलस्वरूप दूसरों से प्रेम करने की क्षमता खो देना।

जब स्वकेन्द्रिकता बहुत बढ़ जाती है तो उसे नार्सिसीयता कहते हैं। स्लेटर ने इस शब्द की व्याख्या इस रूप में की है :

> नार्सिसीयता शब्द की उत्पत्ति नार्सिसीस नामक लड़के की उस यूनानी दन्त-कथा से हुई है, जिसमें उसने एक दिन एक तालाब में अपना प्रतिबिम्ब देख लिया था। उसे अपने सुन्दर बिम्ब से प्रेम हो गया, वह उससे अलग नहीं हो सका और उसी के लिए घुल-घुलकर मर गया। उस लड़के को स्वयं अपने बिम्ब से मोह हो गया था, लेकिन निश्चित है कि उसे अपने वास्तविक स्व से प्रेम नहीं था, क्योंकि वह अपने वास्तविक हितों तथा कल्याण की उपेक्षा करता रहा। इसी प्रकार नार्सिसीय व्यक्ति को अपने वास्तविक स्व से नहीं बल्कि अपनी प्रतिमा से—अपनी एक कल्पित संकल्पना से—प्रेम होता है, जो पानी के तालाब में नहीं, बल्कि उसकी कल्पना में सम्पूर्ण गौरव तथा भव्यता के साथ झिलमिल होती रहती है" (स्लेटर, 1953)।

यह महत्वपूर्ण है कि प्रेम-सम्बन्ध का आधार कल्पना में न होकर वास्तविकता में हो। यदि किसी का प्रेम दूसरे साझेदार की अवास्तविक तथा गौरवान्वित प्रतिमा पर आधारित होगा तो वह सम्बन्ध सम्भवतः बहुत अल्पकालिक होगा, क्योंकि जो प्रेम का पात्र है उसके साथ निरन्तर अथवा दीर्घकालिक सम्पर्क से वास्तविकता खुल जायेगी। दोष उभरकर सामने आने लगते हैं और अवास्तविक प्रतिमा चकनाचूर हो जाती है। और प्रेम के साझेदार के प्रति निराशा उत्पन्न होती है (देखिये राइक, 1957, पृष्ठ 82)। लैंड्ज और स्निडर लिखते हैं, "यह तो बताने की आवश्यकता नहीं कि नार्सिसीय प्रतिमानों से स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध में बहुत बड़ी समस्याएं उठ खड़ी होती हैं

किसी के प्रेम का पात्र होने की आवश्यकता तथा अहंभाव की तुष्टि की अचेतन अभिव्यक्ति होती है, शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की प्रसिद्ध तथा सुविख्यात होने की सचेतन इच्छा तथा महत्त्वाकांक्षा के रूप में अधिकाधिक मुखर होती जा रही है।

लोगों के दिमाग में इन अभिवृत्तियों का पोषण करने में आमतौर पर पूरे समाज की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। चलचित्र, साहित्य, पत्रिकाओं के लेख तथा उपन्यास सभी की अपनी भूमिका होती है। एक ऐसे समाज में, जिसके मूल्य भीतरी गुणों—आन्तरिक स्वभाव—के बजाय बाहरी गुणों तथा प्रत्यक्ष रूप पर, चमक-दमक तथा निखार पर और लोगों को क्रय-वस्तु समझने पर ज़ोर देते हैं—एक ऐसा दृष्टिकोण जिसके अनुसार कोई व्यक्ति बदले में कुछ पाने को महत्त्व देते हैं. वहाँ किसी मानव-सम्बन्ध के प्रति गहरी संवेगात्मक प्रतिबद्धता से कतराया जाता है (देखिये फ्राम्म, 1956, अध्याय 1)।

इसके अतिरिक्त जैसा कि लैंट्ज़ और सिडर का मत है, "भौतिकवादी तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक मूल्य...प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने की क्षमता के विकास के लिए, तनिक भी अनुकूल नहीं होते। जब पुरुष-स्त्री सम्बन्ध में भौतिकवादी दृष्टिकोण पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया जाता है तो उससे यह भ्रान्त धारणा उत्पन्न हो सकती है कि भौतिक सम्पदाएँ प्रेम को सुनिश्चित बनाती हैं" (लैंट्ज़ और सिडर, 1969, पृष्ठ 120)। भौतिकवाद तथा बाह्य रूप पर बल देना वे विशिष्ट मूल्य हैं जो अधिक शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों ने परसंस्कृति-ग्रहण की प्रक्रिया के ज़रिये और जनव्यापी संचार के साधनों के माध्यम से अन्य संस्कृतियों के संपर्क में आने के कारण तेजी से अपना लिये हैं। इससे प्रेम-सम्बन्ध सहित मानव-सम्बन्धों का उनका प्रतिमान दूसरे रंग में रंजित हो गया है। प्रतिस्पर्द्धा की भावना ने उन्हें अधिक अहंकेन्द्रिक बना दिया है, और ऐसी स्त्रियों को कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दूसरों को रौंदकर आगे बढ़ जाने में भी कोई संकोच नहीं होता। उनके लिए लक्ष्य उन साधनों से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं जिनकी सहायता से वे लक्ष्य प्राप्त किये जाते हैं। उनके लिए प्रेम-सम्बन्ध में शोषणात्मक होने की प्रवृत्ति हो जाती है क्योंकि वे स्वयं अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपने साथी का लाभ उठाती हैं। वे अपने जीवन-साथियों का प्रयोग अपनी निजी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करती हैं और इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं देतीं कि उन पर भी बदले में ऐसा ही आचरण करने का दायित्व है।

लैंट्ज़ और सिडर के अनुसार संवेगात्मक रूप में अप्रौढ़ व्यक्ति की प्रमुख लाक्षणिकता है "स्पष्ट स्वकेन्द्रीयता जो उसे, प्रौढ़ प्रेम को अनुभव करने में अक्षम बना देती है। वह आमतौर पर अपनी ही चिन्ताओं तथा भय को दूर करने में इतना अधिक व्यस्त रहता है कि उसमें दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान रखने की क्षमता ही नहीं रह जाती" (लैंट्ज़ और सिडर, 1969, पृष्ठ 132)। इस प्रकार का व्यक्ति हमेशा अपनी ही निजी समस्याओं तथा आवश्यकताओं में डूबा रहता है—दूसरों को कैसे प्रभावित करना और अपने निजी सन्तोष के लिए विभिन्न वस्तुओं को कैसे प्राप्त करना—और उसके लिए दूसरों के साथ लिप्त होने की प्रायः कोई भी अभिप्रेरणा नहीं

रह जाती ।

"जो व्यक्ति सचमुच दूसरों से प्रेम करता है वह अपने आपसे भी प्रेम करता है; वह जीवन से प्रेम करता है" (फ्राम्म, 1955)। दस वर्ष बाद पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों में यह बात देखी गयी कि उन्हें अपने ही गौरवान्वित रूप से प्रेम था। इसलिए वे न दूसरों से प्रेम कर सकती थीं, न अपने आप से और न ही वास्तविक अर्थ में जीवन से प्रेम कर सकती थीं। यह पाया गया है कि प्रेम की उनकी संकल्पना नार्सिसीय अथवा आत्मरति थी। यह स्वयं अपने से प्रेम करने के अर्थ में आत्म-प्रेम नहीं है जिसमें अपने-आपको गरिमामय तथा सम्मान-योग्य स्वीकार किया जाता है और अपनी चिन्ता करने तथा स्वयं अपने से प्रेम करने की योग्यता से सम्पन्न माना जाता है (फ्राम्म, 1956, पृष्ठ 57-63), और जिसमें यह भावना रहती है कि प्रेम-सम्बन्ध में वह केवल पानेवाला ही नहीं है बल्कि उसके पास बदले में कुछ देने को भी है। बल्कि यह तो स्वयं अपने में नार्सिसीय अथवा आत्मरतिक अंतर्लयन है, जिसका लक्षण होता है स्वयं अपनी आदर्शीकृत अथवा गौरवान्वित प्रतिमा से प्रेम करना, और फलस्वरूप दूसरों से प्रेम करने की क्षमता खो देना।

जब स्वकेन्द्रिकता बहुत बढ़ जाती है तो उसे नार्सिसीयता कहते हैं। स्लेटर ने इस शब्द की व्याख्या इस रूप में की है :

> नार्सिसीयता शब्द की उत्पत्ति नार्सिसस नामक लड़के की उस यूनानी दन्त-कथा से हुई है, जिसमें उसने एक दिन एक तालाब में अपना प्रतिबिम्ब देख लिया था। उसे अपने सुन्दर बिम्ब से प्रेम हो गया, वह उससे अलग नहीं हो सका और उसी के लिए घुल-घुलकर मर गया। उस लड़के को स्वयं अपने बिम्ब से मोह हो गया था, लेकिन निश्चित है कि उसे अपने वास्तविक स्व से प्रेम नहीं था, क्योंकि वह अपने वास्तविक हितों तथा कल्याण की उपेक्षा करता रहा। इसी प्रकार नार्सिसीय व्यक्ति को अपने वास्तविक स्व से नहीं बल्कि अपनी प्रतिमा से—अपनी एक कल्पित संकल्पना से—प्रेम होता है, जो पानी के तालाब में नहीं, बल्कि उसकी कल्पना में सम्पूर्ण गौरव तथा भव्यता के साथ झिलमिल होती रहती है" (स्लेटर, 1953)।

यह महत्त्वपूर्ण है कि प्रेम-सम्बन्ध का आधार कल्पना में न होकर वास्तविकता में हो। यदि किसी का प्रेम दूसरे साझेदार की अवास्तविक तथा गौरवान्वित प्रतिमा पर आधारित होगा तो वह सम्बन्ध सम्भवतः बहुत अल्पकालिक होगा, क्योंकि जो प्रेम का पात्र है उसके साथ निरन्तर अथवा दीर्घकालिक सम्पर्क से वास्तविकता खुल जायेगी। दोष उभरकर सामने आने लगते हैं और अवास्तविक प्रतिमा चकनाचूर हो जाती है। और प्रेम के साझेदार के प्रति निराशा उत्पन्न होती है (देखिये राइक, 1957, पृष्ठ 82)। मैंडल और सिटर लिखते हैं, "यह तो बताने की आवश्यकता नहीं कि नार्सिसीय प्रतिमानों से स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध में बहुत बड़ी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं

ौर वे अर्थपूर्ण साहचर्य को कठिन बना देती हैं" (लट्ज़ और सिडर, 1969, पृष्ठ 34)। वे आगे चलकर लिखते हैं :

> अपने से प्रेम के दूसरे के प्रति प्रेम में स्थानान्तरण की प्रक्रिया बड़ी सुगमता से सम्पन्न हो जाती है यदि प्रेम को अवरुद्ध अथवा स्थिर न कर दिया जाये, अर्थात् यदि वह किसी के साथ बुरी तरह जकड़ न जाये जैसे स्वयं अपने साथ जैसा कि नासिसीयता में होता है, या अपने माता-पिता के साथ जैसा कि पितृ-स्थिरण में होता है, या अपने ही समलिंगी किसी व्यक्ति के साथ जैसा कि समलिंगी में होता है।...
>
> माता-पिता द्वारा स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के प्रतिमानों में प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने की क्षमता से सम्बन्धित अन्य आशय भी निहित हैं, क्योंकि इन प्रतिमानों का प्रभाव इस बात पर पड़ सकता है कि कोई व्यक्ति किसी विपर्मलिगी व्यक्ति के साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करता है (लैंट्ज़ और सिडर, 1969, पृष्ठ 126-27)।

इन संकल्पनाओं के निरूपण में पारिवारिक सम्बन्ध सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। यदि पारिवारिक सम्बन्ध ऐसा है जिसमें एक मानव अनुभव के रूप में प्रेम को मूल्यवान समझा जाता है, तो प्रेम के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियों का और साथ ही प्रेम व्यक्त करने तथा दूसरे का प्रेम प्राप्त करने की क्षमता विकसित होती है।

प्रेम करने की क्षमता के विकास के लिए बच्चे और उसके माता-पिता अथवा पारिवारिक परिवेश के अन्य प्रौढ़ लोगों के बीच वैयक्तिक अंतःक्रियाएँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। जब बच्चा संवेगात्मक रूप से यह अनुभव करता है कि किसी के द्वारा प्रेम किये जाने पर कैसा लगता है तो वह दूसरे लोगों के प्रति भी अपनी भावनाएँ व्यक्त करने लगता है। किसी दूसरे व्यक्ति को प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने की क्षमता की अभिव्यक्ति आमतौर पर सभी लोगों से प्रेम करने की क्षमता के रूप में भी व्यक्त होती है।

किसी व्यक्ति की विशिष्ट अभिवृत्तियों को ढालने तथा निरूपित करने में जो अन्य कारक बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं कि उस व्यक्ति ने स्कूल में किस प्रकार की शिक्षा और उच्चतर शिक्षा प्राप्त की है और किशोरावस्था में वह जिन समकक्षी समूहों तथा मित्र-मंडलियों में उठता-बैठता रहा है, उसके विभिन्न सदस्यों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियाँ क्या रही हैं। अभिवृत्तियाँ उन विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं से भी प्रभावित होती हैं जिनका किसी व्यक्ति को अपने जीवन में अनुभव होता है, विशेष रूप से उस काल में जब उसके व्यक्तित्व का निर्माण हो रहा हो और उसमें सहज ही प्रभाव ग्रहण करने की प्रवृत्ति हो।

इस समय हम सभी लोग जिस प्रकार के संक्रमणकालीन युग में रह रहे हैं, उसमें मूल्यों तथा विश्वासों के बारे में बहुत से उलझाव हैं क्योंकि सम्भावना इस बात की है कि जो कुछ भी पुराना है उसे बुरा समझ लिया जाये और जो कुछ नया है उसे अच्छा, और पुराने मूल्यों को तो लगभग तिरस्कृत कर दिया गया है जबकि नये मूल्य

अभी तक ढाले और स्वीकार नहीं किये गये हैं। इस स्थिति में वे निरन्तर बदलते रहते हैं और कोई भी उनके बारे में स्पष्ट ज्ञान नहीं रखता। बदले हुए मूल्यों के कारण लोग मानव-सम्बन्धों में गहरी प्रतिबद्धता के बावजूद सतही ढंग से जीवन व्यतीत करते हैं और इसलिए अपने में गहराई के साथ भरपूर प्रेम करने की क्षमता भी नहीं पाते। इस प्रकार समाज द्वारा मान्यता-प्राप्त मूल्य भी किसी व्यक्ति की प्रेम की संकल्पना तथा उसकी प्रेम करने की क्षमता के विकास में महत्त्वपूर्ण कारक होते हैं।

3

विवाह—आवश्यकता या परिपाटी ?

विवाह मानव-सम्बन्धों का एक सबसे गहरा तथा सबसे जटिल बन्धन है। यह समाज की एक आधारशिला और समाज-व्यवस्था का एक अत्यन्त आवश्यक अंग है। विभिन्न प्रकार के परम्परागत रत्नों तथा विश्वासों के प्रतिमान विवाह-पद्धति के साथ जुड़े हुए हैं। राधाकृष्णन् ने लिखा है, "विवाह एक परिपाटी ही नहीं बल्कि मानव-समाज का एक अंतर्निहित लक्षण है।...वह प्रकृति के जैविकीय प्रयोजनों तथा मनुष्य के सामाजिक प्रयोजनों के बीच एक समायोजन है" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 147)। इस प्राचीन प्रथा के बारे में पोमेराई का अभिमत है :

> विवाह, जैसा कि मिल्टन ने बताया है, 'केवल दैहिक मैथुन नहीं बल्कि एक मानव-समाज है', और यद्यपि इसकी जड़ें मजबूती से सेक्स-आकर्षण में जमी होती हैं और वह एक शारीरिक क्रिया से पुष्ट होता है, फिर भी यह ऐसी सर्वोपरि मूल्यवान निधियों को जन्म देता है जो उन निधियों के ह्रास के बाद भी सुरक्षित रहती हैं जिनका सम्बन्ध प्रधानतः मैथुन के साथ होता है। विवाह भी जीवन से कम बड़ी कला नहीं है, और जिन लोगों में उसे सफल बनाने के लिए आवश्यक स्नेह, धीरज और संकल्प होता है, उनके लिए वह जीवन का सबसे समृद्ध फलप्रद सम्बन्ध होता है (पोमेराई, 1936, पृष्ठ 127)।

विवाह की प्रथा की उत्पत्ति के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रथा को रोमांटिक प्रेम ने जन्म दिया अथवा पाशविक वासना ने।

राधाकृष्णन् के अनुसार :

> आदिम विवाह-प्रणाली स्त्री की पराधीनता पर आधारित थी, और उसका स्थायित्व क्षणभंगुर भावावेश पर नहीं बल्कि आर्थिक आव-

> श्यकता पर आधारित था।...अधिक सुव्यवस्थित जीवन-पद्धति के विकास, और संपत्ति के संचार के साथ वैध उत्तराधिकारियों के माध्यम से स्वामित्व प्रदान करने की इच्छा ने विवाह की प्रथा को अतिरिक्त संबल प्रदान किया (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 148)।

विवाह के मौलिक रूप के सम्बन्ध में एक विवाद है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त के नृवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय साहित्य पर मानो इस प्रश्न का भूत सवार है कि आदिम मनुष्य सामूहिक विवाह की अवस्था में रहता था कि नहीं (एलिस, 1970, पृष्ठ 86)। वेस्टरमार्क तथा स्पेंसर जैसे कुछ सिद्धान्तवेत्ताओं का दावा है कि उसका मौलिक रूप एक विवाह प्रथा का था, जबकि मार्गन और ब्रिफेर जैसे अन्य लोगों का कहना है कि उसका मौलिक रूप स्वैर सम्बन्ध अर्थात् अनियत संभोग का था (देखिये, लैंट्ज़ और सिडर, 1969, पृष्ठ 19)। वार्खफिन, मैकलेह्नान, लिपर्ट, कोहलर, ब्लॉख तथा अन्य कई लोगों के अनुसार उसका रूप व्यक्तिगत विवाह का नहीं बल्कि "सामूहिक विवाह" का था जिसमें किसी समूह अथवा कबीले के सभी पुरुष किसी भेद-भाव के बिना उस कबीले की किसी भी स्त्री के पास जा सकते थे और इन सम्बन्धों के फलस्वरूप जो सन्तानें होती थीं वे पूरे समुदाय की सन्तानें समझी जाती थीं। (देखिये वैस्टरमार्क, 1925, पृष्ठ 103)। फिर भी टॉड जैसे कुछ अन्य विद्वान् हैं जिन्होंने मानव-इतिहास के आरम्भ में सामूहिक विवाह की सार्वत्रिकता के विचार से मतभेद प्रकट किया है और यह मत व्यक्त किया है :

> हमारा अपना निष्कर्ष यह है कि सामूहिक विवाह की प्रणाली उस समय इतने पर्याप्त रूपों में स्थापित नहीं हुई थी कि उस पर कोई व्यापक निर्माण किया जा सके।...हमें इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए कि आदिम समाज में स्वैरिता अर्थात् अनियत संभोग और विवाह की स्थिरता दोनों ही की बदलती हुई परिस्थितियाँ पायी जाती थीं, जिसे हम संक्षेप में सविराम स्वैरिता कह सकते हैं (टॉड, 1913, पृष्ठ 31-44)।

विवाह का मौलिक रूप कुछ भी रहा हो, अब कम से कम सिद्धान्ततः प्रचलित रूप सामान्यतः एक विवाह का ही है।

भारतीय आर्य संस्कृति में प्रस्थापित विवाह के आदर्श रूप के अनुसार, "विवाह को पिता अथवा अन्य किसी उपयुक्त सम्बन्धी द्वारा वर को वधू का औपचारिक दान समझा जाता था और अब भी समझा जाता है ताकि दोनों मिलकर मानव अस्तित्व के चार प्रमाणिक प्रयोजनों में से तीन को पूरा कर सकें। ये उल्लिखित उद्देश्य हैं—धर्म, अर्थ और काम। चूंकि एक प्रकार से पहले उल्लिखित उद्देश्य 'धर्म' में चौथा उद्देश्य 'मोक्ष' निहित है, इसलिए हम यह मान सकते हैं कि दोनों पक्षों की ओर से विवाह-सम्बन्ध संपन्न होने की घोषणा मानव-अस्तित्व के चिरपोषित लक्ष्यों को मिलाकर प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती थी (घुर्ये, 1955, पृष्ठ 92)।

हिन्दुओं के धार्मिक तथा ऐहिक ग्रन्थ विवाह की संकल्पनाओं के उल्लेखों से भरे पड़े हैं। हिन्दू धर्म-साहित्य का अध्ययन करने से हमें एक सामाजिक संस्था के रूप में हिन्दू विवाह-प्रथा की आधारभूत संकल्पनाओं का पता चलता है। जीवन के सम्बन्ध में हिन्दू दृष्टिकोण के अनुसार चार पुरुषार्थों, जीवन के चार महान् उद्देश्यों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—को पूरा करने के लिए पुरुष और स्त्री के लिए विवाह करना बहुत आवश्यक है। विवाह के बारे में परम्परागत हिन्दू संकल्पना यह है कि यह एक ऐसा धार्मिक संस्कार है जो हमें अपने धार्मिक तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार के दायित्व निभाने का अवसर प्रदान करता है। "विवाह का मुख्यतः दायित्व सामूहिक विधान समझा जाता था जो एक ओर तो धार्मिक तथा नैतिक होते थे और दूसरी ओर सामाजिक तथा आर्थिक" (मेहता, 1970, पृष्ठ 17)।

प्रत्येक हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार होता है और इसलिए वह एक ऐसा पवित्र बन्धन होता है जो केवल मृत्यु से ही भंग हो सकता है। जैसा कि महाभारत में कहा गया है, "पत्नी ईश्वर की देन होती है।" हिन्दू दर्शनशास्त्र के अनुसार विवाह केवल दो शरीरों का नहीं बल्कि दो आत्माओं का मिलन होता है। वह एक धार्मिक बन्धन होता है। विवाह के हिन्दू आदर्श के अनुसार वह जीवन की परिपूर्ति का एक साधन है जिसका वास्तविक उद्देश्य है जीवन-संग्राम को मिलकर लड़ने में पूर्ण साहचर्य। हमारी संस्कृति में विवाह के सांस्कारिक तथा अटूट स्वरूप पर सदैव बल दिया गया है। "एक संस्था के रूप में विवाह प्रेम की अभिव्यक्ति तथा उसके विकास का साधन है" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 146-147)। आदर्श रूप में इसलिए उसका उद्देश्य केवल सन्तान उत्पन्न करना और उनका पालन-पोषण करके उन्हें सामाजिक दृष्टि से उपयोगी नागरिक बनाना ही नहीं है, "बल्कि उसका मुख्य उद्देश्य पति-पत्नी की स्थायी साहचर्य की आवश्यकताओं को पूरा करके उनके व्यक्तित्वों को समृद्ध बनाना है, जिसमें दोनों ही एक-दूसरे के जीवन के पूरक बन सकें और दोनों ही पूर्णता प्राप्त कर सकें" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 161-162)। तात्पर्य यह कि उसका लक्ष्य विपमलिंगी व्यक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करके व्यक्ति की जैविक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक परिपूर्ति तथा विकास करना है, जिसे दोनों में से कोई भी अकेले रहकर प्राप्त नहीं कर सकता था।

आदर्श रूप में, उसका उद्देश्य व्यक्ति का ही पूर्ण विकास तथा परिपूर्ति नहीं बल्कि परिवार का और उसके माध्यम से समाज तथा मानवता का भी विकास, परिपूर्ति तथा कल्याण है। दूसरे शब्दों में, विवाह को व्यक्ति तथा समाज के पोषण के लिए एक आवश्यक संस्था माना जाता है। और जैसा कि विवेकानंद ने लिखा है "विवाह इन्द्रिय-भोग के लिए नहीं बल्कि वंश को चलाने के लिए होता है। यही विवाह के बारे में भारतीय संकल्पना है" (विवेकानंद 1946, पृष्ठ 409-410), जिसके अनुसार जन-हित के लिए वैयक्तिक सुख की आहुति देनी पड़ती है। इस संकल्पना के अनुसार परिवारवाद का सिद्धान्त सर्वोपरि है और उसका पालन किया जाना चाहिए और व्यक्ति के हितों को पूरे

परिवार के हितों की तुलना में गौण स्थान दिया जाता है। पारम्परिक हिन्दू विवाह के बारे में कापडिया लिखते हैं, "विवाह परिवार तथा समुदाय के प्रति एक सामाजिक कर्त्तव्य था, और उसमें वैयक्तिक हित का विचार नगण्य था" (कापडिया, 1958, पृष्ठ 199)। इसका समर्थन कुमारस्वामी ने भी किया है, जिनका मत है, "हिन्दू समाज-शास्त्रियों के अनुसार विवाह एक सामाजिक तथा नैतिक सम्बन्ध है, और सन्तानोत्पत्ति एक ऋण का भुगतान" (कुमारस्वामी, 1924, पृष्ठ 86)।

आल्तेकर (1962) ने बताया है कि प्रारम्भिक काल में विवाह को हिन्दू पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए एक धार्मिक और उसके साथ ही सामाजिक कर्त्तव्य भी समझा जाता था। उसे स्त्री के लिए अनिवार्य और कन्याओं के लिए उसी प्रकार सर्वथा बाध्य-कारी माना जाता था जैसे लड़कों के लिए उपनयन संस्कार। विवाह सभी के लिए आवश्यक तथा वांछनीय भी समझा जाता था। पुरुषों के लिए विवाह इसलिए अनिवार्य था कि आत्मा की मुक्ति प्राप्त करने के लिए उत्तराधिकारियों का होना आवश्यक था और स्त्रियों के लिए वह इसलिए अनिवार्य था कि वे भी उस समय तक "स्वर्ग नहीं जा सकती थीं" जब तक कि उनका शरीर विवाह के संस्कार से शुद्ध न हो गया हो (महा-भारत, 9 : 33; देखिये आल्तेकर, 1962, पृष्ठ 32-34)। इस प्रकार हिन्दू स्त्री के लिए विवाह कोई विकल्प नहीं बल्कि एक बाध्यता थी और उसके माता-पिता के लिए एक पवित्र कर्त्तव्य जिसका स्रोत "अंशत: इस विश्वास में था कि स्त्री को स्वयं उसकी अपनी रति-भावना के खतरों से बचाने का यही एकमात्र उपाय था" (गूड, 1963, पृष्ठ 208)। इसके लिए सर्वोच्च धर्म था पतिव्रत—अपने पति के प्रति स्त्री की पूर्ण भक्ति और अडिग निष्ठा और जीवित अथवा मृत अवस्था में उसे अपना देवता और अपने मोक्ष का एकमात्र माध्यम मानना। "पुराणों के रचयिताओं ने पतिव्रत अर्थात् केवल पति के प्रति श्रद्धा रखने के जिस विचार का प्रचार किया है उसका आशय केवल पति के प्रति निष्कलंक निष्ठा ही नहीं था बल्कि इस विचार के अनुसार पति की सेवा करना पत्नी का एकमात्र कर्त्तव्य और उसके जीवन का एकमात्र ध्येय था" (कापडिया, 1958, पृष्ठ 169)।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार विवाह को एक संस्कार और एक अटूट बन्धन माना गया है और उसे भंग करना हिन्दू नारी के धर्म के विरुद्ध था। चूंकि सुख की खोज को जीवन का परम लक्ष्य नहीं माना जाता था और परिवार के सुख के लिए निजी सुख की बलि दी जा सकती थी, इसलिए विवाहित जीवन में उसके अभाव को इस बन्धन को भंग करने के लिए उचित आधार नहीं समझा जाता था (देखिये आल्तेकर, 1962; कापडिया, 1958; मेहता, 1970)। "हिन्दू धार्मिक भावना कम से कम धर्म-सूत्रों के काल से (600-300 ई० पू०) तो निश्चित रूप से विवाह-सम्बन्ध के भंग किये जाने के विरुद्ध रही है..." (गोरे, 1968, पृष्ठ 200)।

प्रभु (1954), आल्तेकर (1962) और कापडिया (1958) के अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदर्श रूप में हिन्दू विवाह-प्रणाली एक-विवाही

पद्धति थी। अपस्तंब तथा गौतम सूत्र के खंड 2 का उल्लेख करते हुए प्रभु लिखते हैं : "जब तक किसी गृहस्थ की पत्नी हो और वह एक गृहस्थ के रूप में उसके धार्मिक कर्त्तव्यों के पालन में उसके साथ भाग लेने को तैयार हो, और जिसने उसकी सन्तानों को जन्म भी दिया हो, तब तक उसे किसी दूसरी स्त्री को अपनी पत्नी नहीं बनाना चाहिए" (प्रभु, 1954, पृ० 198)। प्रभु के अध्ययन के आधार पर गूड लिखते हैं कि "अनेक संकेतों से पता चलता है कि विवाह के बारे में हिन्दू सांस्कृतिक विचार एक-विवाही था। वैदिक देवता एक-विवाही हैं। घरेलू धार्मिक कर्मकांडों के पालन के नियमों में भी एक से अधिक पत्नी के भाग लेने की किसी सम्भावना की व्यवस्था नहीं है। विवाह संस्कार संपन्न कराने के श्लोकों तथा विवाह-सम्बन्धी दार्शनिक शास्त्रार्थों में वैवाहिक निष्ठा पर बल दिया गया है" (गूड, 1963, पृ० 222)।

जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है कि विवाह का निर्धारण करने अथवा अनुमति का क्या स्थान होता था, हम देखते हैं कि वेदों, सूत्रों तथा स्मृतियों के युग में रोमांटिक प्रेम पर आधारित विवाहों को भी मान्यता प्राप्त थी और गंधर्व विवाह का यद्यपि बहुत अधिक प्रचलन नहीं था, फिर भी समाज में उसे विवाह के एक स्वीकृत रूप की मान्यता प्राप्त थी। इस प्रकार का विवाह भावी वर-वधू की पारस्परिक सहमति पर आधारित होता था (बोधायन, 1 : 2, देखिये राधाकृष्णन्, 1956, पृ० 66)। इस प्रकार के विवाह में प्रेमी वर-मालाओं के आदान-प्रदान के एक साधारण समारोह द्वारा अपनी वधू का वरण करता था। वात्स्यायन ने काम-सूत्र में इसे विवाह की आदर्श पद्धति माना है। कालिदास की महान् नाट्यकृति अभिज्ञान शाकुंतल में दुष्यंत और शकुंतला के बीच इस प्रकार के विवाह का उल्लेख किया गया है। इस प्रसंग में शेठ लिखते हैं :

> भगवान मनु रोमांटिक विवाहों को अस्वीकार करनेवाले सर्वप्रथम लोगों में से थे। उन्होंने गंधर्व सम्बन्धों को वासना पर आधारित ठहराकर उनकी निंदा की और इसलिए उन्हें अशोभनीय माना। रोमांटिक प्रेम को तीन अन्य कारणों से तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था : कहा जाता था कि यह स्वच्छंद काम-क्रीड़ा के लिए मार्ग उन्मुक्त करता है, यह जीवन-साथी को विवेकहीन ढंग से चुनने को प्रोत्साहन देता है, और सबसे बड़ी बात यह है कि इससे परिवार के लिए संकट उत्पन्न होता है (शेठ, 1972)।

वीरगाथा-काल में कन्या को उन पुरुषों में से अपना वर चुनने का अधिकार होता था जिन्हें उनके माता-पिता ने अपनी पुत्री के लिए योग्य वर के रूप में पसन्द किया हो। वीरगाथा-काल में स्वयंवर की प्रथा का प्रचलन हो गया, जिसमें वधू की निजी रुचि और अपनी त्रुटियों के लिए योग्य वर प्राप्त करने में माता-पिता के परामर्श अथवा अनुमति दोनों ही का संयोजन होता था। इस प्रकार माता-पिता के निर्धारित किये हुए विवाहों में पुत्री की अनुमति भी शामिल होती थी। "माता-पिता

द्वारा निर्धारित अल्पवयस्क विवाह जो वाल-विवाह से भिन्न होते थे, भारत में सामान्य रूप से प्रचलित रहे हैं" (राधाकृष्णन्, 1956, पृ० 170)। विवाह-विच्छेद (तलाक़) तथा स्त्रियों के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में भी ऐसी ही स्थिति थी, उन दशाओं अथवा परिस्थितियों का निर्धारण करते हुए जिनमें स्त्री को विवाह-सम्बन्ध भंग करने की अनुमति थी, कौटिल्य लिखते हैं :

> यदि पति दुश्चरित्र हो, या दीर्घकाल से परदेस में हो, या राजद्रोह का अपराधी हो, या अपनी पत्नी के लिए खतरनाक हो, या अपनी जाति से निकाल दिया गया हो, या उसका पुंसत्व नष्ट हो गया हो, तो उसकी पत्नी उसे छोड़ सकती है (अर्थशास्त्र : 3:3; देखिये राधाकृष्णन्, 1956, पृ० 181)।

प्राचीन हिन्दू विधि में केवल उन स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह की स्पष्ट अनुमति का उल्लेख मिलता है जिन्होंने अपने पति को किसी न्यायोचित कारण से छोड़ दिया हो, या जिनके पति उन्हें छोड़कर चले गये हों अथवा मर गये हों (देखिये आयंगर, 1938, पृ० 185)। एक योग्य वर की उचित आयु तथा शिक्षा के सम्बन्ध में भी कामसूत्र में उल्लेख किया गया है कि केवल उसी नवयुवक को विवाह करने का अधिकार होगा जिसने ब्रह्मचर्य के किसी नियम का उल्लंघन किये विना वेदों का अध्ययन किया हो (काम-सूत्र, 5 : 2; देखिये शरयू वाल और वनरसे, 1966, पृ० 21)।

वहुत वाद में जाकर विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारणों से भारत में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने से निरुत्साह किया जाने लगा और यौवनारम्भ से पहले ही विवाह कर देने की प्रथा आरंभ हुई। स्त्रियों की शिक्षा के ह्रास और कन्याओं के लिए विवाह की आयु घटा दिये जाने के कारण उनमें जीवन-साथी चुनने में अपना मत देने की पर्याप्त क्षमता नहीं रह गयी और इस प्रकार शुद्धतः माता-पिता द्वारा निर्धारित विवाहों का प्रचलन हो गया। जैसा कि मेहता ने कहा है :

> हिन्दू कट्टरपंथिता के अन्तर्गत विवाह दो व्यक्तियों के वीच स्वतन्त्र वरण का सवाल नहीं रह गया; इसके विपरीत वह दो परिवारों के वीच वातचीत से निर्धारित सम्बन्ध वन गया। वह वैदिक धार्मिक कर्मकांडों द्वारा विधिवत् संपन्न हुआ एक अटल संस्कार होता था जिसमें उन व्यक्तियों से कोई परामर्श नहीं किया जाता था जिनका उससे सबसे अधिक सम्बन्ध होता था।
>
> हिन्दू कट्टरपंथिता के अनुसार विवाह केवल पति के जीवनकाल तक के लिए ही नहीं होता था, वल्कि यह एक ऐसा सम्बन्ध था जो उसकी मृत्यु के वाद भी वना रहता था। फलस्वरूप सामाजिक प्रथा के अनुसार विधवाओं को सामाजिक प्रथा के अनुसार पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी (मेहता, 1970, पृष्ठ 17-18)।

1954 के विशेष विवाह अधिनियम और 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम का पारित किया जाना, जिनमें विवाह के लिए वालिकाओं तथा वालकों की न्यूनतम आयु

15 और 18 वर्ष निर्धारित की गयी है, विवाह की एकविवाही पद्धति को एकमात्र वैध विवाह-पद्धति माना गया है और पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों ही को विवाह भंग करने तथा पुनर्विवाह करने का अधिकार दिया गया है, इस बात का सूचक है कि हिन्दू समाज एक बार फिर वैदिक काल में प्रचलित व्यवहार को अपना रहा है।

आइये, अब इस विवाह के बारे में पश्चिमी विद्वानों की कुछ परिभाषाओं तथा संकल्पनाओं पर विचार करें। बोगार्डास ने विवाह की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह "एक ऐसी संस्था है जिसमें पुरुषों तथा स्त्रियों को मुख्यतः बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करने तथा घनिष्ठ वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित करके एक-दूसरे के साथ रहने का अवसर दिया जाता है" (बोगार्डास, 1950, पृष्ठ 75)। "यदि एक संस्था के रूप में उस पर विचार किया जाये तो विवाह कामुकता का नियमन करने तथा पारिवारिक जीवन की रक्षा करने की दिशा में समाज के चरम प्रयास का द्योतक है" (चेस्सर, 1964, पृष्ठ 126)। वेस्टरमार्क ने विवाह की परिभाषा इस रूप में की है कि वह "नर और नारी के बीच न्यूनाधिक रूप में एक स्थायी सम्बन्ध होता है जो जनन की क्रिया मात्र से आगे तक भी बना रहता है। यह तो प्राकृतिक इतिहास की दृष्टि से उसकी परिभाषा है। एक सामाजिक संस्था के रूप में वह प्रथा अथवा विधि द्वारा नियमित एक सम्बन्ध होता है" (वेस्टरमार्क, 1928, पृष्ठ 364)। अपनी जानकारी को वन्य.जीवन के निकटतम तथा वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित करते हुए मैलिनोव्स्की ने भी वेस्टरमार्क के अभिमत का समर्थन किया है। उनकी संकल्पना के अनुसार भी विवाह केवल एक "सेक्स-गत विनियोजन" ही नहीं होता बल्कि उसे "जटिल सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित एक संस्था" माना जाता है और यह कि सेक्स-गत विनियोजन उसका मुख्य पक्ष भी नहीं है और वह केवल सेक्स पर आधारित भी नहीं है। (देखिये मैलिनोव्स्की, 1922)।

वेस्टरमार्क के (1925) कथनों का उल्लेख करते हुए एलिस ने लिखा है कि इस शब्द के व्यापक जैविक अर्थ मे विवाह की परिधि मे सेक्स-सम्बन्ध का हर वह सामाजिक रूप आ जाता है जिसका सचेतन अथवा अचेतन मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति हो (एलिस, 1961, पृष्ठ 29)। प्रेम तथा विवाह के बारे में एडलर का अभिमत है :

> प्रेम, और उसके साथ विवाह जो उसकी निष्पत्ति है, विपर्मलिंगी साथी के प्रति घनिष्ठतम लगाव का सूचक है, जो शारीरिक आकर्षण, साहचर्य और सन्तान उत्पन्न करने के निर्णय के रूप में व्यक्त होता है। यह बात सहज ही प्रमाणित की जा सकती है कि प्रेम और विवाह सहयोग का एक पक्ष है—केवल दो व्यक्तियों के कल्याण के लिए ही सहयोग नही, अपितु मानवजाति के कल्याण के लिए भी सहयोग (एडलर, 1962, पृष्ठ 190)।

स्टेंगन के अभिमतों का उल्लेख करते हुए बेरोफ़ और फ़ील्ड लिखते हैं कि समाज के दृष्टिकोण से विवाह एक ऐसी संस्था है जो किसी समाज-विशेष के बच्चों

की संख्या में वृद्धि तथा उनके समाजीकरण को सुनिश्चित बनाने का काम करती है। व्यक्ति के दृष्टिकोण से यह संस्था बच्चे पैदा करने तथा उनका पालन-पोषण करने में योग देती है और स्नेह प्रदान करने के लिए नियंत्रणों का प्रबन्ध करती है (स्वेंसन, 1965)। विवाह व्यक्ति के समाजीकरण का अन्तिम चरण है (पार्सस और वेल्स, 1955) जब वह अपने भविष्य के सारे दायित्व अन्तिम रूप से अपने कन्धों पर ले लेता है (देखिये बेरोफ़ और फ़ेल्ड, 1970, पृष्ठ 71)। चेस्सर के मतानुसार "विवाह एक आवश्यक सामाजिक संस्था है। पारिवारिक जीवन के संरक्षण तथा बच्चों के कल्याण की सुरक्षा के किसी और उपाय की कल्पना ही नहीं की जा सकती।...परन्तु मनुष्य की बनायी हुई हर संस्था में एक मनमानापन होता है, और अनिवार्य रूप से कुछ लोग ऐसे होते हैं जो समाज द्वारा स्वीकृत पद्धति के अनुसार ढल नहीं पाते" (चेस्सर, 1964, पृष्ठ 88)। दूसरी ओर स्टीफेंस का मत है : "विवाह सामाजिक दृष्टि से वैध सेक्स-सम्बन्ध होता है, जो एक सार्वजनिक घोषणा से आरम्भ होता है और जिसे स्थायित्व के किसी विचार से स्थापित किया जाता है; इस सम्बन्ध को एक सुस्पष्ट विवाह-अनुबंध के साथ स्वीकार किया जाता है, जिसमें पति और पत्नी के बीच और पत्नी-पति तथा उनकी सन्तानों के बीच पारस्परिक अधिकारों तथा दायित्वों की विस्तृत व्याख्या रहती है" (स्टीफेंस, 1963, पृष्ठ 5)। लैंट्ज़ और सिंडर के अनुसार, "विवाह एक या एक से अधिक पुरुषों और एक या एक से अधिक स्त्रियों का औपचारिक तथा स्थायी सेक्स-सम्बन्ध होता है, जिसका पालन कुछ नियत अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की परिधि में रह-कर किया जाता है" (लैंट्ज़ और सिंडर, 1969, पृष्ठ 16)। कांट ने विवाह की परिभाषा यह की है कि "दो विपमलिंगी व्यक्तियों को आजीवन एक-दूसरे के सेक्स-गत गुणों पर पारस्परिक स्वामित्व के बंधनों में जकड़ देने" को विवाह कहते हैं (देखिये राधा-कृष्णन्, 1956, पृष्ठ 150)।

विवाह से सम्बन्धित विभिन्न संकल्पनाओं पर विचार करने के बाद हम कह सकते हैं कि परम्परागत हिन्दू संकल्पना के अनुसार विवाह को एक ऐसा धार्मिक संस्कार माना जाता है जिसके सहारे मनुष्य अपने धार्मिक तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार के दायित्वों को पूरा कर सकता है, परन्तु समकालीन पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार वह केवल एक ऐसा सामाजिक अनुबन्ध है जिसके सहारे मनुष्य अपने कर्त्तव्यों अथवा दायित्वों को पूरा करके कुछ सुविधाएँ प्राप्त करता है। परंपरागत हिन्दू संकलपना के अनुसार धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए—परिवार, समाज और मानवजाति के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए—विवाह नितान्त आवश्यक है, जबकि पश्चिम में विवाह को निजी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सुख के लिए आवश्यक समझा जाता है।

इनमें से जिस दृष्टिकोण को भी सही माना जाये, परम्परागत दृष्टि से विवाह को काम-भोग के लिए एक सामाजिक अनुमति अथवा खुली छूट की अपेक्षा एक वैध परिवार की स्थापना के लिए एक सामाजिक संविदा के रूप में अधिक मान्यता दी गयी है। (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 151)। गूड लिखते हैं, "केवल कुछ ही समाजों

में विवाहों की व्यवस्था पति और पत्नी के निजी सुख के लिए की गयी है। इसके बजाय उन्हें और उसके सगे-सम्बन्धियों को अधिक चिन्ता इसी बात की रहती थी कि वे एक-दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते हैं या नहीं और एक-दूसरे का उचित सम्मान करते हैं या नहीं" (गूड, 1965, पृष्ठ 72)। रसेल ने बताया है कि विवाह "दो व्यक्तियों के एक-दूसरे के साथ रहने में सुख अनुभव करने से अधिक गम्भीर चीज़ है; वह एक ऐसी संस्था है जो इस बात के कारण कि उसके फलस्वरूप सन्तान की उत्पत्ति होती है, वह समाज के ताने-बाने का एक विभिन्न अंग होती है, और उसका महत्त्व पति और पत्नी की निजी भावनाओं की परिधि से कहीं अधिक व्यापक होता है" (रसेल, 1959, पृष्ठ 51-52)।

पुरुषों तथा स्त्रियों के जीवन पर विवाह का हमेशा से इतना गहरा प्रभाव रहा है कि इस संस्था के प्रति उनके रवैये तथा अभिवृत्ति की सहायता से सहज ही इस बात का संकेत मिल सकता है कि किसी समाज-विशेष में विवाह तथा वैवाहिक सम्बन्धों में वर्तमान प्रवृत्तियाँ क्या हैं और भावी प्रवृत्तियाँ क्या होंगी।

विवाह से सम्बन्धित उपर्युक्त संकल्पनाओं तथा परिभाषाओं से किसी समाज-विशेष के सदस्यों की बदलती हुई अभिवृत्तियों के बारे में कुछ तर्कसंगत प्रश्न उठते हैं जो उस समाज में होनेवाले सामाजिक परिवर्तनों के विशेष पक्षों की दिशाओं को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं: (1) विवाह की आवश्यकता, (2) विवाह की संकल्पना, (3) विवाह करने का लक्ष्य, (4) विवाह करने की आयु, (5) भावी रूप, (6) विवाह का रूप, (7) विवाह की पद्धति, (8) तलाक़, और (9) विवाह-विच्छेद अथवा एक साथी की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह। इस अध्याय में इन्हीं प्रश्नों के बारे में शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों की अभिवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है।

ये अभिवृत्तियाँ श्रमजीवी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्रों के प्रत्युत्तरों के माध्यम से प्रस्तुत की गयी हैं। इस अध्याय में जिन व्यक्ति-अध्ययनों को प्रस्तुत किया गया है तथा जिनकी विवेचना की गयी है, उनका सम्बन्ध विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों की ऐसी स्त्रियों से है जिन्हें श्रमजीवी स्त्रियों के दो ऐसे नमूनों में से चुना गया है जिनमें दस वर्ष के अन्तराल से साक्षात्कार किया गया था। सुमन और कमला से दस वर्ष पहले साक्षात्कार किया गया था और माया तथा सोनिया का अध्ययन दस वर्ष बाद किया गया, जबकि रश्मि तथा शालिनी का अध्ययन दस वर्ष पहले भी किया गया था और दस वर्ष बाद भी। इन स्त्रियों के अतिरिक्त ज्योति, कंचन, वासना, पमिला और मोना के विचार तथा मत भी दिये गये हैं जिनका उल्लेख दूसरे और चौथे अध्यायों में विस्तारपूर्वक किया गया है।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 17

तेईस-वर्षीय सुमन पिछले डेढ़ साल से एक अस्पताल में डाक्टर के रूप में काम

कर रही थी। वह एम० बी० बी० एस० पास थी और उसे 350 रुपये वेतन मिलता था। सूरत-शक्ल मामूली से भी कुछ कम ही थी, उसका क़द छोटा और रंग काला था और उसे अपने इस अनाकर्षक रूप का बहुत दुःखद आभास रहता था। वह बहुत शान्त स्वभाव की और गम्भीर थी, रख-रखाव अच्छा और कपड़े हमेशा बहुत साफ-सुथरे रहते थे और वह काफी प्रभावशाली लगती थी। बातचीत करने में वह बहुत रोचक थी और उसका व्यक्तित्व सुखद था।

सुमन एक कट्टरपंथी हिन्दू परिवार की लड़की थी जिसमें लड़कियों को न उच्च शिक्षा प्राप्त करने दी जाती थी और न ही उन्हें घूमने-फिरने और अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता थी। अपने माता-पिता की तरह वह भी धार्मिक विचार रखती थी और ईश्वर में आस्था रखती थी। यद्यपि मन्दिरों में जाने में वह विश्वास नहीं रखती थी पर पूजा-प्रार्थना नियमित रूप से करती थी। उसकी माँ ने बिल्कुल भी शिक्षा नहीं पायी थी और बस नाममात्र को पढ़-लिख पाती थीं। उसकी माँ बहुत ही दब्बू और भीरु स्वभाव की थीं, अपने काम-काज में बहुत कुशल थीं और उसके पिता की सेवा बड़ी निष्ठा के साथ करती थीं।

सुमन का बचपन सुख-सुविधाओं के बीच बीता था क्योंकि उस समय उसके पिता बहुत अच्छी नौकरी पर लगे हुए थे और बहुत सम्पन्न थे। उसके तीन भाई थे—एक बड़ा और दो छोटे—और अकेली बेटी होने के नाते उसके माता-पिता उससे बहुत प्यार करते थे। चूँकि उसके पिता को बहुत छोटे-छोटे शहरों में काम करना पड़ता था, इसलिए उसका अधिकांश बचपन और छात्र-जीवन वहीं बीता था और वह बहुत साधारण स्कूलों में पढ़ी थी। आरम्भ से ही वह पढ़ने में बहुत तेज़ थी और उसे अच्छे नम्बर मिलते थे। उसकी तुलना में उसके भाई बहुत निकम्मे थे और पढ़ने-लिखने से कोई रुचि नहीं रखते थे। शुरू में तो उसके पिता उच्च शिक्षा नहीं दिलाना चाहते थे, परन्तु अपने बेटों से निराश होकर उन्होंने सारी आशाएँ बेटी से लगायीं और यह इच्छा प्रकट की कि वह डाक्टरी पढ़े। परन्तु उसे भौतिकी से रुचि थी और वह डाक्टरी की बजाय बी० एस०-सी० करना चाहती थी। उसकी माँ, दादी और चाचियाँ, मौसियाँ आदि चाहती थीं कि परिवार की परम्परा के अनुसार उसका विवाह कर दिया जाये।

उन्हीं दिनों उसके पिता की नौकरी छूट गयी जिसके कारण सुमन बहुत चिन्तित हुई। वह जानती थी कि उसकी बिरादरी में यह चलन था कि लड़के के माँ-बाप दहेज में बहुत पैसा माँगते थे। उसे इस बात का पूरी तरह आभास था कि उसकी सूरत-शक्ल साधारण से भी कुछ कम ही अच्छी थी और इसलिए वह महसूस करती थी कि थोड़े ही लोग ऐसे होंगे जो उससे विवाह करना चाहें। इस प्रकार उसके अन्दर एक मनोग्रन्थि पैदा हो गयी और बाद में उसे विवाह से अरुचि-सी हो गयी और वह मेडिकल कालेज में नाम लिखाकर जान-बूझकर पाँच साल के लिए विवाह से बचना चाहती थी। यही उसके पिता भी चाहते थे। उसने यह भी महसूस किया [illegible] उसे

आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो जाना चाहिए ताकि उसके माता-पिता पर उसका विवाह करने के दायित्व का बोझ न रह जाये।

मेडिकल कालेज में प्रथम वर्ष की पढ़ाई के दौरान वह बहुत निराश होने लगी पर उसके पिता ने उसे जी लगाकर परिश्रम करने की प्रेरणा दी। किसी कारण उसे वह स्थान और उतने नम्बर न मिल सके जिसकी उसने आशा की थी। इसने मेडिकल कालेज के अध्यापकों के प्रति और स्वयं अपने प्रति उसका रवैया बिल्कुल बदल गया। उसने अनुभव किया कि सुन्दरता और चुस्ती का बहुत महत्त्व है और चूंकि वह अंग्रेज़ी प्रवाह के साथ नहीं बोल पाती है और प्रश्नों के उत्तर चुस्ती के साथ नहीं दे सकती है, इसीलिए उसे सिद्धान्त की परीक्षा में भी अच्छे नम्बर नहीं मिल सके जिसका उसे बहुत अच्छा ज्ञान था। इससे वह हतोत्साह हो गयी और उसने मेहनत करना छोड़ दिया। परन्तु शीघ्र ही उसे इस बात का आभास हुआ कि उसके माँ-बाप के पास बहुत पैसा नहीं है और उसकी पढ़ाई उनको बहुत महँगी पड़ रही है। इसलिए उसने डाक्टर बनकर पैसा कमाने और अपने माँ-बाप तथा छोटे भाइयों की सहायता करने का दृढ़ निश्चय किया। उसने यह भी महसूस किया कि उसके माँ-बाप के पास उसका दहेज देने के लिए कोई पैसा नहीं है, जिसके बिना उसका विवाह होना कठिन था। इसलिए उसने अपना सारा ध्यान पढ़ाई पर केन्द्रित किया और एम० बी० एस० की पढ़ाई पूरी कर ली। शिक्षा पूरी हो जाने पर उसे अस्पताल में काम करना पड़ा और वह हाउस-सर्जनों के क्वार्टरों में रहने लगी। वह अपनी अधिकांश कमाई अपने छोटे भाइयों, अपनी माँ और स्वयं अपने लिए चीज़ें खरीदने पर खर्च कर देती थी। उसने बताया कि जब से वह पैसा कमाने लगी उसके बाद से उसे जीवन कुल मिलाकर अधिक रोचक लगने लगा और वह अब उतना भारी बोझ नहीं लगता था। उसे इस बात पर बड़ा सन्तोष था कि उसने आर्थिक रूप से अपने पिता की सहायता की थी, रुपये-पैसे के मामले में वह स्वावलम्बी थी और अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी आ-जा सकती थी। उसने कहा कि लगभग एक वर्ष पहले तक वह सोचती थी कि वह कभी भी विवाह करना नहीं चाहेगी और यह कि विवाह करना आवश्यक नहीं है। वह विश्वास करती थी कि वह विवाह किये बिना भी रह लेगी और अपने व्यवसाय पर ही सारा ध्यान केन्द्रित करेगी और अपने माँ-बाप की देखभाल करेगी। मुख्यत: इसका कारण यह था कि वह सोचती थी कि उसकी बिरादरी का कोई भी नवयुवक उससे विवाह करने को तैयार नहीं होगा और अगर कोई तैयार हो भी गया तो वह दहेज में बहुत बड़ी रकम माँगेगा जिसे दे पाना उसके माँ-बाप की सामर्थ्य के बाहर होगा।

जब भी उसके माँ-बाप यह तर्क करते कि हर लड़की के लिए विवाह करना नितान्त आवश्यक है और माँ-बाप का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी बेटियों का विवाह करायें, चाहे इसके लिए उन्हें भीख ही क्यों न माँगनी पड़े और उधार ही क्यों न लेना पड़े, तो सुमन बहुत उदास हो जाती और झुंझला उठती। परन्तु कुछ महीने पहले एक नवयुवक जो डाक्टर था और उसी के साथ काम करता था, उसके प्रति रुचि दिखाने

लगा और उसकी ओर ध्यान देने लगा। इससे उसे बहुत सन्तोष और सुख मिला और वह भी उसे बहुत चाहने लगी। उस नवयुवक की ओर से, जो उसी की जाति-बिरादरी का था, इस अप्रत्याशित व्यवहार के कारण जीवन के प्रति और विशेष रूप से विवाह करने के बारे में सुमन का रवैया बिल्कुल बदल गया। अब उसने बताया कि वह विवाह करना चाहती है। वह यह सोचने लगी कि विवाह करना आवश्यक है क्योंकि उससे शारीरिक और संवेगात्मक दोनों ही प्रकार की सुरक्षा मिलती है और उससे लड़की को एक संरक्षक मिल जाता है। उसने यह भी सोचा कि इस प्रकार वह अपने पति तथा परिवार के प्रति अपने पवित्र कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सकेगी।

उसने कहा, "विवाह इसलिए आवश्यक है कि वह वैध ढंग से सन्तान उत्पन्न करने तथा उसका पालन-पोषण करने का अवसर प्रदान करता है।" जब उससे पूछा गया कि आगे चलकर उसकी योजना विवाह करने की है या काम करने की या एक साथ दोनों ही की तो उसने उत्तर दिया, "विवाह करने की", और कहा कि उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य विवाह करना है। वह बताती रही कि विवाह के बाद वह काम करना नहीं चाहेगी जब तक कि आर्थिक कारणों से विवश न हो जाये। वह कहती रही कि स्त्री का बुनियादी कर्त्तव्य है विवाह करना और अपने पति तथा अपने घर-बार की देखभाल करना। फिर भी, उसने स्वीकार किया कि विवाह हो जाने के बाद भी वह चाहेगी कि उसे दो घंटे के लिए कोई डाक्टर का काम मिल जाये। उसके गृहस्थी के कर्त्तव्यों के पालन में कोई विघ्न नहीं पड़ेगा और साथ ही वह समय की गति के अनुसार अपने व्यावसायिक ज्ञान को भी बढ़ाती रह सकेगी ताकि अगर जीवन में आगे चलकर कभी उसे अपना व्यवसाय फिर करना पड़े तो वह कर सके।

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम विवाह क्यों करना चाहती हो ?" उसने कहा, "क्योंकि मेरा सम्बन्ध परम्पराओं में जकड़े हुए एक ऐसे परिवार से है जिसमें इस बात का चलन रहा है कि हर लड़की की आयु अधिक हो जाने से पहले ही विवाह कर ले, और मेरे माता-पिता की भी तीव्र इच्छा यही रही है कि वे मेरा विवाह कर दें और इस प्रकार अपना पवित्र कर्त्तव्य पूरा कर दें। मैं समझती हूँ कि मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मैं अपने माता-पिता की इच्छा पूरी करूँ। लेकिन मैं इसलिए भी विवाह करना चाहती हूँ कि मैं किसी ऐसे पुरुष की होकर रहना चाहती हूँ जो मुझे बहुत अच्छा लगता हो और मैं अपने पति के रूप में उससे प्रेम करना चाहती हूँ और उसके संरक्षण तथा उसकी देखभाल में रहना चाहती हूँ।" यह पूछे जाने पर कि "विवाह से तुम किस बात की आशा रखती हो ?" उसने उत्तर दिया, "मैं विवाह से बहुत अधिक कुछ नहीं चाहती। मैं यह आशा अवश्य करती हूँ कि विवाह से मुझे एक ऐसे व्यक्ति की सेवा करने का अवसर मिलेगा जिसे मैं बहुत सराहती हूँ और जिसका मैं बहुत सम्मान करती हूँ और मैं उसे अपना स्नेह दे सकूँगी और उसके परिवार वालों की सेवा कर सकूँगी और उसका स्नेह तथा सम्मान प्राप्त कर सकूँगी।"

जब उससे पूछा गया, "फिर तुम विवाह कर क्यों नहीं लेतीं ?" तो उसने

आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो जाना चाहिए ताकि उसके माता-पिता पर उसका विवाह करने के दायित्व का बोझ न रह जाये।

मेडिकल कालेज में प्रथम वर्ष की पढ़ाई के दौरान वह बहुत निराश होने लगी पर उसके पिता ने उसे जी लगाकर परिश्रम करने की प्रेरणा दी। किसी कारण उसे वह स्थान और उतने नम्बर न मिल सके जिसकी उसने आशा की थी। इससे मेडिकल कालेज के अध्यापकों के प्रति और स्वयं अपने प्रति उसका रवैया बिल्कुल बदल गया। उसने अनुभव किया कि सुन्दरता और चुस्ती का बहुत महत्त्व है और चूंकि वह अंग्रेजी प्रवाह के साथ नहीं बोल पाती है और प्रश्नों के उत्तर चुस्ती के साथ नहीं दे सकती है, इसीलिए उसे सिद्धान्त की परीक्षा में भी अच्छे नम्बर नहीं मिल सके जिसका उसे बहुत अच्छा ज्ञान था। इससे वह हतोत्साह हो गयी और उसने मेहनत करना छोड़ दिया। परन्तु शीघ्र ही उसे इस बात का आभास हुआ कि उसके मां-बाप के पास बहुत पैसा नहीं है और उसकी पढ़ाई उनको बहुत महंगी पड़ रही है। इसलिए उसने डाक्टर बनकर पैसा कमाने और अपने मां-बाप तथा छोटे भाइयों की सहायता करने का दृढ़ निश्चय किया। उसने यह भी महसूस किया कि उसके मां-बाप के पास उसका दहेज देने के लिए कोई पैसा नहीं है, जिसके बिना उसका विवाह होना कठिन था। इसलिए उसने अपना सारा ध्यान पढ़ाई पर केन्द्रित किया और एम० बी० बी० एस० की पढ़ाई पूरी कर ली। शिक्षा पूरी हो जाने पर उसे अस्पताल में काम करना पड़ा और वह हाउस-सर्जनों के क्वार्टरों में रहने लगी। वह अपनी अधिकांश कमाई अपने छोटे भाइयों, अपनी मां और स्वयं अपने लिए चीजें खरीदने पर खर्च कर देती थी। उसने बताया कि जब से वह पैसा कमाने लगी उसके बाद से उसे जीवन कुल मिलाकर अधिक रोचक लगने लगा और वह अब उतना भारी बोझ नहीं लगता था। उसे इस बात पर बड़ा सन्तोष था कि उसने आर्थिक रूप से अपने पिता की सहायता की थी, रुपये-पैसे के मामले में वह स्वावलम्बी थी और अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी आ-जा सकती थी। उसने कहा कि लगभग एक वर्ष पहले तक वह सोचती थी कि वह कभी भी विवाह करना नहीं चाहेगी और यह कि विवाह करना आवश्यक नहीं है। वह विश्वास करती थी कि वह विवाह किये बिना भी रह लेगी और अपने व्यवसाय पर ही सारा ध्यान केन्द्रित करेगी और अपने मां-बाप की देखभाल करेगी। मुख्यतः इसका कारण यह था कि वह सोचती थी कि उसकी बिरादरी का कोई भी नवयुवक उससे विवाह करने को तैयार नहीं होगा और अगर कोई तैयार हो भी गया तो वह दहेज में बहुत बड़ी रकम मांगेगा जिसे दे पाना उसके मां-बाप की सामर्थ्य के बाहर होगा।

जब भी उसके मां-बाप यह तर्क करते कि हर लड़की के लिए विवाह करना नितान्त आवश्यक है और मां-बाप का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी बेटियों का विवाह करायें, चाहे इसके लिए उन्हें भीख ही क्यों न मांगनी पड़े और उधार ही क्यों न लेना पड़े, तो सुमन बहुत उदास हो जाती और झुंझला उठती। परन्तु कुछ महीने पहले एक नवयुवक जो डाक्टर था और उसी के साथ काम करता था, उसके प्रति रुचि दिखाने

लगा और उसकी ओर ध्यान देने लगा । इससे उसे वहुत सन्तोष और सुख मिला और वह भी उसे वहुत चाहने लगी । उस नवयुवक की ओर से, जो उसी की जाति-विरादरी का था, इस अप्रत्याशित व्यवहार के कारण जीवन के प्रति और विशेप रूप से विवाह करने के वारे में सुमन का रवैया विल्कुल वदल गया । अव उसने वताया कि वह विवाह करना चाहती है। वह यह सोचने लगी कि विवाह करना आवश्यक है क्योंकि उससे शारीरिक और संवेगात्मक दोनों ही प्रकार की सुरक्षा मिलती है और उससे लड़की को एक संरक्षक मिल जाता है । उसने यह भी सोचा कि इस प्रकार वह अपने पति तथा परिवार के प्रति अपने पवित्र कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सकेगी ।

उसने कहा, "विवाह इसलिए आवश्यक है कि वह वैध ढंग से सन्तान उत्पन्न करने तथा उसका पालन-पोषण करने का अवसर प्रदान करता है ।" जव उससे पूछा गया कि आगे चलकर उसकी योजना विवाह करने की है या काम करने की या एक साथ दोनों ही की तो उसने उत्तर दिया, "विवाह करने की", और कहा कि उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य विवाह करना है । वह वताती रही कि विवाह के वाद वह काम करना नहीं चाहेगी जव तक कि आर्थिक कारणों से विवश न हो जाये । वह कहती रही कि स्त्री का वुनियादी कर्त्तव्य है विवाह करना और अपने पति तथा अपने घर-वार की देखभाल करना । फिर भी, उसने स्वीकार किया कि विवाह हो जाने के वाद भी वह चाहेगी कि उसे दो घंटे के लिए कोई डाक्टर का काम मिल जाये । उसके गृहस्थी के कर्त्तव्यों के पालन में कोई विघ्न नहीं पड़ेगा और साथ ही वह समय की गति के अनुसार अपने व्यावसायिक ज्ञान को भी वढ़ाती रह सकेगी ताकि अगर जीवन में आगे चलकर कभी उसे अपना व्यवसाय फिर करना पड़े तो वह कर सके ।

इस प्रश्न के उत्तर में कि "तुम विवाह क्यों करना चाहती हो ?" उसने कहा, "क्योंकि मेरा सम्वन्ध परम्पराओं में जकड़े हुए एक ऐसे परिवार से है जिसमें इस वात का चलन रहा है कि हर लड़की की आयु अधिक हो जाने से पहले ही विवाह कर ले, और मेरे माता-पिता की भी तीव्र इच्छा यही रही है कि वे मेरा विवाह कर दें और इस प्रकार अपना पवित्र कर्त्तव्य पूरा कर दें । मैं समझती हूँ कि मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मैं अपने माता-पिता की इच्छा पूरी करूँ । लेकिन मैं इसलिए भी विवाह करना चाहती हूँ कि मैं किसी ऐसे पुरुप की होकर रहना चाहती हूँ जो मुझे वहुत अच्छा लगता हो और मैं अपने पति के रूप में उससे प्रेम करना चाहती हूँ और उसके संरक्षण तथा उसकी देखभाल में रहना चाहती हूँ ।" यह पूछे जाने पर कि "विवाह से तुम किस वात की आशा रखती हो ?" उसने उत्तर दिया, "मैं विवाह से वहुत अधिक कुछ नहीं चाहती । मैं यह आशा अवश्य करती हूँ कि विवाह से मुझे एक ऐसे व्यक्ति की सेवा करने का अवसर मिलेगा जिसे मैं वहुत सराहती हूँ और जिसका मैं वहुत सम्मान करती हूँ और मैं उसे अपना स्नेह दे सकूँगी और उसके परिवार वालों की सेवा कर सकूँगी और उसका स्नेह तथा सम्मान प्राप्त कर सकूँगी ।"

जव उससे पूछा गया, "फिर तुम विवाह कर क्यों नहीं लेतीं ?" तो उसने

उत्तर दिया, "इसलिए कि वह उस समय तक विवाह नहीं करना चाहते जब तक कि उन्हें कोई बेहतर नौकरी न मिल जाये और उनके माता-पिता सहर्ष मेरे माता-पिता की ओर से रखे गये उनके साथ मेरे विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार न कर लें। हालांकि वह कहते हैं कि उनके माता-पिता मान जायेंगे पर मुझे कभी-कभी डर लगता है कि शायद वे न मानें। अगर इस प्रकार की कोई बात हुई तो मुझे बहुत दुःख होगा।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि स्त्री को विवाह क्यों करना चाहिए? सुमन ने कहा कि स्त्री को सामाजिक प्रथाओं तथा परम्पराओं का पालन करने के लिए विवाह करना चाहिए, इसलिए कि उसे सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सम्मान मिले और उसका घर-बार, पति और बच्चे हों। उसने यह भी कहा कि स्त्री को इसलिए भी विवाह करना चाहिए कि वह किसी की होकर रह सके और अपने पति तथा परिवार के अन्य सदस्यों को अपना प्यार दे सके और उनका प्यार पा सके। सुमन ने आगे चलकर कहा कि विवाह इस बात का अवसर प्रदान करता रहता है कि निरन्तर सहवास से प्रेम का विकास हो जो अन्यथा सम्भव नहीं है। वह यह महसूस करती थी कि विवाह से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने और दूसरों को स्नेह देने तथा उनका स्नेह प्राप्त करने का एक मार्ग उन्मुक्त होता है।

उसने स्वीकार किया कि एक वर्ष पहले तक वह विश्वास करती थी कि विवाह माता-पिता को तय करना चाहिए और उसके लिए लड़के और लड़की की केवल औपचारिक स्वीकृति ली जा सकती है, परन्तु अब वह यह अनुभव करने लगी थी कि विवाह शुद्धतः माता-पिता का तय किया मामला नहीं होना चाहिए और यह कि एक-दूसरे को थोड़ा-बहुत जान लेने के बाद ही विवाह होना चाहिए। फिर भी अब तक उसका यही विश्वास है कि लड़कों और लड़कियों को अपनी इच्छाओं के बावजूद माता-पिता की हार्दिक अनुमति के बिना विवाह नहीं करना चाहिए और यदि असहमति हो तो उन्हें या तो अपने माता-पिता को समझा-बुझाकर अपनी पसन्द के बारे में सहमत कर लेना चाहिए या फिर उस व्यक्ति के साथ विवाह करने का विचार त्याग देना चाहिए।

सुमन को दृढ़ विश्वास था कि हर व्यक्ति को अपनी बिरादरी, प्रदेश, धर्म और जाति की परिधि में ही विवाह करना चाहिए और उसने कहा कि वह स्वयं अपनी बिरादरी और अपने प्रदेश के ही किसी आदमी से विवाह करना चाहेगी और यह कि उसे अपने धर्म तथा अपनी जाति के बाहर विवाह करने का विचार बिल्कुल पसन्द नहीं है। उसने समझाया कि अपनी बिरादरी और अपने प्रदेश के भीतर विवाह करना इसलिए अच्छा है कि लड़के और लड़की दोनों के परिवारों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान में समानता होगी और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियां भी एक जैसी ही होंगी, और उसको विश्वास था कि इससे लड़की को नये परिवार और उसके रहन-सहन के ढंग के अनुसार अपने को ढाल लेने में सुविधा होगी। परन्तु, उसने यह भी कहा कि उसे इस बात में भी कोई आपत्ति नहीं है कि कोई लड़की किसी दूसरी बिरादरी के लड़के से विवाह कर ले यदि दोनों एक-दूसरे के प्रति सम्मान और स्नेह

रखते हों और दोनों के माता-पिता उन्हें विवाह करने की स्वीकृति दे दें। परन्तु यदि दो युवा व्यक्ति अपने माता-पिता या अपने अभिभावकों की अनुमति के बिना विवाह कर लें तो वह इसे बहुत आपत्तिजनक मानेगी।

उसने कहा कि उसकी राय में सबसे अच्छा उपाय यह है कि माता-पिता या सगे-सम्बन्धी विवाह के लिए किसी योग्य पात्र का सुझाव दे दें और अन्तिम निर्णय लड़के-लड़कियों पर छोड़ दें, या फिर लड़का या लड़की किसी उचित पात्र का सुझाव दे दें और माता-पिता अन्तिम निर्णय कर दें। वह यह भी महसूस करती थी कि दोनों के परिवारों की रुचियों तथा विचारों को उससे अधिक या कम-से-कम उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना कि विवाह करनेवाले युवा व्यक्तियों की रुचियों को। पूछे जाने पर उसने बताया कि उसकी राय में लड़की के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 23 और 29 वर्ष के बीच है और 16 वर्ष से कम आयु की लड़की को तो विवाह करने ही नहीं देना चाहिए। उसने कहा कि लड़के और लड़की की आयु में 7 से 10 वर्ष तक का अन्तर होना चाहिए। उसने कहा कि वह अपनी ही आयु के या अपने से छोटे किसी आदमी के साथ विवाह नहीं करना चाहेगी क्योंकि वह समझती थी कि यदि वह उससे बड़ा न हुआ तो उसका सम्मान नहीं कर सकेगी।

अपने जीवन-साथी में वह किन गुणों को महत्त्व देती है, इसके बारे में उसने कहा कि वह चाहेगी कि वह उससे अधिक पढ़ा-लिखा और बुद्धि, आर्थिक क्षमता तथा आत्मविश्वास में उससे श्रेष्ठतर हो ताकि वह उसका सम्मान कर सके। परन्तु विचित्र बात है कि इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि वह ऐसा जीवन-साथी नहीं चाहेगी जो देखने में उससे अधिक सुन्दर हो। उसका विश्वास था कि पति की सूरत-शक्ल साधारण होनी चाहिए ताकि दूसरी स्त्रियाँ उसकी ओर आकृष्ट न हों और वह अपनी पत्नी को महत्त्व दे सके और उससे प्रेम कर सके। यह अभिवृत्ति उस गहरी मनोग्रन्थि का परिणाम हो सकती थी जो अपनी साधारण सूरत-शक्ल के कारण उसके मन में पैदा हो गयी थी। उसकी संकल्पना के अनुसार पति के सबसे महत्त्वपूर्ण गुण थे—अच्छा चरित्र, श्रेष्ठ शिक्षा, और अपने व्यवसाय में दक्षता।

उससे पूछा गया कि विवाह के बारे में निम्नलिखित कथनों में से वह किससे सहमत है : (1) "विवाह एक पवित्र संस्कार है जो मुख्यत: किसी व्यक्ति के कर्त्तव्य के पालन के लिए और परिवार की भलाई तथा कल्याण के लिए संपन्न किया जाता है।" (2) "विवाह एक सामाजिक अनुबन्ध है जो मुख्यत: व्यक्ति की भलाई के लिए और उस पुरुष अथवा स्त्री के निजी सुख-सन्तोष के लिए किया जाता है।" (3) "विवाह एक परम्परागत सामाजिक संस्था है जो व्यक्ति के सामाजिक कर्त्तव्य के निर्वाह और व्यक्ति तथा परिवार के सुख-सन्तोष दोनों ही उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विकसित की गयी है।" इसके उत्तर में उसने कहा कि वह इनमें से तीसरे कथन से सबसे अधिक सहमत है। वह इस बात को अधिक उचित समझती थी कि विवाह वैदिक पद्धति के अनुसार हो और उसके साथ कुछ पुरानी धार्मिक प्रथाओं का भी पालन किया जाये और

उत्तर दिया, "इसलिए कि वह उस समय तक विवाह नहीं करना चाहते जब तक कि उन्हें कोई बेहतर नौकरी न मिल जाये और उनके माता-पिता सहर्ष मेरे माता-पिता की ओर से रखे गये उनके साथ मेरे विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार न कर लें। हालाँकि वह कहते हैं कि उनके माता-पिता मान जायेंगे पर मुझे कभी-कभी डर लगता है कि शायद वे न मानें। अगर इस प्रकार की कोई बात हुई तो मुझे बहुत दुःख होगा।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि स्त्री को विवाह क्यों करना चाहिए? सुमन ने कहा कि स्त्री को सामाजिक प्रथाओं तथा परम्पराओं का पालन करने के लिए विवाह करना चाहिए, इसलिए कि उसे सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सम्मान मिले और उसका घर-बार, पति और बच्चे हों। उसने यह भी कहा कि स्त्री को इसलिए भी विवाह करना चाहिए कि वह किसी की होकर रह सके और अपने पति तथा परिवार के अन्य सदस्यों को अपना प्यार दे सके और उनका प्यार पा सके। सुमन ने आगे चलकर कहा कि विवाह इस बात का अवसर प्रदान करता रहता है कि निरन्तर सहवास से प्रेम का विकास हो जो अन्यथा सम्भव नहीं है। वह यह महसूस करती थी कि विवाह से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने और दूसरों को स्नेह देने तथा उनका स्नेह प्राप्त करने का एक मार्ग उन्मुक्त होता है।

उसने स्वीकार किया कि एक वर्ष पहले तक वह विश्वास करती थी कि विवाह माता-पिता को तय करना चाहिए और उसके लिए लड़के और लड़की की केवल औपचारिक स्वीकृति ली जा सकती है, परन्तु अब वह यह अनुभव करने लगी थी कि विवाह शुद्धतः माता-पिता का तय किया मामला नहीं होना चाहिए और यह कि एक-दूसरे को थोड़ा-बहुत जान लेने के बाद ही विवाह होना चाहिए। फिर भी अब तक उसका यही विश्वास है कि लड़कों और लड़कियों को अपनी इच्छाओं के बावजूद माता-पिता की हार्दिक अनुमति के बिना विवाह नहीं करना चाहिए और यदि असहमति हो तो उन्हें या तो अपने माता-पिता को समझा-बुझाकर अपनी पसन्द के बारे में सहमत कर लेना चाहिए या फिर उस व्यक्ति के साथ विवाह करने का विचार त्याग देना चाहिए।

सुमन को दृढ़ विश्वास था कि हर व्यक्ति को अपनी बिरादरी, प्रदेश, धर्म और जाति की परिधि में ही विवाह करना चाहिए और उसने कहा कि वह स्वयं अपनी बिरादरी और अपने प्रदेश के ही किसी आदमी से विवाह करना चाहेगी और यह कि उसे अपने धर्म तथा अपनी जाति के बाहर विवाह करने का विचार बिल्कुल पसन्द नहीं है। उसने समझाया कि अपनी बिरादरी और अपने प्रदेश के भीतर विवाह करना इसलिए अच्छा है कि लड़के और लड़की दोनों के परिवारों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान में समानता होगी और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियाँ भी एक जैसी ही होंगी, और उसको विश्वास था कि इससे लड़की को नये परिवार और उसके रहन-सहन के ढंग के अनुसार अपने को ढाल लेने में सुविधा होगी। परन्तु, उसने यह भी कहा कि उसे इस बात में भी कोई आपत्ति नहीं है कि कोई लड़की किसी दूसरी बिरादरी के लड़के से विवाह कर ले यदि दोनों एक-दूसरे के प्रति सम्मान और स्नेह

रखते हों और दोनों के माता-पिता उन्हें विवाह करने की स्वीकृति दे दें । परन्तु यदि दो युवा व्यक्ति अपने माता-पिता या अपने अभिभावकों की अनुमति के विना विवाह कर लें तो वह इसे वहुत आपत्तिजनक मानेगी ।

उसने कहा कि उसकी राय में सवसे अच्छा उपाय यह है कि माता-पिता या सगे-सम्वन्धी विवाह के लिए किसी योग्य पात्र का सुझाव दे दें और अन्तिम निर्णय लड़के-लड़कियों पर छोड़ दें, या फिर लड़का या लड़की किसी उचित पात्र का सुझाव दे दें और माता-पिता अन्तिम निर्णय कर दें । वह यह भी महसूस करती थी कि दोनों के परिवारों की रुचियों तथा विचारों को उससे अधिक या कम-से-कम उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना कि विवाह करनेवाले युवा व्यक्तियों की रुचियों को । पूछे जाने पर उसने वताया कि उसकी राय में लड़की के लिए विवाह करने की सवसे उपयुक्त आयु 23 और 29 वर्ष के वीच है और 16 वर्ष से कम आयु की लड़की को तो विवाह करने ही नहीं देना चाहिए । उसने कहा कि लड़के और लड़की की आयु में 7 से 10 वर्ष तक का अन्तर होना चाहिए । उसने कहा कि वह अपनी ही आयु के या अपने से छोटे किसी आदमी के साथ विवाह नहीं करना चाहेगी क्योंकि वह समझती थी कि यदि वह उससे वड़ा न हुआ तो उसका सम्मान नहीं कर सकेगी ।

अपने जीवन-साथी में वह किन गुणों को महत्त्व देती है, इसके वारे में उसने कहा कि वह चाहेगी कि वह उससे अधिक पढ़ा-लिखा और वुद्धि, आर्थिक क्षमता तथा आत्मविश्वास में उससे श्रेष्ठतर हो ताकि वह उसका सम्मान कर सके । परन्तु विचित्र वात है कि इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि वह ऐसा जीवन-साथी नहीं चाहेगी जो देखने में उससे अधिक सुन्दर हो । उसका विश्वास था कि पति की सूरत-शक्ल सावारण होनी चाहिए ताकि दूसरी स्त्रियाँ उसकी ओर आकृष्ट न हों और वह अपनी पत्नी को महत्त्व दे सके और उससे प्रेम कर सके । यह अभिवृत्ति उस गहरी मनोग्रन्थि का परिणाम हो सकती थी जो अपनी साधारण सूरत-शक्ल के कारण उसके मन में पैदा हो गयी थी । उसकी संकल्पना के अनुसार पति के सवसे महत्त्वपूर्ण गुण थे—अच्छा चरित्र, श्रेष्ठ शिक्षा, और अपने व्यवसाय में दक्षता ।

उससे पूछा गया कि विवाह के वारे में निम्नलिखित कथनों में से वह किससे सहमत है : (1) "विवाह एक पवित्र संस्कार है जो मुख्यत: किसी व्यक्ति के कर्त्तव्य के पालन के लिए और परिवार की भलाई तथा कल्याण के लिए संपन्न किया जाता है ।" (2) "विवाह एक सामाजिक अनुवन्ध है जो मुख्यत: व्यक्ति की भलाई के लिए और उस पुरुष अथवा स्त्री के निजी सुख-सन्तोष के लिए किया जाता है ।" (3) "विवाह एक परम्परागत सामाजिक संस्था है जो व्यक्ति के सामाजिक कर्त्तव्य के निर्वाह और व्यक्ति तथा परिवार के सुख-सन्तोप दोनों ही उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विकसित की गयी है ।" इसके उत्तर में उसने कहा कि वह इनमें से तीसरे कथन से सवसे अधिक सहमत है । वह इस वात को अधिक उचित समझती थी कि विवाह वैदिक पद्धति के अनुसार हो और उसके साथ कुछ पुरानी धार्मिक प्रथाओं का भी पालन किया जाये और

वह यह महसूस करती थी कि विवाह पारम्परिक ढंग से संपन्न किया जाना चाहिए उसका मत था कि एकविवाही पद्धति विवाह की सबसे अच्छी प्रणाली है और वह इस बात की कट्टर विरोधी थी कि जब तक किसी स्त्री का पति या किसी पुरुष की पत्नी जीवित हो तब तक वह दूसरा विवाह करे। उसका विश्वास था कि सामान्यतः विवाह का बन्धन अटूट होता है और उसके लिए आजीवन निष्ठा तथा निर्वाह का संकल्प आवश्यक है।

वह तलाक़ के पक्ष में नहीं थी। वह इस बात की भी घोर विरोधी थी कि कोई स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरा विवाह कर ले। उसका मत था कि इस प्रकार की स्त्री को उसका नया पति कभी सम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकता और वह निराश तथा अपने-आपसे असन्तुष्ट हो जायेगी। उसका विश्वास था कि तलाक़ केवल उस दशा में लिया जाना चाहिए जब और कोई उपाय न रह जाये, अन्यथा पत्नी को अपने पति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए और केवल स्नेह और त्याग के माध्यम से उसे नये साँचे में ढालने का प्रयत्न करना चाहिए। वह महसूस करती थी कि तलाक़ का विचार ही पति-पत्नी के इस बात के प्रयासों के मार्ग में बाधा बन जाता है कि वे एक-दूसरे के प्रति सामंजस्य स्थापित करें और वैवाहिक जीवन की कठिनाइयों को यथासंभव हल करें। उसका विश्वास था कि यदि दोनों ओर से हार्दिक प्रयत्न किये जायें तो पति-पत्नी एक-दूसरे की ओर विवाह के बाद की किसी भी अरुचिकर स्थिति की कठिनाइयों तथा कमियों को दूर कर सकते है। फिर भी उसका मत था कि कुछ परिस्थितियों में स्त्री को तलाक़ का अधिकार होना चाहिए, जैसे यदि उसका पति क्रूर अथवा दुश्चरित्र हो। उसने कहा कि तलाक़ उस समय तक कभी नहीं लिया जाना चाहिए जब तक कि वह बिल्कुल ही अनिवार्य न हो जाये क्योंकि यह हिन्दू परम्परा के विरुद्ध है और इसलिए भी कि समाज तलाक़ दिये गये लोगों को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।

वह इस बात के पक्ष में थी कि यदि कोई स्त्री युवावस्था में ही विधवा हो गयी हो और उसके कोई सन्तान न हो तो वह दुबारा विवाह कर सकती है, अन्यथा वह न इसे उचित समझती थी और न अनुचित; उसकी राय में इसका निर्णय हर विधवा की विशिष्ट स्थिति अथवा परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

उससे पूछा गया, "क्या तुम इसे उचित समझती हो कि कोई विवाहित स्त्री अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के प्रति गहरा लगाव रखे?" इस प्रश्न के उत्तर में उसने कहा, "बिल्कुल नहीं, मैं इसे बिल्कुल उचित नहीं समझती। मैं यह अनुभव करती हूँ कि उसे अपने पति, अपने घर-बार तथा अपने बच्चों के प्रति पूर्णतः निष्ठावान होना चाहिए और उसे दूसरे लगावों की आवश्यकता ही नहीं अनुभव करनी चाहिएँ। उसे अपनी सारी आवश्यकताएँ विवाह की परिधि में रहकर ही पूरी कर लेनी चाहिए। मैं इस बात को बहुत अनुचित समझती हूँ कि किसी विवाहित स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से गहरा लगाव हो। मैं समझती हूँ कि इससे उसका ध्यान और उसकी लगन दूसरी दिशाओं में भटकेगी और वह अपने पति से दूर

होती जायेगी और उसकी अन्तरात्मा भी उसे कचोटती रहेगी।

जब उससे यह पूछा गया कि क्या उसकी राय में इस समय मध्यमवर्गीय हिन्दू समाज में विवाह की जो पद्धति प्रचलित है उसमें कोई दोष है, तो सुमन ने कहा, "मैं समझती हूँ कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से लड़की के माता-पिता से बहुत बड़ा दहेज माँगना या उसकी आशा करना बहुत अनुचित है, क्योंकि इससे माता-पिता में यह भावना तक उत्पन्न हो जाती है कि बेटियाँ उन पर बहुत बड़ा बोझ हैं और किसी के बेटियाँ होना उसके लिए बहुत बड़ा अभिशाप है। अगर माता-पिता और लड़कियाँ साहस करके यह क़दम उठा लें कि वे ऐसे परिवारों के लड़कों से विवाह करेंगी ही नहीं जहाँ बहुत बड़ा दहेज माँगा जाता हो या उसकी आशा की जाती हो तो यह सामाजिक बुराई धीरे-धीरे दूर की जा सकती है। सम्बन्धित लड़की और लड़के की अनुमति लिये बिना केवल दोनों के परिवारों के सदस्यों की बातचीत से विवाह तय कर देनी की पद्धति भी ग़लत है। इसके अतिरिक्त मैं यह समझती हूँ कि लड़के के परिवार के लोगों को लड़की दिखाने की पद्धति अत्यन्त घृणास्पद है। विवाह दोनों के माता-पिता और सम्बन्धित युवक-युवती के बीच परामर्श से होना चाहिए, यद्यपि माता-पिता की सलाह को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। और 16 वर्ष से कम उम्र की लड़की और 19 वर्ष से कम उम्र के लड़के का विवाह कर देना तो बुरा है ही और इस प्रचलन को त्याग दिया जाना चाहिए।"

सुमन बहुत निर्भीक, आत्मविश्वासी तथा महत्त्वाकांक्षी नहीं थी, परन्तु वह अत्यन्त संवेदनशील और आत्म-सजग थी। वह अपनी उच्च व्यावसायिक योग्यताओं के बावजूद विवाह के बाद काम करने के लिए उत्सुक नहीं थी। क्योंकि उसका विचार था कि इससे उसके सुखी गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों तथा दायित्वों को पूरा करने में बाधा पड़ेगी। जीवन में उसका अन्तिम लक्ष्य विवाह था और अपने माता-पिता तथा उस व्यक्ति के तमाम आश्वासनों के बावजूद जिससे वह विवाह करनेवाली थी, वह अनिश्चय तथा चिन्ता के वातावरण में अपना जीवन व्यतीत कर रही थी। अपनी साधारण सूरत-शक्ल का आभास होने के कारण उसकें मन में निरन्तर यह तनाव और भय बना रहता था कि कहीं उस लड़के के माँ-बाप उसे अस्वीकार न कर दें और वह अविवाहित ही रह जाये और फिर विवाह करने का समय निकल जाये। उसने बताया कि वह बहुत उत्सुक थी क्योंकि उसकी सब सहेलियों के विवाह हो चुके थे और उसे ऐसा लगता था कि वे उसकी हँसी उड़ायेंगी कि उसे अपने लिए पति नहीं मिल सका।

नीचे ज्योति के व्यक्ति-अध्ययन के कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं, जिसका परिचय दूसरे अध्याय में दिया जा चुका है और उनसे भी ऐसा ही चित्र उभरकर सामने आता है।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 19 : जब उससे पूछा गया कि विवाह एक आवश्यकता क्यों है तो ज्योति ने कहा कि इसका मुख्य कारण यह है कि यह भारतीय संस्कृति की परम्परा है कि उचित आयु हो जाने पर हर लड़की का विवाह हो जाना चाहिए। उसका

विचार था कि स्त्री के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 20 से 24 व
बीच होती है। वह तय किये हुए विवाह के पक्ष में थी पर उसका विचार था कि अ
रूप से अपनी अनुमति देने से पहले लड़की के लिए लड़के को थोड़ा-बहुत जानना
श्यक है। उसका विश्वास था कि विवाह वैदिक रीति से सम्पन्न किया जाना चा
उसकी राय में दहेज की प्रथा हिन्दू समाज का सबसे बड़ा अभिशाप था।

काम करना आरम्भ करने से पहले वह तलाक़ की दृढ़ विरोधी थी औ
मानती थी कि लड़की को अपना सारा जीवन अपने पति के साथ व्यतीत करना च
जिन परिस्थितियों में भी वह उसे रखे। परन्तु साक्षात्कार के समय उसका वि
था कि यदि पति मानसिक रूप से रोगी हो या क्रूर हो, या शराबी हो तो पत्
उससे तलाक़ ले लेना चाहिए, उसे कोई काम करना और अपना अलग जीवन वि
आरम्भ कर देना चाहिए। उसकी धारणा थी कि विवाह के बाद पत्नी को अपने
के सुख के लिए, काफी हद तक अपनी रुचियों का बलिदान कर देना चाहिए, लै
पति को भी उसे अपने से घटिया नहीं समझना चाहिए।

वह अपनी जाति, अपने प्रदेश और अपने धर्म से बाहर के किसी आदमी के
विवाह के पक्ष में नहीं थी क्योंकि वह मानती थी कि सुखी जीवन के लिए यह
महत्त्वपूर्ण है कि दोनों के परिवारों की पृष्ठभूमि एक जैसी हो और पति-पत्नी ए
भाषा बोलते हों तथा उनकी खाने-पीने की आदतें एक जैसी हों। उसे इस बात में
आपत्ति नहीं थी कि कोई युवक और युवती अपने माता-पिता की अनुमति लेकर वि
करें लेकिन वह इसकी दृढ़ विरोधी थी कि नवयुवतियाँ अपना जीवन-साथी स्वयं

ज्योति का विश्वास था कि उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य तय किया हुआ वि
था। अपनी आर्थिक आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक उपलब्धियों के बावजूद, उसमें
में विवाह की सांस्कृतिक तथा पारम्परिक आवश्यकता के प्रति दृढ़ आस्था थी औ
बात के प्रति भी कि स्त्री की यह मूल प्रवृत्ति होती है कि वह अपने पति की होकर
उसका अपना घर और बच्चे हों, जिसके बिना उसका जीवन सूना रह जायेगा।
यह कि वह इसलिए भी विवाह करना चाहती है कि यह सामाजिक प्रथा है और
लोग विवाह करते हैं और जिनका विवाह नहीं होता उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से
जाता है। उससे जब पूछा गया कि वह विवाह क्यों करना चाहती है तो वह कुछ
पिटा-सी गयी। उसने उत्तर दिया, "मैं बस इसलिए विवाह करना चाहती हूँ
विवाह करना चाहती हूँ।"

उसे इस बात पर कोई विशेष आग्रह नहीं था कि उसका पति अच्छी
वाले परिवार का हो या धनवान हो और अच्छा वेतन पाता हो या बहुत मिल
और चुस्त-चालाक हो। वह बस इतना चाहती थी उसका पति दूसरे का ध्यान
वाला हो, वह उसके समान रुचियाँ रखता हो, उसमें वे गुण हों जो उसे पसन्द
सच्चा, ईमानदार और बहुत प्यार करनेवाला हो। वह सबसे अधिक महत्त्व
के सच्चरित्र होने को देती थी।

ज्योति इस बात की दृढ़ विरोधी थी कि किसी स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति से लगाव हो। उसका विश्वास था कि इससे वैवाहिक सम्बन्धों में विघ्न पड़ता है और इसके फलस्वरूप पत्नी का आचरण भी अवांछनीय हो जाता है।

नीचे रश्मि का जो व्यक्ति-अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है वह ऐसी श्रमजीवी महिलाओं के उदाहरणों का प्रतिनिधित्व करता है, विवाह के बारे में जिनकी अभिवृत्तियाँ न तो बहुत परम्परागत थीं और न ही बहुत आधुनिक। कंचन (जिसका परिचय दूसरे अध्याय में दिया गया था) के व्यक्ति-अध्ययन के उद्धरणों से भी इससे मिलती-जुलती स्थिति ही सामने आती है।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 32

रश्मि लड़कियों के एक हाईस्कूल की प्रधान अध्यापिका थी। जिस समय दस वर्ष बाद दुबारा उससे साक्षात्कार किया गया उस समय उसकी आयु 37 वर्ष थी। वह 450 रु० महीना कमाती थी। वह एम० ए०, बी० टी० पास थी और पिछले तेरह वर्षों से अध्यापिका का काम कर रही थी। वह देखने में बहुत हँसमुख थी और उसकी सूरत भी आकर्षक थी पर उसका शरीर कुछ मोटा था। उसके बाल सफेद हो चले थे और उसके चेहरे पर चिन्ता तथा उदासी का भाव रहता था। वह सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रयोग बिल्कुल नहीं करती थी।

उसके पिता की मृत्यु कुछ वर्ष पहले हो गयी थी। उसके एक भाई था और वह अपने माता-पिता की अकेली बेटी थी। उसका भाई पहले सरकारी नौकरी करता था परन्तु किसी बीमारी के कारण जब वह छः महीने तक काम पर नहीं जा सका तो उसे नौकरी से निकाल दिया गया। वह बचपन से ही आलसी था और दायित्व सँभालने से कतराता था, इसलिए वह भी उसके पास ही आ गया था और अपनी पत्नी तथा चार बच्चों के साथ उसी के यहाँ रहता था। पिता की मृत्यु के बाद उसकी माँ भी आकर उसके साथ ही रहने लगी थी।

रश्मि का बचपन काफी सुखद रहा था। उसके पिता सरकारी नौकर थे और मामूली वेतन पाते थे, और उनके दो ही सन्तानें थीं—एक बेटा और एक बेटी। वह बचपन में बहुत सुन्दर और तेज थी और सभी उसकी प्रशंसा करते थे। उसे हमेशा पहनने को अच्छे कपड़े और खाने को अच्छा भोजन मिलता था। उसके पिता बचपन में भी हमेशा उससे कहा करते थे कि वह आगे चलकर अध्यापिका बनेगी क्योंकि वह अपने भाई की तुलना में, जो मरियल और सुस्त था, आरम्भ से ही बहुत तेज थी। उसने छोटे-छोटे शहरों के साधारण स्कूलों में शिक्षा पायी थी। मैट्रिक पास कर लेने के बाद उसकी माँ नहीं चाहती थीं कि वह कालेज में पढ़े बल्कि वह चाहती थीं कि वह विवाह करे। लेकिन उसके पिता उसे आगे पढ़ाना चाहते थे और यही उसकी अपनी इच्छा भी थी। इसलिए उसने कालेज में नाम लिखा लिया और सफलतापूर्वक अपनी एम० ए० की पढ़ाई पूरी कर ली। लेकिन उस समय तक उसमें अध्यापिका बनने की

तीव्र इच्छा जागृत हो चुकी थी और उसने बी० टी० करने का आग्रह किया।

चूंकि उसकी सूरत-शक्ल अच्छी थी और शरीर का गठन भी अच्छा था, इसलि उसके पिता ने उसके विवाह के लिए कुछ अच्छे लड़कों का प्रस्ताव रखा लेकिन उ समय तक वह अपनी एक सहेली के रिश्ते के भाई से प्रेम करने लगी थी और इसलि उसने उन सभी प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। उसके माता-पिता बहुत झुंझला और उस पर आरोप लगाया कि उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद उसमें बहुत अहंका आ गया है। घर से दूर रहने और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन जाने के लिए उस नौकरी कर ली। उसका भाई एक सरकारी दफ्तर में काम करता था और उसक विवाह उसी समय हो गया था जब रश्मि कालेज में पढ़ती थी। अपने विवाह बाद उसके भाई ने रश्मि तथा उसके माता-पिता की ओर बिल्कुल ही ध्यान देना छो दिया। माँ को बेटे से बड़ा लगाव था। कुछ समय बाद रश्मि को एक दूसरे शहर नौकरी मिल गयी, इसलिए उसे अपने माता-पिता को छोड़कर वहाँ जाकर अध्यापक के क्वार्टरों में रहना पड़ा।

वह बहुत प्रसन्न थी कि अब वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी है, उसका अपन घर है और वह अपना जीवन जिस तरह चाहे व्यतीत कर सकती है और अपने मि को आकर अपने साथ रहने का निमन्त्रण दे सकती है। रश्मि ने उसको पत्र भी लिख लेकिन उसने आने से इंकार कर दिया और कुछ समय बाद अपने माता-पिता क पसन्द की किसी लड़की से विवाह कर लिया। रश्मि को इससे बहुत आघात पहुँचा औ वह घोर निराशा में डूब गयी। यहाँ तक कि वह अनुभव करने लगी कि अब वह कभ विवाह ही नहीं करेगी।

कुछ ही वर्षों बाद अचानक उसके पिता की मृत्यु हो गयी। उसे उनसे इतन गहरा लगाव था कि बहुत समय तक वह इस आघात की पीड़ा से मुक्त न हो सकी उसकी माँ आकर उसके साथ रहने लगीं और घर का काम-काज देखने लगीं। इस प्रका यद्यपि मानसिक रूप से वह अत्यन्त निराश थी पर भौतिक सुख-सुविधाओं की उसे को कमी नहीं थी। निरन्तर बीमार रहने के कारण उसके भाई ने नौकरी छोड़ दी थी औ अपनी पत्नी तथा चार बच्चों सहित आकर उसी के साथ रहने लगा था। उस सम तक रश्मि लड़कियों के एक हाईस्कूल की प्रधान अध्यापिका बन चुकी थी।

वह एक प्राइवेट स्कूल था और चूंकि वह हार्दिक स्नेह तथा मित्रता के लि तरस रही थी, इसलिए मैनेजर साहब के साथ उसकी मित्रता हो गयी, जो स्कूल मालिकों में भी थे। वह अधेड़ उम्र के थे, विवाहित थे और उनके कई बच्चे भी थे उनकी ओर आकृष्ट न होने का लाख प्रयत्न करने पर भी उनके साथ उसकी घनिष मित्रता हो गयी, जिसके फलस्वरूप लोग उनके बारे में तरह-तरह की चर्चाएँ कर लगे। वह इतनी उलझन और परेशानी में पड़ गयी कि नौकरी तक छोड़ देने की बा सोचने लगी। लेकिन उसका भाई, जो बेहद आलसी और माँ के लाड़-प्यार में बिगड़ा हुआ था, किसी तरह अपनी जीविका कमाने के लिए कोई काम शुरू ही नहीं करत

था। अपने निजी स्वार्थों के कारण उनमें से कोई भी इसके लिए उत्सुक नहीं था कि रश्मि विवाह कर ले। उसे तनिक भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती थी और वह विवाह करने के लिए बेचैन थी। अपनी नौकरी के प्रति उसे बहुत उत्साह नहीं रह गया था, फिर भी काम करते रहने से उसे अपने महत्त्व तथा आत्मविश्वास का आभास रहता था और वह व्यस्त रहती थी और उसे अपनी अरुचिकर परिस्थितियों पर कुढ़ते रहने के लिए समय ही नहीं मिलता था। फिर भी, अच्छी नौकरी होने के बावजूद वह सुखी नहीं अनुभव करती थी और उसका स्वास्थ्य भी बहुत गिर गया था।

आर्थिक आवश्यकता के कारण रश्मि नौकरी करती रही, क्योंकि उसे अपनी माँ, अपने भाई तथा उसके परिवार का भरण-पोषण तो करना ही था, हालाँकि मूलतः उसने आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनने के लिए काम करना आरम्भ किया था। उसे अपनी नौकरी से मानसिक तथा भौतिक दोनों ही प्रकार का सन्तोष मिलता था, लेकिन इधर कुछ समय से उसे केवल भौतिक सन्तोष ही मिलता था, क्योंकि वह उदास और थकी-थकी-सी रहने लगी थी और अकेलापन महसूस करती थी। यदि उसे सुखी विवाहित जीवन मिल जाता तो वह कभी न चाहती कि काम करती रहे।

रश्मि विवाह को इसलिए एक आवश्यकता समझती थी कि जीवन-साथी, घर और बच्चों की इच्छा और इसके साथ ही पूरी तरह किसी की होकर रहने, अर्थात् पूरी तरह किसी की हो जाने और किसी को अपना लेने की इच्छा एक मूल प्रवृत्ति है। उसकी राय में किसी लड़की के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 20 और 24 वर्ष के बीच होती है, क्योंकि उसका विचार था कि उसके बाद लड़की इतनी अधिक स्वतन्त्र हो चुकी होती है कि वह अपने को पति के अनुसार ठीक से ढाल नहीं सकती। वह सिविल विवाह की अपेक्षा वैदिक विवाह-पद्धति को अधिक पसन्द करती थी और उसका विश्वास था कि पति की उम्र पत्नी से 2 से 6 वर्ष तक अधिक होनी चाहिए।

जीवन-साथी चुनने में अपने ग़लत निर्णय के कारण उसने जो कुछ झेला था उसके बाद अब वह माँ-बाप की ओर से तय किये गये विवाह का अनुमोदन करने लगी थी, पर उसका यह भी विचार था कि लड़के और लड़की के एक-दूसरे को जान लेने के बाद उनकी भी अनुमति ले ली जानी चाहिए। अपने जीवनकाल के तीसरे दशक में उसका विश्वास था कि हर लड़की को अपना जीवन-साथी चुनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, परन्तु स्वयं अपने अनुभव के बाद और अपनी सहेलियों के अनुभवों की जानकारी प्राप्त होने के बाद अब उसका यह विश्वास हो चला था कि उन्हें ऐसा करने से निरुत्साह किया जाना चाहिए। इस प्रसंग में उसने कहा, "तय किये हुए विवाह से जीवन-साथी चुनने में निजी निर्णय की त्रुटि से उत्पन्न होनेवाली चिन्ता बहुत कम हो जाती है। मैं समझती हूँ कि सन्तान की भावनाओं को समझनेवाले माता-पिता अपनी बेटी के लिए ज़्यादा अच्छी तरह उपयुक्त वर खोज सकते हैं, परन्तु लड़की दिखाने की परम्परागत प्रणाली बहुत ही अपमानजनक है और उसे निश्चित रूप से बदल दिया जाना चाहिए। परम्परागत पद्धति के अनुसार जैसे वातावरण में

लड़की तथा लड़के और उनके माता-पिता के बीच भेंट तथा बातचीत होती है उससे अधिक सौहार्दपूर्ण तथा कम तनावपूर्ण वातावरण में उन्हें एक-दूसरे से मिलकर बातचीत करनी चाहिए।"

आगे चलकर उसने यह भी सुझाव दिया कि "लड़के और लड़की का औपचारिक रूप से एक-दूसरे से परिचय करा दिया जाना चाहिए और पहली भेंट के बाद यदि सभी लोग उत्सुक हों कि विवाह हो जाये तो उन्हें कुछ बार और एक-दूसरे से मिलने और एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह जान लेने का अवसर दिया जाना चाहिए। इन मुलाक़ातों के दौरान वे विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं, एक-दूसरे की रुचियों तथा अरुचियों का पता लगा सकते हैं और चूंकि उनके बारे में अन्य बातों का पता उनके माता-पिता पहले ही लगाकर छान-बीन कर चुके होंगे, इसलिए लड़के और लड़की को उन बातों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। और यदि वे एक-दूसरे को पसन्द करें तो वे अपने माता-पिता को अपनी हार्दिक अनुमति दे सकते हैं। इस प्रकार के तय किये हुए विवाहों से युवा लड़के और लड़कियाँ बहुत-सी चिन्ता से बच जाते हैं और मैं दृढ़तापूर्वक इस प्रकार के तय किये हुए विवाहों के पक्ष में हूँ।"

उसने कहा कि उसे इस बात में कोई आपत्ति नहीं है कि कोई लड़की किसी दूसरी जाति के लड़के से विवाह करे, लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि उसमें परिपक्वता हो और उस लड़के में वे गुण हों जो उसे पसन्द हैं। उसे स्वयं भी किसी दूसरी जाति के लड़के से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं होगी लेकिन वह ऐसे व्यक्ति से विवाह करना चाहेगी जिस पर भरोसा किया जा सके, जो स्वस्थ हो और काफी अच्छी नौकरी करता हो। वह हर चीज से बढ़कर यह चाहती थी कि उसका पति स्नेहमय और ईमानदार हो। उसका विश्वास था कि पत्नी और पति दोनों ही को एक-दूसरे के लिए त्याग करना चाहिए और एक-दूसरे का सम्मान करना चाहिए। वह न तो इस बात के पक्ष में थी और न इसकी विरोधी कि किसी पत्नी का अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष से लगाव हो और यदि वह शारीरिक स्तर पर न होकर केवल बौद्धिक स्तर पर हो तो वह उसे निन्दनीय भी नहीं समझती थी। वह इसे बहुत बुरा नहीं समझती थी कि कोई स्त्री अपने पति को छोड़कर दुबारा विवाह कर ले, फिर भी वह समझती थी कि तलाक़ का विचार निश्चित रूप से वैवाहिक समायोजन में बाधक होता है और वह यह भी अनुभव करती थी कि तलाक़ से असन्तोषप्रद विवाहों की संख्या में कोई कमी नहीं होती।

उसने कहा कि चूंकि उसकी आयु अब 37 वर्ष की हो चुकी है और उसकी आदतें और रुचियाँ तथा अरुचियाँ दृढ़ हो चुकी हैं, इसलिए वह किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह नहीं करना चाहेगी जिसे वह अच्छी तरह न जानती हो। वह विवाह करना तो चाहती थी पर कुछ हद तक तो इसलिए नहीं करती थी कि वह सोचती थी कि वह गृहस्थी चलाने और बच्चे पालने का बोझ नहीं संभाल सकेगी और इसलिए इस दायित्व से कतराती थी, और कुछ हद तक इसलिए भी कि उसे कोई ऐसा उपयुक्त व्यक्ति नहीं

मिला था जिससे वह विवाह करे। फिर भी उसने कहा, वह विवाह करने के लिए इसलिए बहुत उत्सुक थी कि वह घर के अरुचिकर तथा असुखकर वातावरण से बच सके और अपने अविवाहित, एकान्त तथा नैराश्यपूर्ण जीवन की नीरसता को दूर कर सके। उसने आगे चलकर कहा कि वह विवाह करने के लिए इसलिए भी उत्सुक थी कि उसे आशा थी कि उसका पति उसे जीवन की अनेक समस्याओं को हल करने में सहायता देगा और सारी ज़िम्मेदारी स्वयं सँभाल लेगा।

रश्मि का पालन-पोषण बँधी लीक पर चलनेवाले एक साधारण हिन्दू परिवार में हुआ था, इसलिए आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनने और अपनी इच्छानुसार कहीं भी आ-जा सकने की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए उसने नौकरी कर ली थी। प्रेम में निराश होने के कारण उसे अपना विकास केवल अपने व्यवसाय के लिए करने का प्रोत्साहन मिला। उसने सोचा था कि नौकरी कर लेने पर उसका जीवन परिपूर्ण हो जायेगा। परन्तु बाद में चलकर चूँकि उसका व्यावसायिक जीवन भी बहुत रोचक नहीं रह गया और बहुत-से लोग साथ रहने के कारण घर पर भी उसे कोई शान्ति न मिल सकी, इसलिए वह केवल सुखी विवाहित जीवन के लिए लालायित रहने लगी।

पता यह चला कि रश्मि की अभिवृत्तियाँ उसके माता-पिता के परम्परागत सोचने के ढंग और स्वयं उसके अपने जीवन के निजी अनुभवों का मिला-जुला परिणाम थीं। वह मुख्यत: आर्थिक आवश्यकता के कारण नौकरी करती रही। प्रेम और घरेलू जीवन दोनों ही में निराशाजनक अनुभवों के कारण ही उसकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन आया था। अपने प्रेम-सम्बन्ध में उसे पहले जो निराशा हुई थी उसे दूर करने के लिए और इसके साथ संवेगात्मक सुरक्षा के अभाव की भावना को दूर करने के लिए वह विवाह की आवश्यकता अनुभव करने लगी थी। और इससे उसकी अभिवृत्तियों में भी परिवर्तन आ गया था।

व्यक्ति अध्ययन संख्या 55—कंचन पति और बच्चों की आवश्यकता और पूरी तरह किसी की होकर रहने की इच्छा के कारण विवाह को आवश्यक समझती थी। उसका विचार था कि 20 वर्ष के बाद कोई भी आयु लड़की के लिए विवाह करने के लिए उपयुक्त है, इसका निर्णय इस पर निर्भर है कि वह विवाह करने की आवश्यकता अनुभव करे और उसे कोई उपयुक्त वर मिल जाये। लेकिन बेहतर यह होगा कि 20 और 24 वर्ष की आयु के बीच लड़की विवाह कर ले क्योंकि उस समय तक उसके विचार इतने दृढ़ नहीं हो पाते कि उन्हें बदला न जा सके। वह पूरी तरह तय किये हुए विवाह के पक्ष में नहीं थी। उसका विचार था कि माता-पिता अपनी बेटी के लिए कोई उपयुक्त वर चुन सकते हैं, लेकिन लड़की को अपनी अनुमति देने से पहले उस पुरुष को जान लेने के लिए थोड़ा समय अवश्य दिया जाना चाहिए, और उसकी अनुमति को ही अन्तिम माना जाना चाहिए।

उसने कहा कि पहले वह प्रेम-विवाह के पक्ष में हुआ करती थी, पर उसकी कुछ सहेलियों ने उचित आदमी चुनने में बहुत धोखा खाया था और इसलिए अब वह यह अनुभव करने लगी थी कि माता-पिता के तय किये हुए विवाह बेहतर होते हैं। तय किये हुए विवाह से उसका अभिप्राय यह था कि माता-पिता भावी पति के लिए जिस लड़के का सुझाव दें उससे लड़की को अपनी अनुमति देने से पहले माता-पिता के निर्देशन में कई बार मिलने का अवसर दिया जाना चाहिए और उसकी अनुमति को ही अन्तिम निर्णय माना जाना चाहिए।

उसका विचार था कि 20 वर्ष से कम आयु की लड़की के लिए माता-पिता को वर पसन्द करना चाहिए लेकिन उसकी हार्दिक अनुमति से, परन्तु 20 से 25 वर्ष तक की लड़की को उचित वर ढूंढ़ने में केवल सहायता दी जानी चाहिए, उसके बाद उसे अपना पति चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जानी चाहिए। आगे चलकर उसने कहा कि एक निश्चित आयु के बाद पढ़ी-लिखी लड़की को अपना पति स्वयं चुनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, पुरुषों के साथ घूमने-फिरने की बहुत अधिक छूट देकर नहीं, बल्कि उसका मार्गदर्शन करके ताकि वह अपना जीवन-साथी चुनने में परिपक्वता का परिचय दे सके। उसने कहा कि उसे इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी कि यदि लड़की प्रौढ़ हो तो वह अपनी पसन्द के पुरुष से विवाह कर ले, चाहे वह किसी दूसरी जाति का ही क्यों न हो, परन्तु अपने माता-पिता की अनुमति के बिना नहीं। उसे अन्तर्जातीय विवाहों में कोई आपत्ति नहीं थी परन्तु विभिन्न प्रजातियों (नस्लों) तथा विभिन्न धर्मों के लोगों के आपस में विवाह करने के वह बहुत पक्ष में नहीं थी क्योंकि उसका विश्वास था कि रीति-रिवाजों, प्रजातीय आदतों और रहन-सहन में अन्तर होने के कारण उन विवाहों में समायोजन अधिक कठिन हो जायेगा।

वह इस बात को अच्छा नहीं समझती थी कि किसी स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष से गहरा लगाव हो। उसे इसमें कोई आपत्ति नहीं थी कि यदि दोनों सर्वथा असंगत हों तो स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरा विवाह कर ले। फिर भी वह इसके बहुत पक्ष में नहीं थी और उसका मत था कि तलाक़ कोई दूसरा उपाय न रह जाने पर ही लिया जाना चाहिए, क्योंकि यदि कोई स्त्री अपने पति को छोड़ दे और दुबारा विवाह करना चाहे तो उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। उसे ऐसा लगता था कि भारत में बहुत थोड़े ही पुरुष ऐसे होंगे जो सहर्ष किसी ऐसी स्त्री से विवाह कर लें जो तलाक़ ले चुकी हो। वह बच्चे पैदा हो जाने के बाद तलाक़ के पक्ष में नहीं थी। वह अनुभव करती थी कि पत्नी को अपनी कुछ रुचियों की बलि देकर अपने पति की रुचियों तथा इच्छाओं के अनुसार अपने को ढाल लेना चाहिए। लेकिन इसी तरह पति को भी पारस्परिक सुख के लिए अपनी कुछ रुचियों की बलि देनी चाहिए। उनके बीच एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता की भावना व्याप्त रहनी चाहिए। उसने जोर देकर कहा, "मेरी दृढ़ भावना है कि पारस्परिक प्रेम, सम्मान तथा मित्रता ही विवाह का आधार होना चाहिए और इस उद्देश्य से दोनों ही को यह प्रयत्न करना

चाहिए कि वे कोई ऐसा काम न करें जिससे दूसरे की दृष्टि तथा हृदय में उसका सम्मान और प्रेम घट जाये। दोनों ही को एक-दूसरे को सुखी तथा सन्तुष्ट रखने का प्रबन्ध करना चाहिए।"

उसने कहा कि वह अपने लिए ऐसा पति चाहेगी जो बहुत पढ़ा-लिखा हो, जिसकी रुचियाँ उसकी रुचियों जैसी ही हों और जो कोई अच्छा नौकरी करता हो। उसने कहा कि वह किसी व्यक्ति से तभी विवाह करना चाहेगी जब वह उसे अच्छी तरह जान ले और जब वह उसके प्रति गहरा लगाव अनुभव करे।

यह प्रश्न पूछे जाने पर कि इस समय मध्यमवर्गीय हिन्दू समाज में जो विवाह-पद्धति प्रचलित है उसमें क्या दोष है, उसने कहा कि विवाहोत्सव के साथ बहुत समय लेनेवाली और थका देनेवाली जो परम्परागत प्रथाएँ तथा रस्में जुड़ी हुई हैं और विवाह के समय जो हुल्लड़ होता है और जैसा शालीनता-रहित वातावरण व्याप्त रहता है वह अवांछनीय है। उसने कहा कि विवाह-संस्कार बहुत सीधे-सादे ढंग से गरिमामय तथा अर्थपूर्ण वैदिक पद्धति के अनुसार शालीनता के वातावरण में सम्पन्न होना चाहिए। निरर्थक प्रथाओं तथा रस्मों का तो अन्त कर दिया जाना चाहिए परन्तु मूलतः विवाह-संस्कार का स्वरूप सिविल न होकर वैदिक होना चाहिए। इसके अलावा, उसने मत व्यक्त किया कि वधू के अतिथियों के साथ लड़के के परिवार वालों तथा मित्रों अर्थात् बरातियों को ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जैसे श्रेष्ठतर हों और लड़की के अतिथि निम्नतर कोटि के, और न ही लड़कीवालों को अपने-आपको हीन समझना चाहिए। विवाह एक हार्दिक और मैत्रीपूर्ण अवसर होना चाहिए जिसमें दोनों पक्ष सौहार्द का परिचय दें। वह कहती रही कि विवाह-संस्कार के समय केवल निकट सम्बन्धियों तथा घनिष्ठ मित्रों को ही उपस्थित रहना चाहिए और बाद में बड़े भोज या दावत का आयोजन किया जा सकता है।

नीचे कमला का जो व्यक्ति-अध्ययन दिया जा रहा है वह उन शिक्षित श्रम-जीवी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करता है जिनका पालन-पोषण कट्टर और रूढ़िवादी हिन्दू परिवारों में हुआ है, लेकिन जिसमें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो जाने के बाद कट्टरता के विरुद्ध यह प्रतिक्रिया हुई थी कि वह हर उस चीज़ को जो परम्परागत और कट्टरपंथी हो, बुरा समझने लगी थी और हर उस चीज़ को जो परम्परा से हटकर तथा आधुनिक हो अच्छा समझने लगी थी।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 49

पैंतीस-वर्षीया कमला एम० ए०, बी० एड० थी और पिछले सात वर्षों से एक अर्ध-सरकारी संगठन में काम कर रही थी। उसका वेतन 600 रु० मासिक था। वह न तो बहुत सुन्दर ही थी और न ही बहुत कुरूप, पर उसका शरीर बहुत सुडौल था और उसके हाव-भाव में शालीनता तथा आत्मविश्वास था। यद्यपि देखने में वह बहुत अभिमानी लगती थी पर वास्तव में वह बहुत हँसमुख स्वभाव की थी। उसके पिता

सरकारी ठेकेदार थे जो छोटे-छोटे शहरों में रहे थे और वहीं उन्होंने अपना काम किया था।

कमला अपने माता-पिता की सबसे छोटी सन्तान थी; उसकी दो बहनें और दो भाई थे। परिवार में उसका पालन-पोषण ऐसे समय पर हुआ था जब परिवार के सदस्यों के बीच प्रायः कोई हार्दिकता नहीं थी। उसके पिता के पास आराम से रहने, अपने परिवार के सदस्यों को सामान्य सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करने और अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने-भर को काफी पैसा था। परन्तु अपनी पत्नी तथा बच्चों पर पैसा खर्च करने की न तो उसमें रुचि ही थी और न ही उनका दिल चाहता था और चूंकि वह उन्हें आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के लिए भी पैसा नहीं देते थे, इसलिए उन लोगों को बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं। दकियानूसी आदमी होने के कारण वह अपनी बेटियों को उच्च शिक्षा दिलाने में विश्वास नहीं रखते थे, इसलिए कमला की बहनों को मैट्रिक पास करने के बाद घर पर रहकर घर के काम-काज में अपनी माँ का हाथ बँटाने को कह दिया गया। उसके पिता बहुत कठोर थे और बेटियों को किसी को साथ लिये बिना अपनी सहेलियों तक के साथ घर से बाहर नहीं जाने देते थे, और उन्हें अकेले में किसी से बात तक नहीं करने दी जाती थी। वे जहाँ भी जातीं उनकी माँ को उनके साथ जाना पड़ता।

उसके पिता कठोर और दकियानूसी ही नहीं थे बल्कि वह अपने बच्चों तथा पत्नी के साथ सख्ती का व्यवहार भी करते थे। कमला को कभी अपने पिता का स्नेह और प्यार नहीं मिला, और इसीलिए वह कभी उनका सम्मान नहीं कर सकी हालांकि वह उनसे डरती बहुत थी। उसे अपनी माँ से बहुत प्यार था क्योंकि वह अपने बच्चों में बहुत दिलचस्पी लेती थीं, पर साथ ही उसे उन पर तरस भी आता था क्योंकि उसके पिता उनके साथ प्रेम और सम्मान का व्यवहार नहीं करते थे। कमला ने हमेशा अपनी माँ को बड़े भक्ति-भाव से उसके पिता की सेवा करते देखा था पर इसके बदले में उन्हें कभी प्रशंसा या स्नेह का एक शब्द भी न मिला था। शुरू से ही उसे दकियानूसी विचारों से चिढ़ थी और वह उच्च शिक्षा और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहती थी, मुख्यतः इसलिए कि उसके पिता इसके विरुद्ध थे और वह उनकी अवज्ञा करना चाहती थी और परिवार के परम्परागत दृष्टिकोण को भंग करना चाहती थी। वह आर्थिक दृष्टि से इसलिए भी स्वतन्त्र होना चाहती थी कि उसके बाप ने उसे कभी पैसा नहीं दिया था और वह सिद्ध कर देना चाहती थी कि वह स्वयं पैसा कमा सकती है।

चूंकि उसके पिता उच्च शिक्षा में विश्वास नहीं रखते थे, इसलिए उसकी बड़ी बहनों का विवाह स्कूल की पढ़ाई पूरी करने पर ही कर दिया गया था जब उनकी आयु मुश्किल से 16 या 17 वर्ष की रही होगी। चूंकि कमला सबसे छोटी थी और पढ़ने में तेज थी, इसलिए उसके अध्यापकों ने और उसकी माँ ने उसे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। जब उसने मैट्रिक पास कर लिया तो उसके पिता ने

उसे और आगे पढ़ाने से इन्कार कर दिया, विशेष रूप से इसलिए कि वहाँ लड़कियों का कोई अच्छा कालेज नहीं था। लेकिन कमला के बार-बार आग्रह करने पर और उसकी माँ के समझाने-बुझाने पर उसके पिता ने उसे अपनी मौसी के यहाँ जाकर आगे पढ़ने की इजाज़त दे दी।

वहाँ अपनी पढ़ाई के दौरान कमला को घूमने-फिरने की कुछ स्वतन्त्रता मिली और उसकी एक लड़के से दोस्ती हो गयी और वह उससे मिलने लगी और उसके साथ बाहर जाने लगी, कुछ तो अपने पिता की कठोरता की प्रतिक्रिया के रूप में और कुछ इसलिए कि यह बात परम्परा के विरुद्ध समझी जाती थी। जब उसके पिता ने यह सुना तो उन्होंने उसकी मौसी के यहाँ आकर उसे बहुत डाँटा-फटकारा और एक पुरुष के साथ दोस्ती करने पर उसे बहुत गालियाँ दीं, जो उनके अनुसार बहुत ही अवांछनीय व्यवहार था। उसे घर पर ही रहकर पढ़ने का आदेश दिया गया और उसने प्राइवेट छात्र के रूप में बी० ए० की शिक्षा पूरी की। इसके बाद उसके पिता इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि वह उनकी पसन्द के किसी आदमी से विवाह कर ले। उसे यह विचार बहुत नापसन्द था और वह किसी न किसी प्रकार विवाह को टालती रही और अपने भाई की सहायता से, जिसने उस समय तक काम करना आरम्भ कर दिया था, बी० एड० करने के लिए कालेज में नाम लिखा लिया।

बी० एड० कर लेने के बाद उसने लड़कियों के एक स्कूल में पढ़ाना आरम्भ कर दिया, केवल यह सिद्ध करने के लिए कि स्त्री भी आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो सकती है और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकती है। अपनी बात पूरी करने के लिए और अपनी स्वतन्त्रता के लिए उसने एक बड़े शहर में नौकरी कर ली और वहाँ चली गयी। अधिक योग्यता प्राप्त करने के लिए, अपनी नौकरी की सम्भावनाएँ अधिक उज्ज्वल बनाने के लिए और अपने पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के सामने अपनी क्षमताएँ प्रमाणित करने के लिए वह स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करने को बहुत उत्सुक थी। इसलिए उसने नौकरी करने के साथ-साथ एम० ए० भी पास कर लिया। जिन दिनों वह नौकरी कर रही थी वह पूर्ण स्वच्छन्दता से अपने मित्रों के साथ घूमने-फिरने लगी, जिनमें से अधिकांश पुरुष थे। यद्यपि इस बात पर उसके पिता उससे बहुत नाराज़ थे पर उसने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसका अपना सामाजिक जीवन था और वह दफ़्तर में तथा क्लब में विभिन्न प्रकार के लोगों से मिलती थी। वह बहुत प्रतिभा-सम्पन्न थी और उसके साथी तथा मित्र उसे बहुत पसन्द करते थे।

कुछ समय बाद उसके मन में एक नवयुवक के प्रति स्नेह जागृत हुआ जो [illegible] जाति और धर्म का था। वह बहुत अच्छी नौकरी पर लगा हुआ था, बहुत [illegible] था और आगे चलकर उसके बहुत उन्नति करने की सम्भावना थी। वह [illegible] तथा आत्मविश्वासी व्यक्तित्व को बहुत पसन्द करता था और उसकी [illegible] सराहना करता था। उसका लगाव गहरा होता गया और वह [illegible] बात सोचने लगी यद्यपि वह दूसरी जाति और धर्म का था और वह [illegible]

पिता पर इसकी प्रतिक्रिया बहुत भीषण होगी। लेकिन उसे पता चला कि उस नवयुवक का विवाह हो चुका था और उसकी पत्नी उसके साथ इसलिए नहीं रहती थी कि वह उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था और किसी दूसरी स्त्री के साथ उसका बहुत गहरा प्रेम था। इस बात ने उसे बहुत आघात पहुँचा और वह घोर निराशा में डूब गयी। इसके अतिरिक्त लोग उसके बारे में तरह-तरह की चर्चा भी करने लगे थे। फिर भी, केवल यह साबित करने के लिए कि उससे मित्रता करके उसने कोई ग़लती नहीं की थी, उसने औपचारिक स्तर पर उसके साथ सम्बन्ध बनाये रखे। इस घटना से वह घोर निराशा और मानसिक उलझनों का शिकार हो गयी और यह विश्वास करने लगी कि अच्छे प्रेम-सम्बन्ध होते ही नहीं हैं और यह कि सार्थक मानव-सम्बन्ध विकसित ही नहीं किये जा सकते हैं। इसके बाद उसने फ़ैसला किया कि उसके माता-पिता जिस आदमी से भी कहेंगे उससे वह विवाह कर लेगी यदि वह काफी पढ़ा-लिखा होगा और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी होगी।

उसके माता-पिता ने एक ऐसे नवयुवक के साथ उसके विवाह का सुझाव रखा जो बहुत पढ़ा-लिखा तो नहीं था लेकिन बहुत पैसे वाला था। उस आदमी ने और उसके माता-पिता ने आकर बाक़ायदा उसे देखा और उसने भी उस आदमी को देखा। उन लोगों ने उसे पसन्द भी किया और उसके पिता का सुझाव स्वीकार कर लिया। परन्तु कमला पर उस व्यक्ति का या उसकी भावी सम्भावनाओं का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी इस बात से झुँझलाकर कि उसके पिता बहुत कठोर और दक़ियानूसी थे, और वह अकेलेपन का जीवन व्यतीत कर रही थी, उसने केवल अपनी विवाह करने की इच्छा पूरी करने के लिए वह उसके साथ विवाह करने पर सहमत हो गयी। उसने यह भी स्वीकार किया कि बहुत बड़ी हद तक तो उसने आर्थिक सुरक्षा की दृष्टि से भी उससे विवाह किया था।

कमला का विवाह बहुत सन्तोषजनक नहीं रहा क्योंकि वह अपने पति की न सराहना कर सकती थी, न सम्मान और न ही वह उसके प्रति अपने मन में प्रेम विकसित कर पायी थी। वह उस प्रकार का व्यक्ति था ही नहीं जैसा वह अपने पति के रूप में चाहती थी। न तो वह उसकी बौद्धिक रुचियों का भागीदार बन सकता था, और न वह उसकी सामाजिक हैसियत का रोब मानती थी। उसका पति उसे कोई प्रेरणा नहीं दे सकता था और सबसे बड़ी बात यह थी कि वह वैसा उदार विचारों वाला नहीं था जैसा कि वह चाहती थी। वह इस बात पर आग्रह करता था कि वह घर के काम-काज में अधिक दिलचस्पी ले और अपने व्यवसाय तथा अन्य गतिविधियों में कम। जब वह अपनी नौकरी, अपने मित्रों, अपनी रुचियों तथा गतिविधियों को बहुत अधिक महत्त्व देने के लिए और उसके स्वतन्त्र, आत्मविश्वासपूर्ण तथा आग्रहपूर्ण स्वभाव के लिए उसकी आलोचना करता तो उसे बहुत बुरा लगता। वह कहता कि वह स्वकेन्द्रित और अपने हित का पूरा हिसाब रखनेवाली है और केवल अपनी आवश्यकताओं की ही चिन्ता रखती है। इन सबके बावजूद वह अपनी नौकरी करती रही क्योंकि उसका

दृढ़ विश्वास था कि यदि किसी विवाहित स्त्री का पति काफी पैसा कमाता हो तब भी उसे काम करना चाहिए ताकि वह स्वयं अपने अधिकार से एक व्यक्ति की हैसियत रख सके और उसे घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता मिल सके।

वह अपने सहयोगियों और अन्य ऐसे पुरुषों के साथ मित्रता पैदा करती रही जो अच्छे पदों पर थे, प्रज्ञ और उदार विचारों वाले थे और जिनमें नेतृत्व के गुण थे। वह ऐसा इसलिए भी करती थी कि यह परम्परा के विरुद्ध था। वह उनसे प्रेरणा प्राप्त करती रही और अपनी बौद्धिक आवश्यकताओं को और प्रशंसा तथा सराहना प्राप्त करने की आवश्यकता को पूरा करती रही। घर से बुरी तरह निराश होकर वह स्नेह और बौद्धिक उद्दीपन के लिए दूसरे पुरुषों की संगत की खोज में रहती। अपने विवाह-सम्बन्ध की परिधि के भीतर ध्यान, प्रशंसा तथा रुचियों में पूरी भागीदारी के अभाव के कारण उसे एक नौजवान अफ़सर से बहुत गहरा लगाव हो गया जो उम्र में उससे बहुत छोटा था। चूंकि उससे उसे वह सहानुभूति, प्रोत्साहन और बौद्धिक उद्दीपन मिलता था जिसकी उसे बहुत आवश्यकता थी, इसलिए वह उसका बहुत सम्मान करती थी। लेकिन एक बार फिर लोगों ने उसे ग़लत समझा। परन्तु उसे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी।

इस प्रश्न के उत्तर में कि क्या वह तलाक़ लेने का इरादा रखती है, उसने कहा, "नहीं, अभी मेरी इस प्रकार की कोई योजना नहीं है। मैं मानती हूँ कि अपने पति के प्रति मेरा कोई संवेगात्मक लगाव नहीं है और हमारी रुचियों में कोई समानता नहीं है। मेरा अपना व्यवसाय, अपनी रुचियाँ, अपने सहयोगी और अपनी महत्त्वाकांक्षा है जिनसे मुझे बौद्धिक साहचर्य का सन्तोष भी मिलता है और हार्दिकता भी। आप आश्चर्य करते होंगे कि जब मुझे अपने पति से प्रेम नहीं है और उसके लिए अधिक कुछ करने की मेरी इच्छा भी नहीं है तो मैं उसके साथ रहती क्यों हूँ। बात यह है कि मैं विवाह के साथ किसी पवित्रता का या धार्मिक भावना का सम्बन्ध नहीं मानती। मैं अपनी सुख-सुविधाओं, अपनी ख्याति और सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सामाजिक सुरक्षा के लिए उसके साथ रहती हूँ और इसलिए कि आवश्यकता पड़ने पर कोई ऐसा हो जिसका सहारा ले सकूं। और सबसे बढ़कर मैं उसके साथ इसलिए रहती हूँ कि मुझे अब तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला है जिससे मैं विवाह करना चाहूँ और जो मुझसे विवाह करना चाहता हो।"

जब उससे पूछा गया, "आपकी राय में इसका क्या कारण है कि जब आप अपने पति की परवाह नहीं करतीं और उससे प्रेम नहीं करतीं तो वह आपको छोड़ क्यों नहीं देता ?" तो उसने उत्तर दिया, "बात यह है कि उसमें इतना साहस नहीं है। उसे अपनी ख्याति का भी ध्यान है और इस बात का भी कि उसके साथी क्या सोचेंगे। यह भी हो सकता है कि उसके अहंभाव को इससे सन्तोष मिलता हो कि उसकी पत्नी ऐसी है जो अपने व्यवसाय और अपने क्षेत्र में सुविख्यात है, प्रतिभाशाली और महत्त्वाकांक्षी है। उसमें आत्मविश्वास की कमी है और वह डरता है कि शायद उसे दूसरी

पत्नी न मिल सके या यह कि शायद वह अपनी दूसरी पत्नी के साथ भी सुखी न रह सके। या यह भी हो सकता है कि वह मुझे इसलिए नहीं छोड़ता कि वह मुझसे अब भी प्रेम करता है और मेरी परवाह करता है।"

उसने कहा कि वह हिन्दू कोड बिल की दृढ़ समर्थक है जिसमें पति-पत्नी के बीच "असंगति" के आधार पर भी तलाक़ देने का अधिकार दिया गया है। उसे इसमें कोई आपत्ति नहीं थी कि अगर किसी पत्नी की अपने पति से न बनती हो तो वह उसे छोड़कर दुबारा विवाह कर ले। उसका विश्वास था कि तलाक़ से असन्तोषजनक विवाहों की संख्या बहुत बड़ी हद तक कम हो जाती है। वह किसी दूसरे पुरुष के प्रति किसी विवाहित स्त्री के गहरे लगाव का अनुमोदन करती थी क्योंकि उसका विश्वास था कि विवाह-सम्बन्ध की परिधि के भीतर सभी बौद्धिक तथा संवेगात्मक आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता। और उसका मत था कि यदि पत्नी को कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये जो उसे प्रेरणा दे सकता हो या जो उसकी कुछ रुचियों तथा विचारों में उसका साझीदार बन सकता हो तो इसमें कोई बुराई नहीं है कि उससे उसका लगाव हो जाये। उसने बताया कि वह किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करना चाहती थी जो बुद्धि और शिक्षा में उससे श्रेष्ठतर हो, और जो कोई अच्छी नौकरी करता हो तथा उसकी रुचियां उसकी रुचियों जैसी ही हों, जिसके हृदय में उसके प्रति सम्मान तथा सराहना की भावना हो और जो बहुत उदार विचारोंवाला हो और जो उसे जो कुछ भी वह चाहे करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे सकता हो।

उसका विश्वास था कि पति-पत्नी के बीच आयु के अन्तर का कोई अधिक महत्त्व नहीं है; पति अपनी पत्नी से बड़ा भी हो सकता है, उसके बराबर भी या उससे छोटा भी। उसने कहा कि उसे किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं होगी जिसकी आयु उससे कम हो; और यदि वह प्रौढ़ हो तो वह उसके प्रति सम्मान का भाव रख सके।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि वह किस प्रकार के विवाह के पक्ष में है, उसने कहा कि वह प्रेम-विवाहों को बहुत अच्छा समझती है। चूंकि माता-पिता का तय किया हुआ उसका विवाह बहुत बुरी तरह विफल रहा था, इसलिए अब वह शुद्धतः तय किये हुए विवाहों की दृढ़ विरोधी थी। उसने आगे चलकर यह भी कहा, "शुद्धतः तय किये हुए विवाहों का विचार मेरे लिए सर्वथा अरुचिकर है। यह उस समय की बहुत घिसी-पिटी प्रथा है जब स्त्री को अपने जीवन के बारे में कोई निर्णय करने का प्रायः कोई अधिकार ही नहीं होता था। अब चूंकि वह शिक्षित हो गयी है और उसे इतने बहुत-से राजनीतिक तथा कानूनी अधिकार तथा सुविधाएँ मिल गयी हैं, इसलिए अपने जीवन के बारे में प्रमुख निर्णय वह स्वयं कर सकती है और उन्हीं में से एक निर्णय यह भी है कि वह किस व्यक्ति के साथ विवाह करना चाहेगी।" उसका विचार था कि 22 वर्ष की आयु के बाद लड़की को अपना पति स्वयं चुनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। वह अन्तर्जातीय विवाहों की दृढ़ समर्थक थी और उसे अलग-अलग

धर्मों तथा जातियों के लोगों के बीच विवाह होने में कोई आपत्ति नहीं थी। उसे इस बात में कोई आपत्ति नहीं थी कि एक प्रौढ़ लड़की किसी ऐसे प्रौढ़ लड़के से विवाह कर ले जो किसी अच्छी नौकरी पर लगा हुआ हो, चाहे वह अपने माता-पिता या अभिभावक की अनुमति के बिना ही ऐसा कर ले।

उसका विश्वास था कि विवाह एक आवश्यकता है क्योंकि उससे शारीरिक सन्तोष तथा पूर्ति का सुख प्राप्त होता है और अन्य आवश्यकताओं की भी तुष्टि होती है जैसे पति और घर की, प्रेम तथा साहचर्य की और सामाजिक तथा संवेगात्मक सुरक्षा की आवश्यकताएँ। उसकी राय में लड़की के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 20 से 24 वर्ष के बीच होती है। उसका विचार था कि सिविल विवाह तथा वैदिक रीति से सम्पन्न किये गये विवाह समान रूप से अच्छे होते हैं, पर वह स्वयं सिविल विवाह को अधिक पसन्द करती थी। उसका मत था कि विवाह एक सामाजिक अनुबन्ध होता है जो मुख्यत: वैयक्तिक लाभ के लिए और किसी स्त्री अथवा पुरुष के निजी सुख तथा सन्तोष के लिए किया जाता है। उसने यह भी कहा कि निश्चित रूप से उसने जीवन में सुख तथा सन्तोष प्राप्त करने के लिए ही विवाह करना चाहा था।

जब उससे पूछा गया कि उसने विवाह से किस चीज़ की आशा की थी, तो उसने उत्तर दिया, "मैंने अपने पति का प्रेम, सराहना और ध्यान प्राप्त करने को, एक ऐसा सुखप्रद घर पाने को जहाँ मैं अपने मित्रों का स्वागत-सत्कार कर सकूँ और एक ऐसा पति पाने की आशा की थी जो मेरी अनेक आवश्यकताओं को पूरा कर सके और जिसके प्रति मैं प्रेम तथा सम्मान का भाव रख सकूँ। सारांश यह कि मैंने विवाह से बहुत सुख और सन्तोष की आशा की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश मुझे कुछ न मिल सका।" उसने आगे चलकर कहा कि उसे अब भी जीवन में पूर्ण सुख तथा सन्तोष पाने की आशा है। उसने कहा कि उसे अपने काम और अपने मित्र-वर्ग से बहुत सन्तोष मिलता है। फिर भी उसने स्वीकार किया कि वह किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में है जो एक पति के रूप में उसकी प्रत्याशा को पूरा कर सके और तभी वह तलाक़ देने और दुबारा विवाह करने की बात सोच सकती है।

इस प्रश्न के उत्तर में कि उसकी राय में उस समय प्रचलित विवाह-पद्धति में क्या खराबी थी, उसने कहा, "बात यह है कि यह परम्परागत तय किये हुए विवाहों की पद्धति बहुत अरुचिकर है। मैं समझती हूँ कि जो लड़का और लड़की विवाह से पहले एक-दूसरे को अच्छी तरह न जानते हों और जिन्होंने आपस में विवाह करने का निर्णय स्वयं न किया हो, वे एक-दूसरे के साथ सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। विवाह जीवन का सबसे बड़ा जुआ है।" एक और बात जिसकी उसने बहुत आलोचना की वह थी विवाह को अत्यधिक पवित्र मानने की परम्परा जिसका परिणाम यह होता है कि यह जान लेने और दृढ़तापूर्वक अनुभव करने के बाद भी कि उन दोनों के बीच कोई भी बात समान नहीं है पति और पत्नी को साथ रहना प[illegible]

है। उसने कहा कि तलाक़ को बहुत कम जटिल और बहुत कम महँगा बना दिया जाना चाहिए ताकि वह एक वास्तविकता बन सके और उन लोगों की इच्छा मात्र न रह जाये जो तलाक लेना चाहते हैं। उसने यह भी कहा कि विवाह का अर्थ स्त्री की वैयक्तिकता तथा उसकी आकांक्षाओं का अन्त नहीं होना चाहिए। उसका दृढ़ मत था कि विवाह के बाद भी उसे पूरी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता दी जानी चाहिए और उसे जबर्दस्ती केवल अपने घर से बांध नहीं दिया जाना चाहिए।

कमला ने, जिसका पालन-पोषण एक कट्टरपंथी हिन्दू परिवार में हुआ था, इसलिए संवेगात्मक असन्तोष अनुभव किया था कि उसके पिता न केवल बहुत कठोर और दक़ियानूसी थे बल्कि उन्हें उससे कोई स्नेह भी नहीं था। उस पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये थे और उसके पिता ने उसके साथ जितनी कठोरता का व्यवहार किया था उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में वह अपने पिता के आदेशों की अवज्ञा करना चाहती थी और समाज को भी पिता का पर्याय समझने का कारण वह उसकी परम्पराओं और स्वीकृत मानदण्डों का भी विरोध करना चाहती थी। स्वतन्त्र और अपरम्परागत जीवन बिताने की इसी इच्छा के कारण विवाह की प्रथा के विभिन्न पहलुओं के बारे में उसकी अभिवृत्तियां रंजित हो गयी थीं।

माया, पमिला, सोनिया, शालिनी और वासना उन शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जो उन्मुक्त विचारों वाले पाश्चात्य रहन-सहन के परिवारों से सम्बन्ध रखती थीं और जिनका पालन-पोषण एक अपरम्परागत वातावरण में हुआ था। माया, पमिला, सोनिया और वासना ने तो बहुत अपरम्परागत और कट्टरता से मुक्त विचार और विश्वास व्यक्त किये, शालिनी ने बहुत कुछ परम्परागत विचार व्यक्त किये, हालांकि दस वर्ष पहले उसने भी उन्हीं से मिलते-जुलते विचार व्यक्त किये थे।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 7

तेईस-वर्षीया माया पिछले तीन वर्षों से एक सरकारी संगठन में काम कर रही थी और अपना काम उसे रोचक लगता था। वह ग्रेजुएट थी और 500 रु० महीना कमाती थी। वह जवान और देखने में सुन्दर थी, उसका रूप मोहक और शरीर का गठन बहुत आकर्षक था। अपने चारों ओर की हर चीज़ के प्रति वह बहुत उत्साहित और आन्दोलित रहती थी। वह बहुत अच्छे कपड़े पहने थी और ऐसा लगता था कि उसे अच्छे कपड़ों का चाव है। वह बहुत सुसंस्कृत तथा परिष्कृत थी और उसका चेहरा बहुत हँसमुख और सजग था। वह आत्मविश्वास से परिपूर्ण थी और सामाजिक आचार-व्यवहार में बहुत निःसंकोच तथा स्पष्टवादी थी और उन्मुक्त भाव से बातचीत करती थी और हमेशा नये लोगों से परिचय बढ़ाने के लिए उत्सुक रहती थी। इस जांच-पड़ताल के दौरान लेखिका के साथ कई बार लम्बी बातचीत करके उसने बहुत हर्ष अनुभव किया। अपने विचारों तथा अभिवृत्तियों के

बारे में वह बहुत स्पष्ट थी और उसकी रुचियाँ तथा अरुचियाँ बहुत दृढ़ थीं।

उसके पिता किसी निजी व्यापारिक संगठन में ऊँचे पद पर थे। उसके एक बहन तथा एक भाई और था और वह अपने माता-पिता की सबसे छोटी सन्तान थी। उसके माता-पिता का विवाह अन्तर्जातीय तथा अन्तर्प्रान्तीय था। उसकी माँ एक बहुत उन्नत परिवार की थीं और बहुत सुसंस्कृत तथा परिष्कृत थीं। माया ने अपना सारा जीवन बड़े-बड़े नगरों में बिताया था जहाँ उसके पिता काम करते थे। उसके माता-पिता बहुत उदार विचारों वाले थे और अपने बेटों और बेटियों के प्रति समान स्नेह रखते थे और उनका समान रूप से ध्यान रखते थे। घर का वातावरण बहुत सुख-शान्ति का था और लड़कियों को स्कूल के दिनों से ही बिना किसी रोक-टोक के अपने मित्रों के साथ घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता थी और वे बिल्कुल उन्मुक्त भाव से घूमती-फिरती थीं—लड़कियों के साथ भी और लड़कों के साथ भी। माया की बाल्यावस्था और तरुणाई बहुत सुख-सुविधा और स्वतन्त्रता के वातावरण में बीती थी। परिवार के सभी बच्चों के साथ ऐसे स्वतन्त्र व्यक्तियों जैसा व्यवहार किया जाता था जो अपनी इच्छा के अनुसार काम कर सकते हैं। उन्हें अच्छे कपड़े पहनने की आदत डाली गयी थी और उनमें इस बात की चेतना जागृत की गयी थी कि जीवन में वास्तविक महत्त्व इस बात का होता है कि आदमी देखने में कैसा लगता है और कैसे कपड़े पहनता है।

उसने सबसे अच्छे कॉनवेंट स्कूल में शिक्षा पायी थी, जहाँ उसने यह सीखा था कि अंग्रेज़ी में अच्छी तरह और सुगमता के साथ बातचीत कर सकने का कितना अधिक महत्त्व है। वहाँ उसने पाश्चात्य ढंग से बोलना, आचरण करना और यहाँ तक कि सोचना भी सीख लिया था। पढ़ाई में तो वह सामान्य स्तर की ही छात्रा थी पर नाट्यकला में बहुत निपुण थी और वह काफी लोकप्रिय भी थी क्योंकि उसका व्यक्तित्व मित्रतापूर्ण था। उसने ऐसे संस्थान में शिक्षा पायी थी जहाँ लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ते थे और जिन दिनों वह स्कूल में पढ़ती थी तभी से उसकी कई लड़कों के साथ मित्रता थी जिनके साथ वह पूरी स्वतन्त्रता के साथ घूमती-फिरती थी। सीनियर कैम्ब्रिज पास करने के बाद वह कालेज में भरती हुई और उसका छात्र-जीवन बहुत सुखमय बीता। पढ़ाई में उसकी रुचि कम और बाहर की गतिविधियों में अधिक थी।

चूंकि उसे पढ़ाई से अधिक रुचि नहीं थी और ग्रेजुएट हो जाने [illegible] आगे नहीं पढ़ना चाहती थी, इसलिए वह कोई ऐसी नौकरी कर लेना [illegible] उसे विभिन्न प्रकार के लोगों से मिलने का, खुले वातावरण [illegible] और कुछ थोड़ा-सा रोमांचकारी जीवन बिताने का [illegible] उसने केवल "जीवन का आनन्द लेने" और विवाह होने [illegible] यह नौकरी कर ली थी।

वह काम केवल इसलिए करती [illegible] जीवन का आनन्द [illegible]

सन्तोष मिलता था। वह अधिक आत्मविश्वास अनुभव करती थी और उसे लोगों से, विशेष रूप से विदेशियों से मिलने का बहुत चाव था। उसे पूरा विश्वास था कि वह अपने लिए कोई पति खोज लेगी और अपने भावी जीवन के बारे में उसने बहुत उज्ज्वल और रोमांटिक चित्र बना रखा था। उसने कहा कि वह विवाह के बाद भी काम करना चाहेगी ताकि उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व बना रहे और आर्थिक दृष्टि से वह स्वावलम्बी रहे, लेकिन वह केवल उसी समय तक काम करेगी जब तक उसे कोई सन्तोष मिले।

उनकी राय में विवाह इसलिए आवश्यक था कि हर स्त्री पारस्परिक प्रेम, सेक्स-जीवन, साहचर्य की जरूरत और एक पति और अपने घर की जरूरत अनुभव करती है। वह इस कथन से पूर्णतः सहमत थी कि "विवाह एक सामाजिक अनुबन्ध होता है जो मुख्यतः व्यक्ति की भलाई के लिए और उसके निजी सुख तथा सन्तोष के लिए किया जाता है।" उसने यह भी कहा कि "विवाह का मुख्य प्रयोजन अपने निजी सुख में वृद्धि करना है। इसलिए जिस ढंग से भी कोई चाहे विवाह कर सकता है—वैदिक पद्धति से, सिविल पद्धति से या दोनों ही पद्धतियों से। लड़की के लिए 10 वर्ष के बाद की कोई भी आयु विवाह करने के लिए ठीक है, इसका निर्णय इस पर निर्भर करता है कि वह इसकी आवश्यकता अनुभव करती हो।"

वह किस प्रकार का विवाह पसन्द करती है, इसके बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए उसने कहा कि वह पूरी तरह दूसरों के तय किये हुए विवाहों की घोर विरोधी थी और "प्रेम विवाह" के पक्ष में थी और यह भी कि वह किसी ऐसे व्यक्ति के साथ विवाह करना नहीं चाहेगी जिसे वह अच्छी तरह न जानती हो। उसने कहा, "लेकिन "प्रेम विवाह" का अर्थ यह नहीं है कि दो-चार मुलाक़ातों में जिससे मोह हो जाये उससे विवाह कर लिया जाये। मेरी धारणा के अनुसार प्रेम-विवाह अपनी पसन्द के आदमी के साथ विवाह होता है और उस पसन्द का फैसला बहुत जल्दबाजी में और केवल भावनाओं के आधार पर नहीं बल्कि बहुत सोच-समझकर और तर्कसंगत आधार पर करना होता है। और इसके लिए आवश्यक नहीं है कि स्त्री या पुरुष को पूरी तरह केवल अपने प्रयासों से ही अपना जीवन-साथी खोजना पड़े। सम्बन्धित व्यक्तियों को सम्भावित जीवन-साथी का सुझाव माता-पिता, सगे-सम्बन्धी या मित्र दे सकते हैं या फिर सम्बन्धित व्यक्ति पूरी तरह उस जोड़े के उपयुक्त होने का आश्वासन कर लेने के बाद स्वयं अपने माता-पिता के सामने यह सुझाव रख सकते हैं। पहले वाली स्थिति में सम्बन्धित स्त्री तथा पुरुष का अनौपचारिक ढंग से एक-दूसरे से परिचय कराया जा सकता है और उसके बाद यदि दोनों एक-दूसरे को और अधिक अच्छी तरह जानना चाहें तो उन्हें इसका अवसर दिया जाना चाहिए। और जब वे एक-दूसरे को अपने लिए उपयुक्त पायें और दोनों में एक-दूसरे के प्रति स्नेह पैदा हो जाये तभी उन्हें विवाह करने का निर्णय करना चाहिए। दूसरी वाली स्थिति में वे स्वयं अपने लिए साथी चुन सकते हैं और अपने माता-पिता से सलाह

कर सकते हैं और अन्तिम निर्णय करने से पहले स्वयं अपनी ओर से छानबीन और मूल्यांकन कर सकते हैं। यह निर्णय उस लड़की या लड़के को करना होगा कि वह अपने माता-पिता के परामर्श का पालन करे या न करे, और यह बात इस पर निर्भर होगी कि उन्होंने अपना भावी जीवन-साथी कितने शान्त और यथार्थ भाव से चुना है।" उसका विचार था कि लड़की को अपने लिए उचित वर स्वयं खोज लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, लेकिन उसे अन्तिम निर्णय करने से पहले पूरी समस्या पर खुलकर अपने माता-पिता से विचार-विमर्श कर लेना चाहिए। उसकी राय में परिवारवालों की अपेक्षा उन लोगों के हितों तथा इच्छाओं को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए जिनका आपस में विवाह होनेवाला है।

माया अलग-अलग जातियों तथा प्रान्तों के लोगों के बीच, यहाँ तक कि अलग-अलग धर्मों तथा राष्ट्रों के लोगों के बीच भी विवाह की दृढ़ समर्थक थी। उसके माता-पिता भी इस विचार से सहमत थे। उन्हें इस बात में कोई भी आपत्ति नहीं थी कि उनकी बेटियाँ किसी से भी विवाह कर लें। वे केवल यह चाहते थे कि वह आदमी धनी, सुसंस्कृत, उदार विचारों वाला हो और उनकी बेटी से प्रेम करता हो। लेकिन माया किसी विदेशी से विवाह करना चाहती थी। उसने कहा कि वह विदेशियों को विशेष रूप से पसन्द करती थी और वह किसी भारतीय की अपेक्षा किसी अमरीकन से विवाह करना अधिक पसन्द करेगी। दो-एक विदेशियों से उसकी मित्रता भी थी जिनसे उसकी मुलाक़ात अपनी नौकरी या अपने सामाजिक जीवन के दौरान हुई थी।

भावी जीवन-साथियों की उम्रों के अन्तर को वह बहुत कम महत्त्व देती थी। पुरुष उसकी राय में स्त्री से बड़ा भी हो सकता था, उसके बराबर भी या उससे छोटा भी। उसने कहा कि उसके मन में इस बात की कोई अडिग धारणा नहीं है कि वह अपने पति में क्या-क्या बातें चाहती है। उसने कहा, "मैं अपने भावी पति में किसी विशेष गुण की खोज में नहीं हूँ। अगर किसी से मेरी बात बन गयी तो बन गयी, और पति को चुनने में इसी बात का सबसे अधिक महत्त्व है।" वह इसी "बात बन जाने" को सबसे अधिक महत्त्व देती थी, परन्तु उसके समाजीकरण की प्रक्रिया, जीवन के मूल्यों और उसके विभिन्न कथनों का विश्लेषण करने पर हम यही कहेंगे कि उसकी बात केवल किसी बहुत खाते-पीते, मिलनसार और हँस-चालाक आदमी से ही बन सकती थी।

अपने भावी जीवन के बारे में उसका दृष्टिकोण बहुत आशावान था और उसे पूरा विश्वास था कि वह अपनी पसन्द के किसी ऐसे आदमी से विवाह करेगी जो उसे जीवन की सारी सुख-सुविधाएँ दे सकने के साथ ही उसे सुखी और सन्तुष्ट भी रख सके। उसने कहा कि वह अपनी संवेगात्मक, सेक्स-सम्बन्धी तथा भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और इसके साथ ही सामाजिक ... विवाह करना चाहती थी। वह ...

पति बहुत पढ़ा-लिखा हो, उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल हो और उसका स्वभाव प्रेममय हो।

वह दहेज प्रथा के पक्ष में नहीं थी लेकिन उसने कहा कि वह यह अवश्य चाहेगी कि जब उसका विवाह हो तो उसके माता-पिता उसे जीवन की नितान्त आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त सुख-सुविधा की वस्तुएँ भी दें।

वह इस बात को निन्दाजनक नहीं समझती थी कि किसी स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति से गहरा लगाव हो, लेकिन केवल उसी स्थिति में जब उसका पति उसकी ओर आवश्यक ध्यान न देता हो या उसके प्रति आवश्यक स्नेह न रखता हो, या वह उसकी रुचियों, विचारों अथवा संवेगों में उसका साझीदार न बन सकता हो। वास्तव में वह इस बात को उचित भी समझती थी कि किसी स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति से गहरा लगाव हो, क्योंकि वह अनुभव करती थी कि यदि वह दूसरा व्यक्ति बौद्धिक उद्दीपन प्रदान कर सकता हो या दोनों के लिए साहित्य या संगीत जैसा हर्ष का कोई समान स्रोत हो, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है कि उन दोनों में एक-दूसरे के लिए चाह हो। वह यह नहीं समझती थी कि तलाक़ के विचार से समायोजन के प्रयासों में बाधा पड़ती है। उसका विचार था कि तलाक़ से असन्तोषप्रद विवाहों की संख्या बहुत बड़ी हद तक कम हो जाती है। उसका विश्वास था कि पत्नी को, अपने-आपको, अपने पति की रुचियों तथा इच्छाओं के अनुसार ढाल लेना चाहिए, लेकिन केवल एक निश्चित हद तक। पति को भी इतनी ही हद तक अपने-आपको अपनी पत्नी की रुचियों के अनुसार ढाल लेना चाहिए। वह इस बात के पक्ष में थी कि यदि दोनों एक-दूसरे के लिए असंगत हों और घर पर बहुधा संघर्ष चलता रहता हो तो वे तलाक़ ले लें और पत्नी अपने पति को छोड़कर दूसरा विवाह कर ले।

उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि पुरुषों तथा स्त्रियों को तभी विवाह करना चाहिए जब वे एक-दूसरे से प्रेम करते हों और एक-दूसरे का सम्मान करते हों, और जब उनमें एक-दूसरे के लिए प्रेम या सम्मान न रह जाये और वे एक-दूसरे का बिल्कुल भी ध्यान न रख सकें और विवाह का सम्बन्ध एक रणक्षेत्र बन जाये तो उन्हें अलग हो जाना चाहिए। मेरी दृढ़ भावना है कि प्रेम के बिना विवाह करना या प्रेम के विवाह के सम्बन्ध को बनाये रखना लगभग अनैतिक है क्योंकि यह एक बेईमानी का और कायरतापूर्ण काम है।" वह इस बात की दृढ़ समर्थक थी कि यदि कोई विधवा या तलाक़ दी हुई स्त्री किसी भी आयु में विवाह की आवश्यकता अनुभव करे तो वह दुबारा विवाह कर ले।

जब उससे पूछा गया कि क्या वह इस बात के पक्ष में है कि पति या पत्नी को दूसरा विवाह करने का अधिकार होना चाहिए, तो उसने उत्तर दिया, "हाँ, मैं इसके पक्ष में हूँ। मैं समझती हूँ कि दोनों ही को एक से अधिक बार विवाह करने की छूट होनी चाहिए, लेकिन एक-दूसरे की अनुमति से, और यदि विवाह-सम्बन्ध के दोनों पक्ष

इसके लिए सहमत हों तो समाज को भी इसे मान्यता देनी चाहिए और इसका अनुमोदन करना चाहिए। कुछ भी हो, यह उनका निजी मामला है और यदि उन्हें एक ही व्यक्ति के साथ रहना नीरस लगता हो तो वे हमेशा एक के बजाय दो व्यक्तियों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, परन्तु केवल उस दशा में जब वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हों। यदि वे सहमत न हों तो उन्हें एक-दूसरे से अलग हो जाना चाहिए, तलाक़ ले लेना चाहिए और उसके बाद दूसरा विवाह कर लेना चाहिए।"

यह पूछे जाने पर कि उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है, उसने उत्तर दिया कि निःसन्देह उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य अपनी पसन्द के आदमी से विवाह करना है। फिर भी उसने उस समय तक विवाह इसलिए नहीं किया था कि उसने अभी तक इसकी तीव्र आवश्यकता नहीं अनुभव की थी, क्योंकि उसका जीवन बहुत सुख-चैन से बीत रहा था।

इस प्रश्न के उत्तर में कि "इस समय मध्यमवर्गीय हिन्दू समाज में विवाह की जो पद्धति प्रचलित है उसमें क्या दोष है ?" उसने कहा कि विवाह तय करने के परम्परागत ढंग से लेकर विवाहोत्सव और दम्पत्ति के रहन-सहन तक लगभग सभी बातें दोषयुक्त हैं। उसने कहा कि विवाह एक बहुत जटिल समस्या होती है और इसमें दो व्यक्तियों के साथ रहने और उनके हर दृष्टि से एक-दूसरे के जीवन में साझेदार होने का सवाल होता है और यदि इस क्षेत्र में प्रवेश करनेवाले दोनों व्यक्ति हर दृष्टि से एक-दूसरे को अच्छी तरह न जानते हों तो सम्भव है कि वे एक-दूसरे के साथ सुखी न रह सकें। उसने कहा, "मेरी राय में तो महीनों तक एक-दूसरे से मिलते रहने के बाद भी दो व्यक्ति एक-दूसरे को पूरी तरह नहीं जान सकते। जब पति-पत्नी साथ रहना आरम्भ करते हैं तभी वे पता लगा सकते हैं कि वे एक-दूसरे के लिए उपयुक्त हैं या नहीं, उनकी दिलचस्पियाँ तथा विचार, रुचियाँ तथा अरुचियाँ, एक-दूसरे से मिलती हैं या नहीं, और यह कि उन्हें एक-दूसरे के साथ रहने और एक-दूसरे के शारीरिक सम्पर्क से सुख मिलता है या नहीं। इसके लिए मेरी दृढ़ भावना है कि 'परीक्षण विवाह' होने चाहिएँ। इससे मेरा अभिप्राय यह है कि यदि कोई स्त्री तथा पुरुष काफी समय तक एक-दूसरे को जानने और एक-दूसरे के मित्र रहने के बाद अनुभव करें कि उन्हें एक-दूसरे से प्रेम है और वे विवाह करना चाहते हैं, तो उन्हें समाज की सहमति से पति-पत्नी की तरह साथ रहने दिया जाना चाहिए, लेकिन उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब तक वे यह न अनुभव करें कि वे एक-दूसरे के लिए उपयुक्त हैं और स्थायी सम्बन्ध की प्रबल इच्छा रखते हैं तब तक वे बच्चे न पैदा करें। मैं समझती हूँ कि इस प्रकार वे एक दुखी वैवाहिक सम्बन्ध की निराशा से बच सकते हैं।"

उसने तर्क दिया, "आखिर विवाहोत्सव की औपचारिकता के बिना किसी लड़के और लड़की के साथ रहने में हर्ज ही क्या है। मैं इस सम्बन्ध को चरित्रहीन अथवा निष्ठाहीन नहीं मानती। इसके विपरीत एक-दूसरे के प्रति पूर्ण निष्ठा तथा

निर्भरता की आवश्यकता होती है। यद्यपि यह अनाधिकारिक तथा अनौपचारिक हो
है, फिर भी यह आधिकारिक विवाह के दायित्व को सँभालने के लिए एक प्रकार
तैयारी होती है।" उसने आगे चलकर कहा कि इस परीक्षण की अवधि में दोनों ओ
से किसी प्रकार की प्रतिबद्धता नहीं होनी चाहिए और यदि उनमें से कोई एक
दोनों ही उस सम्बन्ध से मुक्त होना चाहें तो उन्हें ऐसा करने की पूरी छूट होनी चाहि
और जो लोग इस पद्धति को परखना चाहें उनके लिए इसे समाज की मान्यता
जानी चाहिए।

एक और बात जिस पर उसने जोर दिया वह यह थी कि तलाक़ देने की पद्ध
और सुगम होनी चाहिए और उसे समाज की मान्यता मिलनी चाहिए। वह अनुभ
करती थी कि जो लोग तलाक़ ले लेते थे उनके प्रति, विशेष रूप से स्त्रियों के प्र
समाज का तिरस्कारपूर्ण रवैया कदापि वांछनीय नहीं है, क्योंकि उसका विश्वास
कि तलाक़ से दुःखी तथा असन्तुष्ट दम्पत्तियों की संख्या कम होती है। उसने कह
"मैं समझती हूँ कि जीवन इतना अधिक बहुमूल्य होता है कि उसे किसी ऐसे व्यक्ति
के साथ व्यतीत नहीं किया जाना चाहिए जिससे हम किसी भी कारण प्रेम न क
सकते हों या जिसका हम सम्मान न कर सकते हों। ऐसी परिस्थिति में यदि वे एक-दूस
के जीवन से बाहर चले जायें तो जीवन उनके लिए अधिक उपयोगी तथा अर्थपूर्ण ब
सकता है।"

अन्त में उसने एक बार फिर जोर देकर कहा, "मैं समझती हूँ कि वास्तवि
विवाह से पहले एक परीक्षण अवधि होनी चाहिए जिसे समाज की मान्यता प्राप्त हो
चाहिए। साथ-साथ रहने की इस अवधि के दौरान लड़का और लड़की यह पता ल
सकेंगे कि प्रतिदिन एक-दूसरे के साथ रहना कैसा लगता है और उन्हें वास्तविकता
ठोस प्रसंग में गहराई से खोज-बीन करने और अपने सम्बन्ध के बारे में प्रयोग कर
का अवसर मिलेगा। मुझे आश्चर्य है कि समाज केवल सतीत्व की रक्षा करने की भ्राम
धारणा के कारण इतने महत्त्वपूर्ण अनुभव तथा ज्ञान की अनुमति नहीं देता तथा उ
स्वीकार नहीं करता, जबकि स्वस्थ घनिष्ठ सम्बन्धों की स्थापना के अन्तिम लक्ष्य क
तुलना में यह नगण्य है।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 15—विवाह की प्रथा के बारे में अपने विचार व्यक्
करते हुए पमिला ने सबसे अधिक सहमति इस कथन से प्रकट की कि "विवाह ए
सामाजिक अनुबन्ध है जो मुख्यतः व्यक्ति की भलाई के लिए और उसके निजी सुर
सन्तोष के लिए किया जाता है।" परन्तु वह विवाह के लिए औपचारिक अथव
कानूनी स्वीकृति की आवश्यकता से पूर्णतः असहमत थी। उसने कहा, "मैं समझती
कि स्त्री और पुरुष के घनिष्ठ सम्बन्ध को कानूनी रूप देने की कोई आवश्यकता नह
है और विवाह की भी कोई आवश्यकता नहीं है। "उन्मुक्त प्रेम" की छूट होनी चाहि
और लड़की को किसी प्रतिबद्धता के बिना अपनी पसन्द के किसी भी आदमी के सा
रहने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए यदि दोनों को एक-दूसरे से सन्तोष मिलता हो। य

दो व्यक्तियों के बीच एक अव्यक्त समझदारी या अनुबन्ध की तरह है जिसे वे लोग लाभ के आदान-प्रदान के लिए अपनी इच्छा से करते हैं और इसलिए उनके सम्बन्ध में से 'प्रेम' का लोप हो जाने के बाद भी उन्हें उसका पालन करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए ।"

आगे चलकर उसने कहा, "आज मध्यमवर्गीय हिन्दू समाज में विवाह का जो रूप है वह लगभग कानूनी बलात्कार तथा जबरी कारावास जैसा है । इसमें व्यक्ति को अपनी स्वाधीनता तथा स्वतन्त्रता त्याग देनी पड़ती है जो विवाह के लिए आवश्यकता से अधिक बड़ा बलिदान है । इससे स्वैच्छिक स्नेह का—उस प्रेम का जो उन्मुक्त भाव से दिया जाता है और हर्षपूर्वक प्राप्त किया जाता है—अन्त हो जाता है और विवाह के बन्धन में जकड़ जाने के बाद अत्यन्त रोमांटिक प्रेम-सम्बन्ध भी एक कटु अनुबन्ध बनकर रह जाता है । जिस क्षण किसी रोमांस को विवाह का कानूनी रूप दे दिया जाता है उसी क्षण उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है क्योंकि विवाह और रोमांस का साथ-साथ अस्तित्व प्रायः असम्भव है । रोमांस का अर्थ है किसी व्यक्ति को चाहना और उसकी इच्छा करना । जिस क्षण विवाह-सूत्र में बँधकर आप एक-दूसरे को पा जाते हैं, फिर चाहने और इच्छा करने का सवाल ही कहाँ रह जाता है ? मैं समझती हूँ कि विवाह उन सामाजिक प्रथाओं में से है जो केवल इसलिए बनी रही है कि लोग उसके आदी हो गये हैं जैसे वे किसी बुरी आदत के आदी हो जाते हैं ।" बाद में उसने कहा, "हमें अपने अन्दर यह क्षमता पैदा करनी चाहिए कि हम विवाह की परिधि के अन्दर किसी एक या इने-गिने लोगों से प्रेम करने के बजाय सभी लोगों से प्रेम कर सकें । अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी एक व्यक्ति पर निर्भर रहने के बजाय हमें अपने संवेगात्मक तथा बौद्धिक क्षितिज और व्यापक बनाने चाहिएँ और कई व्यक्तियों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की कोशिश करनी चाहिए, परन्तु यदि किसी को विवाहित जीवन की एकरसता में एक ही व्यक्ति के साथ बाँध दिया जाये तो यह सम्भव नहीं है ।"

उसने एक प्रगतिशील समाज में नये-नये अनुसन्धान करने, प्रयोग करने और परिवर्तन लाने की आवश्यकता पर जोर दिया । उसने कहा, "एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में, जहाँ हमें विभिन्न धर्मों, विचारधाराओं और जीवन-पद्धतियों के प्रति सहिष्णुता बरतनी पड़ती है, लोगों को यह भी क्यों न सिखाया जाये कि वे विभिन्न प्रकार के वैवाहिक आचरणों को स्वीकार करें, जिनमें 'अ-विवाह' का आचरण भी सम्मिलित है ?" आगे चलकर उसने यह भी कहा, "क्या जरूरी है कि समाज एक बँधे हुए, घिसे-पिटे और निश्चित ढर्रे पर चलता रहे और विवाह में भी विविधता क्यों न हो ?"

इस प्रश्न के उत्तर में कि "क्या तुम्हारे जीवन का अन्तिम लक्ष्य विवाह है ?" उसने कहा, "जी नहीं, उस अर्थ में नहीं जो आजकल समझा जाता है । मैं 'पिंजरे में रहनेवाली चिड़िया' नहीं हूँ और मैं किसी एक व्यक्ति के साथ बँधकर रहना नहीं चाहती । मैं उसके साथ केवल उसी समय तक रहना चाहूँगी जब तक मुझे उससे [illegible]

मिले और जब भी मैं वह सम्बन्ध बनाये रखना नहीं चाहूँगी मैं किसी दुर्भावना, प्रति
बद्धता अथवा अपराध की भावना के बिना उसे छोड़ दूँगी। चूँकि मैं नहीं चाहती कि
मुझ पर किसी का स्वामित्व हो, इसलिए मैं किसी पर अपना स्वामित्व रखना भी नह
चाहती। मैं चाहती हूँ कि अपने सन्तोष और सुख के लिए जो कुछ भी मैं करना चा
वह करने की मुझे पूरी स्वतन्त्रता हो। किसी भी आयु, जाति, नस्ल या धर्म के पुरु
और स्त्री के इस ढंग के साथ रहने को समाज की स्वीकृति तथा मान्यता मिलन
चाहिए और इस प्रकार के सम्बन्धों से जो बच्चे पैदा हों उन्हें भी समाज में स्वीका
किया जाना चाहिए और एक व्यक्ति के रूप में उन्हें प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। यह
तक कि जिन लोगों ने उन्हें जन्म दिया है यदि वे उनका पालन-पोषण न कर सक
हों, या न करना चाहते हों तो राज्य को उनके पालन-पोषण का भार सँभाल
चाहिए।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 9—मोना ने (जिसका परिचय चौथे अध्याय में दि
गया है) इस बात के बारे में अपने विचार व्यक्त किये कि उसकी राय में किस प्रक
का विवाह करने योग्य होता है। उसने कहा, "कुछ भी हो, किसी भी मानव-सम्ब
में, विवाह में तो और भी अधिक, दो ऐसे साझेदारों के बीच जो परस्पर एक-दू
की स्वतन्त्रता और मूल्य को स्वीकार करते हों, पूरी ईमानदारी और स्पष्टवादिता
सम्बन्ध होना चाहिए। वह दो ऐसे मित्रों का सम्बन्ध होना चाहिए जिसमें कोई न
दूसरे पर अपना प्रभुत्व जताता हो और न अपने को दूसरे के अधीन समझता हो
जिनमें दोनों ही अलग-अलग वैयक्तिक रूप से और संयुक्त रूप से भी अपना विक
करने तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र हों और जिसमें एक-दूसरे के
'पूर्ण विश्वास' हो और ईर्ष्या या प्रभुत्व की भावना का नाम भी न हो। और स
बढ़कर उसमें 'पूर्ण स्वतन्त्रता' होनी चाहिए, जो मेरी राय में किन्हीं भी दो व्यक्ति
के बीच सबसे दृढ़ और सबसे बहुमूल्य बन्धन होता है।"

बाद में विवाह की परिधि के बाहर गहरे लगावों के बारे में अपने विच
व्यक्त करते हुए उसने कहा, "एक-विवाही पद्धति में एकाधिकार स्वामित्व का विच
मुझे बेहद घृणास्पद लगता है। विवाह को एक निष्कपट तथा उन्मुक्त सम्बन्ध ह
चाहिए, जिसमें प्रेम और सेक्स केवल विवाह की परिधि तक सीमित न हों ब
'स्वामित्व की भावना से रहित' और 'उन्मुक्त' हों। विवाह हो जाने पर दोनों स
दारों को विकास करना और अनुभव प्राप्त करना बन्द नहीं कर देना चाहिए।
बजाय विवाह की परिधि के भीतर भी और उसके बाहर भी दोनों साझेदारों
विविध अनुभवों के माध्यम से विकास के अधिक अवसर तथा स्वतन्त्रता होनी चाहि
जब दोनों साझेदारों के बीच पूर्ण स्वतन्त्रता तथा विश्वास, पूरी ईमानदारी और स्प
वादिता होगी, तो उनके लिए अपने व्यक्तित्व को विकसित करने और हर प्रका
विवाहेतर सम्बन्धों के लिए नयी सम्भावनाएँ उपलब्ध होती रहेंगी और अशक्त
तथा अपंग कर देनेवाली ईर्ष्या तथा स्वामित्व की भावना के बिना प्रेम में दूसरों

भी सम्मिलित किया जा सकेगा।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 2

पैंतीस-वर्षीया सोनिया विश्वविद्यालय में पढ़ाती थी पर बीच-बीच में वह काम करना छोड़ भी चुकी थी। उसने विवाह के पहले कुछ वर्षों तक काम किया था और इधर दो वर्षों से काम कर रही थी। उसको प्रतिमाह 700 रु० मिलते थे। शैक्षिक योग्यता की दृष्टि से वह एम० ए०, पी-एच० डी० थी। उसकी शक्ल-सूरत सुन्दर और शरीर-रचना आकर्षक थी। उसका आचार-व्यवहार अत्यन्त सुखकर तथा मोहक था। वह बहुत सुसंस्कृत तथा परिष्कृत और मृदु-भाषी तथा कोमल थी। उसमें कोमल नारीत्व और आत्मविश्वास का एक अनोखा सम्मिश्रण था। उसके विचारों में बड़ी परिपक्वता थी और उसका व्यवहार बहुत विनम्र तथा मैत्रीपूर्ण था। वह अत्यन्त व्यक्तिवादी थी और उसका व्यक्तित्व सुविकसित था। उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हुआ था जो बहुत पढ़ा-लिखा था और अपने व्यवसाय में सफल था। उसके एक बेटा था।

उसके पिता एक बहुत बड़े शहर में व्यापार करते थे। उनका व्यापार बहुत फल-फूल रहा था, विशेष रूप से उस समय जब सोनिया बच्ची थी। उसके एक बहन और दो भाई थे। उसने अपना बचपन बहुत सुख-सुविधा के वातावरण में बिताया था क्योंकि उसके पिता के पास अपने बच्चों को ऐश्वर्य के वातावरण में पालने के लिए काफी धन था। उनके सभी बच्चे देखने में बहुत सुन्दर थे। हर आदमी उनकी बहुत प्रशंसा करता था और माता-पिता भी उनसे बहुत प्यार करते थे। उन सभी का जन्म और पालन-पोषण बड़े नगर में हुआ था।

अपनी बहन और भाइयों के साथ सोनिया ने भी कानवेंट में शिक्षा पायी थी। पढ़ाई में तो वह तेज़ थी ही, पर पाठ्येतर क्रियाकलाप में और भी अच्छी थी। स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद उसने विश्वविद्यालय में शिक्षा पायी थी जहाँ लड़के और लड़कियाँ साथ पढ़ते थे। चूँकि उसके माता-पिता उदार विचारों वाले थे, इसलिए उन्होंने अपने बच्चों को घूमने-फिरने और मित्र बनाने की स्वतन्त्रता दे रखी थी। सोनिया के बहुत-से मित्र थे—लड़के भी और लड़कियाँ भी। वह कुछ ऐसे लोगों के सम्पर्क में आयी थी जो जीविकोपार्जन की दृष्टि से सुस्थापित थे, जिनसे वह अक्सर मिलती रहती थी और विवाह करने के विचार से उन्हें अच्छी तरह जान लेने के उद्देश्य से जिनके साथ वह बहुधा आती-जाती रहती थी। लगभग एक वर्ष तक उनसे मिलते रहने और उनको जान लेने के बाद उनके साथ उन्मुक्त भाव से घूमने-फिरने के बाद उसने महसूस किया कि उनमें से कोई भी न तो इतना उदार विचारों वाला था और न ही किसी की रुचियाँ उसकी जैसी थीं, और उनमें से कोई भी बौद्धिक तथा शैक्षिक दृष्टि से इतना श्रेष्ठतर या धनवान और उदार ही था कि वह उसे अपना जीवन-साथी बना सके। इसी बीच उसने एम० ए०, पी-एच० डी० कर लिया और एक कालेज में पढ़ाने लगी।

कुछ समय बाद एक लड़का जो कालेज में उसके साथ पढ़ता था और उससे एक वर्ष छोटा था, जो दूसरी जाति और दूसरे प्रान्त का था और किसी दूसरे शहर में एक प्राइवेट कम्पनी में बहुत अच्छी नौकरी पर लगा हुआ था, उसी शहर में नियुक्त होकर आ गया जहाँ वह रहती थी। वह पढ़ा-लिखा था, उसमें आत्मविश्वास था, बहुत अच्छे वेतन वाली नौकरी करता था, उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली था, वह बाहर घूमने-फिरने और सामाजिक जीवन का प्रेमी था और जीवन के बारे में उसका दृष्टिकोण भी वही था जो सोनिया का था। सोनिया ने सोचा कि वह उसके लिए अच्छा पति रहेगा और इसलिए उसने उसके साथ मित्रता बढ़ाने का निर्णय किया। उसने भी महसूस किया कि सोनिया देखने में सुन्दर, पढ़ी-लिखी और सुसंस्कृत है और उसका सम्बन्ध एक बहुत खाते-पीते घराने से है। उसे सोनिया के साथ रहकर बहुत सुख मिलता था और वह यह जानना चाहता था कि पत्नी के रूप में वह उसके लिए कहाँ तक उपयुक्त रहेगी। दोनों ने एक-दूसरे से मिलते रहने का निर्णय किया और कुछ ही दिनों में वे बहुत अच्छे मित्र बन गये।

चूंकि सोनिया के माता-पिता उदार विचारों वाले थे और उस लड़के को ठीक समझते थे, इसलिए उन्होंने सोनिया को रात को देर तक उसके साथ रहने की छूट दे रखी थी। दोनों को एक-दूसरे के साथ रहकर बहुत सुख मिलता था और वे अपनी समान रुचियों का आनन्द लेते थे। वे एक-दूसरे की वैयक्तिक रुचियों तथा अरुचियों का ध्यान रखते थे और एक-दूसरे को अपने-अपने विचार स्वतन्त्र तथा उन्मुक्त भाव से व्यक्त करने का अवसर देते थे। दोनों को सिगरेट और शराब पीने का शौक था और उनका सामाजिक जीवन बहुत उल्लासमय था। उसने बताया कि एक वर्ष से अधिक समय तक एक-दूसरे को जान लेने के बाद दोनों ने बहुत ठंडे दिमाग से और यथार्थता को ध्यान में रखते हुए इस बात पर विचार-विमर्श किया कि उन्हें विवाह कर लेना चाहिए या नहीं। वे इस बात पर भी सहमत थे कि विवाह के बाद भी दोनों को अलग-अलग अपना जीवन और अलग-अलग अपने मित्र रखने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जब दोनों ने महसूस किया कि वे विवाह करना चाहते हैं तो उन्होंने अपने-अपने माता-पिता को अपने इस इरादे की सूचना दी। चूंकि उनके माता-पिता भी रूढ़िवादी नहीं थे, इसलिए उन्होंने भी सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस प्रकार माता-पिता की हार्दिक अनुमति से उनका विवाह हो गया।

सोनिया ने बताया कि विवाह के बाद जब उसके बेटा हुआ था तब उसने कुछ वर्षों के लिए काम करना छोड़ दिया था, लेकिन जब लगभग दो वर्ष का हो गया तो उसने फिर काम करना शुरू कर दिया। उसने कहा कि वह अपने विवाहित जीवन से बहुत प्रसन्न थी और उसका पति भी बहुत प्रसन्न था। परन्तु इसका मुख्य कारण यह था कि उनके पास बहुत-सा धन था, जो उनके अनुसार विवाह को सफल बनाता है, और इसलिए भी कि वे एक-दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप नहीं करते थे। सोनिया के अपने सहकर्मी और मित्र थे, और उसके पति की भी अपनी मित्र-मण्डली थी। वे

अपना सामाजिक जीवन मिलकर भी विताते थे और अलग-अलग भी। दोनों ही को इस वात को पूरी छूट थी कि वे जो भी उचित समझें, कर सकते हैं।

विवाह के वारे में अपने विचारों से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देते हुए उसने कहा कि वह विवाह को एक ऐसा सामाजिक अनुबन्ध मानती है जो मुख्यतः सम्बन्धित पक्षों की सुख-सुविधा के लिए किया जाता है। उसने कहा कि यही कारण है कि इस प्रकार का अनुबन्ध करने के लाभों का हमेशा मूल्यांकन कर लिया जाना चाहिए, और यदि हानि की तुलना में लाभ अधिक हो तभी यह अनुबन्ध किया जाना चाहिए। उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि विवाह सचमुच दोनों सम्बन्धित पक्षों के लिए एक वहुत कठिन संस्था है। मेरी धारणा के अनुसार इसे दो ऐसे व्यक्तियों के वीच एक सर्वथा व्यावहारिक व्यवस्था होनी चाहिए, जिन्होंने वहुत ठंडे दिमाग से और बुद्धिसंगत ढंग से इस वात का पूरा आश्वासन कर लेने के वाद ही उसमें प्रवेश करने का निर्णय किया हो कि साथ-साथ रहने के लाभ अलग-अलग रहने की हानियों की तुलना में वहुत अधिक हैं।"

जव उससे पूछा गया कि उसने विवाह करना क्यों चाहा था, उसने वास्तव में विवाह क्यों किया और विवाह से वह क्या आशा करती है, तो उसने उत्तर दिया, "मैं इसलिए विवाह करना चाहती थी कि मैं अपनी भौतिक, शारीरिक तथा संवेगात्मक आवश्यकताओं को पूरा कर सकूँ और मेरा अपना पति, घर और वच्चे हों। और मैंने विवाह किया इसलिए कि मैंने महसूस किया कि मुझे अपनी रुचि का एक ऐसा आदमी मिल गया है जो मेरा जैसा ही पढ़ा-लिखा, बौद्धिक दृष्टि से और आर्थिक हैसियत तथा भावी सम्भावनाओं की दृष्टि से मुझसे श्रेष्ठतर और उदार विचारों वाला था। मैं अपने विवाह से भौतिक सुख-सुविधाओं, शारीरिक सन्तोष, प्रेम, साहचर्य, रुचियों तथा भावनाओं में साझेदारी की आशा करती थी और काफी हद तक मैंने उससे जो कुछ आशा की थी वह मुझे मिली भी। मेरा यह विश्वास नहीं था कि विवाह से वहुत अधिक या पूर्ण सुख मिल जाता है। मैं हमेशा यही समझती थी कि विवाह से सुख तो मिलेगा लेकिन केवल तभी जव हम उसे वस्तुपरक दृष्टि से एक ऐसा अनुष्ठान मानने की बुद्धिमत्ता का परिचय दें जिसमें दोनों पक्ष अनुबन्ध की शर्तों से सन्तुष्ट हों। मैंने यह समझ लिया था कि विवाह सुख का एकमात्र स्रोत नहीं होता, सन्तोष तथा सुख के और स्रोत भी होते हैं—जैसे नौकरी, शौक, रुचियाँ, मित्र, वौद्धिक क्रियाकलाप, दूसरों के प्रति स्नेह और वाहर का जीवन।"

उसने कहा कि विवाह यद्यपि आवश्यकता नहीं है फिर भी उससे जो सुविधाएँ और लाभ मिलते हैं उनके कारण वह महत्त्वपूर्ण है। वह सामाजिक सुरक्षा, साहचर्य, प्रेम और विभिन्न दूसरी आवश्यकता की पूर्ति प्रदान करता है। उसका विश्वास था कि 18 वर्ष के वाद की कोई भी आयु लड़की के लिए विवाह करने के लिए उपयुक्त होती है, वहुत वड़ी हद तक यह इस पर निर्भर है कि वह कितनी परिपक्व है, वह उसकी आवश्यकता अनुभव करती है या नहीं और उसकी अपनी

क्या है। भावी पति-पत्नी के बीच आयु के अन्तर के बारे में उसका कोई विशेष आग्रह नहीं था। पति अपनी पत्नी से 15 वर्ष तक बड़ा होने से लेकर 10 वर्ष तक छोटा हो सकता था, शर्त केवल यह है कि दोनों प्रौढ़ हों और यह समझते हों कि विवाह का अर्थ क्या है।

उसकी दृढ़ भावना थी कि लड़की में इतना आत्मविश्वास होना चाहिए कि वह अपना पति स्वयं चुन सके या अगर उसके माता-पिता उसके भावी जीवन-साथी के बारे में कोई सुझाव दें या किसी को उसके लिए पसन्द कर लें तो वह उसके बारे में स्वयं कोई निर्णय कर सके। वह इस बात के पक्ष में थी कि लड़की किसी दूसरी जाति, प्रान्त या दूसरे धर्म के भी आदमी से विवाह कर ले, यदि उसमें वे गुण हों जिन्हें वह अच्छा समझती है। वह पूरी तरह दूसरों के तय किये हुए विवाहों की परम्परा की घोर विरोधी थी। परन्तु वह उस प्रकार के 'शुद्धतः प्रेम-विवाहों' की भी उतनी ही पूरी तरह विरोधी थी जिनमें एक-दूसरे को केवल बहुत थोड़े समय तक जानने के बाद शुद्धतः क्षणिक मोह या केवल सेक्सगत आकर्षण से प्रेरित होकर या 'अन्धे-प्रेम' के वश विवाह करने का निर्णय कर लिया जाता है। उसने कहा, "मैं इस प्रकार के 'प्रेम विवाह' या 'तय किये हुए विवाह' में विश्वास करती हूँ जिसमें स्त्री और पुरुष ने 'प्रेम-ग्रस्त होने' से पहले, या अधिक उपयुक्त शब्दों में कहा जाये तो विवाह करने के निश्चित उद्देश्य से एक-दूसरे के प्रति प्रेम तथा स्नेह विकसित करने से पहले एक-दूसरे को अच्छी तरह जान लिया हो। अपना भावी जीवन-साथी लड़की स्वयं खोज सकती है या उसके मित्र, सगे-सम्बन्धी अथवा माता-पिता उसके लिए किसी के बारे में सुझाव दे सकते हैं, परन्तु हर हालत में भावी जीवन-साथी के बारे में हर बात का पता बहुत बुद्धिसंगत तथा यथार्थ ढंग से लगा लिया जाना चाहिए, और यदि वह उपयुक्त सिद्ध हो तभी उसके साथ सम्बन्ध विकसित किया जाना चाहिए। और जब वे ये महसूस करें कि वे एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और एक-दूसरे को प्राप्त करना चाहते हैं तभी उन्हें 'प्रेम-विवाह' या 'तय किया हुआ विवाह' करना चाहिए।"

उसे इस बात में कोई आपत्ति नहीं थी कि किसी स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के साथ गहरा लगाव हो। उसने कहा कि यदि उसके प्रति पति के प्रेम में कोई कमी हो या वह उसकी ओर उचित ध्यान न देता हो या उसकी कोई प्रबल बौद्धिक रुचि अथवा मानसिक आवश्यकता ऐसी हो जिसमें उसका पति उसका साथ न दे सकता हो तो इस प्रकार का लगाव सर्वथा उचित होगा। उसने यह भी मत व्यक्त किया कि इस प्रकार का लगाव उसके स्नेहमय परन्तु निष्कपट स्वभाव का भी परिणाम हो सकता है। पत्नी परिवर्तन की या विभिन्न प्रकार के लोगों से मित्रता की भी आवश्यकता अनुभव कर सकती है। उसने कहा कि वह इस बात को अनुचित नहीं समझती कि कोई स्त्री इनमें से किसी भी स्थिति में विवाहेतर सम्बन्ध स्थापित कर ले।

तलाक़ के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उसने कहा कि यदि पति-

पत्नी एक-दूसरे के लिए असंगत हो तो वह तलाक़ के पक्ष है और इस बात से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता कि तलाक़ इसलिए लिया गया कि उन दोनों में से कोई एक बेवफ़ा, क्रूर या क्रोधी था या दोनों की आपस में निभती नहीं थी। उसका विश्वास था कि तलाक़ से असन्तोषप्रद तथा दुखी वैवाहिक जीवन को समाप्त करके नया जीवन आरम्भ करने का अवसर मिलता है। उसने कहा, "किसी ऐसे सम्बन्ध को, जिसका अस्तित्व वास्तव में समाप्त हो चुका हो और जिसमें पारस्परिक प्रेम, सम्मान, सन्तोष तथा सुख न रह गया हो, सतही तौर पर खींचते रहने में कोई लाभ नहीं है। अपने विवाहित जीवनों को पूरी तरह नष्ट कर देने और उसके बाद भी केवल झूठी प्रतिष्ठा के विचार से या समाज की निन्दा के भय से साथ रहते जाने से तो अच्छा यह है कि जब उस सामाजिक अनुबन्ध से सन्तोष मिलना बन्द हो जाये तो साहस बटोरकर उसे भंग कर दिया जाये और जब भी अवसर मिले इस प्रकार का दूसरा अनुबन्ध कर लिया जाये। वास्तव में मैं दृढ़तापूर्वक यह अनुभव करती हूँ कि कोई ऐसा उपाय होना चाहिए, जिसे समाज की मान्यता प्राप्त हो, कि जब विवाह के बन्धन में बँधे हुए दोनों पक्ष यह अनुभव करने लगें कि उनका विवाह निभ नहीं रहा है तो उसी समय विवाह भंग किया जा सके।"

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कि क्या वह इस बात को उचित समझती है कि कोई व्यक्ति अपने पति या अपनी पत्नी के रहते हुए भी दूसरा विवाह कर ले और यह कि क्या वह वर्तमान विवाह-पद्धति में कोई दोष पाती है, उसने कहा कि उसे द्विविवाह प्रथा में कोई आपत्ति नहीं है लेकिन यह पारस्परिक अनुमति से किया जाना चाहिए। वह इसमें कोई बुराई नहीं समझती थी कि कोई स्त्री अपने पति को या कोई पति अपनी पत्नी को इसकी अनुमति दे दे और सहर्ष इस पर सहमत हो जाये तो वह अपने लिए दूसरा जीवन-साथी चुन ले। उसने कहा, "कुछ भी हो, विवाह का उद्देश्य मनुष्य के जीवन को अधिक सुखी, सन्तोषप्रद तथा परिपूर्ण बनाना ही तो होता है और यदि दोनों में से कोई भी उस सम्बन्ध में नीरसता अनुभव करने लगता है और वर्तमान सम्बन्ध में जो शून्य उत्पन्न हो गया है उसे भरने के लिए दूसरे साथी की आवश्यकता अनुभव करता है तो उसे इस बात की छूट होनी चाहिए, लेकिन उसी दशा में जब पहले वाला साथी इसके लिए सहमत हो।"

अन्त में उसने कहा कि वह यह अनुभव करती है कि एक-विवाही प्रथा के अन्तर्गत विवाह बहुत नीरस, प्रतिबन्धकारी और संकुचित हो सकते हैं क्योंकि वे बहुत-से लोगों के बजाय केवल दो या कुछ ही लोगों को तथाकथित विशेषाधिकार प्रदान करते हैं, और यह मत व्यक्त किया कि 'सामूहिक विवाह' का प्रयोग करने में कोई हर्ज नहीं है, जो कई लोगों के प्रति प्रेम के सम्बन्धों को व्यापक बना सकता है और बढ़ा सकता है। आगे चलकर उसने व्याख्या की कि 'सामूहिक विवाह' से उसका क्या अभिप्राय है। उसने कहा कि बहुधा यह पुरुषों तथा स्त्रियों की बराबर-बराबर संख्या पर आधारित है, समझ लीजिये छः या बारह जोड़े, जिनमें से स[illegible] ाह सबके

साथ होता है और वे सब एक ही गृहस्थी बसाकर रहते हैं और पूरे समूह के जीवन में वित्तीय तथा शारीरिक योगदान करते हैं। उनमें से किसी एक का किसी दूसरे पर स्वामित्व नहीं होता, हर चीज में सबकी साझेदारी रहती है और उनमें कोई ईर्ष्या या स्वामित्व की भावना नहीं होती क्योंकि वे सभी अन्य सभी से प्रेम करते हैं। उसने कहा, "सामूहिक विवाह में इस विवाह-समूह के सदस्यों को दो या दो से अधिक विषम-लिंगी व्यक्तियों के साथ रहने और प्रेम, सेक्स तथा अन्य प्रकार के बहुपक्षीय मानव-सम्बन्ध रखने का अवसर मिलता है। इस प्रकार के जीवन में उन्हें एकविवाही पद्धति वाले विवाह के सीमित अनुभवों की अपेक्षा अनेक सन्तोषप्रद अनुभव प्राप्त हो सकते हैं। मैं समझती हूँ कि जो पुरुष तथा स्त्रियाँ यह अनुभव करते हों कि वे एक ही समय में कई जीवन-साथियों से गहरा प्रेम कर सकते हैं और सामूहिक विवाह में अधिक परिपूर्ण तथा अधिक सन्तोषप्रद जीवन बिता सकते हैं और उनमें उनके प्रति स्वामित्व अथवा ईर्ष्या की अनावश्यक भावना नहीं है, उनको इस प्रकार का 'सामूहिक विवाह' करने की समाज की ओर से स्वीकृति मिलनी चाहिए। इस प्रकार के विवाह में बच्चों को खेलने के लिए बहुत-से समवयस्क साथी मिल सकेंगे और इसके साथ ही वे माता-पिता की अधिकार-सत्ता से भी मुक्त हो सकेंगे। इस प्रकार वे एक ही माता-पिता के साथ बँधे रहने के बजाय अधिक व्यापक समूह के साथ अपनी रुचियाँ तथा भावनाएँ बाँट सकेंगे। मुझे मालूम नहीं कि व्यवहार में यह किस प्रकार क्रियान्वित होगा, लेकिन मैं समझती हूँ कि इससे लोग कम स्वकेन्द्रित और स्वार्थी हो सकेंगे और उन्हें सभी चीजें मिल-बाँटकर प्रयोग करने की शिक्षा मिल सकेगी। इससे दिन-प्रतिदिन एक ही व्यक्ति के साथ 'एक ही ढंग से' रहते आने की नीरसता भी कम होगी। कुछ भी हो, मनुष्य सदा से इच्छाभोगी रहा है और उसे व्यवहार में एक-विवाही पद्धति में जकड़कर रखना न तो सहज है और न सम्भव ही। और मैं महसूस करती हूँ कि अपनी विभिन्न इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की तुष्टि एक ऐसे सामूहिक विवाह में करना कहीं बेहतर है जिसमें छल-कपट और धोखे से कुछ करने के बजाय समूह का हर सदस्य जानता हो कि क्या हो रहा है।"

उसने इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान विवाह-पद्धति में निश्चित रूप से कोई दोष है क्योंकि उसने कहा, यदि ऐसा न होता तो इतना अधिक विवाहेतर सेक्स-सम्भोग न होता जितना कि आजकल हमारे समाज में होता है।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 10 — वासना का विश्वास था कि विवाह इसलिए एक अत्यावश्यकता है कि स्त्री की यह मूल प्रवृत्ति होती है कि उसका अपना पति, घर और बच्चे हों और वह चाहती है कि उसे शारीरिक सन्तोष मिले और उसकी अन्य आवश्यकताएँ पूरी हों। उसने कहा, "मेरी धारणा के अनुसार विवाह एक अनुबन्ध पर आधारित व्यापारिक सम्बन्ध होता है जिसमें कुछ लाभों का आदान-प्रदान किया जाता है।" उसने यह मत व्यक्त किया कि लड़की के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 18 और 22 वर्ष के बीच होती है। वह पूरी तरह दूसरों के तय किये हुए विवाहों

की विरोधी थी, पर उसने यह भी कहा कि यदि अभिभावक या अनुभवी सगे-सम्बन्धी कोई उपयुक्त वर चुन लें और लड़की को अपनी अनुमति देने से पहले उस व्यक्ति को अच्छी तरह जान लेने का अवसर दिया जाये तो यह बहुत उपयोगी हो सकता है। उसे दूसरी जाति, नस्ल या धर्म के व्यक्ति के साथ विवाह में कोई आपत्ति नहीं थी।

वह इसमें भी कोई हर्ज नहीं समझती थी कि पत्नी का अपने पति के अतिरिक्त दूसरे पुरुषों के साथ गहरा लगाव हो, यदि वह किसी विशिष्ट आवश्यकता को पूरा करने के लिए हो—समान रुचियों या समान विचारों तथा हितों में साझेदारी से मानसिक सन्तोष प्राप्त करने के लिए—और इस शर्त के साथ कि शारीरिक प्रतिबन्धों का पालन किया जाये। उसका स्वयं एक लेखक से गहरा सम्बन्ध था जो उसे लिखने के लिए प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देता था, उसकी प्रतिभा को स्वीकार करता था और उसकी रचनाओं की सराहना करता था। चूँकि उसके पति को साहित्य से कोई विशेष रुचि नहीं थी और वह उसकी प्रतिभा को समझ नहीं सकता था, इसलिए उसे अपनी सहज प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिए प्रेरणा प्राप्त करने की बहुत आवश्यकता थी, और वह लेखक उसकी कहानियाँ तथा लेख प्रकाशित कराने में उसकी सहायता करता था। वह उसके प्रति बहुत स्नेह रखती थी और उससे उसे बहुत गहरा लगाव था। वह इसमें कोई बुराई भी नहीं समझती थी।

वह इस बात को बहुत उचित नहीं समझती थी कि कोई पत्नी अपने पति को छोड़कर दूसरा विवाह कर ले क्योंकि वह अनुभव करती थी कि इस देश में लोग ऐसी स्त्री को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते। फिर भी वह अनुभव करती थी कि यदि पति क्रूर हो, या उसमें असह्य दुर्गुण हों, या वह उसकी अधिकांश आवश्यकताओं को पूरा न कर सकता हो तो स्त्री को इसकी अनुमति होनी चाहिए कि वह अपने पति को छोड़कर दूसरा विवाह कर ले। उसका विश्वास था कि तलाक़ से असन्तोषप्रद विवाहों की संख्या कुछ हद तक अवश्य कम हो जाती है, क्योंकि वह अनुभव करती थी बहुत थोड़े ही विवाह ऐसे होते हैं जो सन्तोषप्रद हों। उसका विश्वास था कि दूर के ढोल बहुत सुहावने होते हैं और जब आदमी स्वयं परिस्थितियों का सामना करता है तो असन्तोष और निराशा उत्पन्न होती है। उसका मत था कि पत्नी को केवल एक सीमा तक ही अपने को पति की रुचियों तथा इच्छाओं के अनुसार ढालने की कोशिश करनी चाहिए और पति को भी इसकी कोशिश करनी चाहिए, अन्यथा उन्हें एक-दूसरे के प्रति कोई दुर्भावना रखे बिना और एक-दूसरे के जीवन में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप किये बिना अपने-अपने ढंग से जीवन व्यतीत करना चाहिए। परन्तु वह हिन्दू कोड बिल की दृढ़ समर्थक थी और महसूस करती थी कि वह तलाक़ की अनुमति देता है जो ऐसे विवाहों से बाहर निकलने या पलायन का एक उपाय है जिनमें इतने अधिक तनाव तथा संघर्ष होते हैं कि उन्हें सहन करना असम्भव हो जाता है।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 45

शालिनी की आयु 33 वर्ष थी और वह एक अस्पताल में डाक्टर थी। उसने एम० एस० की परीक्षा पास की थी और उसे 900 रु० मासिक वेतन मिलता था। वह लगभग पिछले दस वर्ष से काम कर रही थी। वह देखने में काफी सुन्दर थी और उसका शरीर छरहरा तथा सुडौल था। वह सादे कपड़े पहनती थी और देखने में बहुत गम्भीर तथा परिपक्व लगती थी और उसके आचरण में शालीनता थी। वह प्रौढ़ और आधुनिक थी और यद्यपि उसका आचरण शान्त तथा उल्लासप्रिय था, उसके चेहरे पर किंचित् निराशा और चिन्ता का भाव रहता था।

कुछ वर्ष पहले उसके पिता की मृत्यु हो गयी थी और जब वह जीवित थे तो उन्होंने अपने व्यापार में बहुत धन कमाया था, विशेष रूप से शालिनी के बचपन से लेकर उसके काम करना आरम्भ करने के चार वर्ष बाद तक। उसकी माँ भी एक धनी और सुशिक्षित परिवार से सम्बन्ध रखती थी और स्वयं एक स्नातक थी और समाज-सेविका थी। शालिनी के दो भाई थे पर बहन कोई नहीं थी।

अपने माता-पिता की सबसे बड़ी और इकलौती बेटी होने के नाते उसे उनका बहुत लाड़-प्यार मिला था। बचपन में वह बहुत स्वस्थ तथा सुन्दर थी और उसके सगे-सम्बन्धी तथा मित्र उससे बहुत प्यार करते थे।

स्कूल और कालेज में अपने पूरे छात्र-जीवन के दौरान वह पढ़ाई में काफी तेज रही थी। वह डाक्टर बनने के लिए उत्सुक थी और इसमें उसके माता-पिता ने भी उसे प्रोत्साहन दिया। जिन दिनों वह कालेज में पढ़ती थी, वह काफी आकर्षक और चुस्त-चालाक थी और लड़के तथा अध्यापक उसे बहुत पसन्द करते थे और वह अपने सहपाठियों तथा मित्रों के बीच बहुत लोकप्रिय थी।

घर पर वह हमेशा बहुत उदार वातावरण में रही थी और उसे अपने मित्रों के साथ, लड़कों और लड़कियों दोनों ही के साथ, घूमने-फिरने की पूरी स्वतन्त्रता थी। जब वह कालेज में थी तो एक ऐसे आदमी से उसे बहुत गहरा लगाव पैदा हो गया जो दूसरी जाति और धर्म का था। उसके पास बहुत पैसा था और वह उन्मुक्त तथा स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर रहा था। उसके साथ शालिनी की बहुत मित्रता हो गयी और चूँकि उसके माता-पिता रूढ़िवादी नहीं थे, इसलिए उन्होंने अपनी बेटी को अकसर उसके साथ रहने की स्वतन्त्रता दे रखी थी। उसने बताया कि अपनी डाक्टरी की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद वह उससे विवाह करना चाहती थी, क्योंकि वह पढ़ा-लिखा था और उसकी रुचियाँ बहुत परिष्कृत थीं, उसकी सामाजिक हैसियत अच्छी थी और वह उससे प्रेम करती थी। वह भी उस पर बहुत प्यार लुटाता था और बहुधा उसके साथ रहने की कोशिश करता था। लेकिन जब उसने अपनी पढ़ाई पूरी कर ली और उससे विवाह करने की इच्छा व्यक्त करने लगी तो उसने महसूस किया कि वह हमेशा विवाह की बात करने से कतराता था और धीरे-धीरे वह उससे दूर खिंचता गया। शुरू में तो वह बहुत हताश हुई और उसने बहुत निराशा अनुभव

थीं लेकिन कुछ समय बाद उसने अपना ध्यान अपनी नौकरी और अस्पताल के काम में लगा लिया।

उसने आगे चलकर बताया कि उसने अस्पताल में साथ काम करनेवाली कुछ लड़कियों के प्रेम-प्रसंग देखे थे। स्वयं उसकी भी मित्रता और घनिष्ठता एक डाक्टर के साथ हो गयी थी जो उसी अस्पताल में काम करता था और अपनी पहली पत्नी से तलाक़ ले चुका था, और बाद में एक सरकारी अफ़सर के साथ जो पहली बार एक रोगी के रूप में मिला था। वह वहाँ इलाज कराने आता था और उसकी नौकरी बहुत पक्की थी और वह एक अच्छे परिवार का था। उसने कहा कि ये दोनों ही लोग उसका बहुत ध्यान रखते थे, उसके साथ बहुत हार्दिकता का व्यवहार करते थे और उसके साथ रहने में उन्हें बहुत आनन्द मिलता था। उसे भी उनके साथ रहने में बहुत आनन्द मिलता था। और वह उनके स्वभाव और आदतों को बहुत पसन्द करती थी और उनकी बहुत-सी रुचियाँ उसकी जैसी ही थीं। दोनों ही बहुत अच्छे किस्म के लोग थे और वह दोनों ही से खुलकर व्यवहार करती थी, क्योंकि वह काफी निस्संकोच तथा उन्मुक्त स्वभाव की थी। आगे चलकर उसने बताया, "वे दोनों बहुत अच्छे मित्र थे और उन्होंने मेरे लिए बहुत कुछ किया लेकिन जिस क्षण उनके प्रति मेरा लगाव बहुत बढ़ने लगा और मैं संवेगात्मक दृष्टि से उन पर निर्भर रहने लगी, तो वे मुझसे विवाह करने की ज़िम्मेदारी से कतराने लगे। उस समय मुझे इसका कारण समझ में नहीं आया। मेरे विचार बहुत उदार और पाश्चात्य ढंग के थे और मैं विवाह से पहले लम्बी कोर्टशिप में विश्वास रखती थी। मेरा यह भी विश्वास था कि स्त्रियों तथा पुरुषों को उन्मुक्त भाव से एक-दूसरे से मिलना चाहिए और मैं समझती थी कि केवल प्रेम-विवाह ही सफल हो सकते हैं। लेकिन स्वयं मेरे अनुभवों और मेरी कुछ सहेलियों के अनुभवों ने मेरे विचारों को काफी हद तक बदल दिया है।"

इसके बाद उसने अपनी कुछ सहेलियों के विवाहों के अनुभवों का वर्णन किया। वे अपने भावी पतियों से केवल कुछ ही बार मिली थीं और अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने पर्याप्त परिपक्वता प्राप्त करने और अपने काम पर अच्छी तरह जम जाने से पहले ही उतावलेपन में अपनी पसन्द के मर्दों के साथ विवाह कर लिया था। कुछ ही महीनों के विवाहित जीवन के बाद इन दम्पत्तियों की मुसीबतें आरम्भ हो गयीं, कुछ तो इसलिए कि उनके पास पैसे की कमी थी और इसलिए भी कि उन्होंने रोमांटिक प्रेम-लीला से और प्रेम-विवाह से आवश्यकता से अधिक ऊँची आशाएँ लगा रखी थीं। न्यूनतम भौतिक सुख-सुविधाएँ और संवेगात्मक सन्तोष पाकर ठोस व्यावहारिक ढंग से अपने जीवन-साथियों के साथ दैनिक जीवन व्यतीत करने की वास्तविकता उनके रोमांटिक स्वप्नों तथा प्रत्याशाओं के कहीं निकट भी नहीं पहुँच पाती थी। उनके जीवन-साथी वास्तव में उससे बिल्कुल भिन्न निकले। जैसे वे विवाह से पहले लगते थे और इन लड़कियों को इस बात का कुछ पछतावा था कि उन्होंने अपने जीवन-साथियों को अच्छी तरह जाने बिना और अपने माता-पिता तथा अभिभावकों की सलाह और अनु-

मति लिये बिना जल्दबाजी में विवाह करने का निर्णय कर लिया था।

शालिनी ने अपनी स्कूल की एक सहेली का भी अनुभव बताया जिसका विवाह उसके माता-पिता ने एक धनवान व्यापारी के साथ कर दिया था। वह अपने भावी पति से औपचारिक रूप से केवल एक बार मिली थी। बाद में पता चला कि उसके पति का स्वभाव, उसकी रुचियाँ तथा अरुचियाँ स्वयं उसके स्वभाव तथा रुचियों और अरुचियों से सर्वथा भिन्न थीं और वह इतना दकियानूसी और ईर्ष्यालु था कि उसने अपनी पत्नी का जीना दूभर कर दिया था।

कुछ समय बाद शालिनी के पिता ने उसके वर के रूप में एक अफ़सर को पसन्द किया। वह बहुत सुन्दर, सुसंस्कृत और सुशिक्षित था और इसके अलावा बहुत अच्छे वेतन वाली नौकरी पर लगा हुआ था। वह दूसरे लोगों की उपस्थिति में औपचारिक रूप से एक-दो बार उससे मिल लेने के बाद उसके साथ विवाह करने को भी तैयार था। लेकिन जब शालिनी ने विवाह करने से पहले उससे मिलने और उसे जान लेने की इच्छा प्रकट की तो वह सहमत तो हो गया पर उससे मिलने फिर कभी नहीं आया। बाद में उसकी कई ऐसे लोगों से भेंट हुई जो उसके साथ आनन्द लूटने को तो तैयार थे पर वे उसकी जैसी आधुनिक लड़की के साथ विवाह करने को तैयार नहीं थे जिसके विचार परिपक्व थे और जो अपना स्वतन्त्र विवेक रखती थी।

वह काफी निराश थी क्योंकि अपने प्रेम-जीवन में इन विफलताओं के अतिरिक्त उन्हीं दिनों उसके पिता की भी मृत्यु हो गयी थी। उसने अस्पताल में और अधिक काम करके उस उदासी को दूर करने का प्रयत्न किया। उसने कहा कि वह अपने-आपको उपयोगी ढंग से व्यस्त रखने तथा आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी रहने के लिए काम करती थी और साथ ही अपनी उपलब्धि तथा मान्यता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी। उसने कहा कि वह विवाह के बाद भी काम करना चाहेगी क्योंकि वह समझती थी कि घर के बाहर रोचक काम के बिना उसके जीवन में शून्यता रहेगी। इसके साथ ही उसने इस बात पर भी जोर दिया कि वह विवाह को तिलांजलि देकर काम करना नहीं चाहेगी, क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास था कि जीवन-साथी के बिना जीवन अधूरा रहता है। उसने कहा कि विवाह पारस्परिक प्रेम तथा साहचर्य की जरूरत को पूरा करने के लिए आवश्यक होता है और इसलिए भी कि वह दोनों ही साथियों को और उनके परिवारों को कुछ लाभ प्रदान करता है, यद्यपि पहले उसका विश्वास था कि विवाह केवल विवाह-सम्बन्ध के दोनों साझेदारों के हित के लिए होता है।

विवाह की संकल्पना के बारे में उसके सामने प्रस्तुत किये गये कथनों से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए उसने कहा, "यद्यपि पहले मैं सबसे अधिक सहमत इस कथन से थी कि 'विवाह एक सामाजिक अनुबन्ध होता है जो मुख्यतः किसी स्त्री तथा पुरुष की भलाई और उनके निजी सुख-सन्तोष के लिए किया जाता है,' परन्तु अब मैं सबसे अधिक सहमत इस वक्तव्य से हूँ कि विवाह एक परम्परागत सामाजिक प्रथा है जिसका

पालन अपने सामाजिक दायित्वों को पूरा करने और व्यक्ति तथा परिवार के सुख-सन्तोष के लिए किया जाता है।"

पहले जब उससे साक्षात्कार किया गया था तो उसने कहा था कि वह उसी व्यक्ति से विवाह करेगी जिससे उसे प्रेम हो परन्तु दस वर्ष बाद उसने कहा कि यह आवश्यक नहीं है कि वह उसी आदमी से विवाह करे जिससे वह प्रेम करती हो, इसके बजाय वह जिस आदमी से विवाह करेगी उसी से प्रेम करेगी। यद्यपि दस वर्ष पहले वह सिविल विवाह में विश्वास रखती थी, परन्तु अब उसका विचार था कि वैदिक संस्कारों और कुछ पुरानी धार्मिक प्रथाओं के अनुसार वैदिक विवाह-प्रणाली उससे अच्छी है क्योंकि इसमें पुनीतता तथा पवित्रता की भावना होती है। फिर भी वह अनुभव करती थी कि परम्परागत विवाह-समारोहों के समय उनकी लम्बी रीति-रस्मों को त्याग दिया जाना चाहिए जो वर्तमान प्रसंग में सार्थक नहीं रह गयी हैं।

अब वह यह विश्वास करने लगी थी कि 18 और 22 वर्ष की आयु के बीच किसी समय लड़की का विवाह हो जाना चाहिए, यद्यपि पहले उसका मत यह था कि लड़की के लिए विवाह करने की उचित आयु 22 और 28 वर्ष के बीच होती है। उसने कहा कि अब उसका विश्वास यह था कि लड़की का विवाह जल्दी ही कर दिया जाना चाहिए जब वह इतनी अधिक व्यक्तिवादी और दृढ़ विचारोंवाली न हो और अपने को विवाहित जीवन के अनुरूप अच्छी तरह ढाल सकती हो। कुछ वर्ष पहले उसका मत था कि भावी जीवन-साथियों की उम्रों के अन्तर का कोई महत्त्व नहीं है और यह कि पति अपनी पत्नी से बड़ा भी हो सकता है, उसके बराबर भी हो सकता है और उससे छोटा भी। अब उसका विचार था कि पति को अपनी पत्नी से 5 से 7 वर्ष तक बड़ा होना चाहिए क्योंकि लड़की जल्दी प्रौढ़ हो जाती है और यदि पति की आयु पत्नी की आयु से कम हुई तो वह उसकी तुलना में अपरिपक्व रहेगा।

वह अब भी चाहती थी कि उसका भावी पति बुद्धि तथा शिक्षा में उससे श्रेष्ठतर होने के अतिरिक्त किसी अच्छे वेतन वाले पद पर हो या कोई अच्छा धन्धा करता हो। विवाह को सफल बनाने में धन-दौलत के महत्त्व में वह निश्चित रूप से विश्वास रखती थी और वह इस बात से भी अनजान नहीं थी कि उसके पति के पास इतना काफी पैसा होना चाहिए कि वह रुपये-पैसे की किसी विघ्नकारी चिन्ता के बिना उन्मुक्त भाव से सुख-सुविधा के साथ जीवन व्यतीत कर सके।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, दस वर्ष पहले उसका विश्वास था कि 'प्रेम-विवाह' ही सबसे अच्छे ढंग से विवाह होते हैं और यह कि लगभग बिल्कुल परीक्षण-विवाह की तरह विवाह से पहले कोर्टशिप की एक लम्बी अवधि होनी चाहिए, यद्यपि उसने 'परीक्षण-विवाह' की शब्दावली का प्रयोग नहीं किया था। परन्तु स्वयं अपने कुछ अनुभवों के आधार पर और अन्य लोगों के अनुभवों के आधार पर उसने कहा, [illegible] सीखा था और अपने मत बदल दिये थे। उसने कहा, "मैंने यह देखा है कि [illegible] तथा पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाली स्त्री के प्रति पुरुषों का [illegible]

है। वे उसके साथ उठना-बैठना पसन्द करते हैं और इसकी इच्छा भी करते हैं और यदि वह तैयार हो तो उसे मोटर की लम्बी सैर कराने, भोजन कराने और सिनेमा दिखाने के लिए भी उत्सुक रहते हैं और उसके साथ रहने में, उससे बातें करने में और उसके साथ घनिष्ठता बढ़ाने में उन्हें आनन्द मिलता है। वे उसके आत्म-विश्वास, उसके स्वतन्त्र स्वभाव, उसकी प्रखर बुद्धि की प्रशंसा करते हैं, उसके रुचिकर, सुसंस्कृत तथा उन्मुक्त आचार-व्यवहार की बहुत सराहना करते हैं और उसके साथ मित्रता बढ़ाना उन्हें प्रिय है। परन्तु जब स्थायी रूप से उसे अपना जीवन-साथी बनाने और उसके साथ विवाह करने का प्रश्न उठता है तो वे हजार बार सोचते हैं और अधिकांश उदाहरणों में उससे विवाह करने से कतराते हैं। विवाह के लिए वे ऐसी लड़की चाहते हैं जो कम आधुनिक, पुरुषों के साथ अपने व्यवहार में कम उन्मुक्त और भीरु हो और मोटे तौर पर परम्परागत ढंग की, हालांकि इसके साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि वह खूब पढ़ी-लिखी हो और बहुत-से लोग तो यह भी चाहते हैं कि वह कोई काम भी करती हो। इसलिए लम्बी कोर्टशिप या परीक्षण-विवाह की योजना चल नहीं पाती, क्योंकि लम्बी कोर्टशिप के बाद जब विवाह का सवाल आता है तो पुरुष किसी ऐसी लड़की के साथ विवाह करने में संकोच करते हैं जो उनके साथ बहुत उन्मुक्त तथा घनिष्ठ रह चुकी हो।"

दस वर्ष बाद वह यह महसूस करने लगी थी कि विवाह माता-पिता को इस तरह तय करना चाहिए कि अपनी बेटी की आवश्यकताओं को समझकर वे उसके लिए कोई उचित वर खोज लें और उसके साथ अपनी बेटी का परिचय करा दें। फिर दोनों को माता-पिता की निगरानी में सीमित स्वतन्त्रता के साथ एक-दूसरे को जान लेने का अवसर दिया जाना चाहिए और अन्त में यदि लड़का और लड़की दोनों एक-दूसरे को पसन्द करें तो उनका विवाह कर दिया जाये। उसे इसमें भी कोई आपत्ति नहीं थी कि लड़की अपने माता-पिता के सामने अपने भावी वर का सुझाव रखे और उसके बारे में सारा ब्योरा मालूम करने और उनकी हार्दिक अनुमति से उसके साथ विवाह करने का अन्तिम निर्णय लेने में उनकी सलाह तथा सहायता ले। लेकिन अपने स्वभाव को जानते हुए वह महसूस करती थी कि वह किसी ऐसे आदमी के साथ विवाह कर ही नहीं सकती थी जिसे शुद्धतः उसके माता-पिता ने पसन्द किया हो जब तक वह उसे अच्छी तरह जान न ले और उसे पसन्द न करने लगे।

यद्यपि अलग-अलग जातियों अथवा अलग-अलग प्रान्तों के लोगों के एक-दूसरे से विवाह कर लेने में अब भी उसे कोई आपत्ति नहीं थी, परन्तु अलग-अलग नस्लों तथा अलग-अलग धर्मों के लोगों के आपस में विवाह करने के पक्ष में अब वह नहीं रह गयी थी, जिसका दस वर्ष पहले वह अनुमोदन करती थी। उसने हिन्दू कोड बिल का हार्दिक अनुमोदन किया और कहा कि यदि पति क्रूर हो या दुश्चरित्र हो या उसके साथ तिरस्कार का व्यवहार करता हो और उसके साथ पत्नी का निबाह न होता हो तो पत्नी को अपने पति को छोड़कर तलाक ले लेने का अधिकार होना चाहिए।

लेकिन इसके साथ ही वह यह भी महसूस करती थी कि तलाक़ अन्तिम उपाय के रूप में केवल उस समय लिया जाना चाहिए जब एक-दूसरे के साथ निर्वाह करने के उनके सारे प्रयत्न विफल हो चुके हों।

किसी दूसरे पुरुष के साथ पत्नी के लगाव की समस्या के बारे में उसने कहा, "मैं हमेशा से इसके पक्ष में थी क्योंकि स्त्री उन रुचियों तथा आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी जिन्हें उसका पति पूरा कर सकता है विभिन्न दूसरी रुचियों तथा आवश्यकताओं को पूरा करने की ज़रूरत महसूस करती है, लेकिन इसके लिए शर्त यह है कि दोनों परिपक्व हों। फिर भी, अब मैं यह महसूस करती हूँ कि इससे दोनों के बीच एक खाई पैदा हो जायेगी और हो सकता है कि वे एक-दूसरे से दूर होते जायें। इसलिए अब मैं इसके बहुत अधिक पक्ष में नहीं हूँ, लेकिन मैं इसमें कोई हर्ज नहीं समझती।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि आज मध्यमवर्गीय हिन्दू समाज में विवाह की जो पद्धति प्रचलित है उसमें कोई ख़राबी है, उसने कहा कि बहुत छोटी अवस्था में शुद्धतः दूसरों के तय किये हुए विवाह की पद्धति ग़लत है, दहेज की प्रथा बहुत अनुचित है और लड़के के माता-पिता के सामने लड़की के माता-पिता का भीगी बिल्ली बने रहना और लड़के के रिश्तेदारों का जीवन-भर रोब जमाना बहुत अवांछनीय है।

अन्त में एक-विवाह पद्धति के बारे में चर्चा करते हुए उसने कहा कि वह इस बात को उचित नहीं समझती कि जब तक किसी पुरुष अथवा स्त्री का जीवन-साथी जीवित हो और उसके साथ रहता हो तब तक वह दूसरा विवाह करे। उसने कहा, "कुछ वर्ष पहले तक मैं सोचती थी कि जीवन-भर एक ही आदमी के साथ रहना बहुत नीरस होता होगा और किसी प्रकार का सामूहिक विवाह उससे बेहतर होगा जिसमें विविधता और परिवर्तन तो होगा ही, उसके साथ ही वैध घनिष्ठ सम्बन्धों का वृत्त भी अधिक बड़ा होगा। परन्तु अब मैं महसूस करती हूँ कि जब अपनी पसन्द का एक ही आदमी मिलना इतना कठिन है जिसके साथ कोई विवाह करना चाहे और अपना जीवन तथा रुचियाँ मिल-बाँटकर रहना चाहे, तो ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियों का एक पूरा समूह जुटा पाना कितना अधिक कठिन और जटिल होगा जो घनिष्ठ तथा सामुदायिक जीवन में समूह के सभी सदस्यों के साथ प्रेम कर सकें और मिल-जुलकर रह सकें। अब मैं यह समझती हूँ कि एक-विवाही पद्धति ही सबसे अच्छी है।"

शालिनी ने स्वीकार किया कि यद्यपि वह अपने जीवन से सुखी थी पर कोई चीज़ ऐसी थी जो उसे उसका पूरा सुख नहीं मिलने देती थी। उसे बीती हुई बातों की कोई शिकायत नहीं थी, फिर भी अपने अनिश्चित भविष्य के बारे में वह निराश और चिन्तित रहती थी। उसे यह आशंका रहती थी कि उसे कभी अपनी पसन्द का जीवन-साथी मिल भी पायेगा या नहीं और उसका विवाहित जीवन [illegible] रूप से बन सकेगा या नहीं। उसने कहा कि यद्यपि उसे सारी भौतिक सुख [illegible] बहुत सन्तोषप्रद नौकरी थी, अपने सहकर्मियों के बीच वह

मित्र भी थे, फिर भी वह बहुधा बहुत उदास रहती थी और अकेलापन अनुभव करती थी और हमेशा एक प्रेम करनेवाले जीवन-साथी और एक आरामदेह तथा सुखी विवाहित जीवन के लिए लालायित रहती थी।

वह अनुभव करती थी कि यदि किसी विवाहित लड़की के पास और सब कुछ भी हो तब भी एक प्रिय पति, एक सुखद घर और प्यार करनेवाले बच्चों के बिना उसका जीवन अधूरा ही रहता है। उसने कहा कि उसके जीवन की आकांक्षा केवल नौकरी ही नहीं, वह कितनी ही आकर्षक क्यों न हो, बल्कि विवाह है। उसे अपनी नौकरी के सम्बन्ध में कोई विशेष महत्त्वाकांक्षा नहीं थी, बल्कि वास्तव में वह अपनी पसन्द का कोई ऐसा आदमी पाने की इच्छा रखती थी जो उसके साथ सुखी विवाहित जीवन व्यतीत कर सके। उसने कहा कि वह विवाह करने को इसलिए भी बहुत उत्सुक थी कि वह सारे दायित्व अकेले ढोते-ढोते उकता गयी थी और वह चाहती थी कि उसे उनसे छुटकारा मिल जाये और विवाह के बाद वह पूरी तरह अपने पति पर निर्भर रहना चाहती थी। उसने यह माना कि वह बचपन से ही बहुत जिद्दी, नखरीली और सबकी आलोचना करनेवाली रही थी। बचपन में उसके माता-पिता ने बहुत लाड़-प्यार करके तथा उसे बहुत स्वतन्त्रता देकर और बाद में उसकी नौकरी ने उसे बहुत व्यक्तिवादी, स्वतन्त्रताप्रेमी, निर्भीक और स्वच्छन्द बना दिया था। उसने कहा कि वह महसूस करती थी कि शायद कुछ हद तक अपनी इन्हीं लाक्षणिक विशेषताओं और जीवन-पद्धति के कारण उसे अपनी जीवन-साथी के रूप में अपनी पसन्द का कोई आदमी नहीं मिल सका था।

अभिमत

विवाह की प्रथा के विभिन्न पहलुओं के बारे में पूछे गये अनेक प्रश्नों के उत्तर में कुछ चुनी हुई हिन्दू शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के प्रत्युत्तरों का विश्लेषण करने पर कुछ मोटी-मोटी आधार-सामग्री सामने आती है। इस आधार-सामग्री से विवाह के बारे में इन स्त्रियों की, जिनमें विवाहित तथा अविवाहित दोनों ही प्रकार की स्त्रियाँ सम्मिलित हैं, बदलती हुई अभिवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है और उनकी अभिवृत्ति में इस परिवर्तन से स्त्रियों की पूरी हैसियत और उनके पूरे दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया है।

यहाँ पर मुख्यतः उस आधार-सामग्री का विवेचन किया जायेगा जो लेखिका ने दो अलग-अलग समयों पर एकत्रित की है, और अन्य तुलनात्मक आधार-सामग्री केवल उन समस्याओं के बारे में दी जायगी जिनके बारे में दूसरे अध्ययन किये गये हैं। इस प्रकार की अन्य आधार-सामग्री सम्भवतः सार्थक तुलना प्रस्तुत न कर सके क्योंकि, जहाँ तक लेखिका की जानकारी है, भारत में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों के बारे में कोई विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है और इसलिए तुलना के लिए शिक्षित मध्यमवर्गीय स्त्रियों की अभिवृत्तियों के अध्ययनों की आधार-सामग्री ही ली गयी है। फिर भी इन

अध्ययनों का उल्लेख इसलिए किया गया है कि वे उन प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करते हैं जो उस समय प्रचलित थीं जब ये अध्ययन किये गये थे।

विवाह की संकलपना

विवाह की संकलपना उस एक दशाब्दी के अन्दर ही बदल गयी है, जिस अन्तराल के बाद लेखिका ने शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों का अध्ययन किया था। यह देखा गया कि उन श्रमजीवी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात जो इस संकलपना में विश्वास करती थीं कि विवाह एक ऐसा पवित्र संस्कार है जो मुख्यतः किसी व्यक्ति-विशेष के कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए और परिवार की भलाई तथा कल्याण के लिए सम्पन्न कराया जाता है, 25 से घटकर 9 प्रतिशत रह गया था। उन स्त्रियों की संख्या जो यह विश्वास करती थीं कि विवाह एक ऐसा सामाजिक अनुबन्ध होता है जो मुख्यत: किसी स्त्री अथवा पुरुष की भलाई के लिए और उसके निजी सुख-सन्तोष के लिए किया जाता है, दस वर्षों में 49 से बढ़कर 60 प्रतिशत हो गयी थी। उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात जो यह विश्वास करती थीं कि विवाह एक ऐसी परम्परागत सामाजिक प्रथा है जिसका पालन किसी व्यक्ति-विशेष के सामाजिक कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए और उसके तथा उसके परिवार के सुख-सन्तोष के लिए किया जाता है, लगभग स्थिर रहा— 35 से गिरकर वह 31 प्रतिशत रह गया। इन तथ्यों का और दो विभिन्न समयों पर श्रमजीवी स्त्रियों के उन विभिन्न वक्तव्यों तथा कथनों का विश्लेषण करने पर, जो उनके व्यक्ति-अध्ययनों में दिये गये हैं, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन विवाह को केवल एक संस्कार की अपेक्षा दो साझेदारों के बीच किया गया सामाजिक अनुबन्ध अधिक मानने की दिशा में हुआ है। अब उसे एक धार्मिक बन्धन कम समझा जाता है और एक सामाजिक बन्धन अधिक।

मर्चेन्ट के अध्ययन में (1935) जो उन्होंने 1930-1933 की अवधि में विवाह तथा परिवार के बारे में बदलते हुए दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में तरुण बालकों, तरुण बालिकाओं तथा अधेड़ उम्र के लोगों को आधार बनाकर किया था, इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस समय भी तरुण लड़कियों में विवाह को एक पवित्र संस्कार समझने की संकलपना के स्थान पर "विवाह की वैयक्तिक संकलपना" ज़ोर पकड़ती जा रही थी। बम्बई नगर की शिक्षित स्त्रियों के बारे में हेट के अध्ययन (1930) और हिन्दू समाज की पढ़ी-लिखी स्त्रियों के बारे में उनके अध्ययन (1946) और इसके साथ ही "आधुनिक गुजराती जीवन में स्त्रियों" के बारे में देसाई के अध्ययन (1945) से भी यही पता चलता है कि हिन्दू समाज का पुराना स्तम्भ, अर्थात् सांस्कारिक विवाह कमज़ोर होता जा रहा है और अनुबन्धात्मक विवाह की संकलपना प्रबल होती जा रही है।

जिस समय प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका ने अपने अध्ययन का दूसरा चरण पूरा

किया था (1969) लगभग उसी समय गुजरात के तीन बड़े नगरों में विवाह तथा वैवाहिक सम्बन्धों के प्रति ऊँची जातिवाले हिन्दू-दम्पत्तियों की अभिवृत्तियों के बारे में किये गये एक अध्ययन (बारोत, 1971) पर आधारित निष्कर्षों से एक बिल्कुल ही दूसरा चित्र उभरकर सामने आता है। उससे संकेत मिलता है कि अधिकांश—85 प्रतिशत—स्त्रियाँ अब भी विवाह को एक पुनीत तथा सामाजिक बन्धन मानती हैं और यह अनुभव करती हैं कि इस बन्धन को किसी भी दशा में भंग नहीं किया जाना चाहिए, और केवल 2.7 प्रतिशत स्त्रियों का यह मत था कि विवाह शुद्धतः वैयक्तिक सन्तोष के लिए होता है और जब भी वह असुविधाजनक हो जाये तो उसे भंग किया जा सकता है। इसके अनुसार, अनुबन्धमूलक विवाह और निजी सुख की कसौटी का प्रचलन अभी आरम्भ ही हुआ है और अभी तक बहुत थोड़ी स्त्रियाँ ही इसे स्वीकार करती हैं (देखिये, बारोत, 1971)। इन दो अध्ययनों के निष्कर्षों में जो विशाल अन्तर है उसका कारण यह हो सकता है कि जिन दो स्थानों के निवासियों का अध्ययन किया गया था और इन दो नमूनों में जिन वर्गों के लोगों को लिया गया था और वे जिन राज्यों के रहनेवाले थे उनकी लाक्षणिक विशेषताओं में भी बहुत अन्तर था। इसके अलावा यह कारण तो है ही कि इन अध्ययनों में नमूनों को निर्धारित करने की जो प्रणालियाँ और आधार-सामग्री एकत्रित करने तथा उसका विश्लेषण करने की जो पद्धतियाँ अपनायी गयी थीं वे भी भिन्न थीं।

विवाह की संकल्पना के साथ विवाह की आवश्यकता से सम्बन्धित विचारों का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है और इन विचारों से विवाह की संकल्पना के प्रति बदलती हुई अभिवृत्तियों पर और प्रकाश पड़ता है।

विवाह की आवश्यकता

प्राचीन भारत में विवाह को पुरुषों तथा स्त्रियों के जीवन के ध्येय की सम्पूर्ण पूर्ति के लिए आवश्यक समझा जाता था, और यह माना जाता था कि इसके बिना वे 'मोक्ष' नहीं प्राप्त कर सकते। बाद में चलकर परम्परा तथा संस्कृति के कारण और सबसे बढ़कर पुरुष पर स्त्री की पूर्ण आर्थिक निर्भरता के कारण इसे आवश्यक समझा जाने लगा। सभी स्त्रियाँ सच्चे साहचर्य की या विवाहित जीवन बिताने की इच्छा के कारण नहीं बल्कि आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर विवाह करती थीं चाहे उनके साथ दासियों जैसा व्यवहार ही क्यों न किया जाये। शिक्षा के प्रसार और अपनी नवअर्जित स्वतन्त्रता के कारण शिक्षित स्त्रियाँ यह अनुभव करने लगीं कि विवाह कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें जो मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं उनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उन्हें विवाह के विचार से ही बैर हो गया, क्योंकि वे अनुभव करने लगीं कि जब वे स्वयं अपनी जीविका कमा सकती हैं और अपने निर्वाह की व्यवस्था स्वयं कर सकती हैं तो वे पुरुष के अधीन क्यों रहें! यह अभिवृत्ति लगभग तीन या चार दशाब्दी पहले व्यापक रूप से प्रचलित थी, जैसा कि उस समय किये गये कुछ

अध्ययनों से पता चलता है। लगभग चार दशाब्दी पहले हेट ने जो अध्ययन किया था (1930) उससे पता चलता है कि अविवाहित लड़कियों में से 50 प्रतिशत ने अविवाहित रहने की ही इच्छा प्रकट की, जबकि 1946 में उन्हीं के अध्ययन से यह पता चला कि केवल 13 प्रतिशत स्त्रियाँ ही ऐसी थीं जो विवाह नहीं करना चाहती थीं। यह बात ही कि वे अविवाहित जीवन व्यतीत करने की बात सोच भी सकती थीं उनके आत्मगत तथा वस्तुगत परिवेश में परिवर्तन की सूचक है।

परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अनुभव किया कि केवल आर्थिक आवश्यकता ही नहीं बल्कि अन्य कई भावात्मक तथा जैविक आवश्यकताएँ भी ऐसी होती हैं जो विवाह को इतना आवश्यक बना देती हैं। धीरे-धीरे उनकी मानसिक समझ-बूझ और परिवेश में परिवर्तन के साथ-साथ उनकी यह अभिवृद्धि भी बदलती गयी और अब अधिकाधिक संख्या में स्त्रियाँ यह विश्वास करती जा रही हैं कि विवाह एक आवश्यकता है। इस लेखिका ने जो अध्ययन किया है उससे इस समस्या के प्रति उनकी अभिवृत्ति में होनेवाले परिवर्तन का संकेत इस बात में मिलता है कि ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात जिन्होंने बताया कि वे विवाह को एक आवश्यकता समझती हैं और यह कि वे अविवाहित नहीं रहना चाहतीं 75 से बढ़कर 93 हो गया था। इस प्रश्न के उत्तर में कि वे विवाह क्यों नहीं करतीं, या अब तक उन्होंने विवाह क्यों नहीं किया, यह उत्तर देनेवाली स्त्रियों की संख्या कि वे 'अविवाहित और स्वतन्त्र रहना चाहती हैं' दस वर्ष के दौरान काफी कम हो गयी थी और यह उत्तर देनेवाली स्त्रियों की संख्या कि उन्हें 'अपनी पसन्द का कोई उचित वर नहीं मिल पाया' दस वर्ष बाद काफी बढ़ गयी थी।

विवाह करने की इच्छा और यह इच्छा कि अपना घर और अपना पति हो, बहुत प्रबल थी और विवाह के समय उनकी आयु कुछ भी रही हो पर इस इच्छा में बहुत अधिक अन्तर नहीं था और दस वर्ष पहले भी यह इच्छा इतनी ही प्रबल पायी गयी थी। परन्तु खुलकर स्पष्ट शब्दों में इस इच्छा को व्यक्त करने के मामले में उनकी अभिवृत्ति में एक निश्चित परिवर्तन देखा गया। दस वर्ष पहले ऐसी अविवाहित स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात अधिक था जो यह स्वीकार करने में संकोच अनुभव करती थीं कि वे इस प्रश्न का उत्तर देने में भी बहुत झिझक और संकोच अनुभव करती थीं, जबकि दस वर्ष बाद अपेक्षाकृत अल्पवयस्क लड़कियाँ ही कम संकोच के साथ और अधिक खुलकर यह इच्छा व्यक्त करने लगी थीं कि वे विवाह करना चाहती हैं और बच्चे पैदा करना चाहती हैं, यद्यपि कम आयु वाले वर्ग की अपेक्षा अधिक आयुवाले वर्गों की अविवाहित स्त्रियों में यह इच्छा कुछ अधिक प्रबल पायी गयी।

देसाई के अध्ययन (1945) से पता चलता है कि उस समय भी जो 'जीवन-वृत्ति' लड़कियों के मन को सबसे अधिक भाती थी वह विवाह की थी, क्योंकि उन्होंने जिन व्यक्तियों का अध्ययन किया था उनमें से 60 प्रतिशत इसी के

थीं। यह बात अब और भी अधिक सत्य है जैसा कि इस अध्ययन के उत्तरदाताओं के उत्तरों से पता चलता है। इस प्रश्न के उत्तर में कि क्या उनके जीवन का अन्तिम लक्ष्य विवाह था, बाद वाले समूह की अधिकांश औरतों ने—93 प्रतिशत ने—'हाँ' में उत्तर दिया और इसकी तुलना में पहलेवाले समूह की 75 प्रतिशत स्त्रियों ने दस वर्ष पहले ऐसा उत्तर दिया था। इसका संकेत इस बात में भी मिलता है कि दस वर्ष पहले इन स्त्रियों में से 20 प्रतिशत ने यह कहा था कि वे "विवाह के बिना नौकरी" करना अधिक पसन्द करेंगी, लेकिन दस वर्ष बाद ऐसा कहनेवाली स्त्रियों की संख्या केवल 5 प्रतिशत थी। दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से आयोजित एक सर्वेक्षण में भी लड़कियों के बहुत बड़े बहुमत ने यही कहा कि ग्रेजुएट बनने के बाद वे सबसे पहली प्राथमिकता नौकरी के बजाय विवाह को देंगी। फ्रांसीसी स्त्रियों के मतों के अध्ययन के निष्कर्षों से भी यही संकेत मिलता है :

> अधिकांश स्त्रियों के लिए विवाह एक स्वाभाविक लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने का उन्हें प्रयास करना चाहिए। नारी की नियति की यह परम्परागत संकल्पना अब भी व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है और अब भी उसका सामाजिक महत्त्व है : नारी बनी ही विवाह के लिए है ; उसके बिना वास्तव में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। उसका व्यक्तित्व, उसकी जीवनवृत्ति, उसके आदर्श—सभी उसकी स्थिति में इस परिवर्तन के सामने गौण महत्त्व रखते हैं जिससे उसकी आत्म-सिद्धि के मुख्य चरण का सूत्रपात होता है।...
>
> इस परम्परागत दृष्टिकोण को समाज के सभी वर्गों में स्वीकार किया जाता है। इसके बारे में अधिकांश शंकाएँ छात्रों और बुद्धिजीवियों के बीच उठायी जाती हैं। (रेमी तथा वूग, 1964, पृष्ठ 13[illegible])

ब्रिटेन में 22 से 29 वर्ष तक की आयु के नवयुवकों तथा नवयुवतियों के बारे में किये गये एक अध्ययन में यह पता चला कि 78 प्रतिशत लड़कियाँ अपनी किशोरावस्था में ही विवाह के बारे में सोचने लगी थीं। इससे "इस बात की पुष्टि होती है कि उच्चतर शिक्षा तथा जीविका कमाने के अवसरों में वृद्धि के बावजूद लड़कियों का मुख्य उद्देश्य अब भी विवाह ही है" (चार्टहम, 1970, पृष्ठ 77)।

फिर भी, लेखिका ने भारत में जिन शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों का अध्ययन किया है, उनमें यह बात पायी गयी कि विवाह उनका एकमात्र उद्देश्य नहीं है। इसका प्रमाण इस बात में मिलता है कि इस प्रकार की अधिकाधिक स्त्रियाँ इसके साथ ही नौकरी करने की भी इच्छा प्रकट करती हैं, और इस बात में कि उनकी रुचियाँ बहुमुखी होती हैं। इस बात से इसकी और भी पुष्टि होती है कि एक ही दशाब्दी के अन्दर ऐसी स्त्रियों की संख्या जो विवाह के साथ ही नौकरी भी करना चाहती थीं 35 प्रतिशत से बढ़कर 65 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी, जबकि उन स्त्रियों की संख्या जो नौकरी की अपेक्षा विवाह को प्रमुखता देती थीं 45 प्रतिशत

घटकर 30 प्रतिशत रह गयी थी। उनमें से अधिकांश इस परम्परागत मध्यमवर्गीय विचार को स्वीकार नहीं करतीं कि स्त्री के लिए एकमात्र जीवन-वृत्ति उसका विवाहित जीवन है। फिर भी दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात निश्चित रूप से बहुत अधिक था जो विवाह और पारिवारिक जीवन को नौकरी या जीविकोपार्जन की तुलना में प्राथमिकता देती थीं।

उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन का संकेत इस बात में भी मिलता है कि दस वर्ष पहले उन स्त्रियों में जो पति के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष से स्त्री के गहरे लगाव में कोई आपत्ति नहीं समझती थीं, सबसे अधिक प्रतिशत संख्या ऐसी स्त्रियों की थी जो इसका अनुमोदन केवल उस परिस्थिति में करती थीं जब पति अपनी पत्नी की सर्वथा उपेक्षा करता हो या उसके प्रति कोई स्नेह न रखता हो और उसका ध्यान न रखता हो या उसके साथ दुर्व्यवहार करता हो; जबकि दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात अधिक था जो इस लगाव को उस स्थिति में भी उचित समझती थीं जब वह केवल समान रुचियों पर ही आधारित हो, और उसका उद्देश्य उसकी विविध तथा बहुमुखी आवश्यकताओं को तुष्ट करना ही हो। अपनी विभिन्न तथा "विशिष्ट आवश्यकताओं" को पूरा करने के लिए विवाहेतर लगाव को आपत्तिजनक न मानने की दिशा में बढ़ती हुई प्रवृत्ति विवाह के उस परम्परागत दृष्टिकोण में परिवर्तन की सूचक है, जिसके अनुसार विवाह के बारे में यह माना जाता था कि वह उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करता है और इसलिए प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा वैयक्तिक सन्तोष के अन्य स्रोत खोजना न केवल निरर्थक बल्कि अत्यन्त अवांछनीय भी है।

विवाह ही एकमात्र वह चीज़ नहीं है जिसकी उन्हें सुखी रहने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता हो, इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि यद्यपि दोनों ही समूहों की अधिकांश—75 प्रतिशत और 93 प्रतिशत—स्त्रियों ने कहा कि सुखी जीवन के लिए सबसे अधिक आवश्यकता एक सम्पन्न पति, गृहस्थी और बच्चों की होती है, लेकिन दस वर्ष बाद इनमें से ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात कहीं अधिक था जिन्होंने सुखी जीवन के लिए अत्यावश्यक तत्त्वों में "पति, गृहस्थी, और बच्चों" के अतिरिक्त "भौतिक सुख-सुविधा", "अच्छा स्वास्थ्य", "यौवनमयता" और "वैयक्तिक प्रामाणिक हैसियत" का भी उल्लेख किया।

विवाह उनके लिए जीवन का एकमात्र उद्देश्य और सुख तथा सन्तोष का एकमात्र स्रोत नहीं है, इसका संकेत इस बात में भी मिलता है कि ऐसी स्त्रियों की संख्या जो यह विश्वास करती थीं कि विवाह अत्यधिक सुख प्रदान करता है और वे भी जो विवाह से बहुत अधिक सुख की आशा रखती थीं, दस वर्ष के अन्दर 55 प्रतिशत से घट कर 25 प्रतिशत रह गयी, हालांकि उनकी संख्या उनकी आयु में वृद्धि के अनुपात में ही हुई थी। इससे यह संकेत ही दशाब्दी के अन्दर ही उनके रवैये में जो परिवर्तन हुआ है वह

ओर कम झुकने की दिशा में हुआ है, और कम से कम सिद्धान्त रूप में तो अब विवाह के प्रति उनमें से अधिकांश का रवैया पहले की अपेक्षा अधिक यथार्थनिष्ठ है। चेस्सर के अध्ययन में भी अविवाहित अंग्रेज स्त्रियों के बहुमत के सम्बन्ध में ऐसे ही निष्कर्षों का संकेत मिलता है, जो विवाह के प्रति, कम से कम सिद्धान्त रूप में, यथार्थ-निष्ठ रवैया रखती थीं (चेस्सर, 1969, पृष्ठ 139)।

इन सब बातों से यही पता चलता है कि अधिकाधिक संख्या में ये श्रमजीवी स्त्रियाँ यह विश्वास करने लगी हैं कि विवाह सुख तथा सन्तोष का एकमात्र स्रोत नहीं है और यह कि उन्हें इसके अतिरिक्त और चीज़ों की भी आवश्यकता है। हेट के अध्ययनों में (1930, 1936) यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शिक्षित स्त्रियाँ अब विवाह और परिवार को "वैयक्तिक स्वतन्त्रता के साथ सर्वथा असम्भव" नहीं मानतीं। प्रस्तुत अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है कि यह बात अपनी जीविका कमानेवाली युवा शिक्षित स्त्रियों के बारे में और भी सत्य है। वे विवाह को अधिक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण समझती हैं। हुआ केवल यह है कि विवाह के बारे में उनकी संकल्पना और उसके प्रति उनकी अभिवृत्तियाँ बदल गयी हैं।

विवाह के लिए उत्प्रेरणा

विवाह क्यों आवश्यक है और वे विवाह करना क्यों चाहती हैं या चाहती थीं— ये अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके उत्तरों से विवाह के बारे में उनकी संकल्पना में होनेवाले परिवर्तन का पता चलता है। लोग अपने मन में विभिन्न लक्ष्य और उद्देश्य लेकर विवाह-बन्धन में बँधते हैं। जैसा कि रसेल ने कहा है, "लोग या तो केवल सेक्स के लिए एक-दूसरे के साथ हो सकते हैं जैसा कि वेश्यावृत्ति में होता है, या ऐसे साहचर्य के लिए जिसमें सेक्स का भी तत्त्व हो, जैसा कि जज लिंडसे के साहचर्य विवाह में हुआ था, या अन्ततः वंश-वृद्धि के उद्देश्य से साथ हो सकते हैं" (रसेल, 1959, पृष्ठ 113)। लोग भौतिक कारणों से, सुरक्षा की भावना पैदा करने के लिए, अपनी सेक्स अभिव्यक्ति को सामाजिक अनुमोदन प्रदान करने के लिए या होनेवाली सन्तान को वैध रूप देने के लिए विवाह कर सकते हैं। वे आपस में इसलिए भी विवाह कर सकते हैं कि वे अकेले हैं और किसी का साथ चाहते हैं, या इसलिए कि वे माता-पिता के हस्तक्षेप से मुक्त होकर स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं (चेस्सर, 1969, पृष्ठ 186)। इस शोध-कार्य के दौरान एक रोचक बात यह देखने को मिली कि शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियाँ जिन लक्ष्यों तथा उद्देश्यों से विवाह करती हैं उनमें क्या परिवर्तन हुए हैं।

अभी कुछ ही वर्ष पहले तक, उन स्थितियों में भी जब शिक्षित स्त्री के लिए विवाह करना आर्थिक दृष्टि से आवश्यक नहीं भी होता था, तब भी वह अपनी परम्पराओं तथा संस्कृति को निभाने के लिए या आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा के लिए इसे आवश्यक समझती थी। इस अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के पहले समूह में इस प्रश्न के उत्तर में कि विवाह एक आवश्यकता क्यों है सबसे

अधिक वार जो बातें कही गयीं वे थीं, "सामाजिक सुरक्षा के लिए", "शारीरि सुरक्षा के लिए", "पति, गृहस्थी और बच्चों की होकर रहने की आवश्यकता के कारण "सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए और परम्परा तथा संस्कृति को निभाने के लिए", "अपन पवित्र तथा सामाजिक कर्त्तव्य पूरा करने के लिए", और "पारस्परिक प्रेम के वश" दस वर्ष बाद सबसे अधिक वार जो कारण बताये गये वे थे "पारस्परिक साहचर्य" "भौतिक सुख-सुविधाएँ", "संवेगात्मक तथा शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि" "अकेले रहने की असुविधाओं की तुलना में अधिक वैयक्तिक लाभ", "वैयक्तिक सुविधा" और "अपना पति, गृहस्थी, और बच्चे पाने के लिए।"

पहले वाले समूह की स्त्रियों की तुलना में बाद वाले समूह की स्त्रियों ने एक आवश्यकता के रूप में जीवन-साथी की "होकर रहने" की अपेक्षा उसे "पाने" पर अधिक ज़ोर दिया। इसका कारण यह हो सकता है कि किसी की "होकर रहने" में पत्नी को अपना पूरा व्यक्तित्व पति के व्यक्तित्व में विलीन कर देना पड़ता है, जबकि उसे "पा लेने" में उसके व्यक्तित्व और उसकी रुचियों में कोई विघ्न नहीं पड़ता। इस अभिवृत्ति का प्रचलन कि विवाह निजी लाभ के लिए किया जाता है अब पहले की अपेक्षा अधिक है। इसका संकेत इस बात में भी मिलता है कि इस प्रश्न के उत्तर में कि विवाह तय करते समय परिवारों के हितों को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए या विवाह-सूत्र में बँधने वाले युवक-युवती के हितों को, बाद वाले समूह की 80 प्रतिशत स्त्रियों ने और पहले वाले समूह की 63 प्रतिशत स्त्रियों ने यह कहा कि युवा-दम्पत्ति के हित तथा सुविधा को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। यह निश्चित रूप से इस बात का संकेत है कि भारत में विवाह तय करने की जो परम्परागत कसौटियाँ रही हैं वे अधिकाधिक बदलती जा रही हैं।

विवाह के प्रति जापानी युवा पीढ़ी की अभिवृत्तियों के बारे में अपने अध्ययन में इसी समस्या के सम्बन्ध में वेबर भी ऐसे ही निष्कर्षों पर पहुँचे हैं, "वे अपने इस विश्वास में लगभग एकमत हैं (लड़के 98.3% और लड़कियाँ 98.8%) कि युवा-दम्पति के हितों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए" (वेबर, 1958, पृष्ठ 61)। विवाह और पारिवारिक सम्बन्धों के बारे में पश्चिम अफ्रीकी समाज के छात्रों की बदलती हुई अभि-वृत्तियों के अध्ययन से भी ऐसी ही प्रवृत्तियों का पता चलता है; इन प्रवृत्तियों से संकेत मिलता है कि "वे सक्रिय रूप से ऐसा वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते हैं जो उनके माता-पिता, परिवार या बिरादरी के सुख या हितों की दृष्टि से नहीं बल्कि उनके निजी सुख की दृष्टि से उनके लिए हितकर हो" (ओमरी, 1960, पृष्ठ 205)।

इस अध्ययन में विवाह के बारे में उनकी अभिवृत्ति में होनेवाले परिवर्तन का संकेत उनकी कही हुई अनेक बातों तथा उनके बयानों में मिलता है ... ही इस बात में भी कि अनेक बार और काफी दृढ़ता के साथ उन्होंने ... मति प्रकट की कि पैसा विवाह को सफल बनाता है। इस ...

ओर कम झुकने की दिशा में हुआ है, और कम से कम सिद्धान्त रूप में तो अब विवाह के प्रति उनमें से अधिकांश का रवैया पहले की अपेक्षा अधिक यथार्थनिष्ठ है। चेस्सर के अध्ययन में भी अविवाहित अंग्रेज स्त्रियों के बहुमत के सम्बन्ध में ऐसे ही निष्कर्षों का संकेत मिलता है, जो विवाह के प्रति, कम से कम सिद्धान्त रूप में, यथार्थनिष्ठ रवैया रखती थीं (चेस्सर, 1969, पृष्ठ 139)।

इन सब बातों से यही पता चलता है कि अधिकाधिक संख्या में ये श्रमजीवी स्त्रियां यह विश्वास करने लगी हैं कि विवाह सुख तथा सन्तोष का एकमात्र स्रोत नहीं है और यह कि उन्हें इसके अतिरिक्त और चीज़ों की भी आवश्यकता है। हेट के अध्ययनों में (1930, 1936) यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शिक्षित स्त्रियां अब विवाह और परिवार को "वैयक्तिक स्वतन्त्रता के साथ सर्वथा असम्भव" नहीं मानतीं। प्रस्तुत अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है कि यह बात अपनी जीविका कमानेवाली युवा शिक्षित स्त्रियों के बारे में और भी सत्य है। वे विवाह को अधिक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण समझती हैं। हुआ केवल यह है कि विवाह के बारे में उनकी संकल्पना और उसके प्रति उनकी अभिवृत्तियां बदल गयी हैं।

विवाह के लिए उत्प्रेरणा

विवाह क्यों आवश्यक है और वे विवाह करना क्यों चाहती हैं या चाहती थीं—ये अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके उत्तरों से विवाह के बारे में उनकी संकल्पना में होनेवाले परिवर्तन का पता चलता है। लोग अपने मन में विभिन्न लक्ष्य और उद्देश्य लेकर विवाह-बन्धन में बंधते हैं। जैसा कि रसेल ने कहा है, "लोग या तो केवल सेक्स के लिए एक-दूसरे के साथ हो सकते हैं जैसा कि वेश्यावृत्ति में होता है, या ऐसे साहचर्य के लिए जिसमें सेक्स का भी तत्त्व हो, जैसा कि जज लिंडसे के साहचर्य विवाह में हुआ था, या अन्ततः वंश-वृद्धि के उद्देश्य से साथ हो सकते हैं" (रसेल, 1959, पृष्ठ 113)। लोग भौतिक कारणों से, सुरक्षा की भावना पैदा करने के लिए, अपनी सेक्स अभिव्यक्ति को सामाजिक अनुमोदन प्रदान करने के लिए या होनेवाली सन्तान को वैध रूप देने के लिए विवाह कर सकते हैं। वे आपस में इसलिए भी विवाह कर सकते हैं कि वे अकेले हैं और किसी का साथ चाहते हैं, या इसलिए कि वे माता-पिता के हस्तक्षेप से मुक्त होकर स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं (चेस्सर, 1969, पृष्ठ 186)। इस शोध-कार्य के दौरान एक रोचक बात यह देखने को मिली कि शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियां जिन लक्ष्यों तथा उद्देश्यों से विवाह करती हैं उनमें क्या परिवर्तन हुए हैं।

अभी कुछ ही वर्ष पहले तक, उन स्थितियों में भी जब शिक्षित स्त्री के लिए विवाह करना आर्थिक दृष्टि से आवश्यक नहीं भी होता था, तब भी वह अपनी परम्पराओं तथा संस्कृति को निभाने के लिए या आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा के लिए इसे आवश्यक समझती थी। इस अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के पहले समूह में इस प्रश्न के उत्तर में कि विवाह एक आवश्यकता क्यों है सबसे

अधिक बार जो बातें कही गयीं वे थीं, "सामाजिक सुरक्षा के लिए", "शारीरिक सुरक्षा के लिए", "पति, गृहस्थी और बच्चों की होकर रहने की आवश्यकता के कारण", "सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए और परम्परा तथा संस्कृति को निभाने के लिए", "अपना पवित्र तथा सामाजिक कर्त्तव्य पूरा करने के लिए", और "पारस्परिक प्रेम के वश"। दस वर्ष बाद सबसे अधिक बार जो कारण बताये गये वे थे "पारस्परिक साहचर्य", "भौतिक सुख-सुविधाएँ", "संवेगात्मक तथा शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि", "अकेले रहने की असुविधाओं की तुलना में अधिक वैयक्तिक लाभ", "वैयक्तिक सुविधा", और "अपना पति, गृहस्थी, और बच्चे पाने के लिए।"

पहले वाले समूह की स्त्रियों की तुलना में बाद वाले समूह की स्त्रियों ने एक आवश्यकता के रूप में जीवन-साथी की "होकर रहने" की अपेक्षा उसे "पाने" पर अधिक ज़ोर दिया। इसका कारण यह हो सकता है कि किसी की "होकर रहने" में पत्नी को अपना पूरा व्यक्तित्व पति के व्यक्तित्व में विलीन कर देना पड़ता है, जबकि उसे "पा लेने" में उसके व्यक्तित्व और उसकी रुचियों में कोई विघ्न नहीं पड़ता। इस अभिवृत्ति का प्रचलन कि विवाह निजी लाभ के लिए किया जाता है अब पहले की अपेक्षा अधिक है। इसका संकेत इस बात में भी मिलता है कि इस प्रश्न के उत्तर में कि विवाह तय करते समय परिवारों के हितों को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए या विवाह-सूत्र में बँधने वाले युवक-युवती के हितों को, बाद वाले समूह की 80 प्रतिशत स्त्रियों ने और पहले वाले समूह की 63 प्रतिशत स्त्रियों ने यह कहा कि युवा-दम्पत्ति के हित तथा सुविधा को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। यह निश्चित रूप से इस बात का संकेत है कि भारत में विवाह तय करने की जो परम्परागत कसौटियाँ रही हैं वे अधिकाधिक बदलती जा रही हैं।

विवाह के प्रति जापानी युवा पीढ़ी की अभिवृत्तियों के बारे में अपने अध्ययन में इसी समस्या के सम्बन्ध में वेबर भी ऐसे ही निष्कर्षों पर पहुँचे हैं, "वे अपने इस विश्वास में लगभग एकमत हैं (लड़के 98.3% और लड़कियाँ 98.8%) कि युवा-दम्पत्ति के हितों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए" (वेबर, 1958, पृष्ठ 61)। विवाह और पारिवारिक सम्बन्धों के बारे में पश्चिम अफ्रीकी समाज के छात्रों की बदलती हुई अभिवृत्तियों के अध्ययन से भी ऐसी ही प्रवृत्तियों का पता चलता है; इन प्रवृत्तियों से संकेत मिलता है कि "वे सक्रिय रूप से ऐसा वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते हैं जो उनके माता-पिता, परिवार या बिरादरी के सुख या हितों की दृष्टि से नहीं बल्कि उनके निजी सुख की दृष्टि से उनके लिए हितकर हो" (ओमरी, 1960, पृष्ठ 205)।

इस अध्ययन में विवाह के बारे में उनकी अभिवृत्ति में होनेवाले परिवर्तन का संकेत उनकी कही हुई अनेक बातों तथा उनके बयानों में मिलता है, और साथ ही इस बात में भी कि अनेक बार और काफी दृढ़ता के साथ उन्होंने इस कथन से अपनी सहमति प्रकट की कि पैसा विवाह को सफल बनाता है। इस कथन से दृढ़ सहमति प्रकट

करनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात पहले वाले समूह की अपेक्षा बाद वाले समूह में अधिक था। इस अभिवृत्ति की और अधिक पुष्टि इस बात से होती है कि बाद वाले समूह की अधिक स्त्रियों ने अपनी पहली पसन्द ऐसे भावी पति के लिए बतायी जिसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो, जो किसी अच्छी नौकरी पर लगा हो और जिसका आर्थिक भविष्य उज्ज्वल हो, और दूसरे जो बहुत पढ़ा-लिखा और सच्चरित्र हो। लेकिन दस वर्ष पहले अधिक प्रतिशत स्त्रियाँ अपने भावी पति के अच्छे वेतन वाली नौकरी पर लगे होने की तुलना में इस बात को अधिक महत्त्व देती थीं कि वह सुशिक्षित हो, उसका व्यक्तित्व और चरित्र अच्छा हो। इस प्रश्न के उत्तर में कि अपने भावी पति में वे किन तीन गुणों को पहला स्थान देंगी, बम्बई में विश्वविद्यालय की महिला-छात्राओं में से अधिकांश ने शिक्षा, स्वास्थ्य और मानसिक विचार का उल्लेख किया (कप्पू वाल और नानारसे, 1966, पृष्ठ 30) कार्नेल यूनिवर्सिटी के कालेज छात्राओं के जिस अध्ययन का उल्लेख बोगार्डस ने किया है, उसमें भी उन्होंने अपनी पहली तीन पसन्दें कुछ इसी प्रकार की बतायी हैं। उनकी तीन पसन्दें थीं—समझदारी, स्वच्छता और अच्छा स्वास्थ्य (बोगार्डस, 1950, पृष्ठ 74-75)।

शिक्षित श्रमजीवी महिलाओं या शिक्षित छात्राओं का अपने भावी पति के गुणों में उच्च शिक्षा को प्राथमिकता देना उस पुराने परम्परागत हिन्दू विचार की ही अभिव्यक्ति है कि युवक को विवाहित जीवन में प्रवेश करने से पहले अपनी शिक्षा पूरी कर लेनी चाहिए। उसके किसी अच्छी नौकरी पर लगे होने या उसका आर्थिक भविष्य उज्ज्वल होने को सबसे अधिक प्राथमिकता देना भी, कुछ हद तक, परोक्ष रूप से इसी विचार की अभिव्यक्ति है; इसका आधारभूत तर्क यह है कि जब तक आदमी सुशिक्षित या सुयोग्य नहीं होगा तब तक न तो अच्छी नौकरी पर लगा होगा और न ही उसका आर्थिक भविष्य उज्ज्वल होगा। लेकिन अच्छी शिक्षा प्राप्त किये बिना भी किसी व्यापार या अन्य किसी काम में उसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो सकती है, और इसीलिए दस वर्ष बाद उन्होंने अधिक प्राथमिकता इस बात को दी कि आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने के साथ ही व सुशिक्षित भी हो।

इसके अतिरिक्त, एक ही दशक में ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात काफी बढ़ गया था जो अपने अहंभाव की तुष्टि के लिए और अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, कि कोई उनकी रक्षा करे, बुद्धिमत्ता के साथ उनका मार्गदर्शन करे, वह ऐसा जीवन-साथी चाहती थीं जो उनसे श्रेष्ठतर हो ताकि वे उसका सम्मान करें, उसकी सराहना कर सकें। अपने से अधिक पढ़े-लिखे पुरुष से विवाह करने को प्राथमिकता देनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 45 से बढ़कर 65 और बौद्धिक रूप से अपने से श्रेष्ठतर पति की इच्छा रखनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 65 से बढ़कर 80 हो गया था। इसके अतिरिक्त, दोनों ही समयों पर एक भी स्त्री ऐसी नहीं थी जो सामान्यतः अपने से कम शिक्षित जीवन-साथी की कामना रखती हो और प्रायः सभी ऐसा पति चाहती थीं जो शिक्षा के मामले में उनके बराबर या उनसे बढ़कर हो।

कार्नेल यूनिवर्सिटी की कालेज-छात्राओं के बीच भी इसी प्रकार के विचार पाये गये (गोल्डसेन तथा अन्य, 1960, पृष्ठ 89)।

फ्रांसीसी जनमत संस्थान ने लगभग 1955 से 1958 तक फ्रांसीसी महिलाओं के बारे में जो एक अध्ययन किया था, उसमें यह देखा गया था कि उनमें यह चाहने की अभिवृत्ति काफी बड़ी हद तक व्याप्त थी कि बौद्धिक दृष्टि से उनका पति उन पर छाया रहे (रेमी तथा वूग, 1964, पृष्ठ 146)। उसी अध्ययन में यह भी देखा गया कि जिस चीज़ ने फ्रांसीसी महिलाओं के अपने भावी पति की ओर सबसे बढ़कर आकर्षित किया वह थी, चरित्र तथा व्यक्तित्व (ईमानदारी, निष्ठा, प्रज्ञा, विश्वस्तता, मानसिक सन्तुलन), 55 प्रतिशत; रूप, 39 प्रतिशत; वित्तीय स्थिति तथा सामाजिक पृष्ठभूमि (अच्छी नौकरी, अच्छे परिवार की सन्तान), 5 प्रतिशत (रेमी तथा वूग, 1964, पृष्ठ 136)। आश्चर्य की बात है कि इस पुस्तक की लेखिका ने भारत में शहरों की जिन पढ़ी-लिखी श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन किया है और इस पूरी पुस्तक में प्रस्तुत किये गये व्यक्ति-अध्ययनों में जिन पर विचार किया गया है उनकी तुलना में ये फ्रांसीसी स्त्रियाँ अपने भावी पति की वित्तीय स्थिति के प्रति आकर्षण को कम महत्त्व देती थीं। अपने भावी जीवन-साथी में वे किन गुणों को सबसे अधिक महत्त्व देते हैं, इसके बारे में कार्नेल विश्वविद्यालय के छात्रों की अभिवृत्तियों के बारे में भी जिन बातों का पता लगाया गया है वे भी इतनी ही आश्चर्यजनक हैं और वे उससे सर्वथा भिन्न हैं जैसा कि भारत में अधिकांश लोग समझते होंगे। जिस गुण पर जीवन-साथी चुनने की कसौटी के रूप में सबसे कम ज़ोर दिया गया था वह था "विवाह के समय पैसा है"। केवल दो प्रतिशत से भी कम स्त्रियों ने उसे उतना ही महत्त्व दिया जितना रोमांटिक प्रेम को, जिसे उन्होंने भावी जीवन-साथी चुनने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कसौटी बताया (गोल्डसेन, तथा अन्य, 1960, पृष्ठ 90-91)।

विवाह का प्रकार

विवाह के प्रति शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों की अभिवृत्ति में परिवर्तन का एक और संकेत उनके द्वारा दिये गये इस प्रश्न के उत्तरों में मिलता है कि वे किस प्रकार के विवाह को सबसे अच्छे प्रकार का विवाह समझती हैं और वे स्वयं किस प्रकार का विवाह सबसे अधिक पसन्द करेंगी। शुद्धतः तय किये हुए विवाहों के बारे में, अर्थात् भावी जीवन-साथियों की अनुमति लिये बिना, या उनकी केवल औपचारिक अनुमति लेकर, माता-पिता या अभिभावकों द्वारा तय किये गये विवाहों के सम्बन्ध में तो उनके विचारों में प्रायः कोई परिवर्तन नहीं हुआ (स्त्रियों के पहले समूह के लिए भी वह अरुचिकर रहा, पर बाद वाले समूह के लिए तो वह और भी अरुचिकर हो गया) परन्तु भावी जीवन-साथियों की हार्दिक सहमति से तय किये गये विवाहों के प्रति और प्रेम-विवाहों के प्रति उनके विचारों में काफी परिवर्तन हुआ है। मर्चेंट अपने अध्ययन (1935) से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 78 प्रतिशत स्त्रियाँ अपनी पसन्द से विवाह करने

के पक्ष में थीं। हेट ने जिन लोगों का अध्ययन किया (1946) उनमें से 74 प्रतिशत अविवाहित लोगों का मत था कि वे अपना जीवन-साथी स्वयं चुनने के पक्ष में हैं।

दस वर्ष पहले प्रस्तुत अध्ययन की लेखिका ने यह देखा था कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ न केवल शुद्धतः तय किये हुए विवाहों को नापसन्द करती थीं बल्कि उनमें से अधिकांश—63 प्रतिशत—प्रेम-विवाहों को अधिक पसन्द करती थीं। 1957-58 में विश्वविद्यालय के छात्रों के सम्बन्ध में किये गये एक अध्ययन में यह देखा गया कि उनमें से लगभग सभी विवाह को दो व्यक्तियों का निजी मामला समझते थे और उनका मत था कि फैसला जो कुछ वे कहें उसी के अनुसार होना चाहिए (शाह 1962, पृष्ठ 132)। लगभग उसी समय जापानी युवकों की बदलती हुई अभिवृत्तियों के सम्बन्ध में किये गये एक अध्ययन में यह देखा गया कि जापान में विश्वविद्यालय की 75 प्रतिशत छात्राएँ भावी पति चुनने के लिए "प्रेम-बन्धन" (पारस्परिक सहमति से प्रेम-विवाह) को आदर्श तरीका मानती थीं (वेबर, 1958, पृष्ठ 64)। परन्तु दस वर्ष बाद किये गये वर्तमान अध्ययन में न केवल प्रेम-विवाह के प्रति उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन देखा गया बल्कि तय किये गये विवाहों के प्रति भी उनका रवैया बदला था, जिसे बाद में पहले की अपेक्षा अधिक स्त्रियाँ अधिक पसन्द करने लगी थीं। विवाह के प्रति कालेज के छात्रों की अभिवृत्तियों के बारे में मैथ्यू के अध्ययन (1966, पृष्ठ 46-52) के निष्कर्षों से भी यही पता चलता है कि वे माता-पिता के तय किये हुए विवाह को अधिक पसन्द करते थे, यद्यपि वे विवाह से पहले भावी जीवन-साथियों के एक-दूसरे से परिचित हो जाने के भी पक्ष में थे : 64 प्रतिशत छात्राओं ने लड़के और लड़की की सहमति से माता-पिता के तय किये हुए विवाह के पक्ष में अपनी रुचि व्यक्त की। पाश्चात्य ढंग से शिक्षित हिन्दू स्त्रियों के सम्बन्ध में मेहता के अध्ययन (1970) से भी इसी प्रकार के निष्कर्षों का संकेत मिलता है। कार्मेक ने अपने अध्ययन से यही निष्कर्ष निकाला कि भारत में कालेजों तथा विश्वविद्यालयों की अधिकांश—83 प्रतिशत—छात्राओं का यह मत है कि विवाह माता-पिता को लड़के और लड़की की अनुमति से तय करना चाहिए (कार्मेक, 1961, पृष्ठ 86)। शेठ लिखते हैं कि हाल ही में दिल्ली के मध्यमवर्गीय तथा उच्चवर्गीय परिवारों के एक अध्ययन से पता चला कि "तय किये हुए विवाहों को बहुत बड़ी हद तक पसन्द किया जाता है" (शेठ, 1972)।

कापडिया (1955) और रास (1961) के अध्ययनों में हालांकि मुख्यतः इस बात का विश्लेषण किया गया था कि उन्होंने जिन शिक्षित और दफ्तरों में काम करनेवाले लोगों का अध्ययन किया था उनके विवाह के समय उनके परिवार वाले वास्तव में किस आचरण का पालन करते थे, फिर भी परोक्ष रूप से उनमें इन लोगों की बदलती हुई अभिवृत्तियों की दिशाओं का भी संकेत मिलता है। कापडिया के अध्ययन में 38 प्रतिशत विवाहित अध्यापकों ने बताया कि उन्होंने अपना जीवन-साथी स्वयं चुना था, यद्यपि उनमें से 90 प्रतिशत ने अपनी पसन्द निश्चित करने में अपने माता-पिता या अपने अभिभावकों से सलाह ली थी (कापडिया, 1955, पृष्ठ 70-71)।

रास अपने अध्ययन के फलस्वरूप इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि उन्होंने जिन विवाहित स्त्रियों का अध्ययन किया था उनमें से 12 प्रतिशत को अपना पति चुनने में पूर्ण स्वतन्त्रता थी (रास, 1961, पृष्ठ 252)। गोरे ने अपने अध्ययन में यह देखा कि उन्होंने दिल्ली के जिन अग्रवाल-परिवारों का अध्ययन किया था उनमें से 42 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत था कि विवाह परिवार के बड़े-बूढ़ों को तय करने चाहिएँ, परन्तु जिन लोगों का विवाह होने जा रहा हो उनसे भी परामर्श किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी बताया है कि लड़के या लड़की से उसके विवाह के बारे में परामर्श करनेवालों का अनुपात अशिक्षित लोगों में 25 प्रतिशत से बढ़कर ग्रेजुएट स्तर की या उससे अधिक शिक्षा पाये हुए लोगों में 82 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी। उनकी आधार-सामग्री से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि शिक्षा के स्तर और विवाह तय करते समय लड़के या लड़की से उसके लिए चुने गये जीवन-साथी के बारे में परामर्श करने की तत्परता के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध है (गोरे, 1968, पृष्ठ 207-210)।

प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार दूसरों के तय किये हुए विवाहों की विभिन्न कोटियों को सबसे अधिक पसन्द करनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 37 से बढ़कर 52 हो गया था और प्रेम-विवाह को पसन्द करनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 63 से घटकर 48 रह गया है, जिससे पता चलता है कि अब वे प्रेम-विवाहों की अपेक्षा तय किये हुए विवाहों को अधिक पसन्द करने लगी हैं। फिर भी यदि हम इन प्रतिशत-अनुपातों के अलग-अलग खंडों की जाँच करें तो हम देखेंगे कि भावी जीवन-साथियों की हार्दिक सहमति से तय किये गये विवाहों को अधिक पसन्द करनेवालों में और माता-पिता की हार्दिक सहमति से प्रेम-विवाह को अधिक पसन्द करनेवालों में भी एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। इन दोनों ही कोटियों की स्त्रियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है, जिससे यह पता चलता है कि कुछ अर्ध-पारम्परिक ढंग से ऐसे विवाह को अधिक पसन्द करने की प्रवृत्ति उनमें बढ़ती जा रही है, जिसमें, चाहे वह "तय किया हुआ" हो या "प्रेम पर आधारित" हो, माता-पिता की हार्दिक सहमति को वांछनीय समझा जाता है। इससे संकेत मिलता है कि वे बीच का मार्ग अपनाना ही पसन्द करती हैं, जो कुछ हद तक तो उनमें आत्म विश्वास की कमी का परिणाम है लेकिन अधिकांशतः यह सुरक्षित मार्ग अपनाने और अपना जीवन-साथी चुनने की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने से बचने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का परिणाम है।

यह प्रवृत्ति बम्बई में विश्वविद्यालय की छात्राओं के बीच भी पायी जाती है। एक अध्ययन के अनुसार, "अधिकांश लड़कियों ने बीच के मार्ग वाले हल के पक्ष में ही अपनी रुचि प्रदर्शित की, अर्थात् यह कि विवाह चाहे तय किया हुआ हो या न हो, वे माता-पिता की सहमति तथा उनके समर्थन को अत्यधिक आवश्यक तथा वांछनीय मानती हैं" (शरयु बल और वाणारसे, 1966, पृष्ठ 30)। फोनसेका द्वारा किये गये एक अध्ययन में छात्रों से अतिरिक्त शिक्षित दफ्तर में काम करनेवाली स्त्रियों में से 59 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह बताया कि वे विवाह के लिए अपना जीवन-साथी तो स्वयं

चुनना चाहेंगी, अर्थात् वे अपनी पसन्द का जीवन-साथी चाहेंगी, लेकिन उनमें से लगभग एक-चौथाई ने अपने माता-पिता से परामर्श करने तथा उनकी अनुमति प्राप्त कर लेने की इच्छा भी प्रकट की (फॉनसेका, 1966, पृष्ठ 137-38)।

वर्तमान अध्ययन में यह बात देखी गयी है कि एक ओर जहाँ ऐसी स्त्रियों की संख्या कम हुई है जो माता-पिता की अनुमति से या उनके बिना प्रेम-विवाहों का अनुमोदन करती हैं या उनमें विश्वास रखती हैं, तो दूसरी ओर ऐसी स्त्रियों की संख्या बढ़ी है जो माता-पिता की हार्दिक अनुमति से प्रेम-विवाह में विश्वास रखती हैं। एक प्रकार से यह इस बात का भी संकेत हो सकता है कि वे विवाह के मामले में परम्परागत मानदंडों की ओर झुकती जा रही हैं। लेकिन इससे भी अधिक यह इस बात का संकेत है कि जीवन-साथी चुनने की परम्परागत धारणा के प्रति और इस बात के प्रति कि विवाह किस प्रकार का हो उनके विचार कुछ ढुलमुल हैं। एक ओर तो अब वे अधिकाधिक संख्या में निजी पसन्द के आधार पर जीवन-साथी चुनने की कसौटियों का अनुमोदन करती हैं, पर दूसरी ओर ऐसी स्त्रियों की संख्या भी बढ़ती जा रही है जो माता-पिता की सलाह, उनके सुझाव और उनकी हार्दिक सहमति प्राप्त कर लेने का भी अनुमोदन करती हैं : पहले वाले समूह की केवल 15 प्रतिशत स्त्रियों ने इस बात का अनुमोदन किया कि लड़की माता-पिता की सहमति के बिना ही अपनी पसन्द के व्यक्ति से विवाह कर ले। जीवन-साथी चुनने से सम्बन्धित रवैये में ऐसी ही ढुलमुल स्थिति पंजाब विश्वविद्यालय की छात्राओं के रवैये में भी पायी गयी है (महाजन, 1965)। जीवन-साथी चुनने के सवाल के बारे में जापान की नौजवान लड़कियों में भी वेबर ने ऐसा ही ढुलमुल रवैया पाया : पति चुनने के मामले में "कुल मिलाकर अधिकांश (अस्सी प्रतिशत से अधिक) लड़कियाँ सुरक्षा और आत्मनिर्भरता के बीच खींचातानी में पड़ी रहती हैं (वेबर, 1958, पृष्ठ 67)।

काम करनेवाली शिक्षित लड़कियों का पहले की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में इस बात की आवश्यकता पर जोर देना कि उनकी हार्दिक सहमति प्राप्त की जाये और वे अपने भावी जीवन-साथी को अच्छी तरह जान लें, उस जीवन-साथी को उनके माता-पिता ने ही क्यों न पसन्द किया हो, इस बात का द्योतक है कि इस प्रकार की अधिकांश लड़कियाँ अब अपने विवाह के मामले में निष्क्रिय नहीं रहना चाहतीं बल्कि सक्रिय भूमिका अदा करना चाहती हैं।

इस बात के अतिरिक्त कि माता-पिता की विधिवत् सहमति से प्रेम-विवाह को बेहतर समझने वाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 27 से घटकर 13 प्रतिशत और माता-पिता की सहमति के बिना ही प्रेम-विवाह को बेहतर समझनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 11 से घटकर 2 प्रतिशत रह गया है, और विवाह-सूत्र में बंधनेवाले दोनों पक्षों की हार्दिक सहमति से तय किये हुए विवाह को पसन्द करनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 24 से बढ़कर 45 प्रतिशत हो गया है, इन श्रमजीवी स्त्रियों के व्यक्ति-अध्ययनों में उनके मत, विचार तथा व्यावहारिक योजनाएँ जिस रूप में व्यक्त

अभिवृत्तियों के बारे में किये गये अध्ययन में 70 प्रतिशत स्त्रियों ने इस कथन से सहमति
प्रकट की कि विवाह अपनी ही आस्था (धर्म) की परिधि के भीतर करना चाहिए
और लगभग 70 प्रतिशत छात्राओं ने कहा कि धार्मिक समस्याओं पर उत्पन्न होनेवाले
मतभेदों से अन्य वैवाहिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं (मिल्स, 1971, पृष्ठ 10
108)। अमरीका में ही कालेजों के यहूदी छात्रों के एक अन्य अध्ययन में सुधार-समर्थक
छात्रों में से लगभग आधे छात्रों ने और रूढ़िवादी यहूदियों में से 70 प्रतिशत ने य
कहा कि वे अपने धर्म की परिधि के बाहर विवाह नहीं करेंगे (कावान, 197., पृ
96)।

वर्तमान अध्ययन के दौरान जो एक और दिलचस्प परिवर्तन देखा गया उसका
सम्बन्ध इस बात से था कि उन्हें किसी विदेशी से, विशेष रूप से किसी अमरीकी
योरपवासी से विवाह करने में न केवल कोई आपत्ति नहीं थी बल्कि वे उससे विवा
करना चाहती थीं, बल्कि यहाँ तक कि वे इसके लिए लालायित थीं। यद्यपि विदेश
को दूसरों से अधिक पसन्द करने की यह प्रवृत्ति केवल ऐसी बहुत ही कमसिन लड़कि
में पायी गयी जिनका पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य प्रभाव के अधीन
थी, परन्तु अन्तर्जातीय तथा अन्तर-धार्मिक विवाहों पर आपत्ति न करने की प्र
वृत्ति दिल्ली की शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में से काफी में पायी गयी। परन्तु कि
विदेशी से विवाह करने की इच्छा रखने की यह उदीयमान प्रवृत्ति स्त्रियों के पहले स
में अधिक व्यापक थी, जबकि दस वर्ष बाद जो प्रवृत्ति उनमें अधिक व्यापक थी, वह
किसी ऐसे भारतीय से विवाह करने की इच्छा रखने की जो अमरीका या योरप
अच्छे वेतन वाली नौकरी करता हो या अच्छी आमदनी वाला व्यापार करता हो।

विवाह के समय आयु और पति तथा पत्नी की आयु में अन्तर

विवाह के लिए स्त्री की उपयुक्त आयु से सम्बन्धित अभिवृत्ति के बारे
मर्चेन्ट के अध्ययन (1935) में यह देखा गया कि युवतियाँ जिस आयु में विवाह के
में थीं उसका औसत 19.7 था। प्रस्तुत अध्ययन में यह देखा गया कि 1959 में अधिकां
शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ यह समझती थीं कि किसी भी लड़की के लिए विवाह कर
की सबसे उपयुक्त आयु 20 से 24 वर्ष के बीच है, परन्तु 1969 में अधिकांश स्त्रियों
यह बताया कि वे 18 से 22 वर्ष के बीच की आयु को विवाह के लिए सबसे उपयु
समझती हैं। परन्तु इन दोनों ही समयों पर उन स्त्रियों में से जिन्होंने विवाह करने
इच्छा प्रकट की, अधिकांश ने यही कहा कि वे 25 वर्ष की आयु से पहले विवाह कर ले
चाहती हैं। एक भारतीय विश्वविद्यालय की छात्राओं के अध्ययन के अनुसार
प्रतिशत छात्राएँ स्त्री के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 22 से 24 वर्ष
बीच मानती थीं (मैथ्यू, 1966, पृष्ठ 47)। कार्नेल विश्वविद्यालय की छात्राओं
अध्ययन (गोल्डसेन तथा अन्य, 1960, पृष्ठ 84) के दौरान लगभग सभी ने कहा
वे 20 से 25 वर्ष की आयु के बीच ही किसी समय विवाह करना चाहेंगी। इससे प

अध्ययन में यह दिखाया है कि 1917 के बाद से अन्तर-वार्णिक विवाहों में निरन्तर वृद्धि हुई है, पर 1946 के बाद से इस वृद्धि की रफ्तार बहुत तेज़ हो गयी है। इससे संकेत मिलता है कि अन्तर-वार्णिक विवाह का विरोध काफी कम हो गया है (कान्नन, 1963, पृष्ठ 203-211)। देसाई ने अपने अध्ययन के दौरान यह देखा कि उनकी महिला उत्तरदाताओं में से 45 प्रतिशत अन्तर-वार्णिक विवाह के पक्ष में थीं (देसाई, 1945, पृष्ठ 48-49)। कापड़िया ने यह देखा कि उन्होंने विश्वविद्यालय के जिन स्नातकों से साक्षात्कार किया था उनमें से 51 प्रतिशत ने अपनी सन्तान का विवाह अपनी जाति के बाहर करने की तत्परता व्यक्त की।

कापड़िया के अध्ययनों (1954, 1955 और 1958) का हवाला देते हुए दास ने बताया है कि "इन मत-सर्वेक्षणों से संकेत मिलता है कि बम्बई क्षेत्र में जिन लोगों से साक्षात्कार किया गया उनका बहुत बड़ा भाग अन्तर-वार्णिक विवाहों के पक्ष में था और उन्होंने अपने बच्चों को इस प्रकार के विवाह करने की अनुमति देने की तत्परता व्यक्त की" (दास, 1971, पृष्ठ 25)। मेहता के अध्ययन (1970) से यह निष्कर्ष निकला कि पाश्चात्य ढंग की शिक्षा प्राप्त की हुई 42 प्रतिशत हिन्दू स्त्रियाँ स्वजातीय विवाह के पक्ष में दृढ़ नहीं थीं, लेकिन केवल 22 प्रतिशत ऐसी थीं जिन्हें अन्तर-वार्णिक तथा अन्तर-प्रान्तीय विवाह में कोई आपत्ति नहीं थी। यह निष्कर्ष उस निष्कर्ष से भिन्न है जो प्रस्तुत अध्ययन ने निकाला गया है। परन्तु इसका कारण यह हो सकता है कि मेहता के अध्ययन का नमूना बहुत छोटा और सीमित था और इसके अतिरिक्त उसमें दूसरी ही कोटि की स्त्रियाँ शामिल की गयी थीं तथा नमूना चुनने के लिए भिन्न पद्धति अपनायी गयी थी।

प्रस्तुत अध्ययन में पहले की तुलना में अधिक हद तक यह देखा गया कि श्रमजीवी स्त्रियाँ अपना जीवन-साथी चुनने की परिधि को अपने वर्ण तथा प्रान्त तक सीमित रखने को तैयार नहीं हैं। दूसरी ओर ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात घट गया था, जो अपने ही वर्ण तथा अपने ही प्रान्त में विवाह करने में विश्वास रखती थीं। अन्तर-धार्मिक तथा अन्तर-जातीय विवाहों के बारे में भी देखा गया कि उनकी अभिवृत्ति काफी व्यापक हो गयी है, जिसका प्रमाण इस बात में मिलता है कि ऐसी स्त्रियों की संख्या काफी बढ़ गयी थी जिन्होंने बताया कि उन्हें इसमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु जहाँ तक ऐसे विवाहों का अनुमोदन करने का सवाल है उनकी अभिवृत्ति अपेक्षाकृत बहुत नहीं बदली है। दस वर्ष बाद भी ऐसे विवाहों का अनुमोदन करनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बहुत अधिक नहीं बढ़ा था, उनमें से बहुमत का विश्वास अब भी यही था कि अन्तर-धार्मिक तथा अन्तर-जातीय विवाहों में पारस्परिक समझदारी की ओर रुचियों, पसन्दों तथा विचारों में समानता पैदा करने की समस्या कहीं अधिक बड़ी हो सकती है। एक अन्य अध्ययन से कालेज तथा विश्वविद्यालय की केवल 31 प्रतिशत छात्राओं ने यह कहा कि उनकी राय में "विवाह किसी के भी साथ हो सकता है" (कार्मेक, 1961 पृष्ठ 87)। अमरीका में विश्वविद्यालय के कैथोलिक छात्रों की

अभिवृत्तियों के बारे में किये गये अध्ययन में 70 प्रतिशत स्त्रियों ने इस कथन से सहमति प्रकट की कि विवाह अपनी ही आस्था (धर्म) की परिधि के भीतर करना चाहिए, और लगभग 70 प्रतिशत छात्राओं ने कहा कि धार्मिक समस्याओं पर उत्पन्न होनेवाले मतभेदों से अन्य वैवाहिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं (प्रिन्स, 1971, पृष्ठ 105-108)। अमरीका में ही कालेजों के यहूदी छात्रों के एक अन्य अध्ययन में सुधार-समर्थक छात्रों में से लगभग आधे छात्रों ने और रूढ़िवादी यहूदियों में से 70 प्रतिशत ने यह कहा कि वे अपने धर्म की परिधि के बाहर विवाह नहीं करेंगे (कावान, 1971, पृष्ठ 96)।

वर्तमान अध्ययन के दौरान जो एक और दिलचस्प परिवर्तन देखा गया उसका सम्बन्ध इस बात से था कि उन्हें किसी विदेशी से, विशेष रूप से किसी अमरीकी या योरपवासी से विवाह करने में न केवल कोई आपत्ति नहीं थी बल्कि वे उससे विवाह करना चाहती थीं, बल्कि यहाँ तक कि वे इसके लिए लालायित थीं। यद्यपि विदेशी को दूसरों से अधिक पसन्द करने की यह प्रवृत्ति केवल ऐसी बहुत ही कमसिन लड़कियों में पायी गयी जिनका पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य प्रभाव के अधीन हुई थी, परन्तु अन्तर्जातीय तथा अन्तर-धार्मिक विवाहों पर आपत्ति न करने की अभिवृत्ति दिल्ली की शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में से काफी में पायी गयी। परन्तु किसी विदेशी से विवाह करने की इच्छा रखने की वह उदीयमान प्रवृत्ति स्त्रियों के पहले समूह में अधिक व्यापक थी, जबकि दस वर्ष बाद जो प्रवृत्ति उनमें अधिक व्यापक थी, वह थी किसी ऐसे भारतीय से विवाह करने की इच्छा रखने की जो अमरीका या योरप में अच्छे वेतन वाली नौकरी करता हो या अच्छी आमदनी वाला व्यापार करता हो।

विवाह के समय आयु और पति तथा पत्नी की आयु में अन्तर

विवाह के लिए स्त्री की उपयुक्त आयु से सम्बन्धित अभिवृत्ति के बारे में मर्चेन्ट के अध्ययन (1935) में यह देखा गया कि युवतियाँ जिस आयु में विवाह के पक्ष में थीं उसका औसत 19.7 था। प्रस्तुत अध्ययन में यह देखा गया कि 1959 में अधिकांश शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ यह समझती थीं कि किसी भी लड़की के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 20 से 24 वर्ष के बीच है, परन्तु 1969 में अधिकांश स्त्रियों ने यह बताया कि वे 18 से 22 वर्ष के बीच की आयु को विवाह के लिए सबसे उपयुक्त समझती हैं। परन्तु इन दोनों ही समयों पर उन स्त्रियों में से जिन्होंने विवाह करने की इच्छा प्रकट की, अधिकांश ने यही कहा कि वे 25 वर्ष की आयु से पहले विवाह कर लेना चाहती हैं। एक भारतीय विश्वविद्यालय की छात्राओं के अध्ययन के अनुसार 84 प्रतिशत छात्राएँ स्त्री के लिए विवाह करने की सबसे उपयुक्त आयु 22 से 24 वर्ष के बीच मानती थीं (मैथ्यू, 1966, पृष्ठ 47)। कार्नेल विश्वविद्यालय की छात्राओं के अध्ययन (गोल्डसेन तथा अन्य, 1960, पृष्ठ 84) के दौरान लगभग सभी ने कहा कि वे 20 से 25 वर्ष की आयु के बीच ही किसी समय विवाह करना चाहेंगी। इससे पता

चलता है शिक्षित युवा वर्ग विभिन्न संस्कृतियों की परस्पर क्रिया को किस प्रकार प्रभावित करता है और उससे किस प्रकार प्रभावित होता है।

परन्तु प्रस्तुत अध्ययन में एक अन्तर यह देखा गया है कि एक दशक के भीतर ही उनके विचार इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट तथा सुनिश्चित हो गये हैं कि वे किस आयु में विवाह करना चाहेंगी। पहले वाले समूह में पन्द्रह प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उस प्रश्न का उत्तर देने में बहुत संकोच अनुभव किया था और यही कहा था कि उन्होंने इसके बारे में कभी सोचा ही नहीं है या फिर यह कि उन्हें 'मालूम नहीं'। दस वर्ष बाद जब उनसे यही प्रश्न पूछा गया तो उनमें से मुश्किल से एक प्रतिशत ने यह कहा कि उन्हें 'मालूम नहीं' या उन्होंने 'इसके बारे में सोचा नहीं'। इससे निश्चित रूप से पता चलता है कि यद्यपि पहले भी इसके सम्बन्ध में उनके विचार काफी स्पष्ट थे पर अब विवाह की अधिकतम आयु-सीमा से सम्बन्धित मानदंड के बारे में उनके विचार अधिक स्पष्ट हो गये थे।

विचित्र बात है कि दस वर्ष के अन्दर यह देखा गया कि उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बढ़ गया है जो आयु की उन सीमाओं को घटा देने के पक्ष में हैं जिनके बीच लड़की को विवाह कर लेना चाहिए, और उसके साथ ही ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात काफी बढ़ गया है जो अपनी पसन्द के पुरुष से विवाह करना चाहती हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि इस बात के बारे में भी उनके विचार बदल गये हैं कि लड़की किस उम्र में समझदार और प्रौढ़ हो जाती है। अब वे पहले की अपेक्षा इस बात पर अधिक विश्वास करने लगी हैं कि 17 वर्ष की आयु के बाद लड़की इतनी काफी प्रौढ़ हो जाती है कि उसका विवाह हो जाये।

यद्यपि दो विभिन्न समयों पर अपने विचार व्यक्त करनेवाली स्त्रियों के दो समूहों में से प्रत्येक समूह की स्त्रियों ने लगभग बराबर ही संख्या में आयु की लगभग एक जैसी ही सीमाओं की सिफारिश की जिनमें लड़की को विवाह कर लेना चाहिए, परन्तु दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक हो गयी थी जिन्होंने यह सुझाव दिया, "लड़की के विवाह के लिए 18 या 20 वर्ष के बाद की कोई भी उम्र उपयुक्त है यदि वह इसकी आवश्यकता अनुभव करती हो और उसकी पसन्द अथवा सहमति के अनुकूल वर उपलब्ध हो।" इससे यह पता चलता है कि विवाह के लिए सबसे उपयुक्त आयु के प्रश्न पर पिछले दस वर्षों में परिवर्तन केवल न्यूनतम आयु को घटा देने के सम्बन्ध में आया है, परन्तु ऊपरी आयु-सीमा के सम्बन्ध में उनका रवैया बहुत उदार हो गया है। इसका प्रमाण इस बात में मिलता है कि दस वर्ष बाद उन्होंने कहीं अधिक बड़ी संख्या में यह विचार व्यक्त किया कि 18 या 20 वर्ष के बाद "कोई भी आयु" विवाह के लिए उपयुक्त है।

जहाँ तक पति और पत्नी की आयु में अन्तर का सवाल है, दोनों ही समयों पर जब यह अध्ययन किया गया, उनमें से बहुत बड़े बहुमत ने इस बात के पक्ष में अपना मत प्रकट किया कि पति को पत्नी से बड़ा होना चाहिए, जबकि किसी ने भी

यह मत नहीं व्यक्त किया कि पति को छोटा होना चाहिए। यह भी देखा गया कि आयु में कितना अन्तर हो इसके सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के मत उनके आयु-वर्ग के अनुसार अलग-अलग थे। अपेक्षाकृत छोटे आयु-वर्गों की स्त्रियाँ इसके पक्ष में थीं कि पति को पाँच वर्ष या उससे भी अधिक बड़ा होना चाहिए, जबकि अपेक्षाकृत बड़े आयु-वर्गों की स्त्रियाँ इसके पक्ष में थीं कि पति को दो से चार वर्ष तक बड़ा होना चाहिए, या पत्नी के बराबर आयु का होना चाहिए। अंग्रेज स्त्रियों के सम्बन्ध में किये गये एक अध्ययन में भी चेस्सर इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि, "बहुमत स्त्रियाँ अपने से बड़ी उम्र के पुरुष से विवाह करना चाहती थीं, अपने से छोटे से कोई भी नहीं। परन्तु आयु में इस अन्तर के महत्त्व के बारे में उत्तरदाताओं के मत उनकी आयु के अनुसार अलग-अलग थे; बड़ी उम्र की स्त्रियाँ अपनी ही उम्र के पुरुष से विवाह करना चाहती थीं, जबकि आमतौर पर कम उम्र की स्त्रियाँ किसी ऐसे पुरुष से विवाह करना चाहती थीं जो उम्र में उनसे बड़ा हो" (चेस्सर, 1969, पृष्ठ 128)। कार्नेल विश्वविद्यालय की छात्राओं में से 75 प्रतिशत ऐसा पति चाहती थीं जो उम्र में उनसे बड़ा हो और "जिन छात्राओं का अध्ययन किया गया उनमें से शायद ही कोई ऐसी होगी जिसने यह कहा हो कि वह अपने से छोटी उम्र के पुरुष से विवाह करना चाहती है।..." (गोल्डसेन तथा अन्य, 1960, पृष्ठ 89)।

प्रस्तुत अध्ययन में भी दस वर्ष बाद भी अधिकांश श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों ने ऐसे ही युवकों के साथ विवाह करने के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया जो उम्र में उनसे बड़े हों, और शायद ही किसी ने यह कहा हो कि सामान्य परिस्थितियों में वह अपने से छोटे पुरुष से विवाह करना चाहेंगी। फिर भी आयु में अन्तर के प्रश्न पर उनकी अभिवृत्तियों में दो बातों में परिवर्तन देखा गया। पहली यह कि यद्यपि उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात लगभग उतना ही रहा जो इसके पक्ष में थीं कि पति को पत्नी से उम्र में बड़ा होना चाहिए, परन्तु दोनों समूहों में इस प्रश्न पर अन्तर पाया गया कि उनके मतानुसार पति को पत्नी से कितने वर्ष बड़ा होना चाहिए; पहलेवाले समूह में बहुमत ने 7 से 10 वर्ष तक के अन्तर के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया, जब कि बादवाले समूह में वे 2 से 7 वर्ष तक के ही अन्तर के पक्ष में थीं। दूसरी बात यह कि बादवाले समूह में ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बढ़ गया था जो यह समझती थीं कि आयु में अन्तर का कोई महत्त्व नहीं है। उनकी धारणा के अनुसार इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि पुरुष की आयु स्त्री की अपेक्षा 2 से 12 वर्ष तक अधिक है या कम, बशर्ते कि वह उससे प्रेम करती हो और वह उसकी पसन्द का पुरुष हो और वह भी उससे प्रसन्न हो और उससे प्रेम करता हो। ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 10 से बढ़कर 29 तक पहुँच गया था। इससे इस बात का भी संकेत मिलता है कि पति और पत्नी की आयु में अन्तर के सम्बन्ध में, और इससे भी बढ़कर, परम्परा के विरुद्ध अधिक उम्र की स्त्री और कम उम्र के पुरुष के बीच विवाह के बारे में उनका रवैया अधिक उदार हो गया था।

तलाक़ और तलाक़शुदा लोगों का पुनर्विवाह

"तलाक़...का अस्तित्व 'समाधान' के रूप में है, ऐसे विवाहों से पीछा छुड़ाने के एक मार्ग के रूप में जिनमें तनाव और खींचातानी असह्य हो गयी हो" (स्टीफ़ेंस, 1963, पृष्ठ 231)। हिन्दू दर्शन के अनुसार विवाह एक ऐसा पवित्र संस्कार होता था जिसके एक बार सम्पन्न हो जाने पर मनुष्य किसी भी उपाय से उसे भंग नहीं कर सकता था। उसे एक पुनीत बन्धन समझा जाता था और उसे इसी भावना के साथ स्वीकार किया जाता था। हिन्दू समाज के शिक्षित वर्गों के विचारों पर अनेक सामाजिक-आर्थिक और साथ ही राजनीतिक-वैधानिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता रहा है। 1955 के हिन्दू अधिनियम ने लोगों को इस ढंग से सोचने पर विवश किया कि विवाह दो जीवन-साथियों के बीच एक ऐसा सामाजिक संविदा होता है जिसे कुछ विशेष परिस्थितियों में भंग भी किया जा सकता है। उसने विवाह-सम्बन्धी धारणा भी बदल दी है, उसे संस्कारमूलक न मानकर संविदामूलक माना जाने लगा है, क्योंकि उसमें तलाक़ की अनुमति है।

इस अध्ययन में इस अध्याय के आरम्भ में इस बात की छानबीन की गयी है कि विवाह के प्रति श्रमजीवी शिक्षित हिन्दू स्त्रियों का रवैया किस प्रकार बदलता रहा है। विवाह के प्रति उनके रवैये में परिवर्तन के साथ ही उसके भंग किये जाने अथवा तलाक़ के प्रति भी उनका रवैया बदलता रहा है। देसाई ने अपने अध्ययन (1945) से यह निष्कर्ष निकाला कि जिन स्त्रियों का अध्ययन किया गया था उनमें से 47 प्रतिशत तलाक़ के पक्ष में थीं, जबकि 49 प्रतिशत इसके पक्ष में नहीं थीं। एक और अध्ययन में 46.69 प्रतिशत स्त्रियों ने दृढ़ मत व्यक्त किया कि स्त्री अपने पति को तलाक़ दे सकती है, जबकि 53.31 स्त्रियां इस बात के विरुद्ध थीं कि स्त्री अपने पति को तलाक़ दे (कुप्पूस्वामी 1957)। इन अध्ययनों के निष्कर्षों से प्रस्तुत अध्ययन के लिए पूर्णतः तुलनात्मक आधार-सामग्री तो उपलब्ध नहीं होती, फिर भी इनके निष्कर्षों को यहाँ इसलिए दिया गया है कि वे भारत के विभिन्न राज्यों की मध्यमवर्गीय स्त्रियों के सम्बन्ध में तथ्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान अध्ययन में यह देखा गया कि यद्यपि ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात, जो इस बात के पक्ष में थीं कि स्त्री अपने पति को तलाक़ दे सकती है, बहुत बड़ा नहीं था, बल्कि दस वर्ष के दौरान वह स्थिर ही रहा था, फिर उन कारणों अथवा परि-स्थितियों की परिधि काफ़ी व्यापक हो गयी थी जिनके अन्तर्गत वे तलाक़ और तलाक़-शुदा स्त्रियों के पुनर्विवाह को उचित समझती थीं, या कम से कम आपत्तिजनक तो नहीं ही समझती थीं। जो स्त्रियां दस वर्ष पहले स्त्रियों के तलाक़ लेने को उचित समझती थीं, उनमें से अधिकांश इसे केवल इस प्रकार के आधारों पर उचित मानती थीं कि उनका पति उनके साथ दुर्व्यवहार करता हो या क्रूरता का बर्ताव करता हो, पति शराबी हो, बदचलन हो, या वह किसी ऐसे असाध्य मानसिक अथवा शारीरिक रोग से पीड़ित हो जो पत्नी के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता हो, जबकि इन स्त्रियों में से बहुत

के रूप में तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था जो 'अपने पति को खा गयी'। इसीलिए उसे दिन में केवल एक बार भोजन दिया जाता था और बहुत ही मोटे तथा मैले कपड़े पहनने को दिये जाते थे। उससे आशा की जाती थी कि वह यथासम्भव अधिक-से-अधिक मैली-कुचैली रहे और उसके बाल अस्त-व्यस्त रहें और शृंगार के प्रसाधनों का प्रयोग उसके लिए सर्वथा वर्जित था। उसे सबसे अलग-थलग रखा जाता था और इसलिए वह अत्यन्त दुःखी तथा एकान्त जीवन व्यतीत करती थी। अब समाज के शिक्षित वर्ग और उससे भी बढ़कर शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्ति बदल जाने के कारण शिक्षित विधवाएँ अच्छे कपड़े पहने हुए, सामान्य जीवन व्यतीत करती हुई और हर परिस्थिति का सामना बड़ी हिम्मत और साहस के साथ करती हुई देखी जा सकती हैं। प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका ने देखा कि दिल्ली महानगर की शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों में विधवाएँ बहुत प्रसन्नचित्त रहती थीं, वे शृंगार-प्रसाधनों का प्रयोग करती थीं और आकर्षक कपड़े पहनती थीं। पहले की अपेक्षा अधिक हद तक वे पुरुषों के साथ मिलती-जुलती थीं, जीवन का आनन्द लेती थीं और अपने लिए उचित वर पाने के उद्देश्य से एक बार फिर विवाह के 'बाजार में' आ गयी थीं, यहाँ तक कि यह पहचान सकना भी कठिन हो गया था कि कौन स्त्री अविवाहित है, कौन विवाहित है, किसे तलाक़ मिल चुका है और कौन विधवा है। यह निस्सन्देह विधवाओं के प्रति शिक्षित स्त्रियों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन होने का संकेत है। इस प्रसंग में गूड का कहना है :

> ...जिन स्त्रियों को तलाक़ दे दिया गया हो और विधवाओं दोनों ही के पुनर्विवाह के बढ़ते हुए अनुमोदन को स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन का सूचक माना जा सकता है, परन्तु यह परिवार के परम्परागत ढाँचे में भी एक परिवर्तन है। छोड़ी हुई या विधवा पत्नी को अब परिवार में तिरस्कृत स्थान में ढकेल नहीं दिया जाता, बल्कि उसे अधिक सामान्य जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया जाता है।...(गूड, 1963, पृष्ठ 268)।

विवाह का स्वरूप तथा सम्पन्न करने की विधि

दस वर्ष के दौरान एक-विवाही पद्धति या विवाह सम्पन्न करने की विधि के बारे में उनकी अभिवृत्तियों में अधिक परिवर्तन होते नहीं देखा गया। दोनों ही समयों पर स्त्रियों के विशाल बहुमत ने एक-विवाही पद्धति का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया और इस बात का विरोध किया कि यदि किसी का पति अथवा किसी की पत्नी जीवित हो और दोनों साथ रहते हों तो वह विवाहित स्त्री अथवा पुरुष दूसरा विवाह कर ले। दोनों ही बार बहुमत कुछ थोड़े-से पुरानी धार्मिक रीति-रस्मों के पालन के साथ वैदिक विधि से विवाह सम्पन्न करने के पक्ष में था, यद्यपि दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों की संख्या काफी बढ़ गयी थी जिन्होंने यह कहा कि वे इतनी ही हद तक इसके पक्ष में भी थीं कि विवाह वैदिक अनुष्ठानों को कुछ सुगम बनाकर, या सिविल विवाह की पद्धति के अनुसार या

अध्ययन मेहता ने किया था उनमें से बयालीस प्रतिशत यह अनुभव करती थीं कि वे अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी तलाक़ लेने की कोशिश नहीं करेंगी (मेहता, 1970, पृष्ठ 136)। प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका के दोनों ही अध्ययनों में परिलक्षित इस अभिवृत्ति का मुख्य कारण यह हो सकता है कि जिस स्त्री को तलाक़ दे दिया गया हो उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखने का रवैया समाज में अब भी प्रचलित है और यह भी कारण हो सकता है कि जिस स्त्री को तलाक़ दे दिया गया हो उसको अपने विवाह के लिए दूसरा साथी ढूंढ़ पाना कठिन होता है और वह इसमें असमर्थ रहती है।

विधवा-पुनर्विवाह

विधवा-पुनर्विवाह के सम्बन्ध में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के विचारों में होने-वाले परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए इस पुस्तक की लेखिका ने जो दो गवेषणाएँ कीं उन दोनों ही से पता चलता है कि यद्यपि दोनों ही समयों पर उनके विशाल बहुमत ने विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन किया, परन्तु पहले इसका अधिक अनुमोदन ऐसी स्त्रियों के सम्बन्ध में किया गया जो आर्थिक दृष्टि से पराश्रित हों और उन्हें किसी के सहारे तथा संरक्षण की आवश्यकता हो या यदि वे अल्पवयस्क हों और उनका सारा जीवन उनके सामने बिताने को पड़ा हो, जबकि दस वर्ष बाद नयी प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता में वृद्धि के बावजूद जब विधवाएँ भी काम कर सकती हैं और अपनी जीविका कमा सकती हैं, विधवा-पुनर्विवाह का अनुमोदन न केवल उसकी आर्थिक आवश्यकता के कारण या उसके बहुत अल्पवयस्क होने और उसे संरक्षण तथा सहारे की आवश्यकता होने के कारण बल्कि अन्यथा भी इस आधार पर किया गया कि वह पुनर्विवाह करना चाहती है।

यह भी देखा गया कि दस वर्ष के दौरान विधवा-पुनर्विवाह के प्रति उनकी अभि-वृत्ति इस दृष्टि से काफी उदार हो गयी थी कि कहीं अधिक प्रतिशत स्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि विधवा के लिए दुबारा विवाह करना नितान्त आवश्यक नहीं है फिर भी यदि वह स्वयं विभिन्न संवेगात्मक अथवा शारीरिक आवश्यकताओं के कारण फिर से विवाह करना चाहती हो तो वह किसी भी आयु में और किसी भी परि-स्थिति में विवाह कर सकती है। इतना ही नहीं, श्रमजीवी विधवाओं ने स्वयं कहा कि यदि उन्हें अपनी पसन्द का कोई ऐसा आदमी मिल जाये जो विधवा से विवाह करने को तैयार हो, तो उन्हें दुबारा विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं होगी। इस प्रकार वे विधवा-पुनर्विवाह का अनुमोदन केवल आर्थिक आवश्यकता के रूप में नहीं करती थीं, बल्कि उससे भी अधिक संवेगात्मक आवश्यकताओं की तुष्टि रूप में करती थीं। देखा गया कि अभिवृत्ति में इस परिवर्तन के साथ शिक्षित हिन्दू विधवाओं की सामाजिक प्रतिष्ठा में भी परिवर्तन हो रहा है।

परम्परावादी हिन्दू परिवारों में विधवा को बिरादरी के बाहर समझा जाता था, उससे आशा की जाती थी कि वह निरन्तर शोकग्रस्त रहे, और उसे एक ऐसी पापिनी

के रूप में तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था जो 'अपने पति को खा गयी'। इसीलिए उसे दिन में केवल एक बार भोजन दिया जाता था और बहुत ही मोटे तथा मैले कपड़े पहनने को दिये जाते थे। उससे आशा की जाती थी कि वह यथासम्भव अधिक-से-अधिक मैली-कुचैली रहे और उसके बाल अस्त-व्यस्त रहें और शृंगार के प्रसाधनों का प्रयोग उसके लिए सर्वथा वर्जित था। उसे सबसे अलग-थलग रखा जाता था और इसलिए वह अत्यन्त दुःखी तथा एकान्त जीवन व्यतीत करती थी। अब समाज के शिक्षित वर्ग और उससे भी बढ़कर शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्ति बदल जाने के कारण शिक्षित विधवाएँ अच्छे कपड़े पहने हुए, सामान्य जीवन व्यतीत करती हुई और हर परिस्थिति का सामना बड़ी हिम्मत और साहस के साथ करती हुई देखी जा सकती हैं। प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका ने देखा कि दिल्ली महानगर की शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों में विधवाएँ बहुत प्रसन्नचित्त रहती थीं, वे शृंगार-प्रसाधनों का प्रयोग करती थीं और आकर्षक कपड़े पहनती थीं। पहले की अपेक्षा अधिक हद तक वे पुरुषों के साथ मिलती-जुलती थीं, जीवन का आनन्द लेती थीं और अपने लिए उचित वर पाने के उद्देश्य से एक बार फिर विवाह के 'बाज़ार में' आ गयी थीं, यहाँ तक कि यह पहचान सकना भी कठिन हो गया था कि कौन स्त्री अविवाहित है, कौन विवाहित है, किसे तलाक़ मिल चुका है और कौन विधवा है। यह निस्सन्देह विधवाओं के प्रति शिक्षित स्त्रियों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन होने का संकेत है। इस प्रसंग में गूड का कहना है :

> ...जिन स्त्रियों को तलाक़ दे दिया गया हो और विधवाओं दोनों ही के पुनर्विवाह के बढ़ते हुए अनुमोदन को स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन का सूचक माना जा सकता है, परन्तु यह परिवार के परम्परागत ढाँचे में भी एक परिवर्तन है। छोड़ी हुई या विधवा पत्नी को अब परिवार में तिरस्कृत स्थान में ढकेल नहीं दिया जाता, बल्कि उसे अधिक सामान्य जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया जाता है।...(गूड, [illegible] पृष्ठ 268)।

विवाह का स्वरूप तथा सम्पन्न करने की विधि

दस वर्ष के दौरान एक-विवाही पद्धति या विवाह [illegible] बारे में उनकी अभिवृत्तियों में अधिक परिवर्तन होते नहीं [illegible] पर स्त्रियों के विशाल बहुमत ने एक-विवाही पद्धति का [illegible] इस बात का विरोध किया कि यदि किसी का [illegible] और दोनों साथ रहते हों तो वह विवाहित [illegible] ही बार बहुमत कुछ थोड़े-से पुरानी [illegible] से विवाह सम्पन्न करने के पक्ष में [illegible] बढ़ गयी थी जिन्होंने यह कहा [illegible] वैदिक अनुष्ठानों को [illegible]

दोनों ही के मिश्रण के आधार पर सम्पन्न किया जाये। इससे पता चलता है कि बहुत-सी शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियाँ अब भी विवाह-संस्कार से सम्बन्धित धार्मिक अनुष्ठान के प्रति आस्था रखती हैं और विवाह संस्कार परम्परागत ढंग से सम्पन्न किये जाने के पक्ष में हैं। वे परम्परागत हिन्दू विवाहों की उन रस्मों के विरुद्ध हैं जो अनावश्यक हैं। विवाह सम्पन्न करने की विधि के सम्बन्ध में बम्बई की कालेज-छात्राओं की अभिवृत्तियों के अध्ययन के निष्कर्ष भी कुछ इसी प्रकार के हैं। इससे पता चलता है कि सबसे अधिक प्राथमिकता विवाह की नव-वैदिक पद्धति को दी गयी, और उसके बाद क्रमानुसार पुरानी वैदिक पद्धति और सिविल पद्धति को (गस्यु बल यथा वानारसे, 1966, पृष्ठ 27)। विश्वविद्यालय की बहुमत छात्राओं ने कहा कि वे परम्परागत ढंग से विवाह सम्पन्न किये जाने के पक्ष में हैं (कार्मक, 1961, पृष्ठ 87)। एक और अध्ययन में कालेज की सभी छात्राओं ने कहा कि वे चाहती हैं कि उनका विवाह परम्परागत ढंग से सम्पन्न किया जाये (मैथ्यू, 1966, पृष्ठ 48)।

परन्तु सबसे रोचक तथा उल्लेखनीय परिवर्तन उन प्रत्युत्तरों की विषय-वस्तु में देखा गया जो दो विभिन्न समयों पर श्रमजीवी स्त्रियों ने यह प्रश्न पूछे जाने पर दिये थे कि उस समय मध्यमवर्गीय हिन्दू समाज में विवाह का जो स्वरूप प्रचलित था उसमें उनकी राय में क्या दोष था। जैसा कि इस अध्याय में दिये गये व्यक्ति-अध्ययनों में प्रस्तुत किया गया है, दो विभिन्न समयों पर दिये गये उनके प्रत्युत्तरों से विवाह के स्वरूप के बारे में उनकी अभिवृत्ति में होनेवाले परिवर्तन का स्पष्ट संकेत मिलता है। पहलेवाले समूह के प्रत्युत्तरदाताओं ने विवाह तय किये जाने के तरीके, दहेज प्रथा, कट्टरपंथी रस्मों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के लम्बे तथा निरर्थक क्रम, विवाह के समय व्याप्त गम्भीरता-रहित, शोरगुल तथा भीड़-भाड़ के वातावरण, विवाह-संस्कार की भयावह मुहूर्त और बारात के स्वागत-सत्कार में धन तथा परिश्रम के अनुचित अपव्यय की आलोचना की थी। और केवल कुछ उपयुक्त तथा सार्थक वैदिक अनुष्ठानों तथा धार्मिक रस्मों का पालन करके विवाह सम्पन्न करने की विधि को सरल बनाने के सुझाव दिये गये थे। परन्तु दस वर्ष बाद ऐसी ही आलोचना तथा सुझाव अधिक दृढ़ रूप से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त, बादवाले समूह की स्त्रियों ने यह प्रश्न पूछे जाने पर कि विवाह के स्वरूप में क्या दोष है, कुछ अत्यन्त असाधारण तथा नये विचार व्यक्त किये। इन विचारों में थे : स्वयं एक-विवाही पद्धति की आलोचना, उसे नीरस तथा प्रेरणाहीन और साथ ही असन्तोषप्रद ठहराना और उसे विवाह के सूत्र में बँधे दोनों पक्षों के सम्पूर्ण व्यक्तित्वों के पूर्ण विकास तथा अभिव्यक्ति के लिए अपर्याप्त समझना। उनके मत तथा विचार न्यूनाधिक रूप में एलिस द्वारा किये गये अमरीकियों के उस अध्ययन में अभिव्यक्त विचारों की प्रतिध्वनि थे जिसमें कहा गया है, "एक-विवाही पद्धति कई लोगों के लिए नीरसता, प्रतिबन्धन, स्वामित्व भाव और सेक्स की अतृप्ति का कारण बन जाती है, वह रोमांटिक प्रेम का हनन करती है और अन्य कई बुराइयों को जन्म देती है" (एलिस, 1962)।

इस सम्बन्ध में भी उनके सुझाव इतने ही प्रबोधजनक थे कि विवाह का वह वैकल्पिक रूप क्या है जिसके बारे में वे यह समझती और महसूस करती हैं कि वह एक-विवाही पद्धति से बेहतर होगा, और इस सम्बन्ध में भी कि विवाह तय करने के वैकल्पिक रूप क्या हों। दस वर्ष बाद शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों ने जिन तीन सबसे असाधारण नयी संकल्पनाओं का उल्लेख किया, वे थीं 'सामूहिक विवाह', 'परीक्षण विवाह' और 'किसी भी प्रचलित ढंग का विवाह नहीं बल्कि एक उन्मुक्त प्रेम-सम्बन्ध'। इसमें सन्देह नहीं कि ये विचार बहुत ही थोड़ी-सी ऐसी स्त्रियों ने व्यक्त किये थे जिनका सम्बन्ध आधुनिक तथा पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवारों से था और जिनका पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा बहुत ही उन्नत ढंग से हुई थी। फिर भी, उनसे भारत में विवाह की प्रथा के बारे में सोचने के ढंग तथा उसके बारे में अपना मत निर्धारित करने के ढंग में एक बहुत महत्त्वपूर्ण उभरती हुई प्रवृत्ति का संकेत मिलता है।

फिर भी, सभी नयी उभरती हुई प्रवृत्तियों के बावजूद पहले की अपेक्षा अधिकाधिक श्रमजीवी स्त्रियों ने विवाह के बारे में यही कहा कि वह एक आवश्यकता है और अभी दस ही वर्ष पहले की तुलना में उसका प्रचलन कहीं अधिक है। केवल उसकी पवित्रता, स्थायित्व तथा उद्देश्य के प्रति आस्था ने एक नया आयाम धारण कर लिया है। जैसा कि सिंह ने कहा है :

> जीवन की गति जितनी ही तेज़ होती जायेगी और उसकी माँगें जितनी बढ़ती जायेंगी उतनी ही अधिक उस सुरक्षा, स्थायित्व तथा प्रेम की आवश्यकता भी बढ़ती जायेगी जिसे पुरुष तथा स्त्रियाँ एक विशेष सम्बन्ध में खोजती रहती हैं। आप विवाह-संस्कार सम्पन्न करायें या न करायें, युगल-बन्धन की आवश्यकता बनी रहेगी। नया आयाम यह है कि यह बन्धन स्थायी नहीं है (सिंह, 1971)।

दस वर्ष के अन्तराल से जिन स्त्रियों का अध्ययन किया गया उनके उन विभिन्न कथनों, बयानों तथा प्रत्युत्तरों से, जिन्हें उनके व्यक्ति-अध्ययनों में प्रस्तुत किया गया है, यह संकेत मिलता है कि विवाह में निजी सन्तोषों, सुख और सुविधाओं को दस वर्ष पहले की तुलना में आज अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। और ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात काफी बढ़ गया है जो इस बात का पक्का भरोसा कर लेने के बाद ही विवाह करना चाहती हैं या विवाह करने का फैसला करती हैं कि विवाह करने से उन्हें जो सोचा-समझा लाभ मिलेगा वह हानि से कहीं अधिक होगा।

इस प्रकार यह देखा गया कि विवाह के प्रति श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्ति में वैयक्तिक तथा निजी हितों तथा लाभों की प्रेरणा अधिक बलवती होती जा र[illegible] जबकि दूसरों के हित तथा समाज के कल्याण का ध्यान क्षीण होता जा [illegible]।

विचार-शैली, उनके तर्क और उनके आचरण, जैसाकि उन्होंने स्वयं वर्णन किया, इस संकेत को और पुष्ट करते हैं कि अब आत्मिक, परोपकारी तथा समाज के हितों के विचार से विवाह करने की प्रवृत्ति निरन्तर कम होती जा रही है और अधिकाधिक विवाह व्यक्ति-विशेष की भौतिक, संवेगात्मक तथा संवेदनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किये जाने लगे हैं।

4

सेक्स—उन्मादमयी ज्वाला

सेक्स और जीवन का जन्म एक साथ हुआ और वे एक-दूसरे से अभिन्न हैं। सेक्स की सहज प्रवृत्ति जीवन के गति-चक्र में सदा ही शक्तिशाली प्रेरक तथा आगे बढ़ानेवाली शक्ति रही है। आदिकाल से ही मनुष्य इसकी गहराई तथा तीव्रता, इसकी व्यापकता तथा विस्तार और इसकी शक्ति तथा इसके रहस्यमय स्वरूप को अनिवार्यतः रोमांचित होकर अनुभव करता आया है। परन्तु अब से पहले यह कभी ऐसा प्रबल उन्माद नहीं था जैसा कि आज है। जीव-सृष्टि के आरम्भ से ही सेक्स का अस्तित्व रहा है और सेक्स में कोई नयी बात न होते हुए भी वह हमेशा से विवाद तथा गहरे चिन्तन का विषय रहा है। सेक्स ने मनुष्य को विस्मय में डाले रखा है और इससे उत्पन्न होनेवाले प्रश्नों में उलझाये रखा है और यह मनुष्य के ध्यान तथा चिन्ता का केन्द्र बना रहा है।

मनुष्य के लिए सेक्स के दो मुख्य प्रयोजन हैं। एक है प्रजनन और दूसरा है सुख। जैविकी आवश्यकता के रूप में सेक्स को सदा से सभी लोगों ने हर समय और हर जगह अत्यन्त वांछनीय माना है। परन्तु केवल वासना की तृप्ति के लिए इसका उपयोग सामाजिक तथा नैतिक विवाद का विषय रहा है।

एक सेक्स का दूसरे सेक्स के प्रति आकर्षण, एक की दूसरे के लिए सेक्स-कामना तथा अन्ततोगत्वा दोनों का संसर्ग अत्यन्त प्राचीन काल से लगभग सभी देशों के साहित्य की विषय-वस्तु रहे हैं। सेक्स-कामना चूंकि प्रबल तथा लगभग अदम्य होती है, इसलिए यह आज के सभ्य मनुष्य की भाँति आदिम मनुष्य के सामने भी यह समस्या उत्पन्न करती रही है कि "सामाजिक सामंजस्य तथा कल्याण को कम से कम कुछ हद तक [illegible] के लिए इसे किस प्रकार अनुशासनबद्ध तथा संगठित किया जाये। इसलि[illegible] प्रथा और उसके साथ संलग्न नैतिक आचरण के मानदण्डों ने [illegible] प्रचलन का रूप धारण कर लिया। जब विवाह-नियम बन गया

के बाहर सेक्स-आचरण पापमय, अनैतिक, अवैध इत्यादि समझा जाने लगा" (पुणेकर और राव, 1967, पृष्ठ 1)।

महाभारत में इस आशय के प्रसंग मिलते हैं कि प्राचीनकाल में स्वच्छन्द काम-तृप्ति को पाप नहीं समझा जाता था बल्कि उसका व्यापक प्रचलन था, और स्त्रियां जो चाहती थीं करती थीं। बाद में जब स्वच्छन्द संभोग का स्थान नियमित विवाह ने ले लिया तो पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए एक ही मानदण्ड निर्धारित कर दिया गया और स्वच्छन्द संभोग के सेक्स-सम्बन्धों का पालन करनेवाले पुरुष को भी उतना ही पापी समझा जाने लगा जितना कि स्त्री को (देखिये राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 144-145)।

चेस्सर का मत है कि प्रेम तथा सेक्स की दो आधारभूत मानव-आवश्यकताओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए विभिन्न समाजों ने विभिन्न हल खोजने का प्रयत्न किया है। उन्होंने बहु-विवाह प्रथा, बहुपति प्रथा तथा एक-विवाह प्रथा को आज-माया है। विवाह से पहले तथा विवाह की परिधि के बाहर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव-जाति। कुछ लोगों ने सेक्स के तक़ाज़ों की सर्वथा उपेक्षा करने की कोशिश की है और कुछ लोगों ने प्रेम को अस्वीकार किया है परन्तु इन दो चरम उपायों ने कोई फलप्रद परिणाम नहीं निकले हैं (देखिये चेस्सर, 1964, पृष्ठ 111)।

यद्यपि भारत के प्राचीन शास्त्रीय साहित्य में प्रेम तथा सेक्स के बारे में प्रचुर मात्रा में उन्मुक्त तथा विज्ञानसम्मत विवेचना मिलती है, परन्तु सबसे पहले वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में सेक्स-जीवन तथा सेक्स-आकर्षण के विभिन्न पक्षों का सुस्पष्ट विव-रण प्रस्तुत किया और 'मानव-हृदय के जीवन को भरपूर तथा मर्मस्पर्शी बनानेवाले उद्वेगों' का चित्रण किया। इस पूरे विवरण में, जो जीवन के गहन प्रेम और उत्कट आध्यात्मिक गम्भीरता से ओत-प्रोत है, उस संयम जैसी कोई बात नहीं है जिसकी साधना यातना सहन करने की दीक्षा देनेवाले करते हैं। आध्यात्मिक स्वतन्त्रता कामनाओं का स्वैच्छिक दमन करके नहीं बल्कि उनकी विवेकपूर्ण व्यवस्था करके प्राप्त की जानी चाहिए (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 149)। फिर भी विभिन्न सामाजिक तथा नैतिक अवरोधों के कारण वात्स्यायन का काम-सूत्र लिखे जाने के कुछ ही समय बाद सेक्स को वैज्ञानिक गवेषणा की परिधि के बाहर माना जाने लगा और उसकी विवेचना प्रायः वर्जित कर दी गयी और अभी कुछ ही समय पहले तक वह वर्जित रही। परन्तु इधर कुछ समय से सेक्स खुले तौर पर विचार-विनिमय का विषय बन गया है, जिसकी ओर जन-साधारण तथा विद्वानों दोनों ही का ध्यान आकर्षित हो रहा है। "आधुनिक समाज में आज विवाद का जो क्षेत्र है उसमें सेक्स उन विषयों में से है जिनकी स्थिति केन्द्रीय है। राजनीति तथा धर्म की तरह ही इसके बारे में भी एक तथाकथित क्रान्ति-कारी अथवा प्रगतिशील विचारधारा है जिसका विरोध एक रूढ़िवादी अथवा प्रति-क्रियावादी धारणा करती है" (स्कोफ़ील्ड, 1968, पृष्ठ 195)। और "सेक्स सातवें दशक की राजनीति है—जिस अर्ध-कल्याणकारी राज्य-व्यवस्था में हम इस समय रहते हैं उसमें

रोमांच तथा साहस का अन्तिम क्षेत्र" (वारोफ़, 1962)। स्टीफेंस के अनुसार, "सेक्स मानव-उद्वेगों में से एक अधिक उपद्रवी उद्वेग प्रतीत होता है—सामाजिक समस्याओं का स्रोत, हर जगह उसके चारों ओर विभिन्न निषेधों तथा प्रतिवन्धों की दीवारें खड़ी कर दी गयी हैं।...सेक्स-सम्वन्धी प्रतिवन्धों का उल्लंघन करने वाला...दंड तथा यातना का भागी हो सकता है" (स्टीफेंस, 1963, पृष्ठ 145)।

विभिन्न विद्वानों ने इसका विवरण तथा परिभाषा दी है। कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं: "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सेक्स मानव-आचरण को प्रेरित करनेवाला एक आधारभूत उद्वेग है" (शोफ़ील्ड, 1968, पृष्ठ 195)। एलिस का कहना है कि "सेक्स जीवन की केन्द्रीय समस्या है...सेक्स ही जीवन का मूल है, और जव तक हम सेक्स को समझना नहीं सीखेंगे तव तक हम जीवन के प्रति श्रद्धा का भाव रखना कभी नहीं सीख सकते" (एलिस, 1900, 'सामान्य भूमिका')। वाद में चलकर फ्रायड ने सेक्स का प्रयोग वहुत व्यापक अर्थ में किया और उसे हर प्रकार के शारीरिक आनन्द और इसके साथ ही स्नेह, प्रेम तथा सभी कोमल भावनाओं का पर्याय माना। यही कारण है कि उनकी वाद की रचनाओं में 'सेक्सीयता' के वजाय 'मनोसेक्सीय' शब्द का प्रयोग किया गया। सेक्स-जीवन से फ्रायड का तात्पर्य है "न केवल वह जिसे आमतौर पर सेक्स कहा जाता है, अर्थात् प्रकृत प्रौढ़ विलिंगी सम्वन्ध, वल्कि मनुष्यों के वीच वह समस्त व्यवहार जिसमें वे एक-दूसरे के निकट शारीरिक सम्पर्क में आते हों" (ब्राउन, 1940, पृष्ठ 157)।

फ्रायड के अनुसार दो आधारभूत सहज प्रवृत्तियाँ अथवा आवेग होते हैं, और उनके मतानुसार सहज प्रवृत्तियाँ तथा आवेग वे आधारभूत शक्तियाँ हैं जो जन्मजात होती हैं और सीखी हुई नहीं होतीं और जिनके कारण ही मनुष्य उस प्रकार का आचरण करता है जैसा कि वह करता है। उनके अनुसार इनमें से एक सहज प्रवृत्ति है जीवन की सहज प्रवृत्ति अर्थात् प्रेम की सहज प्रवृत्ति जो उन सभी शक्तियों का स्रोत है जो मनुष्य को स्वयं अपने को तथा अपने वंश को सुरक्षित रखने के लिए प्रेरित करती हैं। उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं से यह धारणा वनती है कि उनका विश्वास यह था कि समस्त व्यवहार सेक्स से प्रेरित होता है। परन्तु उनके अनुसार काम-भावना अथवा जीवन की सहज प्रवृत्ति उस व्यापक अर्थ में सेक्स-आचरण का स्रोत है जो उन्होंने 'सेक्स' शव्द को दिया था। उनके अनुसार 'लिवीडो' (अर्थात् काम-वासना) जीवन की सहज प्रवृत्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और वह एक ऐसा आवेग है जो लोगों के वीच पारस्परिक निकट शारीरिक सम्पर्क स्थापित करता है। फ्रायड के अनुसार, "प्रौढ़ विलिंगी प्रेम-सम्वन्ध वल्कि विलिंगी तथा समलिंगी दोनों ही अर्थों में माता-पिता का प्रेम, भाई-वहनों का प्रेम और घनिष्ठ मित्रता का प्रेम भी काम-वासना पर आधारित होता है" (ब्राउन, 1940, पृष्ठ 182)। फ्रायड ने 'सेक्सीयता' तथा 'लिवीडो' शव्दों का प्रयोग वहुत व्यापक अर्थ में किया है, जिनकी परिभाषा उन्होंने समस्त घनिष्ठ मानव-प्रेम-सम्वन्धों के प्रसंग में की है।

राइसमैन ने अपने अध्ययन में (1959) यह मत व्यक्त किया है कि सेक्स पूर्ण उदासीनता के खतरे के विरुद्ध एक प्रकार की सुरक्षा प्रदान करता है।...(पर-निर्देशित व्यक्ति) उसकी ओर अपने जीवित होने के आश्वासन के लिए देखता है (देखिये ग्रीन, 1964, पृष्ठ 21)। किर्के डाल की प्रस्थापना यह है कि "सेक्स वही अच्छा है जो निर्माण करे, न कि पीड़ा पहुँचाये", जबकि स्टोक्स का कहना है कि "जो भी चीज सफल अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को बढ़ावा दे वह नैतिक है" (देखिये ग्रीन, 1970, पृष्ठ 29)।

'संसर्ग की सहज प्रवृत्ति' से लेकर 'जीवन-प्रेरणा' और 'जीवन-शक्ति' तक सेक्स के अनेक अर्थ हो सकते हैं। अगर कोई यह कहे तो बिल्कुल ग़लत न होगा कि सेक्स संसर्ग की वह सहज प्रवृत्ति है जो वंशक्रम को बनाये रखने के उद्देश्य से पुरुषों तथा स्त्रियों को एक-दूसरे के प्रति आकर्षित करती है और यह कि सेक्स प्रजनन की एक ऐसी सहज प्रवृत्ति है जो सभी प्राणियों में पायी जाती है। सेक्स की सहज प्रवृत्ति के बारे में गेड्डीज़ ने लिखा है कि "यह ऐसा आवेग, ऐसा उद्वेग, ऐसी प्रेरणा है जो जन्म से ही हमारे अन्दर होती है। शैशवकाल के प्रथम कुछ महीनों में ही, कभी-कभी जन्म के समय ही इसका प्रादुर्भाव होता है। मरणकाल तक इसका अस्तित्व रहता है। इसके तात्कालिकता के शिकार होते हैं" (गेड्डीज़, 1954, पृष्ठ 13)। इस प्रसंग में आर्नल्ड ने कहा है, "सेक्सगत अभिरुचि, उत्तेजना तथा कामना एक गहरा, आधारभूत जैविकीय आवेग है जो आदिकाल से ही मानव-जाति में पाया जाता है। इसकी अभिव्यक्ति तथा तुष्टि के असंख्य विभिन्न रूप हुए हैं, परन्तु इसका आधारभूत अस्तित्व सुख, आनन्द, ईर्ष्या-भाव, घृणा तथा वंश-वृद्धि प्रदान करने के लिए निरन्तर बना रहा है" (आर्नल्ड, 1965, पृष्ठ 47)। और किंसे (1953) ने अनेक बार सेक्स-सम्बन्धों का उल्लेख 'सामाजिक-सेक्सीय सम्बन्धों' के रूप में किया है (वेबर, 1954, पृष्ठ 50)।

मनुष्य "जन्मजात शक्तियों द्वारा प्रजनन के लिए प्रेरित होता है। इस प्रेरणा को मुख्यतः सेक्स कहा जाता है। यद्यपि आधारभूत प्रेरणा जन्मजात होती है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति को ढाला जा सकता है" (गेड्डीज, 1954, पृष्ठ 28)। परन्तु मनुष्य के प्रसंग में सेक्स का अर्थ केवल काम-क्रिया तक ही सीमित नहीं है। डेविस लिखते हैं:

> यह मनुष्य के व्यक्तित्व का अंग होता है। यह ऐसी प्रबल प्रेरणा होती है जो शायद हमें, जितना कि हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक प्रभावित करती है। अलग-अलग व्यक्तियों की महत्वाकांक्षाओं तथा उद्देश्यों पर इसका प्रभाव अलग-अलग ढंग से पड़ता है।...
>
> सेक्स मनुष्य के शारीरिक तथा भावनात्मक दोनों ही पक्षों का एक रहस्यमय जटिल अंग है, जो घनिष्ठ रूप से वैयक्तिक होने के साथ ही अन्य लोगों के साथ हमारे सम्बन्धों का भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है, यह आत्मिक विकास का एक कारक और पूरे चरित्र पर एक प्रभाव है। यह जीवन की अखंड ज्योति को जलाये रखने का साधन है (डेविस, 1958, पृष्ठ 9-10)।

यह सेक्स-शक्ति "मनुष्य को अनेक प्रकार से प्रेरित करती है। यह उसके व्यवहार के बहुत बड़े भाग को निर्धारित करती है। वह उसके सोचने के ढंग को प्रभावित करती है। वह उसे स्वाभिमानी बनाती है। वह उसे उदास कर देती है। वह उसमें अपराध अथवा लज्जा की भावना उत्पन्न करती है। वह उसे शक्ति का आभास और दूसरों को निर्बलता का आभास प्रदान करती है" (गेड्डीज़, 1954, पृष्ठ 263), और जैसा कि क्रिश ने कहा है, "सेक्स सर्वाधिक आत्मीय मानव-आचरण है। उसके परिणाम सर्वाधिक प्रत्यक्ष होते हैं। कारण यह कि सेक्स-आवेग हमें अपने-आपमें से बाहर आने पर विवश कर देता है, और यह जिस प्रेम को उत्पन्न करता है, वह स्वयं अपने बारे में हमारे विचारों को, और दूसरे लोगों के साथ हमारे सम्बन्धों को और अन्ततोगत्वा समाज की सभी संस्थाओं को निर्धारित करता है" (क्रिश, 1967, पृष्ठ 5)।

सेवर्ड के अनुसार, "व्यापक अर्थ में सेक्स की परिकल्पना में किसी समूह के जीवन में पुरुष तथा स्त्री की भूमिका और संसर्ग-व्यवहार दोनों ही का समावेश होता है" (सेवर्ड, 1954, पृष्ठ 1)। सेक्स की चर्चा करते हुए नेल्सन लिखते हैं, "अमरीका की सेक्स-सम्बन्धी सूचना तथा शिक्षा परिषद् की कार्यकारी संचालक डॉ० मेरी एस० कैल्डरोन कहती हैं, "सेक्स कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं है जिसे बच्चे खेलें, बल्कि वह ऐसे गहन तथा बुनियादी महत्त्व का मानव-अभियान का क्षेत्र है जिसमें प्रवेश पाने के लिए कुछ मात्रा में परिपक्वता होना आवश्यक है" (नेल्सन, 1970, पृष्ठ 46)। एक और प्रमुख विद्वान् ने मत व्यक्त किया है कि 'सेक्स को एक घटना के रूप में नहीं बल्कि एक जीवन-पद्धति के रूप में देखा जाना चाहिए'" (पोपेनोए, 1963, पृष्ठ 35)। लेकिन यह भी एक तथ्य है कि प्रेम के बिना भी सेक्स-कामना का अस्तित्व हो सकता है और होता है और मनुष्य सेक्स-क्रिया के प्रजननकारी पक्ष को ध्यान में रखे बिना भी उसे कर सकता है और उससे आनन्द प्राप्त कर सकता है। "विवाह की परिधि में प्रेम के एक अंग के रूप में सेक्सीयता शरीर द्वारा प्रेम की अभिव्यक्ति का रूप धारण कर लेती है" (डेविस, 1958, पृष्ठ 170)। इस प्रेम के बारे में स्टॉर्र का कहना है कि "व्यक्तित्व का पूर्ण विकास केवल प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने तथा प्रेम का पात्र बनने की स्थिति में ही सम्भव हो सकता है" (स्टॉर्र, 1963, पृष्ठ 177)।

पोमेराई ने इस बात का उल्लेख किया है कि सेक्समूलक प्रेम "जीवन को गहराई तथा समृद्धि प्रदान करता है, सहिष्णुता को बढ़ाता है और मानव सहानुभूतियों को व्यापक बनाता है। इसलिए, जिन लोगों ने प्रेम किया है उनमें आमतौर पर ऐसे लोगों की अपेक्षा, जो इस समृद्धकारी अनुभव से वंचित रहे हैं, अधिक पैनी अन्तर्दृष्टि, अधिक व्यापक सहानुभूतियाँ और अधिक गहरी मानव सद्भावना होती है; और चूंकि सभ्य समाज का अस्तित्व पारस्परिक सहानुभूति तथा सहयोग पर निर्भर है, इसलिए सेक्समूलक प्रेम का एक विपुल सामाजिक निधि होना अनिवार्य है" (पोमेराई, 1936, पृष्ठ 78-79)।

राधाकृष्णन् का मत है कि सेक्स आवेग की तुष्टि "कॉफ़ी की प्याली पी लेने के समान नहीं है। यह कोई तुच्छ, महत्त्वहीन घटना नहीं है जिसकी कोई याद बाकी न रहती हो। इसके फलस्वरूप स्नेह, मित्रता तथा प्रेम उत्पन्न होता है। आधुनिक सेक्स-जीवन का उथलापन बढ़ती हुई अभद्रता का संकेत है" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 150)। प्रेम के बिना सेक्स-सम्भोग के बारे में रसेल की मान्यता है कि वह "सहज प्रवृत्ति को कोई गहरा सन्तोष प्रदान नहीं कर सकता।...प्रेम के बिना सेक्स-सम्भोग का कोई मूल्य नहीं है और उसे मुख्य प्रेम करने के उद्देश्य से किया जानेवाला प्रयोग ही समझा जाना चाहिए" (रसले, 1959, पृष्ठ 86-87)।

हेमिंग लिखते हैं कि पशुओं के विपरीत मनुष्य में "सम्बन्धों तथा वैयक्तिक विकास के लिए सेक्स एक सशक्त बल होता है। वह एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा सम्बद्ध-कारी गतिविधि है जो परस्पर सुख पहुँचाने के गुण में समृद्ध है। प्रजनन तो उसका केवल एक जैविकीय कार्य है" (हेमिंग, 1970, पृष्ठ 13)। रोमन कैथोलिक मत के अनुसार, "सेक्स पवित्र और स्वभावतः अच्छा होता है। प्रजनन का विशिष्ट साधन होने के नाते वह पवित्र होता है। परन्तु जब कभी सेक्स-क्रिया का सुख-भोग करने और प्रजनन के पुनीत ध्येय से बचने के लिए उसका प्रयास किया जाता है तो वह पापमय हो जाता है" (देखिये टामस, 1956, पृष्ठ 45-46)।

सेक्स के सम्बन्ध में वात्स्यायन की कल्पना यह थी कि इसका उद्देश्य केवल प्रजनन ही नहीं है, बल्कि वह पार्थिव सुखों में से एक महानतम सुख को प्राप्त करने का स्रोत और साधन है, और जिसे अनुभव करने तथा जिसका सुख भोगने का अधिकार हर व्यक्ति को है। रसेल ने कहा है कि "खाने और पीने की तरह सेक्स भी मनुष्य की स्वाभाविक आवश्यकता है। यह तो सच है कि मनुष्य इसके बिना जीवित रह सकता है, जबकि खाने-पीने के बिना वह जीवित नहीं रह सकता, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सेक्स की इच्छा बिल्कुल वैसी ही है जैसी खाने-पीने की इच्छा" (रसेल, 1959, पृष्ठ 196)। आगे चलकर वह यह भी कहते हैं कि सेक्स का सम्बन्ध मानव-जीवन की कुछ महानतम अच्छाइयों के साथ है और इसलिए इसे केवल एक स्वाभाविक भूख और खतरे का सम्भव स्रोत नहीं माना जा सकता। कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए सोरेंसेन लिखते हैं :

> यह सच है कि सेक्स और भोजन मानव-जाति की बड़ी बुनियादी आवश्यकताएँ हैं। युद्ध या सशस्त्र विद्रोह के रूप में सामाजिक उथल-पुथल के दौरान, जिनके साथ अनिवार्यतः भुखमरी और अभाव की स्थिति भी पैदा होती है, भोजन का महत्त्व सेक्स से बढ़ जाता है; लेकिन जब स्थिति सामान्य होती है, और विशेष रूप से वास्तविक अथवा कल्पित समृद्धि के दौर में, पलड़े उलट जाते हैं और सेक्स अधिक आधारभूत तत्त्व की तुलना में अधिक महत्त्व धारण कर लेता है (सोरेंसेन, पृष्ठ 372-373)।

एच० जी० वेल्स ने यह मत व्यक्त किया है कि "हममें से अधिकांश लोगों के लिए सेक्स एक आवश्यकता है, और केवल ऐसी आवश्यकता भी नहीं जो कोई ऐसी तात्कालिक वस्तु हो जिसे, उदाहरणार्थ, किसी वेश्या के पास जाकर लगे हाथ तुष्ट किया जा सके, वल्कि वह ऊर्जा, आत्मविश्वास तथा सृजनात्मक शक्ति का स्रोत होती है" (देखिए पोमेराई, 1936, पृष्ठ 69)। और "इतना ही नहीं, सेक्स सृजनात्मकता के लिए आवश्यक होने के अतिरिक्त जीवन पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करने में भी योगदायक है" (पोमेराई, 1936, पृष्ठ 74)।

राधाकृष्णन् का दृढ़ मत है, "यह सोचना उचित नहीं है कि स्त्री तथा पुरुष को एक-दूसरे से केवल आनन्द के लिए शारीरिक आनन्द नहीं प्राप्त करना चाहिए, और केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही ऐसा करना चाहिए। यह सोचना भी ग़लत है कि सेक्स-कामना स्वत: एक बुरी चीज़ है, और एक सिद्धान्त के रूप में उस पर प्रभुत्व प्राप्त करना तथा उसका दमन करना ही गुणकारी है" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 189-190)। फ्रायड ने इस वात पर ज़ोर दिया है कि सेक्स का दमन हमेशा विक्षिप्तता, उद्विग्नता तथा मानसिक विकार का कारण होता है। फ्रायड के मनोविज्ञान की आलोचना सेक्स पर आवश्यकता से अधिक वल देने के कारण की गयी है, परन्तु फ्रायड का यह कहना ग़लत नहीं था—और किसी भी योग्य प्रामाणिक व्यक्ति ने इसका खंडन नहीं किया है—कि सेक्स के दमन के फलस्वरूप वस्तुत: शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं। इस विचार से सहमति व्यक्त करते हुए राधाकृष्णन् कहते हैं :

> जैविकी की दृष्टि से, सेक्स की सहज प्रवृत्ति की तुष्टि न करने से स्नायविक अस्थिरता उत्पन्न होती है; मनोविज्ञान की दृष्टि से इसके फलस्वरूप रिक्तता तथा मनुष्य मात्र के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न होती है...पुरुषों तथा स्त्रियों के विशाल वहुमत के लिए और पूरी मानव-जाति के लिए सेक्स-सम्वन्ध सवसे आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण सम्वन्ध होते हैं (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 150)।

पोमेराई का मत है कि सेक्स जीवन का एक आवश्यक अंग है, "मनोविज्ञान की दृष्टि से भी उससे कम नहीं जितना कि शारीरिक दृष्टि से, और उसे न तो मनुष्य के जीवन से अलग कोई चीज़ समझा जाना चाहिए, और न ही इसे उसका पूरा अस्तित्व माना जाना चाहिए।...सवसे वढ़कर, सेक्स को किसी भी प्रकार लज्जाजनक नहीं समझा जाना चाहिए..." (पोमेराई, 1936, पृष्ठ 125)। और "सेक्स को कोई गन्दी या अभद्र चीज़ समझना नैतिक विकार का चिह्न है।...सेक्स की सहज प्रवृत्तियाँ स्वभावत: लज्जास्पद नहीं होतीं। ईसाई मत में जो क्रूरतापूर्ण कठोर रवैया अपनाया गया है उससे हिन्दू विचारधारा सहमत नहीं है" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 148)। ईसाई मत में यह कहा गया है कि "जिस सेक्स-कामना का लक्ष्य वंशवृद्धि न हो वह गन्दी और पापमय है, कि वह प्रेम नहीं वासना है। लगभग दो हज़ार वर्ष तक ईसाई धर्म ने सेक्स की हर उस अभिव्यक्ति को जिसे ईसाई धर्म का आशीर्वाद प्राप्त न

अनैतिक ठहराने की कोशिश की है और इसमें उसे बड़ी हद तक सफलता भी मिली है" (सोरेंसेन, पृष्ठ 395)।

इसके विपरीत हिन्दू सेक्स-जीवन को पवित्र मानता है (देखिये, राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 149)। भारत में "सेक्स-जीवन को जितना पवित्र और देवोचित स्थान दिया गया है उतना संसार के किसी और भाग में नहीं। हिन्दू स्मृतिकारों के मन में इस प्रकार का विचार कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ कि कोई भी चीज़ जो स्वाभाविक हो वह अरुचिकर और अश्लील हो सकती है; यह गुण उनकी सभी रचनाओं में व्याप्त है, परन्तु इसे उनके नैतिक सिद्धान्तों के भ्रष्ट होने का प्रमाण नहीं कहा जा सकता" (एलिस, 1905)।

वात्स्यायन ने 'काम'—सेक्स—शब्द का प्रयोग प्रेम के पर्याय के रूप में किया है और उनकी रचना कामसूत्र सेक्स की कला तथा प्रविधि के प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में नहीं बल्कि प्रेम की कला तथा उसके संस्कारों के प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में सुविख्यात है। यद्यपि उसका विषय काल्पनिक (रोमांटिक) प्रेम नहीं बल्कि सेक्स-प्रेम है, फिर भी वात्स्यायन ने उसे 'प्रेम-विज्ञान' कहा है, 'सेक्स-विज्ञान' नहीं। इस महत्त्वपूर्ण समाज-शास्त्रीय प्रामाणिक ग्रन्थ में सेक्स को भरपूर यथा स्फूर्तिमय जीवन का आवश्यक अंग माना गया है। वात्स्यायन के कामसूत्र के प्रसंग में क्लाफ़ लिखते हैं :

> वात्स्यायन सेक्स को हिंसा की सम्भावना से परिपूर्ण क्रिया मानते हैं, जिसमें प्रेम का रूप क्रोध में परिवर्तित हो सकता है। काम की मूल परिभाषा ज्ञानेन्द्रिय तथा उसके लक्ष्य के बीच विशेष प्रकार के सम्पर्क के रूप में भी की गयी है, और उसके फलस्वरूप जो आनन्द प्राप्त होता है वह काम है। काम की शिक्षा कामसूत्रों और अनुभव से प्राप्त होती है (क्लाफ़, 1964, पृष्ठ 10 और पृष्ठ 14)।

वात्स्यायन के अनुसार, उन मनुष्यों के लिए जो संयम का पालन करना चाहते हैं, सेक्स एक ऐसी कला और प्रविधि है जिसके सफल तथा सन्तोषप्रद क्रियान्वयन के लिए उसे सीखना पड़ता है और उसमें निपुणता प्राप्त करनी होती है। इस प्रसंग में पोमेराई कहते हैं :

> इस प्रकार सेक्स के सम्बन्ध में सत्य यह है कि यह मानव-जीवन का एक सबसे सशक्त तथा उपयोगी उपादान होता है। यह सौन्दर्य, विभिन्न कलाओं और समस्त सच्ची सृजनात्मकता का जन्मदाता है; ...यह स्त्रियों को पुरुषों के अन्दर, और पुरुषों को स्त्रियों के अन्दर उनके सर्वोत्कृष्ट गुणों को उद्दीप्त करने के लिए प्रेरित तथा आन्दोलित करता है; यह सामाजिक सहानुभूति तथा सहबद्धता को बढ़ावा देता है; और सबसे बढ़कर यह दीप्तिमान जीवन-उल्लास, अपार आनन्द तथा अवर्णनीय सुख उत्पन्न करता है (पोमेराई, 1936, पृष्ठ 79)।

मनुष्य में सेक्स शुद्धतः शरीर-क्रिया-सम्बन्धी मूल प्रवृत्ति नहीं होती, जैसी

देखने तक अनेक प्रकार की बदलती हुई अभिवृत्तियों से प्रमाणित हो चुका है। एक ही संस्कृति की परिधि के अन्दर समाज के विभिन्न हिस्सों के बीच और अलग-अलग व्यक्तियों के बीच भी अभिवृत्तियों में अन्तर हो सकता है क्योंकि वे अन्तः सांस्कृतिक तथा अन्तःसांस्कृतिक अन्तःक्रियाओं, रन्ध्रों तथा विलगनों से अलग-अलग ढंग से प्रभावित होते हैं। भारतीय प्रसंग में भी उसकी सांस्कृतिक जटिलता तथा प्रादेशिक विविधता के कारण सेक्स के प्रति विभिन्न अभिवृत्तियों में बहुत व्यापक अन्तर होना अनिवार्य है।

इस पुस्तक में लेखिका ने अपना ध्यान केवल हिन्दू शिक्षित श्रम जीवी महिलाओं पर केन्द्रित किया है। विभिन्न समयों पर वैज्ञानिक ढंग से जमा की गयी तुलनात्मक आधार-सामग्री से अभिवृत्ति-परिवर्तन की प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करने के अवसर अत्यन्त दुर्लभ हैं, और लगभग बिल्कुल हैं ही नहीं, विशेष रूप से सेक्स के सम्बन्ध में। इस अध्ययन में दस वर्ष के अन्तराल से दो विभिन्न समयों पर जमा की गयी आधार-सामग्री की बुनियाद पर सेक्स के प्रति शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई अभिवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। किसी व्यक्ति को कुरेदकर जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से सेक्स, अपने स्वरूप के कारण ही, एक अत्यन्त कठिन क्षेत्र है। इस अध्ययन में पाठकों को यह बताने का दावा नहीं किया गया है कि भारत में शिक्षित श्रमजीवी महिलाओं के बीच अपने सेक्स-आचरण के सम्बन्ध में क्या परिवर्तन हुए हैं। इसमें केवल इस बात का रहस्योद्घाटन किया गया है कि वे इस बुनियादी समस्या के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं के बारे में क्या सोचती रही हैं, उनकी आस्थाएँ क्या रही हैं या वे क्या महसूस करती रही हैं। इसलिए इस अध्याय में प्रस्तुत किये गये व्यक्ति-अध्ययन दृष्टान्तों के माध्यम से मुख्यतः सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का ही रहस्योद्घाटन करते हैं।

मीता और आरती के उदाहरण पहले वाले समूह के हैं और मोना तथा नीना के बाद वाले समूह के। परन्तु ललिता का उदाहरण पहले वाले और बाद वाले दोनों ही समूहों का है क्योंकि उसका इन्टरव्यू दोनों ही समयों पर लिया गया था।

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 24

चौंतीस-वर्षीया मीता एम०ए० पास थी और उस समय लड़कियों के एक कालेज में वाइस-प्रिन्सिपल के पद पर काम कर रही थी। उसकी आय 550 रु० प्रति माह थी। उसकी सूरत-शक्ल मामूली थी पर चेहरे पर आकर्षण था और व्यक्तित्व शान्त तथा सन्तुलित था। वह न बहुत बोलती थी न ही दूसरों में बहुत घुलती-मिलती थी, और उनका पहनावा तथा शृंगार बहुत सादा होता था। वह पिछले बारह वर्ष से अध्यापन का काम कर रही थी। उसके आचरण में शालीनता थी, दूसरों के साथ उसका व्यवहार बहुत शिष्ट तथा विनम्र था और चाल-ढाल बहुत सुखद थी। उसके विवाह को सात वर्ष हो चुके थे और उसके दो छोटे-छोटे बच्चे थे।

मीता अपने माता-पिता के दो बच्चों में बड़ी थी, उससे छोटा एक भाई था।

उसके पिता एक ख्यातिप्राप्त कालेज में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष थे। उनका दृष्टिकोण धार्मिक तथा दार्शनिक था, वह वहुत विद्वान् थे और अध्यापन के काम से उन्हें वहुत गहरी लगन थी। घर पर उनके विद्वतापूर्ण प्रवचनों और धर्म के दर्शन, गीता के नैतिक मूल्यों तथा प्राचीन भारत की सांस्कृतिक धरोहर के वारे में उनके सांस्कृतिक व्याख्यानों का मीता के विकासशील मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा था। मीता के मन में यह धारणा वन चुकी थी कि हिन्दू समाज की संस्कृति तथा नैतिक मूल्य सवसे अच्छे हैं, चिरस्थापित परम्पराओं के विरुद्ध आचरण करना हितकर नहीं है, और यह कि अपने माता-पिता का अनादर करना, जो अपनी सन्तान के एकमात्र संरक्षक तथा मार्गदर्शक होते हैं, धर्म के प्रतिकूल है।

उसकी माँ ठेठ पारम्परिक भारतीय पत्नी तथा माता थीं। उन्होंने कभी नियमित रूप से किसी स्कूल में शिक्षा नहीं पायी थी पर हिन्दी अच्छी तरह लिख-पढ़ लेती थीं। वह एक कट्टरपंथी परिवार की थीं। मीता चूंकि वहुत सुशील वच्ची थी, इसलिए उसके माता-पिता और पड़ोसी तथा अन्य सम्बन्धी भी उसको वहुत लाड़-प्यार करते थे। उसकी सवसे अच्छी मित्र उसकी स्कूल की एक सहपाठिनी थी, जिसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि उसकी जैसी ही थी और उसकी अनेक रुचियाँ तथा विचार भी उसके जैसे ही थे, और खेल में तथा काम में वही उसकी संगिनी थी। मीता को अपने भाई से वहुत लगाव था। दोनों वहुत स्नेहमय स्वभाव के थे और दोनों को एक-दूसरे से गहरा लगाव था। परन्तु अपने सामाजिक तथा नैतिक विचारों में परिवार वड़ा कट्टरपंथी था और इसलिए मीता को लड़कों से दूर रखा जाता था। मीता को न अपने भाई के मित्रों से मिलने दिया जाता था और न अपनी सबसे अच्छी सहेलियों के भाइयों से और उसे अकेले अपने भाई के साथ वाहर जाने तक की अनुमति नहीं थी। फलस्वरूप जव वह दस-वारह वर्ष की हुई तो लड़कों या मर्दों के सामने शरमा जाती थी और स्त्रियों तथा पुरुषों के मिले-जुले समूहों में जान-वूझकर उनसे अलग रहती थी।

उसने अपना वचपन और प्रारम्भिक किशोरावस्था एक छोटे-से कस्वे में व्यतीत की थी और उसके वाद का जीवन भी एक छोटे शहर में ही विताया था। चूंकि परिवार रूढ़िवादी था और उसके माता-पिता कट्टरपंथी थे, इसलिए उसने अपनी स्कूल की शिक्षा ठेठ पुराने ढंग की लड़कियों के स्कूल में और कालेज की शिक्षा भी लड़कियों की एक संस्था में पायी थी। अपनी स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के वाद वह निर्णायक क्षण आया जव उसके माता-पिता उसका विवाह कर देना चाहते थे और वह कालेज की शिक्षा प्राप्त करना चाहती थी। चूंकि उस समय उसके लिए कोई उचित वर नहीं मिला, इसलिए उसे वी० ए० पास कर लेने दिया गया। उसके माता-पिता उसके लिए उचित वर ढूंढने की कोशिश करते रहे। वी०ए० पास करने के वाद वह और आगे पढ़ना चाहती पर चूंकि उस शहर में इसके लिए कोई कालेज नहीं था और उसे किसी [illegible] संस्थान में जाने नहीं दिया गया, इसलिए वह वहुत निराश हुई। समझाने-वुझाने के वाद उसके पिता ने उसे उस कालेज में पढ़ने

जहाँ वह स्वयं पढ़ाते थे ताकि वह उस पर 'निगरानी रख सकें'।

शिक्षा पूरी करने के वाद कुछ समय तक वह घर पर वेकार वैठी रही क्योंकि उसके माता-पिता उसके लिए किसी उचित वर की खोज में थे। खाली समय काटने के लिए उसने लड़कियों के स्कूल में अध्यापिका की अस्थायी नौकरी कर ली। परन्तु उसने अनुभव किया कि अध्यापन एक उदात्त व्यवसाय है क्योंकि इसमें वह दूसरों को ज्ञान प्रदान कर सकती है और अनुभव प्राप्त कर सकती है। धीरे-धीरे वह अपने काम में ऐसी लीन हो गयी और स्वयं भी उसमें इतनी रुचि लेने लगी कि अध्यापन का मूल्य घर के काम-काज से उच्चतर है, जिसमें स्त्री की सारी दिलचस्पी और सारी शक्ति अपने पति तथा अपने ही वच्चों पर केन्द्रित रहती है जवकि अध्यापक सैकड़ों छोटे-छोटे वच्चों के कल्याण की देखभाल कर सकता है।

किशोरावस्था से ही उसे ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था थी और वह भगवान कृष्ण की उपासना करती थी हालाँकि वह पूजा-प्रार्थना के लिए मन्दिर में वहुत कम ही जाती थी। उसे अपने धर्म के वारे में वहुत जानकारी थी और वह अक्सर गीता तथा अन्य धार्मिक पुस्तकें पढ़ती रहती थी। वह स्वीकृत अन्धविश्वासों के प्रति आस्था रखती थी। वह अन्य सभी धर्मों को भी सम्मान की दृष्टि से देखती थी। उसे गीता के उन उपदेशों में वहुत सुख-शान्ति मिलती थी जो उसके स्नेहमय माता-पिता ने वच-पन से ही उसके मन में विठा दिये थे।

कुछ हद तक नौकरी उसने विवाह होने तक का खाली समय काटने के उद्देश्य से ही की थी, क्योंकि इतनी शिक्षा प्राप्त करने के वाद वह खाली नहीं वैठना चाहती थी। अपने स्कूल में उसके छात्र और उसके साथ की दूसरी अध्यापिकाएँ उसका सम्मान करती थीं और यद्यपि कठिन परिश्रम के कारण वह कभी-कभी थक जाती थी पर कुल मिलाकर वह सन्तुष्ट थी और यह अनुभव करती थी कि मान्यता प्राप्त करने की उसकी मूल प्रवृत्ति की तुष्टि हो रही है। अनेक वर्षों तक नौकरी करने के साथ-साथ उसका पद भी वढ़ता गया, और उसे अपने काम से इतनी गहरी लगन हो गयी कि वह दृढ़ रूप से यह अनुभव करने लगी कि विवाह हो जाने के वाद भी वह अपनी नौकरी नहीं छोड़ेगी।

उसके माता-पिता ने यह अनुभव करते हुए कि उन पर उसका विवाह कर देने की वहुत वड़ी ज़िम्मेदारी है, उसके लिए एक उचित वर खोज लिया। वह भी अध्या-पक था। चूँकि मीता को अपने माता-पिता पर पूरा भरोसा था, और वह सामाजिक परम्पराओं के प्रति संवेदनशील थी और वह इतनी भीरु भी थी कि अपने माता-पिता का दिल नहीं तोड़ सकती थी, इसलिए इस मामले में उसने उनके निर्णय का पालन करने का फैसला किया। उसने उनकी पसन्द के व्यक्ति के साथ विवाह कर लेने की सहर्ष अनुमति दे दी और शुद्धतः परम्परागत तथा कट्टरपंथी पद्धति के अनुसार विवाह कर लिया। चूँकि वह विवाह के वाद भी नौकरी करते रहने के लिए वहुत उत्सुक थी, और उसका पति भी उससे यही चाहता था, इसलिए वह लगातार काम करती रही। उसे

अपने व्यवसाय से भी लगन थी और अपने विवाहित तथा पारिवारिक जीवन से भी। परन्तु वह उन शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों का एक लाक्षणिक उदाहरण थी जो अपने व्यवसाय तथा अपने उच्च पद के बावजूद न तो अपनी भावी उन्नति के बारे में बहुत महत्त्वाकांक्षी होते हैं और न ही अपने विवाहित तथा पारिवारिक जीवन के बारे में बहुत उत्साहमय।

जिस समय उससे सेक्स तथा सेक्स-सम्बन्धों के विभिन्न पहलुओं के बारे में अपने मत तथा विचार व्यक्त करने को कहा जा रहा था तो उसे उत्तर देने में अत्यधिक संकोच हो रहा था और उसने कई बार यह टिप्पणी भी की कि सेक्स जैसे संकोच-जनक विषय के बारे में ऐसे खुले तथा साफ-साफ प्रश्न पूछना लेखिका के लिए बड़ी निर्लज्जता की बात है, जो उसकी राय में भारत में विचार-विनिमय के लिए वस्तुतः एक वर्जित विषय था। बड़े धीरज के साथ बहुत समझाने-बुझाने के बाद धीरे-धीरे वह सेक्स से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं तथा प्रश्नों के बारे में अपने उत्तर, टिप्पणियाँ तथा विचार सामने रखने लगी।

सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता के बारे में अपने विचार व्यक्त करते समय मीता ने बड़ी दृढ़तापूर्वक यह भावना व्यक्त की कि शहरी क्षेत्रों में, विशेष रूप से बड़े शहरों में, रहनेवाले नौजवान लड़के-लड़कियों को आमतौर पर दस वर्ष पहले की तुलना में अब एक-दूसरे के साथ रहने की कहीं अधिक स्वतन्त्रता है। उसकी राय में कुल मिलाकर यह बहुत अच्छी प्रवृत्ति नहीं थी और यह विभिन्न प्रकार के अनैतिक आचरणों का कारण बन सकती थी। वह इस बात की सर्वथा विरोधी थी कि नौजवान लड़के और लड़कियाँ बिना किसी रोक-टोक के एक-दूसरे से मिलें और खुलेआम सेक्स तक के बारे में बातें करें, क्योंकि उसका तर्क यह था कि लड़कों और लड़कियों को इस बात का खुला प्रलोभन नहीं दिया जाना चाहिए कि वे अपने शील की बलि देकर शरीर-क्रिया-सम्बन्धी अपनी कामनाओं की तृप्ति करें। उसने कहा, "मैं भिन्नलिंगी व्यक्तियों के बीच पूर्ण स्वतन्त्रता के पाश्चात्य विचार का दृढ़तापूर्वक विरोध करती हूँ, क्योंकि स्त्रियों तथा पुरुषों के बीच इस प्रकार की स्वतन्त्रता के फलस्वरूप हर प्रकार का सेक्स-आचरण होता है और यह मूलतः मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही दृष्टियों से हानिकर है। मैं दृढ़तापूर्वक यह अनुभव करती हूँ कि लड़कों या पुरुषों से मित्रता बढ़ाना किसी भी प्रकार उचित नहीं है क्योंकि भिन्नलिंगी व्यक्तियों के बीच गहरी मित्रता के फलस्वरूप विवाह से पहले और उसके बाद भी नाना प्रकार की पेचीदगियाँ पैदा हो जाती हैं।" आगे चलकर उसने कहा, "मैं इस बात को अच्छा नहीं समझती कि लड़कियाँ ऐसे वस्त्र पहनें जिनसे उनके शरीर का अधिकांश ऊपरी भाग, पेट और पीठ खुली रहे या जो सेक्स को उभारें या उजागर करें। मैं समझती हूँ कि इस प्रकार के वस्त्र पहनना और अपने शरीर की नुमाइश करना छिछोरी और भद्दी इससे अनावश्यक रूप से पुरुषों का ध्यान आकृष्ट होता है और उन कौतूहल जागृत होता है।"

यह प्रश्न पूछे जाने पर कि विवाह से पहले नौजवान लड़कियों और लड़कों को और विवाह के बाद पुरुषों तथा स्त्रियों को सेक्स-सम्बन्धी कितनी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए, उसने कहा, "खेल-कूद, वाद-विवाद तथा विचार-विनिमय के लिए समूहों के रूप में या सामाजिक अवसरों पर मिलने के अतिरिक्त मैं इस बात के बिलकुल पक्ष में नहीं हूँ कि कोई लड़का और लड़की या कोई पुरुष और स्त्री विवाह से पहले या विवाह के बाद एक-दूसरे से घुलें-मिलें, जब तक कि वे पति और पत्नी न हों। मैं समझती हूँ कि किसी भी नौजवान लड़की या किसी विवाहित स्त्री को अकेले किसी लड़के या पुरुष के साथ नहीं जाना चाहिए। वह लड़कों या पुरुषों के साथ बाहर उसी हालत में जा सकती है जब उसके माता-पिता, अभिभावक या पति उसके साथ हों। पूरे समूह के बीच तो एक-दूसरे का हाथ पकड़ने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन जब केवल दोनों अकेले हों तो यह उचित नहीं है। नौजवान लड़कियों और लड़कों के बीच चुम्बन या अन्य किसी प्रकार की शारीरिक घनिष्ठता सर्वथा अनुचित तथा अनैतिक है। परन्तु कभी-कभार केवल उन लोगों को माथे पर या गाल पर चुम्बन करने की अनुमति दी जा सकती है जिनकी मँगनी हो चुकी हो।"

उसका विश्वास था कि नौजवान लड़कियों तथा लड़कों या स्त्रियों तथा पुरुषों का खुलकर एक-दूसरे से घुलना-मिलना और उनके बीच शारीरिक घनिष्ठता उनकी शारीरिक कामनाओं अथवा उद्वेगों को उद्दीप्त करती है और इसके फलस्वरूप वे अनैतिक आचरण भी कर सकते हैं। उसका दृढ़ मत था कि शारीरिक घनिष्ठता केवल विवाह के सूत्र में परस्पर बँधे हुए लोगों के बीच होनी चाहिए और वह भी खुलेआम या दूसरों की उपस्थिति में नहीं। उसने यह भी बताया कि उसकी निकटतम सहेलियों के विचार भी इसी प्रकार के हैं।

फिर भी, वह यह महसूस करती थी कि माता-पिता को, विशेष रूप से बेटियों के मामले में माँ को और बेटों के मामले में बाप को, सेक्स के बारे में सब कुछ खुलकर बता देना चाहिए और उनका उचित मार्गदर्शन करना चाहिए। उसका दृढ़ विश्वास था कि सेक्स-वासनाओं के सम्बन्ध में कठोर संयम का—अपने आवेशों के दमन का—पालन किया जाना चाहिए।

इस प्रश्न के उत्तर में कि "क्या आप समझती हैं कि लड़कियों को भी उतनी ही सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए जितनी लड़कों को?" उसने कहा, "अगर लड़कों को यह स्वतन्त्रता दी भी जाये तब भी लड़कियों को यह स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि यदि स्वतन्त्रता का अर्थ है भिन्नलिंगी व्यक्तियों के साथ शारीरिक घनिष्ठता बढ़ाने की स्वतन्त्रता, तो एक स्त्री के लिए सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता के परिणाम बहुत गम्भीर हो सकते हैं जबकि पुरुष के लिए वे इतने गम्भीर नहीं हो सकते।" आगे चलकर उसने तर्क दिया, "हमारे समाज में अगर कोई लड़की या स्त्री किसी भिन्नलिंगी व्यक्ति के साथ शारीरिक घनिष्ठता पैदा कर लेती है तो बदनाम हो जाती है, और अपने को गिरा लेती है, जबकि इससे पुरुष की प्रतिष्ठा पर कोई विशेष आँच

नहीं आती।" उसे इस बात का तीव्र आभास था कि हमारे समाज में नैतिकता के इस दोहरे मानदण्ड का व्यापक रूप से प्रचलन है, और यह कि उसी प्रकार के अनैतिक कर्म के लिए स्त्री को अधिक पापाचारी समझा जाता है। उसने यह भी कहा कि इतनी शिक्षा और व्यवसायों में इतनी सफलता के बावजूद बेटियों को अब तक बोझ समझा जाता है और यह कि घर के भीतर और बाहर दोनों ही जगह पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच भेदभाव बरता जाता है।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि "आपकी राय में वह कौन-सी चीज़ है जो किसी लड़की को उस लड़के के साथ, जिससे वह प्रेम करती है, सेक्स-कर्म करने से रोकती है?" उसने कहा, "निजी तौर पर मैं यह समझती हूँ कि बचपन में तथा किशोरावस्था में उसके माता-पिता या अभिभावक उसके मन में जो नैतिक मानदण्ड तथा सिद्धान्त बिठा देते हैं वही किसी लड़की को पारस्परिक अथवा सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत तथा स्थापित प्रतिमानों की परिधि के बाहर सेक्स-कर्म करने से रोकते हैं। जनमत का या परिवार के नाम पर कलंक लगाने का या जिस व्यक्ति से वह प्रेम करती है उसकी दृष्टि में प्रतिष्ठा खो देने का भय भी उसे ऐसा करने से रोकता है।"

आगे चलकर उसने यह भी कहा कि उसकी राय में विवाह से पहले अपना शील बनाये रखना लड़की के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि अब भी इतने बड़े पैमाने पर तथाकथित आधुनिकीकरण के बावजूद, अच्छे परिवारों के लगभग सभी पुरुष अपने लिए वधू का चयन करते समय कौमार्य को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। उसका दृढ़ मत था कि यदि कोई लड़की विवाह करने में असमर्थ रहती है, या उसे किसी पुरुष से बहुत गहरा प्रेम है, या उसके साथ मँगनी हो चुकी है, तब भी उसके लिए विवाह से पहले उसके साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करना उचित नहीं है। उसका दृढ़ विश्वास था कि विवाहित स्त्री के लिए किसी भी स्थिति में यह उचित नहीं है कि वह अपने पति के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करे। वह समझती थी कि यद्यपि सामान्य स्थिति में किसी विवाहित पुरुष के लिए भी ऐसा करना उचित नहीं है, परन्तु कुछ परिस्थितियों में, जैसे यदि उसकी पत्नी उसके साथ सोने से इन्कार कर दे या वह उसके साथ विश्वासघात करे, तो उसका दूसरी स्त्रियों के साथ सेक्स-सम्बन्ध रखना उचित होगा।

इस प्रश्न के उत्तर में कि यदि उसे पता चल जाये कि उसके पति के [illegible] दूसरी स्त्री अथवा दूसरी स्त्रियों के साथ सेक्स-सम्बन्ध रहे हैं या हैं तो [illegible] सहन करेगी, उसने कहा कि वह इसे बर्दाश्त कर लेगी और अपनी [illegible] करेगी कि उससे इस प्रकार का आचरण छुड़वा दें। उसने [illegible] को सर्वथा निन्दनीय समझेगी जिसके विवाह से पहले [illegible] पर यदि किसी पुरुष के रह चुके हों तो उसे वह बर्दाश्त [illegible] कि यदि कोई स्त्री पैसे की तंगी के कारण अपने [illegible] तरस खाने या दंड दिये जाने के योग्य है परन्तु यदि [illegible]

या विवश कर दिये जाने पर गर्भवती हो जाती है तो उसे वह बर्दाश्त कर लेगी और उसके साथ उसे सहानुभूति होगी। वह यह भी समझती थी कि यदि अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण किसी की पत्नी दूसरे पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित कर लेती है तो पति को सहिष्णुता का परिचय देना चाहिए और उसे क्षमा कर देना चाहिए और उसे उस घटना को भूल जाने की कोशिश करनी चाहिए।

उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि सेक्स ऐसी पवित्र चीज है कि उसका अनुभव केवल एक पुरुष के साथ किया जाना चाहिए और वह पुरुष उस स्त्री का विधिवत् विवाहित पति होना चाहिए। मेरी सबसे अच्छी सहेलियाँ मुझसे हमेशा इस बात में सहमत रही हैं और मेरा हमेशा यह विश्वास रहा है कि विवाह से पहले सेक्स-अनुभव की कल्पना भी नहीं की जा सकती और यह कि किसी भी लड़की के लिए विवाह से पहले अपना कौमार्य नष्ट कर देना बहुत ग़लत है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हर स्त्री कोअपना कौमार्य, अपने पति के लिए सुरक्षित रखना चाहिए क्योंकि केवल उसी स्थिति में वह उसका सम्मान कर सकता है। कोई भी पुरुष ऐसी लड़की को सच्चे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता जो पुरुषों को इस प्रकार की मनमानी करने की छूट देती ,है वह पुरुष भी नहीं जिसे वह इस प्रकार की छूट देती है। मेरी राय में जो लोग विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्भोग करते हैं वे पशुओं जैसे होते हैं जिन्हें अपनी मूल प्रवृत्तियों अथवा आवेगों पर कोई आत्म-नियंत्रण नहीं होता।"

विवाह की परिधि के भीतर सेक्स के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उसने इन कथनों से सहमति प्रकट की कि "विवाह को सफल बनाने के लिए सन्तोषजनक सेक्स-सम्बन्धों का सर्वाधिक महत्त्व होता है", कि "सेक्स विवाह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है", और यह कि "पति और पत्नी दोनों ही को अपने सेक्स-सम्बन्धों में एक-दूसरे का ध्यान रखना चाहिए, उनमें परस्पर सहानुभूति होनी चाहिए और धैर्य से काम लेना चाहिए।" परन्तु वह इन कथनों से असहमत थी कि "विवाह की परिधि में पति तथा पत्नी दोनों ही बराबर सेक्स-तुष्टि प्राप्त कर सकते हैं", या यह कि "स्त्री की शारीरिक आवश्यकताएँ उतनी ही बड़ी होती हैं जितनी पुरुष की।" इस बात से तो वह कुछ हद तक सहमत थी कि विवाह की परिधि के भीतर सेक्स का आनन्द प्राप्त करने या सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने का पुरुषों तथा स्त्रियों को समान अधिकार है, पर इस बात से वह सर्वथा असहमत थी कि दोनों ही को विवाह से पहले या विवाह की परिधि से बाहर सेक्स का आनन्द उठाने का भी समान अधिकार है। वह इन वक्तव्यों से पूरी तरह सहमत थी कि जब सेक्स का सवाल आता है तो स्त्रियों के लिए एक मानदंड होता है और पुरुषों के लिए दूसरा, कि लड़कों के लिए विवाह से पहले सेक्स-अनुभव प्राप्त करने की अनुमति है पर लड़कियों के लिए नहीं, और यह कि विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध रखने की छूट पुरुषों के लिए है पर स्त्रियों के लिए नहीं।

अन्त में उसने इस बात से असहमति प्रकट की कि प्रत्येक व्यक्ति को इस बात

का निर्णय स्वयं करना चाहिए कि उसके लिए क्या उचित है और क्या अनुचित। उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि हमारे धर्म या नैतिक आचार-संहिता में, संस्कृति अथवा समाज में जिस बात को अनुचित और जिस बात को उचित ठहराया गया है, उसे हमें ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिए, और किसी को उचित तथा अनुचित की निजी व्याख्या नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अनुभवहीनता तथा अपरिपक्वता की कच्ची उम्र में लड़के और लड़कियाँ स्वयं इस बात का निर्णय नहीं कर सकतीं कि क्या उचित है और क्या अनुचित। उन्हें सेक्स सहित पूरे मानव-आचरण के औचित्य तथा अनौचित्य के बारे में ठीक से शिक्षा दी जानी चाहिए तथा उनका मार्गदर्शन किया जाना चाहिए, और उन्हें इस बात की आज़ादी नहीं दी जानी चाहिए कि वे जो भी उचित समझें करें। इस प्रकार की स्वतन्त्रता से उनके विचार और उलझ जायेंगे और उनके मन में द्वन्द्व उठ खड़े होंगे।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 11

ललिता 31 वर्ष की थी और बी०ए० पास थी। वह एक प्राइवेट कम्पनी में 700 रुपये मासिक पर नौकरी कर रही थी। वह पिछले सात साल से काम कर रही थी। सूरत-शक्ल में वह औसत से कुछ कम ही थी पर उसका शरीर छरहरा और सुडौल तथा क़द लम्बा था। उसकी कपड़ों की पसन्द बहुत अच्छी थी और वह अपनी केश-भूषा और वेश-भूषा हमेशा बहुत आकर्षक रखती थी। उसके बाल कटे हुए थे और वह सौन्दर्य-प्रसाधनों का जी खोलकर प्रयोग करती थी। उसे देखकर ऐसा लगता था कि जैसे उसे अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता तथा निजी हैसियत पर बहुत दंभ हो। वह बहुत चुस्त और बातूनी थी। इस अध्ययन के दोनों ही चरणों में उसका इन्टरव्यू लिया गया। दस वर्ष बाद यह देखा गया कि उसके विचारों में अधिक निडरता तथा स्पष्टवादिता आ गयी थी।

ललिता एक रूढ़िवादी परिवार की लड़की थी। उसके पिता किसी छोटे-से शहर में वकील थे। उनकी आमदनी अच्छी-खासी थी और बहुत-सी पुश्तैनी जमीन-जायदाद भी थी, जिसकी वह रिटायर होने के बाद देखभाल करते थे। उसके दो बड़ी बहनें और एक छोटा भाई था। उसकी माँ धार्मिक प्रवृत्ति की थीं और उनका सम्बन्ध किसी छोटे-से क़स्बे के कट्टरपंथी परिवार से था।

ललिता का बचपन बहुत अरुचिकर था, क्योंकि उसके माता-पिता उसकी बहुत उपेक्षा करते थे। क्योंकि जिस समय उसका जन्म हुआ था उस समय उसकी दो बड़ी बहनें पहले से मौजूद थीं इसलिए उसके माता-पिता उसके जन्म पर बहुत दुःखी हुए थे और उन्होंने इसका स्वागत नहीं किया था। वह जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, उसके माता-पिता ने कभी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया और न ही उसे उनका प्यार मिला, इस-लिए भी कि उसकी सूरत-शक्ल भी अच्छी नहीं थी। उसकी बड़ी बहनें भी उसके प्रति स्नेह नहीं रखती थीं। इसलिए बचपन में वह बहुत अकेलापन महसूस करती थी और

या विवश कर दिये जाने पर गर्भवती हो जाती है तो उसे वह बर्दाश्त कर लेगी और उसके साथ उसे सहानुभूति होगी। वह यह भी समझती थी कि यदि अपरिहार्य परि-स्थितियों के कारण किसी की पत्नी दूसरे पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित कर लेती है तो पति को सहिष्णुता का परिचय देना चाहिए और उसे क्षमा कर देना चाहिए और उसे उस घटना को भूल जाने की कोशिश करनी चाहिए।

उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि सेक्स ऐसी पवित्र चीज़ है कि उसका अनुभव केवल एक पुरुष के साथ किया जाना चाहिए और वह पुरुष उस स्त्री का विधिवत् विवाहित पति होना चाहिए। मेरी सबसे अच्छी सहेलियाँ मुझसे हमेशा इस बात में सहमत रही हैं और मेरा हमेशा यह विश्वास रहा है कि विवाह से पहले सेक्स-अनुभव की कल्पना भी नहीं की जा सकती और यह कि किसी भी लड़की के लिए विवाह से पहले अपना कौमार्य नष्ट कर देना बहुत ग़लत है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हर स्त्री कोअपना कौमार्य, अपने पति के लिए सुरक्षित रखना चाहिए क्योंकि केवल उसी स्थिति में वह उसका सम्मान कर सकता है। कोई भी पुरुष ऐसी लड़की को सच्चे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता जो पुरुषों को इस प्रकार की मनमानी करने की छूट देती ,है वह पुरुष भी नहीं जिसे वह इस प्रकार की छूट देती है। मेरी राय में जो लोग विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्भोग करते हैं वे पशुओं जैसे होते हैं जिन्हें अपनी मूल प्रवृत्तियों अथवा आवेशों पर कोई आत्म-नियंत्रण नहीं होता।"

विवाह की परिधि के भीतर सेक्स के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उसने इन कथनों से सहमति प्रकट की कि "विवाह को सफल बनाने के लिए सन्तोष-जनक सेक्स-सम्बन्धों का सर्वाधिक महत्त्व होता है", कि "सेक्स विवाह का एक महत्त्व-पूर्ण अंग है", और यह कि "पति और पत्नी दोनों ही को अपने सेक्स-सम्बन्धों में एक-दूसरे का ध्यान रखना चाहिए, उनमें परस्पर सहानुभूति होनी चाहिए और धैर्य से काम लेना चाहिए।" परन्तु वह इन कथनों से असहमत थी कि "विवाह की परिधि में पति तथा पत्नी दोनों ही बराबर सेक्स-तुष्टि प्राप्त कर सकते हैं", या यह कि "स्त्री की शारीरिक आवश्यकताएँ उतनी ही बड़ी होती हैं जितनी पुरुष की।" इस बात से तो वह कुछ हद तक सहमत थी कि विवाह की परिधि के भीतर सेक्स का आनन्द प्राप्त करने या सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने का पुरुषों तथा स्त्रियों को समान अधिकार है, पर इस बात से वह सर्वथा असहमत थी कि दोनों ही को विवाह से पहले या विवाह की परिधि से बाहर सेक्स का आनन्द उठाने का भी समान अधिकार है। वह इन वक्तव्यों से पूरी तरह सहमत थी कि जब सेक्स का सवाल आता है तो स्त्रियों के लिए एक मानदंड होता है और पुरुषों के लिए दूसरा, कि लड़कों के लिए विवाह से पहले सेक्स-अनुभव प्राप्त करने की अनुमति है पर लड़कियों के लिए नहीं, और यह कि विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध रखने की छूट पुरुषों के लिए है पर स्त्रियों के लिए नहीं।

अन्त में उसने इस बात से असहमति प्रकट की कि प्रत्येक व्यक्ति को इस बात

का निर्णय स्वयं करना चाहिए कि उसके लिए क्या उचित है और क्या अनुचित। उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि हमारे धर्म या नैतिक आचार-संहिता में, संस्कृति अथवा समाज में जिस बात को अनुचित और जिस बात को उचित ठहराया गया है, उसे हमें ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिए, और किसी को उचित तथा अनुचित की निजी व्याख्या नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अनुभवहीनता तथा अपरिपक्वता की कच्ची उम्र में लड़के और लड़कियाँ स्वयं इस बात का निर्णय नहीं कर सकतीं कि क्या उचित है और क्या अनुचित। उन्हें सेक्स सहित पूरे मानव-आचरण के औचित्य तथा अनौचित्य के बारे में ठीक से शिक्षा दी जानी चाहिए तथा उनका मार्गदर्शन किया जाना चाहिए, और उन्हें इस बात की आज़ादी नहीं दी जानी चाहिए कि वे जो भी उचित समझें करें। इस प्रकार की स्वतन्त्रता से उनके विचार और उलझ जायेंगे और उनके मन में द्वन्द्व उठ खड़े होंगे।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 11

ललिता 31 वर्ष की थी और बी०ए० पास थी। वह एक प्राइवेट कम्पनी में 700 रुपये मासिक पर नौकरी कर रही थी। वह पिछले सात साल से काम कर रही थी। सूरत-शक्ल में वह औसत से कुछ कम ही थी पर उसका शरीर छरहरा और सुडौल तथा क़द लम्बा था। उसकी कपड़ों की पसन्द बहुत अच्छी थी और वह अपनी केश-भूषा और वेश-भूषा हमेशा बहुत आकर्षक रखती थी। उसके बाल कटे हुए थे और वह सौन्दर्य-प्रसाधनों का जी खोलकर प्रयोग करती थी। उसे देखकर ऐसा लगता था कि जैसे उसे अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता तथा निजी हैसियत पर बहुत दंभ हो। वह बहुत चुस्त और बातूनी थी। इस अध्ययन के दोनों ही चरणों में उसका इन्टरव्यू लिया गया। दस वर्ष बाद यह देखा गया कि उसके विचारों में अधिक निडरता तथा स्पष्टवादिता आ गयी थी।

ललिता एक रूढ़िवादी परिवार की लड़की थी। उसके पिता किसी छोटे-से शहर में वकील थे। उनकी आमदनी अच्छी-खासी थी और बहुत-सी पुश्तैनी ज़मीन-जायदाद भी थी, जिसकी वह रिटायर होने के बाद देखभाल करते थे। उसके दो बड़ी बहनें और एक छोटा भाई था। उसकी माँ धार्मिक प्रवृत्ति की थीं और उनका सम्बन्ध किसी छोटे-से क़स्बे के कट्टरपंथी परिवार से था।

ललिता का बचपन बहुत अरुचिकर था, क्योंकि उसके माता-पिता उसकी बहुत उपेक्षा करते थे। क्योंकि जिस समय उसका जन्म हुआ था उस समय उसकी दो बड़ी बहनें पहले से मौजूद थीं इसलिए उसके माता-पिता उसके जन्म पर बहुत दुःखी हुए थे और उन्होंने इसका स्वागत नहीं किया था। वह जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, उसके माता-पिता ने कभी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया और न ही उसे उनका प्यार मिला, इसलिए भी कि उसकी सूरत-शक्ल भी अच्छी नहीं थी। उसकी बड़ी बहनें भी उसके प्रति स्नेह नहीं रखती थीं। इसलिए बचपन में वह बहुत अकेलापन महसूस करती थी और

अपने को तिरस्कृत समझती थी। उसे स्वयं भी अपने माता-पिता या बहनों से कोई लगाव नहीं था क्योंकि उनसे उसे कोई स्नेह नहीं मिला था और वे हर समय उसके व्यवहार की आलोचना करते रहते थे। उसके आचरण पर बहुत-से प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे, और इसकी प्रतिक्रिया के रूप में वह उनकी सत्ता की अवज्ञा करती थी और आज्ञाकारी या अच्छे आचरण वाली बच्ची बनने से इन्कार करती थी, जिसके फलस्वरूप वे उसके साथ और भी कठोरता तथा निर्ममता का व्यवहार करते थे।

अपने अत्यन्त रूढ़िवादी विचारों के कारण उसके माता-पिता ने अपनी बेटियों की गतिविधियों तथा उनके आचरण के बारे में अत्यन्त कठोर तथा अनुल्लंघनीय नियम बना रखे थे और उन्हें अपनी माँ को साथ लिये बिना अपनी सहेलियों के साथ भी बाहर जाने की इजाज़त नहीं थी। ज़ाहिर है कि लड़कों के साथ घुलने-मिलने की तो उनके परिवार में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उन पर आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्ध लगा रखे थे और इस पर बहुत अधिक बल दिया जाता था कि क्या चीज़ ग़लत है और क्या 'नहीं करना' है। इसके विपरीत उनके भाई को बिना रोक-टोक, घूमने-फिरने, मित्र बनाने और जो भी जी चाहे करने की पूरी छूट थी। अपने घर के उस तिरस्कारपूर्ण, कठोर तथा बन्द वातावरण में उसका दम घुटता था और वह अपने माता-पिता के इस भेद भावपूर्ण बर्ताव के विरुद्ध विद्रोह करती थी।

उसकी स्कूल की पढ़ाई उसी छोटे-से शहर में हुई थी जहाँ उसके पिता रहते थे। दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए स्कूल में उसका आचरण बहुत स्वच्छन्द रहता था और अपने अध्यापकों तथा अपने सहपाठियों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए वह कक्षा में अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए बहुत मेहनत करती थी। अपनी दूसरी बहनों की अपेक्षा वह अधिक तेज़ और होशियार थी, लेकिन जहाँ बहुत-से लोग जमा हों वहाँ जाने से वह कतराती थी, क्योंकि वह समझती थी कि चूँकि उसकी सूरत-शक्ल अच्छी नहीं है, इसलिए दूसरे लोग उसे पसन्द नहीं करेंगे। वह किताबें पढ़ने में व्यस्त रहती थी।

स्कूल की पढ़ाई पूरी होने पर उसकी बड़ी बहनों का विवाह हो गया। जब ललिता हाई स्कूल में पढ़ती थी तो उसे पता चला कि उसकी बहन की सास इसलिए उसे ताने देती थी और उससे नाराज़ रहती थी कि उसे घर-गृहस्थी का काम-काज करना ठीक से नहीं आता था। ललिता, जो शुरू से ही घर के काम-काज की ओर कोई ध्यान नहीं देती थी, डर गयी और उसने फैसला किया कि वह तब तक विवाह नहीं करेगी जब तक कि उसे कोई ऐसा आदमी न मिले जो अकेला रहता हो और घर का काम-काज करने के लिए नौकर रखने की सामर्थ्य रखता हो। उसने अपना आदर्श यह बना लिया था कि वह जितना भी सम्भव होगा पढ़ेगी और तब आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करेगी।

उसके दिमाग़ पर जिस एक और घटना का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा वह यह थी कि उसकी एक सहेली का, जो उम्र में उससे बहुत बड़ी थी, विवाह हो गया।

उसने ललिता को बताया कि उसका पति उससे बहुत प्रसन्न नहीं था और क्योंकि वह बहुत सुन्दर नहीं थी, इसलिए वह दूसरी स्त्रियों के पीछे भागता फिरता था। चूंकि ललिता भी इसीमनोग्रन्थि का शिकार थी, इसलिए उसने फैसला किया कि वह तब तक विवाह नहीं करेगी जब तक कि वह व्यक्ति जिससे वह विवाह करे, उससे प्यार न करता हो क्योंकि अन्यथा उसे यह डर था कि यदि किसी ने उससे विवाह कर भी लिया तो वह उससे प्रेम नहीं करेगा। बहुत छोटी उम्र में ही उसे यह दृढ़ आभास तथा विश्वास हो गया था कि अर्थपूर्ण मानव-सम्बन्ध एक भ्रम है और इसलिए जीवन में उसका लक्ष्य यथासम्भव अधिक से अधिक पैसा कमाना हो गया और इसी से उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने की उसकी इच्छा बलवती हुई।

दुर्भाग्यवश जिस समय वह स्कूल में पढ़ रही थी, उसकी माँ का देहान्त हो गया और इससे उसे बहुत आघात पहुँचा क्योंकि उसने सोचा कि शायद उससे पढ़ाई छोड़कर घर का काम-काज करने या विवाह कर लेने को कहा जाये। लेकिन किसी प्रकार उसे अपनी पढ़ाई पूरी कर लेने दी गयी। हाईस्कूल पास कर लेने के बाद उससे कहा गया कि वह घर पर बैठे जब तक कि उसका विवाह न हो जाये, पर उसने इस बात को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। चूँकि वहाँ लड़कियों का कोई कालेज नहीं था, इसलिए उसने आग्रह किया कि उसे कालेज की पढ़ाई पूरी करने के लिए किसी बड़े शहर भेज दिया जाये। उसने खाना-पीना छोड़कर अपने पिता के लिए एक समस्या खड़ी कर दी और शुरू में तो उन पर इसकी प्रतिक्रिया हिंसात्मक उपाय करने के रूप में हुई। परन्तु जब उनके मित्रों ने उसके साथ धीरज से काम लेने और उसे लड़कियों के किसी ऐसे कालेज में भेज देने की सलाह दी जहाँ औरतों के लिए अलग छात्रावास हो जहाँ वह अपनी पढ़ाई जारी रख सके, तो वह मान गये और उन्होंने उसे कालेज की पढ़ाई के लिए भेज दिया।

घर से दूर कालेज पहुँचकर उसे ऐसा लगा कि वह बड़ी हो गयी है और उस पर ज़िम्मेदारी आ गयी है। उस समय तक वह लगभग सत्रह वर्ष की हो चुकी थी और उसका डील-डौल बहुत आकर्षक निकल आया था और उसका चेहरा भी पहले से बहुत अच्छा लगने लगा था। लोग उसकी प्रशंसा और सराहना करने लगे और पहली बार उसे ऐसा लगा कि उसे सराहा जा रहा है और उसकी ओर ध्यान दिया जा रहा है। पहली बार अपने पिता की अत्यन्त कठोर निगरानी और नियंत्रणों से दूर पहुँचकर उसे ऐसा लगा कि वह जीवन का सुख भोगने के लिए स्वतन्त्र है। यद्यपि छात्रावास में भी अनेक प्रतिबन्ध थे पर वह चोरी-छुपे [illegible] अपनी सहेलियों के साथ, और आगे चलकर, कुछ वर्षों बाद, उनके भाइयों और यहाँ तक कि भाइयों के मित्रों के साथ भी बाहर जाने लगी।

चूंकि उसे लड़कों के साथ उठने-बैठने की आदत नहीं थी और अपने घर पर उसे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं थी, इसलिए उस[illegible] कि [illegible] महसूस किया कि घर से दूर होने का जितना लाभ हो सके [illegible]

भी केवल इसलिए मित्रता बढ़ाने लगी कि उसे सराहा जाये और उसकी प्रशंसा की जाये और वह आश्वस्त हो सके कि उसे भी पसन्द किया जा सकता है और उससे प्यार किया जा सकता है। उसने बताया, "लड़कों से मित्रता बढ़ाने और उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए मैं अपनी ओर से जान-बूझकर परिस्थितियाँ उत्पन्न करती थी, केवल यह जानने के लिए कि लड़कों से मिलने-जुलने में क्या बुराई है और अपने बारे में यह आश्वासन करने के लिए कि मैं उनको मित्र बनाने तथा उनसे प्रेम करने की क्षमता रखती हूँ और मैं इस योग्य हूँ कि वे मुझसे प्रेम करें, मुझे चाहें और मेरी कामना करें। और जीवन में पहली बार जीवित होने का सुख प्राप्त किया और यह अनुभव किया कि जीवन इस योग्य है कि उसे जिया जाये।" परन्तु चूँकि वह भी बहुत बड़ा शहर नहीं था, इसलिए लोगों का ध्यान उसकी गतिविधियों की ओर जाने लगा और वे उसे बदनाम करने लगे। वह इतनी दुःखी हुई कि उसने साल-भर तक अपनी पढ़ाई पर ध्यान केन्द्रित करने और बी० ए० पास करने के बाद किसी बहुत बड़े शहर में कोई नौकरी कर लेने का फैसला किया जहाँ उसे घूमने-फिरने की अधिक स्वतन्त्रता हो।

कालेज की शिक्षा से और बी० ए० पास कर लेने से उसकी सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा की तुष्टि हुई। बी० ए० पास करने के बाद उसने अपने पिता की अनुमति लिये बिना एक बड़े शहर में किसी दफ़्तर में नौकरी कर ली। इस पर वह आग-बबूला तो बहुत हुए, पर चुपचाप सन्तोष कर लेना पड़ा। हमेशा से उसकी यही इच्छा थी कि वह किसी दफ़्तर में मर्दों के बीच काम करे, न कि किसी ऐसे संगठन में जहाँ केवल स्त्रियाँ काम करती हों। उसने सोचा कि एक बार आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाने के बाद वह जो भी करना चाहेगी कर सकेगी और अपने पिता की पूरी तरह अवहेलना कर सकेगी और यह साबित करके दिखा देगी कि उनके विचार तथा धारणाएँ बिल्कुल दक़ियानूसी हैं।

नौकरी कर लेने और श्रमजीवी स्त्रियों के होस्टल में रहना शुरू कर देने के बाद, उसे अपने ऊपर और अधिक भरोसा हो गया था और उसके स्वभाव में अधिक स्वतन्त्रता आ गयी थी। पुरुष सहकर्मियों तथा बड़े अफ़सरों के साथ अपने व्यवहार में वह बिल्कुल निःसंकोच थी। नौकरी करने के लिए कुछ ही महीने बाद एक आदमी से उसकी काफी मित्रता हो गयी जो उसकी प्रशंसा करता था और उसे सराहता था और उसकी ओर बहुत ध्यान देता था। लेकिन जब उस आदमी ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की और ऐसा करने का आग्रह करने लगा तो ललिता को बड़ी झुँझलाहट हुई। उसने सोचा कि एक मित्र के रूप में तो वह ठीक है, परन्तु वह न तो इतना सुन्दर है, न इतना चुस्त-चालाक और न ही उसकी नौकरी इतनी अच्छी है कि वह उसका पति बन सके। इसके अतिरिक्त उसने फैसला कर लिया था कि अभी कुछ वर्षों तक विवाह नहीं करेगी और एक उन्मुक्त व्यक्ति की तरह सचमुच जीवन का आनन्द प्राप्त करेगी।

जहाँ वह काम करती थी और होस्टल में भी उसने ऐसी लड़कियों से मित्रता बढ़ायी थी जो बहुत उन्नत और पाश्चात्य ढंग के रहन-सहनवाले परिवारों की थीं, क्योंकि रहन-रहन, आचरण तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण के बारे में उनके विचार, अभिमत तथा उनकी अभिवृत्तियाँ उसे हमेशा से अच्छी लगती थीं। उनके साथ रहकर उसने बहुत-कुछ सीखा और अपने विचारों तथा अपने आचरण को उनके सांचे में ढाल लिया और उसे ऐसे लोगों से सम्बन्ध रखने पर बड़ा गर्व था जिन्हें वह पालन-पोषण तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि के दृष्टिकोण से अपने से श्रेष्ठतर समझती थी।

उसके कमरे में जो दूसरी लड़की रहती थी उसको वह अपनी सारी भावनाएं तथा अपने सारे अनुभव बता देती थी और संवेगात्मक दृष्टि से वह काफी बड़ी हद तक उस पर निर्भर रहने लगी थी। उसने अपने सहेली के जीवन को सुखी बनाने के लिए बहुत कुछ किया और उसकी जो देखभाल वह करती थी उससे उसे बहुत सन्तोष मिलता था। वे दोनों हमेशा साथ रहती थीं। दुर्भाग्यवश, पाँच वर्ष से अधिक समय तक उसके साथ बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहने के बाद उसकी सहेली का देहान्त हो गया। अपनी सहेली की मृत्यु के बाद ललिता बिल्कुल अकेली और बेसहारा हो गयी और पुनः विक्षिप्तों की तरह किसी के साथ के लिए लालायित रहने लगी, विशेष रूप से पुरुषों की संगत के लिए। उसके अचेतन मन में कहीं यह इच्छा दबी हुई थी कि उसे कोई ऐसा आदमी मिल जाये तो उसका अकेलापन दूर कर दे और जिस पर वह संवेगात्मक सुरक्षा तथा आजीवन साहचर्य के लिए पूरी तरह भरोसा कर सके। परन्तु सचेतन रूप से वह केवल कुछ आनन्द लूटने के लिए और अपने नितान्त अकेलेपन को दूर करने के लिए ही पुरुषों के साहचर्य की खोज में रहने लगी।

उसने कई लड़कों से मित्रता पैदा की पर किसी एक व्यक्ति के साथ बहुत समय तक मित्रता बनाये नहीं रखी, क्योंकि वह अनुभव करती थी कि अगर उसने ऐसा किया तो उस व्यक्ति को उसे अत्यधिक समय देना पड़ेगा और उसकी ओर बहुत ध्यान देना होगा। वह किसी एक व्यक्ति के साथ बँधकर नहीं रहना चाहती थी, बल्कि उसकी इच्छा यह होती थी कि जिस समय वह जहाँ जाना चाहे जा सके और जिसके साथ रहना चाहे रह सके। उसने संवेगात्मक रूप से किसी स्थायी सम्बन्ध के लिए अपने को वचनबद्ध न करने की कोशिश की और जान-बूझकर इस बात को प्रोत्साहन नहीं दिया कि आगे चलकर कोई अर्थपूर्ण सम्बन्ध विकसित हो।

उसके अध्ययन के दूसरे चरण के दौरान उससे सेक्स तथा सेक्स-सम्बन्धों के विभिन्न पहलुओं के प्रति उसके विचारों के बारे में जो प्रश्न पूछे गये उनका उत्तर देते हुए उसने स्वीकार किया कि जब से उसने काम करना, आधुनिक उन्नत परिवारों के लड़के-लड़कियों के बीच उठना-बैठना, एक ऐसे बड़े शहर में रहना शुरू किया है जहाँ किसी को इस बात की कोई चिन्ता नहीं होती कि कोई दूसरा आदमी क्या कर रहा है तब से उसके विचारों में काफी परिवर्तन हुआ है। उसने कहा कि धीरे-धीरे उसने अपने उन मित्रों के दृष्टिकोणों तथा विचारों को अपनाना शुरू कर दिया है जिनके

साथ उसका निरन्तर सम्पर्क रहता है।

इन प्रश्नों के उत्तर में कि "क्या आप इस बात का अनुमोदन करती हैं कि माता-पिता अपने बच्चों के साथ सेक्स के बारे में खुलकर बात करें?" और "क्या नौजवान लड़कों और लड़कियों को आपस में सेक्स के बारे में खुलेआम चर्चा करनी चाहिए?" उसने कहा कि वह पूरी तरह इन दोनों बातों का अनुमोदन करती है, हालाँकि दस वर्ष पहले केवल यह कहा गया था कि उसे इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। जब उससे पूछा गया, "क्या आप समझती हैं कि आज लड़कों और लड़कियों को दस वर्ष पहले की तुलना में अधिक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता है?" तो उसने कहा कि उन्हें 'कहीं अधिक' स्वतन्त्रता है, जबकि दस वर्ष पहले उसने केवल यह कहा था कि उन्हें 'थोड़ी अधिक' स्वतन्त्रता है। परन्तु उसने यह कहकर अपने वक्तव्यों की परिधि कुछ सीमित कर दी कि वह समझती है कि केवल बड़े-बड़े शहरी केन्द्रों में रहने, पढ़ने और काम करनेवाले प्रगतिशील अथवा पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवारों के लड़कों तथा लड़कियों को ही कहीं अधिक स्वतन्त्रता मिली है, जबकि छोटे क़स्बों या छोटे शहरों में रहने तथा काम करनेवाले लोगों के बीच सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता में केवल थोड़ी-सी वृद्धि हुई है।

उसने कहा, "लेकिन मैं समझती हूँ कि कुल मिलाकर यह बहुत अच्छी बात है कि उन्हें अधिक स्वतन्त्रता दी गयी है और मेरी राय है कि छोटे शहरों तथा क़स्बों में भी अधिक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हर व्यक्ति को इस बात का फ़ैसला करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि उसके लिए क्या उचित है और क्या अनुचित और उसे अपना जीवन जिस ढंग से वह सबसे अच्छा समझे व्यतीत करने देना चाहिए। माता-पिता की ओर से अत्यधिक हस्तक्षेप बच्चों के जीवन को अत्यन्त दुःखी तथा नीरस बना देता है।" उसका यह भी विश्वास था कि सेक्स के मामले में लड़कियों को भी वैसी ही स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए जैसी लड़कों को और इसके साथ ही उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने और हर प्रकार की नौकरी कर सकने के भी समान अवसर मिलने चाहिए। वह अनुभव करती थी कि लड़कियाँ और लड़के मनुष्य की हैसियत से समान होते हैं जिनकी क्षमताएँ तथा योग्यताएँ भी समान होती हैं और इसलिए उन्हें अपने जीवन का ढर्रा चुनने के लिए एक जैसी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।

विवाह के पहले और विवाह के बाद नौजवान लड़कों और लड़कियों को किस हद तक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए, इसके बारे में अपने विचारों की व्याख्या करते हुए उसने कहा कि वे समूह के रूप में या अकेले भी बाहर जा सकते हैं और एक-दूसरे का चुम्बन तथा आलिंगन कर सकते हैं, एक-दूसरे की जनेन्द्रियों को छू सकते हैं तथा उनसे खेल सकते हैं; वे एक-दूसरे के साथ सेक्स-संभोग भी कर सकते हैं लेकिन केवल उस स्थिति में जब दोनों इसके लिए तैयार हों और उन्हें दबाव डालकर या मजबूर करके इसके लिए राज़ी न किया गया हो। वह यह समझती थी

कि जिन दो लोगों की मँगनी हो चुकी हो और वे विवाह करनेवाले हों उन्हें एक-दूसरे का भरपूर चुम्बन करने और एक-दूसरे को चिपटाने-सहलाने और यहाँ तक कि मैथुन भी करने की अनुमति दी जा सकती है। उसने कहा, "सबसे अच्छा यह है कि विवाह से पहले जीवन का भरपूर आनन्द लिया जाये और मौज उड़ायी जाये, क्योंकि विवाह के बाद इतनी ज़िम्मेदारियों का बोझ कन्धों पर आ पड़ता है कि मौज उड़ाना सम्भव ही नहीं रहता। विवाह के बाद जीवन नीरस हो जाता है और कर्तव्यों तथा ज़िन्दा रहने की ठोस हक़ीक़तों में अधिक बँध जाता है।"

विवाहित पुरुषों तथा स्त्रियों के बारे में उसका विचार था कि यदि पति और पत्नी दोनों ही विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करने पर सहमत हों और ऐसा करके वे किसी को हानि न पहुँचा रहे हों, तो इसमें कोई भी हर्ज नहीं है और इसलिए इसकी अनुमति होनी चाहिए। फिर भी उसका यह विचार था कि दोनों को एक-दूसरे को धोखा नहीं देना चाहिए और किसी तीसरे व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचाना चाहिए। ऊपर बतायी गयी समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए दस वर्ष पहले उसने कहा था कि लड़कों और लड़कियों के चुम्बन, आलिंगन और एक-दूसरे के गुप्तांगों से थोड़ा-बहुत खेलने तक ही सीमित रहना चाहिए लेकिन इससे आगे नहीं बढ़ना चाहिए और यदि उनकी मँगनी भी हो चुकी हो तब भी विवाह से पहले सेक्स-संभोग नहीं करना चाहिए। विवाह की परिधि से बाहर सेक्स-सम्बन्धों के बारे में उसने कहा था कि विवाहित स्त्री तथा पुरुष के अपने विवाह की परिधि के बाहर भिन्नलिंगी मित्र तो हो सकते हैं और वे उनका चुम्बन तथा आलिंगन भी कर सकते हैं पर उन्हें यथासम्भव सेक्स-संभोग नहीं करना चाहिए। पहले वह यह महसूस करती थी कि विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-मैथुन बहुत उचित नहीं है, विशेष रूप से स्त्री के लिए। लेकिन दस वर्ष बाद उसने अपने विचार उस रूप में व्यक्त किये जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है और कहा कि "किसी भी चीज़ में कोई बुराई नहीं है और किसी भी सेक्स-क्रिया में कोई नैतिक दोष नहीं है यदि दोनों पक्ष हर काम सहर्ष तथा स्वेच्छापूर्वक करें और उन्हें किसी प्रकार विवश न किया गया हो और वे अपने-आपको या किसी अन्य व्यक्ति को कोई हानि न पहुँचा रहे हों।"

उसने बताया, "जब मैं स्कूल में पढ़ती थी तो मेरी माँ, रिश्ते की दूसरी औरतें और अन्य लोग हमेशा मुझसे यही कहते थे कि अगर कोई स्त्री पुरुषों को छूट देती है तो वे उसका अनुचित लाभ उठाते हैं और उसे मुख्यतः और पूर्णतः केवल भोग-विलास का साधन समझते हैं। मैं निश्चित रूप से यह समझती हूँ कि पुरुष स्त्रियों को मुख्यतः सेक्स तथा भोग-विलास का साधन समझते हैं, लेकिन अब मैं उसी तरह यह भी महसूस करती हूँ कि स्त्रियाँ भी इस बात का लाभ उठाती हैं कि पुरुष स्त्रियों को ऐसा समझते हैं। वे महसूस करती हैं कि चूँकि वे स्त्री हैं और सेक्स तथा विलास का साधन हैं, इसलिए वे पुरुषों को आकर्षित कर सकती हैं और उनसे अपना काम करा सकती हैं। कितनी बार ऐसा होता है कि स्त्रियाँ किसी लक्ष्य-विशेष को पूरा करने के

लिए, जैसे पति फाँसने, नौकरी हासिल करने या दफ़्तर के काम में तरक़्क़ी पाने के लिए, पुरुषों को छूट देती हैं और उन्हें मित्रता बढ़ाने तथा अपने निकट आने का अवसर देती हैं। इसलिए मैं समझती हूँ कि स्त्रियाँ तथा पुरुष दोनों ही एक-दूसरे का लाभ उठाते हैं, हालाँकि आमतौर पर पुरुषों का लक्ष्य मुख्यत: स्त्रियों से सुख प्राप्त करना या सेक्स-कामना को तुष्ट करना होता है।"

अन्य प्रश्नों के उत्तर देते हुए ललिता ने कहा कि उसे इस बात में कोई आपत्ति नहीं होगी कि कोई स्त्री या पुरुष विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करे और यदि किसी दबाव अथवा विवशता के बिना भी कोई स्त्री अवैध गर्भ धारण कर लेती है तो वह उसे बर्दाश्त कर लेगी और उसके साथ सहानुभूति करेगी। उसकी दृढ़ भावना थी कि "दूसरी स्त्री अथवा पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध रखना पति तथा पत्नी दोनों ही के लिए समान रूप से अच्छा या बुरा है और यदि उन दोनों में से कोई भी ऐसा करता है तो पति और पत्नी दोनों ही को इस बात को भूल जाना चाहिए और उसे क्षमा कर देना चाहिए। यदि मेरा भावी पति ऐसा करे तो कम से कम मैं तो उसे क्षमा कर दूँगी और निश्चित रूप से मैं अपने पति से भी यही आशा रखूँगी कि यदि मैं ऐसा करूँ तो वह भी मुझे क्षमा कर देगा और इस बात को भुला देगा।"

दस वर्ष बाद इस प्रश्न के उत्तर में "यदि आप विवाह से पहले या विवाह की परिधि से बाहर किसी से सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करें तो क्या आप अपराधी अनुभव करेंगी?" उसने कहा, "ऐसा है कि यदि मैं अपनी इच्छा से किसी ऐसे व्यक्ति के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करूँ जिससे मुझे प्रेम हो और जो स्वयं भी मेरे प्रति प्रेम की भावनाएँ रखता हो और सच्चे हृदय से उसकी कामना रखता हो तो मैं नहीं समझती कि मुझमें इसके बारे में कोई अपराध की भावना होगी। बहरहाल इसमें बुराई क्या है? यह तो पारस्परिक भावनाओं तथा कुछ भावों की केवल अन्तरंग अभिव्यक्ति है। लेकिन अगर बाद में मुझे पता चले कि मेरा अनुचित लाभ उठाया जा रहा था और मुझे केवल एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था, तो हो सकता है मैं अपराधी अनुभव करूँ और मुझे ऐसा करने पर खेद हो परन्तु यदि यह काम पारस्परिक भावनाओं के साथ किया जाये तो मैं नहीं समझती कि इसमें बुरा लगने की कोई बात है और मेरी अधिकांश सहेलियों का भी यही विश्वास है। इसमें सन्देह नहीं कि दस वर्ष पहले जब मैं अच्छी इन बातों को तरह जानती नहीं थी और मुझे इन की अधिक जानकारी नहीं थी, तो उस समय मैं निश्चित रूप से यह महसूस करती थी कि यदि विवाह से पहले या विवाह के बाद अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के साथ मेरा सेक्स-सम्बन्ध स्थापित हो गया तो मैं बहुत अपराधी अनुभव करूँगी। लेकिन अब दस वर्ष तक इस बड़े शहर में काम करने, हर तरह के लोगों से मिलने और विशेष रूप से उनसे विचारों का आदान-प्रदान करने और विभिन्न मित्रों के अनुभवों को सुनने के बाद, मैंने अपने विचार काफी बदल लिये हैं।" जब

उससे यही प्रश्न दस वर्ष पहले पूछा गया था तो उसने इन्टरव्यू लेनेवाले (लेखिका) पर इस प्रकार के अभद्र तथा अनैतिक प्रश्न पूछने पर निर्लज्जता तथा धृष्टता का आरोप लगाया था।

विवाह में सेक्स के वारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उसने कहा कि वह इन वक्तव्यों से सहमत है: "विवाह को सफल वनाने में सन्तोषजनक सेक्स-सम्बन्धों का सर्वाधिक महत्त्व है", "स्त्रियों के लिए सेक्स विवाह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और पति तथा पत्नी दोनों ही को सेक्स-सम्बन्धों में एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान रखना चाहिए, उन्हें एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए और एक-दूसरे के साथ धीरज से काम लेना चाहिए", "विवाह की परिधि के अन्दर पति और पत्नी दोनों ही समान रूप से सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं"; और "दोनों ही को विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स का आनन्द प्राप्त करने तथा सेक्स-तुष्टि का समान अधिकार है।"

इसकी व्याख्या करते हुए उसने कहा, "मैं किसी ऐसे व्यक्ति को अपने पति के रूप में नहीं चाहूँगी जो जब भी उसके मन में आये मेरे साथ सेक्स-संभोग करना चाहे, इस वात की चिन्ता किये विना कि उस समय मेरी मनोवृत्ति और इच्छा क्या है। और मुझे ऐसे जीवन-साथी से तो घृणा होगी जिसे केवल अपनी सेक्स-तुष्टि में दिलचस्पी हो और जो अचानक तथा वहुत जल्दी-जल्दी सेक्स-क्रिया पूरी कर ले। मैं चाहूँगी और उससे आशा रखूँगी कि वह हम दोनों ही की समान तुष्टि के लिए वड़े स्नेह तथा प्यार के साथ सेक्स-क्रीड़ा को एक पारस्परिक तथा संयुक्त प्रयास वनाने की कोशिश करे।" दस वर्ष पहले उसने कहा था कि उसका विचार था कि विवाह की परिधि में सेक्स मुख्यतः केवल पुरुष पक्ष की सन्तुष्टि के लिए होता है और स्त्री तो केवल वहुत निष्क्रिय पक्ष होती है जिससे केवल यह आशा की जाती है कि जब भी उसका पति चाहे वह उसे सन्तुष्ट कर दे। दस वर्ष वाद उसने अपना मत वदलते हुए कहा, "मैं समझती हूँ कि पति तथा पत्नी दोनों ही को समान अधिकार है कि वे एक-दूसरे से सेक्स-सन्तुष्टि प्राप्त करें।"

कुछ अन्य वक्तव्यों से, जैसे दोहरे मानदंडों और सेक्स का आनन्द प्राप्त करने के पुरुषों तथा स्त्रियों के समान अधिकार से सम्वन्धित वक्तव्यों से अपनी सहमति अथवा असहमति इंगित करते हुए उसने उन दो अवसरों पर जव उसके इन्टरव्यू लिये गये काफी भिन्न मत व्यक्त किये। दस वर्ष पहले उसने इन कथनों से सहमति व्यक्त की थी कि "विवाह से पहले सेक्स का अनुभव लड़कों के लिए तो ठीक है पर लड़कियों के लिए नहीं" और यह कि "विवाह की परिधि के वाहर सेक्स-अनुभव पुरुषों के लिए तो ठीक है पर स्त्रियों के लिए नहीं" और यह कि "जब सेक्स का सवाल आता है तो स्त्रियों के लिए एक मानदंड होता है और पुरुषों के लिए दूसरा"; और यह कि "यदि स्त्री और पुरुष दोनों ही विवाह से पहले या विवाह की परिधि के वाहर सेक्स-सम्वन्ध स्थापित करें तो पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक पापाचारी समझा जाता है।" दस

लिए, जैसे पति फाँसने, नौकरी हासिल करने या दफ़्तर के काम में तरक्क़ी पाने के लिए, पुरुषों को छूट देती हैं और उन्हें मित्रता बढ़ाने तथा अपने निकट आने का अवसर देती हैं। इसलिए मैं समझती हूँ कि स्त्रियाँ तथा पुरुष दोनों ही एक-दूसरे का लाभ उठाते हैं, हालाँकि आमतौर पर पुरुषों का लक्ष्य मुख्यतः स्त्रियों से सुख प्राप्त करना या सेक्स-कामना को तुष्ट करना होता है।"

अन्य प्रश्नों के उत्तर देते हुए ललिता ने कहा कि उसे इस बात में कोई आपत्ति नहीं होगी कि कोई स्त्री या पुरुष विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करे और यदि किसी दबाव अथवा विवशता के बिना भी कोई स्त्री अवैध गर्भ धारण कर लेती है तो वह उसे बर्दाश्त कर लेगी और उसके साथ सहानुभूति करेगी। उसकी दृढ़ भावना थी कि "दूसरी स्त्री अथवा पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध रखना पति तथा पत्नी दोनों ही के लिए समान रूप से अच्छा या बुरा है और यदि उन दोनों में से कोई भी ऐसा करता है तो पति और पत्नी दोनों ही को इस बात को भूल जाना चाहिए और उसे क्षमा कर देना चाहिए। यदि मेरा भावी पति ऐसा करे तो कम से कम मैं तो उसे क्षमा कर दूँगी और निश्चित रूप से मैं अपने पति से भी यही आशा रखूँगी कि यदि मैं ऐसा करूँ तो वह भी मुझे क्षमा कर देगा और इस बात को भुला देगा।"

दस वर्ष बाद इस प्रश्न के उत्तर में "यदि आप विवाह से पहले या विवाह की परिधि से बाहर किसी से सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करें तो क्या आप अपराधी अनुभव करेंगी?" उसने कहा, "ऐसा है कि यदि मैं अपनी इच्छा से किसी ऐसे व्यक्ति के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करूँ जिससे मुझे प्रेम हो और जो स्वयं भी मेरे प्रति प्रेम की भावनाएँ रखता हो और सच्चे हृदय से उसकी कामना रखता हो तो मैं नहीं समझती कि मुझमें इसके बारे में कोई अपराध की भावना होगी। बहरहाल इसमें बुराई क्या है? यह तो पारस्परिक भावनाओं तथा कुछ भावों की केवल अन्तरंग अभिव्यक्ति है। लेकिन अगर बाद में मुझे पता चले कि मेरा अनुचित लाभ उठाया जा रहा था और मुझे केवल एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था, तो हो सकता है मैं अपराधी अनुभव करूँ और मुझे ऐसा करने पर खेद हो परन्तु यदि यह काम पारस्परिक भावनाओं के साथ किया जाये तो मैं नहीं समझती कि इसमें बुरा लगने की कोई बात है और मेरी अधिकांश सहेलियों का भी यही विश्वास है। इसमें सन्देह नहीं कि दस वर्ष पहले जब मैं अच्छी इन बातों को तरह जानती नहीं थी और मुझे इन की अधिक जानकारी नहीं थी, तो उस समय मैं निश्चित रूप से यह महसूस करती थी कि यदि विवाह से पहले या विवाह के बाद अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के साथ मेरा सेक्स-सम्बन्ध स्थापित हो गया तो मैं बहुत अपराधी अनुभव करूँगी। लेकिन अब दस वर्ष तक इस बड़े शहर में काम करने, हर तरह के लोगों से मिलने और विशेष रूप से उनसे विचारों का आदान-प्रदान करने और विभिन्न मित्रों के अनुभवों को सुनने के बाद, मैंने अपने विचार काफी बदल लिये हैं।" जब

उससे यही प्रश्न दस वर्ष पहले पूछा गया था तो उसने इन्टरव्यू लेनेवाले (लेखिका) पर इस प्रकार के अभद्र तथा अनैतिक प्रश्न पूछने पर निर्लज्जता तथा धृष्टता का आरोप लगाया था।

विवाह में सेक्स के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उसने कहा कि वह इन वक्तव्यों से सहमत है: "विवाह को सफल बनाने में सन्तोषजनक सेक्स-सम्बन्धों का सर्वाधिक महत्त्व है", "स्त्रियों के लिए सेक्स विवाह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और पति तथा पत्नी दोनों ही को सेक्स-सम्बन्धों में एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान रखना चाहिए, उन्हें एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए और एक-दूसरे के साथ धीरज से काम लेना चाहिए", "विवाह की परिधि के अन्दर पति और पत्नी दोनों ही समान रूप से सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं"; और "दोनों ही को विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स का आनन्द प्राप्त करने तथा सेक्स-तुष्टि का समान अधिकार है।"

इसकी व्याख्या करते हुए उसने कहा, "मैं किसी ऐसे व्यक्ति को अपने पति के रूप में नहीं चाहूँगी जो जब भी उसके मन में आये मेरे साथ सेक्स-संभोग करना चाहे, इस बात की चिन्ता किये बिना कि उस समय मेरी मनोवृत्ति और इच्छा क्या है। और मुझे ऐसे जीवन-साथी से तो घृणा होगी जिसे केवल अपनी सेक्स-तुष्टि में दिलचस्पी हो और जो अचानक तथा बहुत जल्दी-जल्दी सेक्स-क्रिया पूरी कर ले। मैं चाहूँगी और उससे आशा रखूँगी कि वह हम दोनों ही की समान तुष्टि के लिए बड़े स्नेह तथा प्यार के साथ सेक्स-क्रीड़ा को एक पारस्परिक तथा संयुक्त प्रयास बनाने की कोशिश करे।" दस वर्ष पहले उसने कहा था कि उसका विचार था कि विवाह की परिधि में सेक्स मुख्यत: केवल पुरुष पक्ष की सन्तुष्टि के लिए होता है और स्त्री तो केवल बहुत निष्क्रिय पक्ष होती है जिससे केवल यह आशा की जाती है कि जब भी उसका पति चाहे वह उसे सन्तुष्ट कर दे। दस वर्ष बाद उसने अपना मत बदलते हुए कहा, "मैं समझती हूँ कि पति तथा पत्नी दोनों ही को समान अधिकार है कि वे एक-दूसरे से सेक्स-सन्तुष्टि प्राप्त करें।"

कुछ अन्य वक्तव्यों से, जैसे दोहरे मानदंडों और सेक्स का आनन्द प्राप्त करने के पुरुषों तथा स्त्रियों के समान अधिकार से सम्बन्धित वक्तव्यों से अपनी सहमति अथवा असहमति इंगित करते हुए उसने उन दो अवसरों पर जब उसके इन्टरव्यू लिये गये काफी भिन्न मत व्यक्त किये। दस वर्ष पहले उसने इन कथनों में [illegible] की थी कि "विवाह से पहले सेक्स का अनुभव लड़कों के लिए तो ठीक है [illegible] के लिए नहीं" और यह कि "विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-अनुभव [illegible] तो ठीक है पर स्त्रियों के लिए नहीं" और यह कि "जब सेक्स का [illegible] स्त्रियों के लिए एक मानदंड होता है और पुरुषों के लिए दूसरा; [illegible] स्त्री और पुरुष दोनों ही विवाह से पहले या विवाह की परिधि [illegible] स्थापित करें तो पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक [illegible]

वर्ष बाद, यद्यपि उसका विश्वास अब भी यह था कि समान आचरण तथा कृत्यों के लिए पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक बदनाम किया जाता है, पर उसकी दृढ़ भावना थी कि ऐसा नहीं होना चाहिए।" उसने ज़ोर देकर कहा, "यदि कोई काम स्त्री के लिए अवांछनीय है तो वह पुरुष के लिए भी उतना ही अवांछनीय होना चाहिए और यदि कोई काम या आचरण पुरुष के लिए उचित है तो स्त्री के लिए भी उसे उतना ही उचित होना चाहिए।"

दस वर्ष बाद भी हालांकि वह इस प्रस्थापना से पूरी तरह सहमत थी कि सेक्स-आचरण के सम्बन्ध में स्त्रियों के लिए एक मानदंड प्रचलित है और पुरुषों के लिए दूसरा, पर वह इस बात से सहमत नहीं थी कि विवाह से पहले और विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध पुरुषों के लिए तो ठीक है पर स्त्रियों के लिए नहीं। उसने कहा कि पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों ही को विवाह से पहले और विवाह की परिधि के बाहर भी सेक्स का आनन्द देने या सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने का समान अधिकार है; जबकि दस वर्ष पहले वह इस बात से सहमत नहीं थी। उसने अब इन कथनों से सहमति प्रकट करके अपने बाद वाले मत के पक्ष में तर्क दिया कि "स्त्री की शारीरिक आवश्यकता उतनी ही प्रबल होती है जितनी पुरुष की," कि "सेक्स एक ऐसा सुख है जिसे स्वयं उसके लिए ही प्राप्त करने की कोशिश की जानी चाहिए," कि "सेक्स तथा प्रेम प्रत्येक मनुष्य की दो अलग-अलग प्रकार की और भिन्न आवश्यकताएँ हैं" और यह कि "प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का निर्णय स्वयं करना चाहिए कि क्या उचित है और क्या अनुचित।" दस वर्ष पहले उसने ऊपर बताये गये वक्तव्यों में से अन्तिम वक्तव्य का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया था परन्तु पहले दो वक्तव्यों के बारे में उसकी कोई राय नहीं थी, वह उनसे न सहमत थी, न असहमत।

अन्त में ललिता ने कहा, "आप जानती हैं कि जब मैं छोटी-सी लड़की थी तब मेरे माता-पिता दिन-रात मेरे मन में यह बात बिठाते रहते थे कि हर वह चीज़ जिसका सम्बन्ध लड़कों तथा लड़कियों के एक-दूसरे से मिलने से हो वह ग़लत है, कि लड़कों और लड़कियों को एक-दूसरे से बिल्कुल अलग रखा जाना चाहिए और जब तक उनके माता-पिता साथ न हों तब तक उन्हें एक-दूसरे से मिलने नहीं दिया जाना चाहिए, कि सेक्स लज्जास्पद तथा गन्दी चीज़ है, और यह कि विवाह की परिधि को छोड़कर सेक्स से सम्बन्धित हर चीज पापमय है। और मेरे ऊपर इतनी निगरानी रखी जाती थी और इतने प्रतिबन्ध लगा रखे थे, और सो भी ऐसी हालत में जब उनके तथा मेरे बीच कभी स्नेहपूर्ण बातचीत तक नहीं होती थी, कि मैं हमेशा यही महसूस करती थी कि मुझे पता लगाना चाहिए कि हर उस बात में जिसे वे ग़लत कहते हैं, क्या बुराई है। मैं उनके आदेशों का उल्लंघन करना चाहती थी और स्वयं मालूम करना चाहती थी कि क्या उचित है और क्या अनुचित। मैं सोचती रहती थी कि आखिर उस सेक्स का अर्थ है क्या, जिसका मेरे माता-पिता हमेशा मुझे इतना आभास दिलाते रहते थे। लेकिन सौभाग्यवश मैं उनके चंगुल से निकल आयी और अब मैं पढ़े-लिखे, आधुनिक

तथा सुसंस्कृत लोगों के बीच उठती-बैठती हूँ, और मुझे लगता है कि सेक्स में कोई बुराई नहीं है। कभी-कभी मैंने इस निश्चित उद्देश्य से बहुत स्वच्छन्द जीवन भी व्यतीत किया है कि मेरे पिता को यह आभास हो सके कि अब मैं बिल्कुल स्वतन्त्र व्यक्ति हूँ, जो भी मैं करना चाहूँ वह करने के लिए स्वतन्त्र हूँ और जान-बूझकर ऐसे काम करूँ जिनके बारे में मेरे माता-पिता कहा करते थे कि वे पापमय तथा अनैतिक हैं।"

अन्त में: उसने यह भी कहा, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि हर व्यक्ति को जो भी वह पसन्द करे उसे करने का अधिकार है और यह कि हर व्यक्ति का निजी आचरण, जिसमें सेक्स-आचरण भी शामिल हैं, उसका निजी मामला है और किसी को भी उसमें हस्तक्षेप नहीं करने दिया जाना चाहिए।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 39

आरती एक सरकारी संगठन में 300 रु० मासिक वेतन पर काम कर रही थी। वह एम० ए० पास थी और उसकी उम्र 22 वर्ष की थी। वह पिछले तीन साल से काम कर रही थी। वह नौजवान और चुस्त-चालाक लड़की थी और उसका डील-डौल काफी आकर्षक था। वह बहुत सजग, शालीन तथा गम्भीर थी। उसके चेहरे की मुद्रा विचारशील थी और आँखों में उदासी झलकती थी। उसकी मनोवृत्ति स्नेह-मयी तथा स्वभाव सहयोगपूर्ण था।

उसके स्वर्गीय पिता इंजीनियर थे और किसी ऐसे शहर में काम करते थे जो न बहुत बड़ा था और न बहुत छोटा और उनकी आय औसत थी। उसके दो बड़े भाई और दो छोटी बहनें थीं। उसकी माँ सामाजिक कार्यकर्ताओं के एक सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत परिवार की थीं और उन्होंने स्वयं दो वर्ष तक कालेज में शिक्षा पायी थी। उसके माता-पिता, विशेष रूप से उसकी माँ, बहुत स्नेहमयी थीं और दूसरों की सुख-सुविधा का बहुत ध्यान रखती थीं, और हालाँकि उसके पिता के पास बच्चों के साथ बिताने के लिए बहुत समय नहीं होता था, फिर भी वह यथासम्भव उनके साथ अधिक से अधिक समय बिताते थे।

बचपन में और किशोरावस्था में आरती और उसके भाई-बहनों के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता था और उनका एक जैसा ध्यान रखा जाता था। चूँकि उसके पिता की आय बस इतनी थी कि मान-मर्यादा के साथ जीवन व्यतीत कर लें, इसलिए उनका रहन-सहन सुख-सुविधा का तो था पर ऐश-आराम की ज़िन्दगी नहीं थी। घर का वातावरण बहुत सुचारु था और सभी भाई-बहनों में आपस में बड़ी सद्-भावना और स्नेह था। और सभी मिलकर एक सुखी समूह थे। उनके माता-पिता ने उन्हें इतनी स्वतन्त्रता दे रखी थी कि वे अपनी मित्र-मण्डली के साथ बाहर जा भी सकते थे और उन्हें घर पर बुला भी सकते थे, परन्तु उन्हें किसी भिन्नलिंगी व्यक्ति के साथ अकेले बाहर जाने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। वे अपने माता-पिता के सामने विभिन्न रोचक विषयों पर चर्चा कर सकते थे और उन्हें उनके साथ

किसी भी विषय पर बात करने में संकोच नहीं होता था। यद्यपि बच्चों को पूजा-प्रार्थना करने के लिए कभी बाध्य नहीं किया गया, फिर भी आरती नियमित रूप से पूजा करती थी क्योंकि वह अपने माता-पिता को ऐसा ही करते हुए देखती थी।

आरती पढ़ाई में हमेशा बहुत अच्छी रही थी और उसके सभी भाई-बहनों को पढ़ाई से रुचि थी। जब वह स्कूल में पढ़ती थी तभी से उसकी आकांक्षा थी कि वह सरकारी नौकरी करके बड़ी अफ़सर बने। उसने एक अच्छे भारतीय स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी और उसकी अध्यापिकाएँ तथा सहपाठी सभी उसे पसन्द करते थे और उसकी सराहना करते थे। वह बहुत स्नेहमयी तथा सहृदय थी और उसकी सहेलियाँ बहुत अच्छी थीं।

स्कूल की शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद वह सहशिक्षा के एक कालेज में भरती हो गयी। यद्यपि उस पर कोई कठोर प्रतिबन्ध नहीं थे फिर भी वह स्वयं ही लड़कों से बहुत मेलजोल नहीं पैदा करती थी और कुछ अलग-अलग ही रहती थी। उसकी दो-तीन बहुत अच्छी सहेलियाँ थीं जिन्हें वह बहुत पसन्द करती थी। वे अपने भाइयों के साथ उसके घर आती थीं और आरती को उनके साथ बातें करने तथा विभिन्न विषयों पर चर्चा करने में बहुत आनन्द मिलता था। वह काफी भावुक थी और मन ही मन उन्हें सराहती रहती थी। वह अपने स्नेह का बहुत प्रदर्शन नहीं करती थी और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में बहुत शालीन थी। वे लोग भी उसके प्रति बहुत स्नेह तथा सम्मान की भावना रखते थे।

जिस वर्ष उसने बी० ए० पास किया उसी वर्ष थोड़े ही दिन की बीमारी के बाद उसके पिता स्वर्ग सिधार गये। उसे बहुत गहरा संवेगात्मक आघात पहुँचा क्योंकि उसे उनसे बहुत लगाव था और वह उनके बहुत अच्छे चरित्र और आचरण के लिए उनकी सराहना करती थी। चूँकि उसके बड़े भाई अभी तक कहीं ठीक से जम नहीं पाये थे और उसकी छोटी बहनों को कालेज की शिक्षा दिलानी थी, इसलिए उसने रुपये-पैसे से अपनी माँ तथा बहनों की सहायता करने के लिए नौकरी कर ली। और चूँकि वह और आगे पढ़ने के लिए भी उत्सुक थी, इसलिए उसने नौकरी करने के साथ-साथ एम० ए० भी पास कर लिया था।

नौकरी करने के दौरान उसे उसी दफ़्तर में काम करनेवाले एक अफ़सर से बहुत लगाव हो गया। वह उसके साथ बड़ी सहृदयता तथा स्नेह का व्यवहार करती थी और वह भी उसके प्रति बहुत स्नेह दिखाते थे तथा उसका बड़ा ध्यान रखते थे। वह उनके साथ घूमती-फिरती थी पर जब कभी रात को वह उनके साथ जाती थी तो आमतौर पर अपने भाइयों या बहनों को भी साथ ले लेती थी। उसे इस बात से बड़ा सन्तोष मिलता था कि वह अपनी छोटी बहनों को सहारा दे सकी थी और उन्होंने बी० ए० पास कर लिया था।

जब उससे सेक्स तथा सेक्स-सम्बन्धों के बारे में प्रश्न पूछे गये, तो उसे कुछ अटपटा-सा लगा और उनका उत्तर देने में उसे कुछ संकोच भी हुआ, परन्तु धीरे-धीरे

उसने अपने संकोच पर क़ाबू पा लिया और वह अपने विचार बहुत सोचसमझकर तथा दार्शनिक ढंग से प्रकट किए।

वह इस बात के पक्ष में थी कि माता-पिता अपने बच्चों से सेक्स की समस्याओं के बारे में चर्चा करें और उन्हें इसके बारे में उचित शिक्षा दें, लेकिन वह इस बात के पक्ष में नहीं थी कि माता-पिता तथा उनके बच्चों के बीच या नौजवान लड़कों तथा लड़कियों के बीच नंगे और भद्दे ढंग से सेक्स पर चर्चा हो। वह यह महसूस करती थी कि अब नौजवान लड़कों तथा लड़कियों को दस वर्ष पहले की तुलना में अधिक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता है। उसने कहा कि अत्यधिक स्वतन्त्रता केवल महानगरों में रहनेवाले पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवारों में ही पायी जाती है। उसका विश्वास था कि भिन्नलिंगी लोगों के बीच सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता अच्छी चीज़ है परन्तु वह उचित मार्ग-दर्शन तथा कुछ सीमाओं के भीतर ही दी जानी चाहिए। उसने कहा, "एक-दूसरे के साथ बाहर आने-जाने या एक-दूसरे से प्रेम-मिलन का आयोजन करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि इससे भिन्नलिंगी लोगों को जानने का अवसर मिलता है और यह उनको उनके साथ निर्वाह करना सिखाता है।"

अविवाहित लड़के-लड़कियों तथा विवाहित स्त्री-पुरुषों को विवाह की परिधि के बाहर किन सीमाओं तक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए, इसके बारे में उसने कहा कि वह इस बात का अनुमोदन करती है कि भिन्नलिंगी लोग सामूहिक रूप से और वैयक्तिक रूप से भी एक-दूसरे से मिलें लेकिन कुछ सीमाओं के भीतर। उसने बताया कि उन्हें शुरू से स्कूलों तथा कालेजों में ही एक-दूसरे से मिलने-जुलने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि आगे चलकर वे भिन्न लिंगी लोगों के बीच अटपटा-या उत्तेजित अनुभव न करें।

उसने कहा, "निजी तौर पर मैं समझती हूँ कि टहलने के लिए, बातचीत करने के लिए, पार्टियों के लिए बाहर जाने के अतिरिक्त और एक-दूसरे का हाथ पकड़ने, कभी-कभार चुम्बन और आलिंगन कर लेने के अलावा उनके बीच विवाह से पहले और विवाह के बाद भी गहरी घनिष्ठता अच्छी नहीं है, यदि वे पति और पत्नी हों तो बात और है।" उसने कहा कि जब वह कालेज में पढ़ती थी तब उसका विश्वास था कि विवाह से पहले और विवाह की परिधि के बाहर भिन्नलिंगी लोगों के बीच कभी-कभार चुम्बन तथा आलिंगन भी अनैतिक है। उसने यह भी बताया कि उन दिनों वह यह महसूस करती थी कि हर लड़की को लड़कों से अपनी दूरी बनाये रखना चाहिए और शारीरिक निकटता अथवा घनिष्ठता की अनुमति नहीं देनी चाहिए, क्योंकि चुम्बन के बाद आलिंगन की बारी आती है और आलिंगन में दोनों के गुप्तांग एक-दूसरे के बहुत निकट सम्पर्क में आते हैं, जिससे आवेश जागृत हो सकते हैं और फलस्वरूप सेक्स-सम्बन्ध भी स्थापित हो सकते हैं। और इसलिए उसका मत [illegible] ज्यादा अच्छा यही होगा कि स्नेह की अभिव्यक्ति के रूप में हाथ पकड़ने और [illegible] माथे या गालों पर हल्के-से चुम्बन की भी अनुमति न दी जाये।

आगे चलकर उसने कहा, "लेकिन अब इतने बड़े शहर में काम करते रहने, आधुनिक लोगों के बीच उठने-बैठने और लोगों को देखने तथा जानने के बाद मैं महसूस करती हूँ कि केवल स्नेह, सहृदयता तथा लगाव की अभिव्यक्ति के रूप में चुम्बन तथा आलिंगन में कोई बुराई नहीं है। कुछ भी हो, प्रेम कोई पारलौकिक चीज़ तो होता नहीं और कोई भी व्यक्ति जिससे प्रेम करता है वह निश्चय ही शारीरिक रूप से उसके निकट आना चाहता है और चुम्बन तथा आलिंगन केवल इस इच्छा की अभिव्यक्तियाँ हैं। विश्वास कीजिये, स्नेह-भरा चुम्बन तथा आलिंगन उन लोगों के लिए जो इसमें भाग लेते हैं, सचमुच बहुत ही सुन्दर, प्रेममय तथा अत्यन्त सन्तोषप्रद होता है। थपकना भी हार्दिक पसन्द या सच्चे प्रेम की शारीरिक अभिव्यक्ति हो सकती है; यह सोचना केवल मूर्खतापूर्ण तथा पुराणपंथी पूर्वग्रह है कि ऐसा करना हमेशा अनैतिक तथा ग़लत होता है। परन्तु चुम्बन तथा आलिंगन के अतिरिक्त अन्य घनिष्ठताओं से बचना चाहिए, क्योंकि उनसे समस्याएँ उठ खड़ी हो सकती हैं और बहुत ही निराशाजनक सिद्ध हो सकती हैं।"

अपनी बात जारी रखते हुए उसने कहा कि उसकी राय में यदि दो व्यक्ति एक-दूसरे से प्रेम करते हों और उनकी मँगनी हो चुकी हो तो उनके बीच आवेशपूर्ण चुम्बन, एक दूसरे को गले लगाने, थपकने और जननेन्द्रियों को छूने तथा सहलाने जैसी निकट शारीरिक घनिष्ठताओं में भी कोई हर्ज नहीं है, लेकिन जहाँ तक हो सके सेक्स-सम्भोग केवल पति के साथ ही किया जाना चाहिए। उसने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि "विवाह से पहले सेक्स-सम्भोग अनुचित है, पर विवाह से पहले अपने मंगेतर के साथ या किसी ऐसे व्यक्ति के साथ जिससे हार्दिक तथा सच्चा प्रेम हो सेक्स का थोड़ा-बहुत अनुभव अच्छा है।" आगे चलकर उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि विवाह से पहले मैथुन उन जोड़ों के लिए उचित हो सकता है जिन्हें पूरा निश्चय हो कि आगे चलकर उनका विवाह हो ही जायेगा। परन्तु मेरी राय में ऐसे लोगों के बीच मैथुन नैतिक रूप से अनुचित है, जिनका विवाह करने का कोई इरादा न हो।"

उसने कहा कि एक और स्थिति, जिसमें एक अविवाहित लड़की का सेक्स-सम्बन्ध स्थापित कर लेना आंशिक रूप से उचित ठहराया जा सकता है, वह है जिसमें किसी संयोगवश या परिस्थितियों के कारण उसे विवाह करने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ रहा हो और उसके तथा उसके माता-पिता के पूरी कोशिश कर लेने पर भी कोई उससे विवाह करने को तैयार न हो रहा हो। लेकिन इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि ऐसा केवल एक व्यक्ति के साथ, वह विवाहित हो या अविवाहित, किया जाना चाहिए जो उसके प्रति वफ़ादार हो और उसे सचमुच उसके कल्याण की चिन्ता हो। उसकी राय में ऐसी ही परिस्थितियों में अविवाहित पुरुष का भी सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करना उचित ठहराया जा सकता है और वह ऐसा कर सकता है यदि वह निष्ठावान हो और व्यभिचारी न हो।

इस प्रश्न के उत्तर में कि "कोई लड़की उस व्यक्ति के साथ जिससे वह प्रेम

करती हो, सेक्स-कर्म क्यों न करे ?" उसने कहा, "स्वयं अपने सिद्धान्तों तथा नैतिक मानदण्डों के कारण और उसकी दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा तथा अपना आत्म-सम्मान खो देने के भय के कारण और स्वयं अपने तथा परिवार के नाम पर कलंक लगा देने के भय के कारण भी।" आगे चलकर अन्य प्रश्नों का उत्तर देते हुए उसने कहा कि वह इन्द्रियदमन अर्थात् संयम में बहुत विश्वास रखती है, विशेष रूप से सेक्स का आनन्द प्राप्त करने के मामले में। लेकिन उसकी राय थी कि लड़कियों को लड़कों जैसी सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि उसका तर्क था, आधुनिक समाज में भी लड़की की नेकनामी का बहुत महत्त्व है और यह कि जो लड़की या स्त्री सेक्स के मामले में बहुत स्वच्छन्द हो और पुरुषों से बहुत घनिष्ठता रखती हो और उनके साथ उसके शारीरिक सम्बन्ध भी रह चुके हों तो आमतौर पर पुरुष उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते। उसने यह भी बताया कि किसी पुरुष के साथ अत्यधिक सेक्स-सम्बन्धी घनिष्ठताओं का परिणाम उस पुरुष की अपेक्षा लड़की के लिए कहीं अधिक गम्भीर हो सकता है।

वह इन कथनों से सहमत नहीं थी, "विवाह से पहले सेक्स का अनुभव लड़कों के लिए ठीक है पर लड़कियों के लिए नहीं" और "विवाह की परिधि के बाहर सेक्स का अनुभव पुरुषों के लिए ठीक है पर स्त्रियों के लिए नहीं।" उसने कहा कि विवाह से पहले सेक्स का अनुभव न लड़कों के लिए ठीक है न लड़कियों के लिए और विवाह के बाद भी विवाह के सूत्र में साथ बँधे हुए दूसरे पक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति के साथ भी नहीं। "लेकिन", उसने कहा, "हमारी सामाजिक परिस्थितियों में विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर किसी लड़के या पुरुष का सेक्स-सम्बन्ध स्थापित कर लेना तो बर्दाश्त कर लिया जाता है और इसलिए वह ठीक हो सकता है, परन्तु किसी लड़की के ऐसा करने को चूँकि निन्दा की दृष्टि से देखा जाता है, इसलिए वह ठीक नहीं है।"

वह इस निष्कर्ष से पूरी तरह सहमत थी कि जब सेक्स का सवाल आता है तो स्त्रियों के लिए एक मानदण्ड होता है और पुरुषों के लिए दूसरा, और यह कि यदि स्त्री और पुरुष दोनों ही विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करें तो लोग अब भी स्त्री को पुरुष की अपेक्षा अधिक दुराचारी समझते हैं। उसका यह निश्चित विश्वास था कि विवाह के समय लड़की को अक्षत-योनि होना चाहिए क्योंकि सबसे पहले उसके पति को ही उसके साथ सम्भोग करना चाहिए और यदि उसे यह पता चल जाये कि वह अक्षतयोनि नहीं है तो वह उसे कभी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखेगा। उसका विचार था कि अब भी अधिकांश लोग ऐसी लड़की से विवाह करना चाहते हैं जो अक्षतयोनि हो। उसने कुछ उद्विग्न होकर कहा, "लेकिन मेरा यह भी दृढ़ विश्वास है कि विवाह के समय लड़के को भी अक्षतवीर्य होना चाहिए। मैं समझती हूँ कि लड़की या लड़के दोनों के लिए, पर लड़की के लिए और भी अधिक हद तक, जीवन-साथी चुनते समय एक महत्त्वपूर्ण गारंटी यह होनी चाहिए कि विवाह से पहले किसी के साथ उसके सेक्स-सम्बन्ध न रहे हों।"

अपनी बात जारी रखते हुए उसने कहा, "उन्मुक्त भाव से मिलने-जुलने के इस वर्तमान युग में किसी भी लड़की के लिए अपने कौमार्य की रक्षा करना पहले की अपेक्षा अधिक कठिन हो गया है, और अब मैं यह महसूस करती हूँ कि इसमें कोई इतनी बड़ी बुराई भी नहीं है, हालाँकि जब मैं स्वयं किशोरावस्था में थी तो मैं इसे बहुत अनैतिक समझा करती थी। आजकल पुरुष भी लड़की के अक्षतयोनि होने पर इतना आग्रह नहीं करते जितना पहले करते थे। इसका संकेत इस बात में मिलता है कि अब वे तलाक़शुदा या विधवा स्त्री के साथ भी विवाह करने को तैयार हो जाते हैं, और कुछ लोग तो उन्हें बेहतर समझते हैं क्योंकि वे अनुभवी होती हैं।"

अन्य प्रश्नों के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए आरती ने कहा कि विवाह से पहले यदि किसी स्त्री के सेक्स-सम्बन्ध रह चुके हों तो वह उसे क्षमा कर देगी और यदि किसी पुरुष के सेक्स-सम्बन्ध रह चुके हों तो उसे उसमें बहुत अधिक आपत्ति नहीं होगी, बशर्ते जिस व्यक्ति के साथ, वह स्त्री या वह पुरुष इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करे उससे उसे सच्चा और पारस्परिक प्रेम हो। उसने बहुत गम्भीर तथा आवेशपूर्ण ढंग से कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि लोगों में इस प्रकार के पूर्व-निर्धारित विचारों तथा विश्वासों की जड़ें इतनी गहरी क्यों जमी हुई हैं कि विवाह से पहले के सेक्स-सम्बन्ध या सम्भोग हमेशा ही स्नेह तथा कोमल भावनाओं से रहित वासना, स्वार्थपूर्ति अथवा व्यभिचार-वृत्ति का परिणाम होते हैं? न जाने क्यों इन लोगों का इतना दृढ़ विश्वास होता है कि यह काम मानसिक अथवा संवेगात्मक सन्तुष्टि के लिए नहीं, बल्कि केवल शारीरिक सन्तुष्टि के लिए ही किया जा सकता है? वे यह क्यों नहीं समझते कि यह काम उन लोगों के बीच भी हो सकता है जिन्हें एक-दूसरे से गहरा प्रेम हो और यह कि यह प्रेम की अभिव्यक्ति है? मैं समझती हूँ कि समस्त सच्ची प्रेम-लीला का लक्ष्य उस पारस्परिक संवेगात्मक प्रेम को व्यक्त करना होता है जो उनमें एक-दूसरे के प्रति होता है। अलबत्ता, शुद्धतः शारीरिक विलास के लिए जो सेक्स-सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं वे उचित नहीं हैं।"

उसने कहा कि यदि कोई लड़की परिस्थितियों से विवश होकर या अज्ञानवश अवैध गर्भ धारण कर लेती है तो वह उसे क्षमा कर देगी। परन्तु उसका यह विचार था कि यदि कोई स्त्री आर्थिक दबाव के कारण अपना सदाचार का जीवन त्याग देती है तो वह दया या दण्ड की पात्र है।

वह इन कथनों से सर्वथा असहमत थी कि "सेक्स गन्दी और लज्जास्पद चीज़ है" और यह कि "सेक्स एक ऐसा सुख है जिसे स्वयं उसके लिए ही प्राप्त करने की कोशिश की जानी चाहिए।" इस प्रस्थापना से वह न सहमत थी न असहमत कि स्त्री की शारीरिक आवश्यकता भी उतनी ही प्रबल होती है जितनी पुरुष की और उसने कहा कि यद्यपि वह इस बात को स्वीकार करती है कि स्त्री की भी अपनी शारीरिक आवश्यकता होती है पर वह यह नहीं मानती थी कि वह उतनी ही प्रबल होती है जितनी पुरुष की। इस कथन से वह पूरी तरह सहमत थी कि सेक्स

और प्रेम, हर व्यक्ति की एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न तथा अलग-अलग आवश्यकताएँ होती हैं और उसने कहा, "हो सकता है, कुछ लोगों में प्रेम की आवश्यकता बहुत प्रमुख हो और सेक्स की आवश्यकता केवल उस प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में मौजूद हो, जबकि कुछ लोगों में सेक्स की आवश्यकता प्रभुत्वशाली हो और प्रेम की आवश्यकता इस की तुलना में केवल गौण महत्त्व रखती हो।"

विवाह में सेक्स के स्थान के बारे में वह इस बात से सहमत थी कि सेक्स विवाह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और यह कि विवाह को सफल बनाने के लिए सन्तोषजनक सेक्स-सम्बन्धों का महत्त्व होता है। फिर भी वह ऐसा नहीं समझती थी उसका सर्वाधिक महत्त्व होता है और उसकी धारणा थी विवाह को सफल बनाने के लिए कुछ और बातों का भी इतना ही अधिक महत्त्व होता है—जैसे पारस्परिक प्रेम, एक-दूसरे को समझना, एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान रखना, सहनशीलता, सहिष्णुता और धैर्य। वह इन बातों से तो सहमत थी कि पति और पत्नी दोनों ही विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने की समान क्षमता रखते हैं, कि विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स का आनन्द लेने तथा सेक्स का सन्तोष प्राप्त करने का पति या पत्नी दोनों को समान अधिकार हैं और यह कि पति तथा पत्नी को सेक्स-सम्बन्धों में एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान रखना चाहिए, उनमें एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए और उन्हें धीरज से काम लेना चाहिए, परन्तु इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि उसका यह भी विश्वास था कि अपने पति के साथ सेक्स-व्यवहार में पत्नी को इन गुणों का परिचय अधिक हद तक देना चाहिए।

उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि विवाहित दम्पत्ति के बीच सेक्स के मामले में संकोच सर्वथा मिथ्या संकोच होता है। विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स को अधिकतम तुष्टिदायक तथा सन्तोषप्रद अनुभव बनाने के लिए उन्हें सेक्स के क्षेत्र में अपनी रुचियाँ तथा अरुचियाँ एक-दूसरे को बता देने में काफी स्पष्टवादी होना चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यद्यपि सेक्स-क्रिया का सम्बन्ध मूल प्रवृत्ति से होता है, फिर भी प्रणय एक कला बन सकता है और अधिक सन्तोषप्रद हो सकता है यदि उसे जानकार स्रोतों से उचित ढंग से सीखा जाये।" अपनी बात जारी रखते हुए उसने कहा कि उसका विश्वास है कि विवाह का आधार शारीरिक सम्बन्ध तथा पारस्परिक आनन्द के महत्त्व को समझना है और जो भी स्त्री या पुरुष इस लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश नहीं करता, वह नैतिक दृष्टिकोण से उचित या न्यायसंगत नहीं है। उसने जोर देकर कहा, "विद्वान् इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि सेक्स का उद्देश्य केवल वंश-वृद्धि नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो मनुष्य पूरे वर्ष-भर संसर्ग के लिए तैयार न रहता और वास्तविक सेक्स-क्रिया से पहले और उसके बाद इतनी अधिक कोमलता तथा हार्दिकता की आवश्यकता तथा इच्छा न होती।"

एक प्रश्न के उत्तर में उसने कहा, "मेरी राय में किसी भी विवाहित पुरुष तथा स्त्री के लिए, पुरुष के लिए अधिक, विवाह के बन्धन में बँधे हुए अपने साथी के अति-

परिणति विवाह के रूप में न भी हो तो उसमें क्या हर्ज है ? किसी भी स्तर पर सच्चे सम्बन्ध के अनुभव से, जिसमें शारीरिक सम्बन्ध भी शामिल हैं, व्यक्ति को स्वयं अपने को समझने और दूसरों के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार के सम्बन्ध में इस बात का बहुत महत्त्व नहीं होता कि सेक्स-सम्बन्ध स्थापित होता है या नहीं। जिस चीज़ का महत्त्व होता है वह है उस सम्बन्ध की उत्कृष्टता तथा उसकी गहराई।"

यह प्रश्न पूछे जाने पर कि "यदि विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर आप किसी के साथ सेक्स-अनुभव प्राप्त करें तो क्या आप अपराधी अनुभव करेंगी ?" उसे बहुत अटपटा-सा लगा और वह कुछ झुंझला भी पड़ी परन्तु जब उसे विश्वास हो गया कि लेखिका का अभिप्राय यह कदापि नहीं था कि वह उसके चरित्र पर सन्देह करे तो उसने उत्तर दिया, "मैं निश्चित रूप से अपराधी अनुभव करूँगी परन्तु यदि यह किसी ऐसे आदमी के साथ हो जिससे मुझे सच्चा प्रेम हो और जो सचमुच मेरा ध्यान रखता हो और उसे मेरी आवश्यकता हो तो मुझे बहुत अधिक ग्लानि नहीं होगी। परन्तु मुझे पूरा भरोसा है कि यदि मुझे किसी पुरुष से गहरा प्रेम हो भी तो मैं अपनी हार्दिक भावना को चुम्बन, आलिंगन के रूप में और उसके साथ रहकर व्यक्त करूँगी और उसके साथ सेक्स-सम्भोग नहीं करूँगी। क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्रेम तो अनेक लोगों को दिया जा सकता है और कई लोगों के साथ बाँटा जा सकता है लेकिन सेक्स-जीवन केवल एक के साथ बिताया जा सकता है, अन्यथा उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जायेगा। यद्यपि मुझे दूसरों के ऐसा करने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु बचपन में मेरा पालन-पोषण और प्रशिक्षण ऐसे परम्परागत ढंग से हुआ है कि मैं इसे अनैतिक समझती हूँ और मैं ऐसा करना नहीं चाहूँगी।"

बाद में चलकर उसने कहा, "यद्यपि मैं इस बात में विश्वास नहीं रखती कि इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं करना चाहिए कि क्या उचित है और क्या अनुचित, परन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि क्या उचित है और क्या अनुचित इसके बारे में आवश्यकता से अधिक आदेश देना और किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्ध लगाना भी अच्छा नहीं है। एक खास उम्र तक समझदारी तथा विवेक की प्रौढ़ता माता-पिता, अध्यापकों तथा समाज को प्रदान करनी चाहिए, और उसके बाद हर व्यक्ति को अपने निर्णय स्वयं करने और अपनी गतिविधियों तथा अपनी जीवन-पद्धति का संचालन स्वयं करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाना चाहिए।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 6

चालीस-वर्षीया नीना ने डाक्टरी प्राप्त की थी; उसने विदेशों से दो डिप्लोमा लिये थे और वह एक अस्पताल में काम कर रही थी। वह पिछले ग्यारह वर्ष से नौकरी कर रही थी और उसका विवाह दो वर्ष पहले हुआ था। उसके एक बेटी थी जिसकी उम्र एक वर्ष की थी। उसे 950 रुपये मासिक वेतन मिलता था। वह काफी सुन्दर थी और

उसका शरीर तथा चेहरा बहुत यौवनमय तथा आकर्षक था। वह बातचीत बहुत अच्छे ढंग से करती थी और उसके विचार काफी प्रौढ़ थे। उसके चेहरे का भाव गम्भीर था और आँखों में विचारशीलता थी। उसका पहनावा बहुत शालीन और आचार-व्यवहार बहुत शिष्ट था।

उसके पिता व्यापारी थे और जब वह छोटी थी, तो उन्हें अपने बच्चों को अच्छा रहन-सहन प्रदान करने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। उससे बड़े दो भाई थे और वह अपने माता-पिता की अकेली बेटी थी। वे बहुत आराम से रहते थे और उनके घर का वातावरण बहुत उन्मुक्त तथा स्वतन्त्र था। परन्तु उसकी माँ का दिमाग़ कुछ ख़राब था और चूँकि वह हर समय अपने ही विचारों तथा अपनी धुन में खोयी रहती थीं, इसलिए बच्चों की देखभाल की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाती थीं। उसके पिता अपने बच्चों के लिए पैसा कमाने में बेहद व्यस्त रहते थे और यह सोचते थे कि अपने बच्चों तथा अपनी पत्नी के प्रति स्नेह व्यक्त करने का एकमात्र तरीक़ा उन्हें पैसा तथा सुख-सुविधा प्रदान करना और उनका जो भी जी चाहे करने की स्वतन्त्रता देना है; उन्होंने कभी यह अनुभव ही नहीं किया कि उनके साथ कुछ समय बिताना भी आवश्यक है।

वह एक ऐसे परिवार में पली-बढ़ी जो इस दृष्टि से विपन्न था कि परिवार के सदस्यों के बीच एक-दूसरे के लिए प्रायः कोई भी हार्दिकता या लगाव की भावना नहीं थी और हर व्यक्ति को अपनी सुख-सुविधा की ही चिन्ता रहती थी। माता-पिता या तो हर समय व्यस्त रहते थे या अपने बच्चों के लिए बेहतर रहन-सहन के साधन जुटाने की चिन्ता में डूबे रहते थे और उन्हें इस बात के लिए समय ही नहीं मिलता था और न इस ओर उनकी प्रवृत्ति ही थी कि उन्हें स्नेह प्रदान करें। इसलिए बचपन ही से नीना में यह भावना उत्पन्न हो गयी कि इस जीवन में सच्चे स्नेहमय मानव-सम्बन्ध होते ही नहीं हैं, और यह कि पैसा ही सबसे बहुमूल्य उपलब्धि है और उससे हर चीज़ ख़रीदी जा सकती है।

उसे पढ़ने के लिए एक अच्छे कानवेन्ट स्कूल में भेजा गया था। वहाँ उसे उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग की लड़कियों के बीच उठने-बैठने का अवसर मिला और उसने उनसे मित्रता पैदा करने की कोशिश की पर उसकी कभी किसी के साथ बहुत गहरी मित्रता नहीं हो सकी और उसके कोई अच्छे मित्र नहीं थे क्योंकि वह स्वकेन्द्रित थी और उसे हर समय अपनी ही आवश्यकताओं की चिन्ता लगी रहती थी और वह किसी को स्नेह या प्यार नहीं प्रदान कर सकती थी। उसे अपनी सुन्दरता पर, अपने माता-पिता की आर्थिक हैसियत पर और अच्छे रहन-सहन पर काफी अभिमान था। उस छोटी-सी उम्र में ही वह आवश्यकता से अधिक निडर थी और उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं होती थी कि लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे या कहेंगे।

अपने बड़े भाई के साथ उसे उस बड़े शहर के सबसे अच्छे कालेज में पढ़ने के लिए भेजा गया जहाँ उसके पिता काम करते थे। चूँकि बच्चों के पास ढेरों पैसा था

और उनको रोकने-टोकनेवाला या उनकी गतिविधियों पर प्रतिवन्ध लगानेवाला कोई नहीं था, इसलिए नीना अपने भाई, मित्रों और कालेज के अन्य सहपाठियों के साथ विना किसी रोक-टोक के घूमती-फिरती थी। जब वह 16-17 वर्ष की थी और लम्बे क़द की सुन्दर लड़की के रूप में विकसित हो रही थी तो उसे अपने रंग-रूप तथा अपने सुडौल शरीर का वहुत आभास रहने लगा और वह ऐसे कपड़े पहनकर उनका प्रदर्शन करने लगी जो उसके शरीर की सुन्दरता को और उभार दें। लोग उसकी ओर वहुत आकर्षित होने लगे तथा उसे सराहने लगे जिसके फलस्वरूप उसे रूप का आभास और वढ़ गया तथा उसमें आत्म-सराहना का भाव उत्पन्न हो गया। उसे किसी के साथ आने-जाने की पूरी छूट थी क्योंकि उसके पिता अधिकांश समय घर के वाहर रहते थे और यह समझते थे कि वच्चों को स्वतन्त्रता देने से ही वे उनको उदार विचारों वाला कहेंगे और उनकी प्रशंसा करेंगे।

जिन दिनों वह कालेज में पढ़ती थी उस समय उसकी उत्कट इच्छा हुई कि उससे प्रेम किया जाये और कोई सचमुच उसका ध्यान रखे। इसलिए उसने पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवारों के दो-चार लड़कों से मित्रता वढ़ा ली। उसने स्वीकार किया कि उनके साथ उसके घनिष्ठ शारीरिक सम्बन्ध रह चुके थे पर वाद में उसने महसूस किया कि उनसे उसे कोई प्यार नहीं मिला।

वाद में वह मेडिकल कालेज में पढ़ने लगी। वहाँ भी उसे किसी के भी साथ घुलने-मिलने की पूरी स्वतन्त्रता थी और उसने कई लड़कों के साथ मित्रता कर ली। शुरू में तो उसने उनके साथ केवल मौज उड़ाने के लिए मित्रता की थी पर डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करने के फ़ौरन ही वाद उसे अस्पताल में काम करनेवाले एक वरिष्ठ डाक्टर से सचमुच लगाव हो गया, जो धनी परिवार के थे। इस वार वह सचमुच उसके वारे में गम्भीर हो गयी और उसी अस्पताल में काम करते हुए लगभग दो वर्ष तक वड़ी स्थिरता से उनके साथ सम्वन्ध वनाये रही। चूंकि उन दिनों वह होस्टल में रहती थी और उसे रात को काम पर जाना पड़ता था, इसलिए वह रात के किसी भी समय उनके साथ समय विता सकती थी। पहली वार उसने अनुभव किया कि वह किसी से प्रेम कर सकती है और उसे पक्का विश्वास हो गया कि वह भी उससे प्रेम करते हैं। उसने वताया कि उन्हें अपनी ओर और अधिक आकृष्ट करने के लिए और इस डर से कि वह कहीं किसी दूसरी स्त्री की ओर आकृष्ट न हो जायें उसने उन्हें हर तरह की पूरी छूट दी और उन्हें प्रसन्न रखने की कोशिश की। वह भी उसकी ओर वहुत ध्यान देते थे और उसे सराहते थे और दोनों साथ-साथ सिनेमा देखने, मोटर पर लम्बी सैर के लिए, तैरने, क्लवों में और नाचने के लिए जाते थे। पहली वार उसे सच्ची प्रसन्नता मिली और उसने अनुभव किया कि कोई उससे प्रेम करता है।

परन्तु कुछ महीने तक उनके साथ वहुत उल्लासमय समय विताने के वाद, जव वह धीरे-धीरे उससे दूर हटने लगे और उसे यह पता चला कि वह लोगों से यह कहते फिरते थे कि वह 'उनके पीछे पड़ी है' और यह कि वह उनके लिए 'आवश्यकता से

अधिक तेज़ हैं' और यह कि वह उससे पीछा छुड़ाने की कोशिश कर रहे हैं तो उसे बहुत आघात पहुँचा। वह घोर निराशा में डूब गयी और संवेगात्मक दृष्टि से बहुत विचलित हो उठी। कुछ समय तक उसने सबसे मिलना-जुलना छोड़ दिया और निराशा तथा पराजय की भावना के कारण वह शराब और सिगरेट पीने लगी।

लेकिन कुछ महीने के बाद उसे फिर ध्यान आया कि पैसे से हर चीज़ खरीदी जा सकती है और यह कि एक व्यक्ति के लिए अपना जीवन नष्ट कर देना मूर्खता है। इसलिए वह क्लबों में जाने लगी। विवाहित तथा अविवाहित दोनों ही प्रकार के बड़े-बड़े अफ़सरों से मिलने लगी। उसके सर पर मनोरंजन के विचार का भूत-सा सवार था और अचेतन रूप से वह किसी साथी की तलाश में थी और आशा करती थी कि वह इन जगहों में मिल जायेगा। उसने कहा कि निराशा के कारण और बदला लेने की भावना से वह जीवन का भरपूर आनन्द लूटने लगी और यह सोचने लगी कि कुछ भी करने में कोई बुराई नहीं है। उन्हीं दिनों उसको उच्चतर शिक्षा के लिए विदेश जाने का दाँव भी लग गया। वहाँ भी उसने बहुत-से मित्र बनाये और मौज का जीवन व्यतीत किया।

इसके बाद एक उच्च अधिकारी, जो सचमुच बहुत सच्चे हृदय के आदमी थे और यह महसूस करते थे कि उसे प्यार तथा ध्यान की आवश्यकता है, उसका ध्यान रखने लगे और उस पर प्यार लुटाने लगे। वह उसके साथ बड़ी नेकी और सहृदयता का व्यवहार करते थे। उनके साथ रहकर उसे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती थी पर उसने कभी उनकी बातों पर पूरा भरोसा नहीं किया और उसे हर समय आशंका लगी रहती थी। उसका दृढ़ विश्वास था कि प्यार-भरे मानव-सम्बन्ध जैसी कोई चीज़ नहीं होती है और पैसे से हर सुख खरीदा जा सकता है। जब वह पुरुषों के साथ उसके आवश्यकता से अधिक खुलकर व्यवहार करने की आलोचना करने लगे और जब वह उससे कुछ पुरुषों के साथ मित्रता न बढ़ाने के लिए कहने लगे, तो उसने बहुत अपमानित अनुभव किया और उसे झुंझलाहट हुई, क्योंकि उसने बताया कि उस समय उसे लगा कि उसकी गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगाना उनकी मूर्खता तथा संकीर्णता थी। वह एक के बाद एक अनेक पुरुषों को मित्र बनाती रही पर उनके निकट आने और बार-बार उनसे मिलने पर उसे हमेशा यही लगा कि अपने विचारों तथा मतों में वे हमेशा बहुत कट्टरपंथी तथा रूढ़िवादी होते हैं और पुरुषों के आचार के लिए एक मानदंड तथा स्त्रियों के लिए दूसरे मानदंड में विश्वास रखते हैं। उसके तथा उसकी अधिकांश सहेलियों के विचार बहुत उन्नत थे और वे इस बात में उससे सहमत थीं कि लड़कों तथा लड़कियों दोनों के लिए सेक्स के मामले में बराबर स्वतन्त्रता होनी चाहिए और यह कि एक उम्र के बाद बिना किसी रोक-टोक के एक-दूसरे से मिलने-जुलने और जो भी उनका जी चाहे करने की अनुमति होनी चाहिए और यह कि दो प्रौढ़ व्यक्ति अपनी अनुमति से आपस में जो कुछ भी करें वह ठीक है और उनका निजी मामला है जिसमें हस्तक्षेप करने का किसी को अधिकार नहीं है।

उसने बताया कि जब उसकी उम्र 35 वर्ष से कुछ अधिक हो गयी तो काम के समय व्यस्त रहने और अवकाश के समय भी लोगों से घिरे रहने के बावजूद और उल्लासमय जीवन, सैर-सपाटे, मनोरंजन, क्लबों की चहल-पहल और बहुत-से लोगों के साथ के बावजूद जीवन में पहली बार वह अकेली और बेसहारा महसूस करने लगी थी और उसे ऐसे जीवन-साथी की आवश्यकता महसूस होने लगी थी जो सचमुच उससे प्रेम कर सके, उसका सम्मान कर सके और उसे सुख-सुविधा का जीवन प्रदान कर सके और जिसके साथ रहकर वह सुरक्षित तथा निश्चिन्त अनुभव कर सके। आकर्षक और चुस्त दिखायी देने के लिए वह अपने शारीरिक रूप-रंग का बहुत ध्यान रखती आयी थी; वह नियमित रूप से शृंगारशालाओं में जाकर अपने हाथों, बालों आदि को सजा-सँवारकर रखती थी और परामर्श तथा उपचार आदि के लिए विशेषज्ञों के पास जाती रही थी परन्तु अपने यौवन तथा आकर्षण के बावजूद वह इस कारण बहुत उदास रहने लगी थी कि कोई भी न तो उससे हार्दिक प्रेम ही करता था और न उसका सम्मान ही करता था।

इसी बीच उसकी भेंट एक नवयुवक व्यापारी से हो गयी जो जीवन के उल्लास से भरपूर था और उसके विचार बहुत आधुनिक तथा उन्नत थे। नीना असाधारण रूप से उसके प्रति भावुक हो गयी और अपने अवकाश का अधिकांश समय उसके साथ बिताने लगी। वे अक्सर कुछ दिनों के लिए पहाड़ पर भी चले जाते थे और चूंकि उसके पास बेहद पैसा था, इसलिए वह शराब और दूसरी चीज़ों पर जी खोलकर खर्च करता था। एक बार फिर वह जीवन के उल्लास से भर उठी और जीवन का सुख लूटने लगी और चूंकि विवाह से पहले तथा विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-जीवन के बारे में उस आदमी के विचार भी उसके विचारों जैसे ही थे, इसलिए वह सोचने लगी कि वह उसका जीवन-साथी बनने के लिए सबसे उपयुक्त आदमी है और यह कि वह उसके साथ अत्यन्त सुखी रहेगी। लेकिन जब उस आदमी ने उसके साथ विवाह करने के प्रस्ताव पर बड़ी रुखाई का परिचय दिया और धीरे-धीरे उससे कतराने लगा तो वह आघात तथा निराशा से बिल्कुल चूर-चूर हो गयी।

नीना ने कहा, "यद्यपि मुझे मेडिकल कालेज में दूसरी स्त्रियों के ऐसे ही अनुभवों की जानकारी थी पर इस अवसर पर पहली बार मैंने इस बात को अच्छी तरह समझा कि पुरुष बहुत उन्नत, आधुनिक तथा उन्मुक्त ढंग की स्त्रियों को पसन्द करते हैं तथा सराहते हैं और उनके साथ रहने तथा उल्लासपूर्वक समय बिताने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं लेकिन वे कभी सचमुच न उनसे प्रेम कर सकते हैं और न उनका सम्मान। जब उनके साथ कोई सच्चा और हार्दिक सम्बन्ध स्थापित करने का सवाल आता है तब तथाकथित सर्वाधिक उन्नत तथा आधुनिक पुरुष भी ऐसी स्त्रियों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने से कतराते हैं। अपनी निराशा के कारण मैंने इस तथ्य को पहचाना कि जो स्त्रियाँ बहुत उन्मुक्त होती हैं और उनके साथ बैठकर शराब और सिगरेट पीने को तैयार रहती हैं और जिन्हें रात-बिरात उनके साथ कहीं भी जाने

में कोई आपत्ति नहीं होती उन्हें पुरुष प्रेम तथा सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते बल्कि आमतौर पर उनका अनुचित लाभ उठाते हैं। पुरुष विशेष रूप से ऐसी स्त्रियों का अनुचित लाभ उठाते हैं जो अपने परिवारों से अलग रहती हैं और जिनके कहीं आने-जाने पर कोई रोक-टोक नहीं होती और जिन पर उनके माता-पिता की कड़ी निगरानी नहीं रहती। सबसे बढ़कर पुरुष उन स्त्रियों का अनुचित लाभ उठाते हैं जो सच्चे मानव-सम्बन्धों की भूखी होती हैं और जिनका यह विश्वास होता है कि पुरुषों के साथ बहुत उन्मुक्त और घनिष्ठ भाव से मिलने-जुलने और उनकी कामनाओं के आगे आत्म-समर्पण करके ही वे उस प्रकार का सम्बन्ध विकसित करने में सफल हो सकती हैं। और इस अनुभूति से मेरे जीवन में अचानक एक परिवर्तन आ गया और मैंने धीरे-धीरे मौज उड़ाने का वह जीवन त्याग दिया जो मैं अब तक बिताती आयी थी।"

नीना अब भी बहुत अकेली और बेसहारा अनुभव करती थी और किसी ऐसे पुरुष के लिए लालायित रहती थी जो उससे सचमुच प्रेम कर सके तथा उसका सम्मान कर सके और जिससे वह प्रेम कर सके तथा जिसकी वह पूरी श्रद्धा से सेवा कर सके। कभी-कभी उसे ऐसा लगता था कि शायद उसे अपना सारा शेष जीवन अकेले ही व्यतीत करना होगा और यह कि कोई भी कभी उससे प्रेम नहीं करेगा। देखने में वह अपने को प्रसन्नचित्त रखती थी, कपड़े भी ढंग से पहनती थी और अपने काम में व्यस्त रहती थी परन्तु उसके स्वभाव में काफी ठहराव आ गया था। सौभाग्यवश, उन्हीं दिनों एक सम्मेलन में उसकी भेंट अधेड़ उम्र के एक प्रौढ़ अधिकारी से हो गयी; उन्हें भी एक सच्चे मित्र के रूप में किसी प्रौढ़ तथा सुशिक्षिता स्त्री की आवश्यकता थी। वह उनका सचमुच सम्मान करती थी क्योंकि अपने सरकारी पद तथा विशेषाधिकारों के बावजूद वह बहुत गम्भीर व्यक्ति थे। दो-एक वर्ष के हार्दिक सम्बन्ध के बाद, जिसके दौरान उन्होंने उसका कोई अनुचित लाभ नहीं उठाया और उसे ढेरों सम्मान तथा प्यार दिया, दोनों का विवाह हो गया।

उसके पति बहुत उदार विचारों वाले तथा प्रौढ़ व्यक्ति थे। उसे उनके प्रति तथा अपने बच्चे के प्रति बड़ी लगन थी और उसने जीवन में पहली बार यह अनुभव किया था कि किसी के प्रेम का पात्र बनने, किसी का ध्यान तथा सम्मान प्राप्त करने का क्या अर्थ होता है और किसी पुरुष की होकर रहने और सच्ची निष्ठा के साथ उससे प्रेम करने का क्या अर्थ होता है। विवाह के बाद भी वह नौकरी करती रही क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि उसकी सारी पढ़ाई व्यर्थ जाये और उसके पति को भी उसकी उपलब्धियों पर बड़ा गर्व था।

सेक्स के विभिन्न पहलुओं के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उसने कहा, "जैसा कि मैं आपको पहले ही बता चुकी हूँ, अब मेरे विचार बहुत बदल गये हैं। पहले मेरा विश्वास था कि लड़कों तथा लड़कियों को सेक्स के मामले में बराबर स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए और, कि यह अच्छी बात थी कि उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक

स्वतन्त्रता प्राप्त थी। मैं यह कहा करती थी कि भिन्नलिंगी व्यक्ति के साथ अकेले बाहर जाने के अतिरिक्त कोई लड़की और लड़का शारीरिक घनिष्ठता की किसी भी सीमा तक जा सकते हैं, विशेष रूप से यदि उन्हें एक-दूसरे से प्रेम हो और उनकी आपस में मँगनी हो चुकी हो। मैं समझा करती थी कि जो लड़की भिन्नलिंगी व्यक्तियों के साथ खुलकर व्यवहार नहीं करती, या दुर्भाग्यवश जिसे इसका अवसर नहीं मिलता, उसकी लोग न तो कामना करते हैं, न उनकी सराहना करते हैं। मैं समझती थी कि विवाह से पहले और विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-अनुभव लड़कों तथा लड़कियों दोनों ही के लिए उचित है और यह कि सेक्स एक शारीरिक आवश्यकता है जिसे तुष्ट करने में कोई हर्ज नहीं है और यह कि विवाह के लिए यह कोई आवश्यक गुण नहीं है कि लड़की अक्षतयोनि तथा लड़का अक्षतवीर्य हो। मैंने इस बात को समझा ही नहीं था कि अधिकांश पुरुष अब भी ऐसी लड़की से विवाह करना चाहते हैं जो अक्षतयोनि हो। मैं अपनी उन सहेलियों या अन्य लड़कियों के आचरण को ठीक समझती थी जिनके विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्ध रह चुके थे और मैं यह सोचती थी कि विवाहित स्त्री के लिए भी विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करना उचित है यदि अपने पति से उसे सेक्स का पूरा सन्तोष न मिलता हो या वह उससे प्रेम न करती हो या वह उससे प्रेम न करता हो या यदि उनका विवाह विफल हो। मेरा विश्वास था कि क्या अनुचित है और क्या उचित, इसका निर्णय करना हर व्यक्ति का निजी मामला है। उस समय मैं यह सोचती थी कि यदि विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर मैंने किसी से सेक्स-सम्बन्ध स्थापित कर भी लिये तो मैं अपराधी अनुभव नहीं करूँगी। परन्तु अब मेरे विचार बदल गये हैं। यदि, ईश्वर न करे, अब मैं अपने विवाह की परिधि के बाहर किसी के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करूँ तो निश्चित रूप से मैं अपराधी अनुभव करूँगी।"

आगे चलकर उसने अपने वर्तमान विचार इन शब्दों में व्यक्त किये, "मेरी राय में विवाह से पहले सेक्स-अनुभव उचित नहीं है। मैं महसूस करती हूँ कि आज के समाज में भी वह नैतिक नहीं है और मैं समझती हूँ कि अधिकांश लड़कियाँ और लड़के, विशेष रूप से मेरे मित्र इसे अनुचित समझते हैं। ख़ैर, समूह के रूप में लड़कों और लड़कियों के मिलने, एक-दूसरे का हाथ थाम लेने या कभी-कभार चुम्बन भी कर लेने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन इससे आगे नहीं। माता-पिता को बड़े स्नेह के साथ उनका मार्गदर्शन करना चाहिए और उन्हें सेक्स की जानकारी देनी चाहिए, बच्चों में यह आभास उत्पन्न होना चाहिए कि उनके माता-पिता उनको चाहते हैं, उनसे प्यार करते हैं और उनको सराहते हैं और उन्हें कभी यह आभास नहीं होने देना चाहिए कि उनकी उपेक्षा की जा रही है या उनका तिरस्कार किया जा रहा है।"

अपनी बात जारी रखते हुए नीना ने कहा, "अब मैं महसूस करती हूँ कि लोगों के मन में, विशेष रूप से पुरुषों के मन में यह पूर्वग्रह बहुत गहराई से जड़ पकड़ चुका है कि यदि कोई स्त्री पुरुषों के साथ बहुत उन्मुक्त व्यवहार करती है तो वह

है और उसका सम्मान नहीं किया जाना चाहिए। और मैं समझती हूँ कि स्त्री को पुरुषों के साथ बहुत खुलना नहीं चाहिए क्योंकि ऐसा करने के कारण ही वह उनकी दृष्टि में अपना सम्मान खो देती है। मैं अब इस पुराने दृष्टिकोण से सहमत होती जा रही हूँ कि स्त्री को पुरुषों के साथ बहुत घुल-मिल नहीं जाना चाहिए और उनसे मर्यादानुकूल दूरी रखनी चाहिए क्योंकि केवल ऐसी स्थिति में ही पुरुष सचमुच उसे सम्मान की दृष्टि से देखेंगे।"

उसने यह भी कहा, "मेरी राय में विवाह से पहले लड़कों तथा लड़कियों को अकेले बाहर जाने या दूसरों की संगत से दूर एकान्त में अक्सर एक-दूसरे के साथ समय बिताने की, विशेष रूप से एकान्तमय तथा सुनसान जगहों में, अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। क्योंकि अगर उन्हें ऐसा करने दिया गया तो उनके बीच शारीरिक घनिष्ठता स्थापित होना अनिवार्य है क्योंकि वे अधिमानव तो होते नहीं। और विशेष रूप से स्त्री तो यदि पुरुषों के साथ अकेली रहे या घूमे-फिरे तो उसका सम्मान और नेकनामी मिट्टी में मिल जाती है। लेकिन मैं समझती हूँ कि अपने घर पर या घर के बाहर भी उनके समूह के रूप में आपस में मिलने में कोई हर्ज नहीं है।"

बाद में चलकर उसने कहा, "अब मैं महसूस करती हूँ कि किसी भी लड़की को किसी पुरुष को अपने शरीर से खेलने की छूट नहीं देनी चाहिए क्योंकि अगर वह दूसरों को अपने शरीर पर हाथ डालने की छूट देगी और सेक्स-क्रिया में भाग लेगी, तो उसके व्यक्तित्व के प्रति दूसरों का सम्मान बहुत घट जायेगा और कोई भी पुरुष किसी ऐसी लड़की का सम्मान नहीं करता जो पुरुषों को शारीरिक अतिक्रमण की छूट देने को तैयार हो। मैं समझती हूँ कि जो स्त्रियाँ विवाह की परिधि के बाहर गुप्त रूप से सेक्स-क्रिया में भाग लेकर अपने पति को धोखा देती हैं वे निश्चित रूप से अनैतिक कर्म करती हैं, जो लगभग उतना ही बुरा है जितना पैसे की खातिर अपने शरीर को बेचना।"

उसने बताया, "मैं मानती हूँ कि नैतिकता का दोहरा मानदण्ड बहुत व्यापक रूप से प्रचलित है और यह कि यदि विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर स्त्री तथा पुरुष दोनों ही सेक्स-क्रिया में भाग लें तो स्त्री को अधिक दुराचारी समझा जाता है। मेरी दृढ़ भावना है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। उन दोनों ही को ऐसा नहीं होना चाहिए। उन दोनों ही को ऐसा नहीं करना चाहिए, और यदि वे करें भी तो समाज की ओर से दोनों ही की समान रूप से निन्दा की जानी चाहिए। यह अत्यन्त अनुचित बात है पुरुष स्वयं सेक्स-भोग करते हैं या यह कहना अधिक सही होगा कि वे स्त्रियों को सेक्स-भोग के लिए फाँसते हैं और जब वे ऐसा करते हैं तो पुरुष स्वयं ही उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं और उनका सम्मान करना बन्द कर देते हैं। यह अत्यन्त अनुचित तथा अन्यायपूर्ण है।"

नीना ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "मेरी बहुत दृढ़ भावना है कि पुरुष स्त्रियों का अनुचित लाभ उठाते हैं और वे स्त्री को मुख्यतः एक भोग-विलास

की वस्तु और सेक्स-तुष्टि का साधन समझते हैं। कोई स्त्री कितनी ही पढ़ी-लिखी और बुद्धिमान क्यों न हो या दफ्तर में उसका पद कितना ही ऊंचा क्यों न हो, पुरुष उसे सबसे पहले स्त्री के ही रूप में—कमोबेश सेक्स तथा भोग-विलास की वस्तु के रूप में—देखते हैं, जिसकी संगत आमतौर पर थकान दूर करने के लिए, गम्भीर काम के बाद हल्की-फुल्की चीज़ों के बारे में बातें करने के लिए और आनन्द प्राप्त करने के लिए ही आवश्यक समझी जाती है, किसी गम्भीर बौद्धिक विचार-विनिमय या लाभ के लिए नहीं। और सबसे बुरी बात यह है कि स्त्रियाँ भी गौरवान्वित अनुभव करती हैं यदि कोई उनकी संगत के लिए उत्सुक हो और अगर केवल हल्की-फुल्की बातचीत, परिवर्तन या आराम से समय बिताने तथा आनन्द प्राप्त करने के लिए भी ऐसा किया जाये तो उन्हें बहुत सन्तोष मिलता है।"

अन्त में उसने कहा, "मैं समझती हूँ कि पति का किसी दूसरी स्त्री के साथ या पत्नी का किसी दूसरे पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध रखना समान रूप से गम्भीर अपराध है। हालांकि मेरा पति कभी किसी दूसरी स्त्री के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करे तो पहली बार तो मैं उसे क्षमा कर दूँगी, परन्तु यदि मैं ऐसा करूँ तो मैं उससे क्षमा की आशा नहीं रखूँगी। यदि कभी मैं ऐसा करूँ तो मुझे उसका दण्ड मिलना चाहिए।" उसने जोर देकर कहा, "मैं समझती हूँ कि सेक्स-आचरण में संयम से काम लिया जाना चाहिए और विवाह से पहले तथा विवाह की परिधि के बाहर दोनों ही स्थितियों में उससे दूर रहना चाहिए। हमेशा की तरह अब भी मेरा यह विश्वास अवश्य है कि सेक्स विवाह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और यह कि पति तथा पत्नी दोनों ही को विवाह की परिधि के अन्दर रहकर सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने का समान अधिकार है, और दोनों ही को, विशेष रूप से पत्नी को, विवाहित सेक्स-सम्बन्धों में एक-दूसरे की सुख-सुविधा का ध्यान रखना चाहिए, दोनों में परस्पर सहानुभूति होनी चाहिए, धैर्य से काम लेना चाहिए और बहुत प्यार का व्यवहार करना चाहिए। विवाह के सूत्र में बँधे हुए दोनों पक्षों का कर्त्तव्य है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि दोनों ही एक-दूसरे से सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहें।"

व्यक्ति-अध्ययन संख्या 9

मोना ने सीनियर कैम्ब्रिज पास किया था और उसकी उम्र 22 वर्ष की थी। वह एक सरकारी संगठन में काम करती थी और उसकी नौकरी ऐसी थी कि उसे महीने के अधिकांश दिन हवाई जहाज़ से यात्रा करनी पड़ती थी। उसे 525 रु० वेतन मि[illegible] रहा था और पिछले पाँच वर्षों में यह उसकी तीसरी नौकरी थी। मोना का चेहरा [illegible] मोहक तथा आकर्षक था, उसकी आँखों में चमक तथा मुस्कराहट थी और [illegible] शरीर बेहद सुडौल था। वह कपड़े इतने छोटे पहनती थी कि उस[illegible] पीठ और पेट खुला रहता था। उसकी चाल में बड़ी गरिमा थी और उस[illegible] आधुनिकतम, सुरुचिपूर्ण तथा बहुत ही फ़ैशनेबुल होता था। वह

और हँसमुख थी और वातचीत में अत्यन्त निःसंकोच तथा निर्भीक थी। वह वहुत वातूनी और वेझिझक थी और कभी-कभी कुछ दंभ की झलक भी उसमें पायी जाती थी।

उसके पिता वहुत ऊँचे सरकारी अफ़सर थे। वह सुशिक्षित थे और उनके विचार तथा रहन-सहन पाश्चात्य ढंग का था। उसकी माँ भी पढ़ी-लिखी थीं, और एक सुशिक्षित तथा आधुनिक परिवार से सम्वन्ध रखती थीं। उसके चाचा-चाचियाँ भी अच्छी हैसियत के थे और उनका रहन-सहन तथा विचार भी पाश्चात्य ढंग का था।

उसके केवल एक भाई था जो उससे एक वर्ष वड़ा था। उन दोनों ने अपना वचपन वहुत सुख-सुविधा तथा हर्ष-उल्लास में व्यतीत किया था और उन्हें घर पर हर तरह का ऐश-आराम उपलब्ध था। चूंकि वह वहुत सुन्दर थी और वचपन में भी उसे अपने माता-पिता, रिश्तेदारों तथा माता-पिता के मित्रों से वहुत प्रशंसा मिली थी, इसलिए वह लाड़-प्यार में कुछ विगड़ गयी थी। वह वचपन ही से वड़े शहरों में रहती आयी थी।

उसने और उसके वड़े भाई दोनों ही ने एक वड़े शहर में अंग्रेजी स्कूल में शिक्षा पायी थी। स्कूल में भी उसके वहुत-से मित्र थे और चूंकि माता-पिता के घर का वातावरण वहुत उन्मुक्त था, इसलिए उन्हें कहीं भी आने-जाने की और अपने मित्रों को घर वुलाने की पूरी स्वतन्त्रता थी। उसके माता-पिता का सामाजिक जीवन भी वहुत व्यस्त रहता था और घर पर तथा क्लवों में उनकी स्त्रियों तथा पुरुषों की मिली-जुली पार्टियाँ होती रहती थीं। वचपन से ही मोना तथा उसका भाई क्लवों में खेलने-कूदने और तैरने के लिए जाया करते थे, और इतवार को वे वहाँ लड़कों तथा लड़कियों की मिली-जुली जमावड़ों का आनन्द लेने के लिए जाया करते थे। उसे अच्छे-कपड़े पहनने का हमेशा शौक़ था और उसे कभी किसी चीज़ से वंचित नहीं रखा गया था। उसे पढ़ने के प्रति अधिक रुचि नहीं थी हालाँकि वह अपनी पढ़ाई में काफी अच्छी थी।

जव वह 13-14 वर्ष की लड़की थी तभी से वह लड़के-लड़कियों के उन नृत्य-आयोजनों में जाने लगी थी जो अलग-अलग लोगों के घरों पर होते रहते थे। नाच की ये पार्टियाँ लगभग आधी रात तक चलती थीं और उनमें सभी को जो भी जी चाहे करने की पूरी आज़ादी रहती थी। उसकी माँ और वाप दोनों ही के वहुत-से घनिष्ठ मित्र थे, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं और पुरुष भी, और उसके पिता एक विशेष विवाहित महिला को वहुत पसन्द करते थे और उनसे उनकी वहुत मित्रता भी थी। उसकी माँ की भी कई पुरुषों से मित्रता थी और वे विना किसी रोक-टोक के एक-दूसरे से मिलते थे।

सीनियर कैम्ब्रिज तक की अपनी पढ़ाई पूरी कर लेने के वाद वह वहुत उत्सुक थी कि वह भी कोई काम करने लगे, जैसे उससे उम्र में वड़ी उसकी कई सहेलियाँ कर रही थीं। नौकरी के प्रति उसका आकर्षण अन्य किसी वात की अपेक्षा रोमांच,

तड़क-भड़क तथा विभिन्न प्रकार के लोगों से मिलने के अवसर के कारण अधिक था। यद्यपि आरम्भ में उसके माता-पिता ने उसके नौकरी करने का ही विरोध किया क्योंकि उनके पास उसे देने के लिए पैसे की कोई कमी नहीं थी, पर न जाने क्यों वह चाहती थी कि वह आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाये और कोई ऐसी नौकरी कर ले जिसमें उसे नयी-नयी जगहें और देश देखने तथा विदेशियों से मुलाक़ात का अवसर मिल सके। उसने कहा कि विदेशियों को वह विशेष रूप से पसन्द करती थी और योरपवासियों तथा अमरीकियों को बहुत प्यार करती थी। वास्तव में वह चाहती थी कि कभी-कभी अपने माता-पिता के घर के सुरक्षित जीवन से कहीं दूर चली जाये और उसका जी चाहता था कि वह एक प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में ज़िम्मेदार महसूस करे। इसलिए उसने पहले एक बड़े होटल में नौकरी कर ली और एक वर्ष बाद हवाई जहाज़ की एक कम्पनी में एयर-होस्टेस बन गयी।

कई लड़कों से उसकी बहुत अच्छी मित्रता थी और उसने स्वीकार किया कि "मित्र-लड़कों के बिना जीवन अत्यन्त नीरस और रुचिहीन रहता है।" उसे एक फ़ौजी अफ़सर से बहुत लगाव हो गया था, और जब वह कहीं बाहर नियुक्त कर दिया गया और उसने उसके साथ पत्र-व्यवहार जारी नहीं रखा तो उसे बहुत दुःख हुआ पर उसने इस बात का बहुत बुरा नहीं माना। वह बहुत यात्रा करती रहती थी और विदेशों में उसके कई अच्छे मित्र थे, जिनके साथ रहकर, उसने बताया, उसे सचमुच बहुत सुख और सन्तोष मिलता था।

चूंकि मोना का जन्म तथा लालन-पालन एक उन्नत तथा पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवार में हुआ था जिसके विचार उदार थे और जिसके पास ढेरों पैसा था, इसलिए उसका रवैया यह हो गया था कि 'खाओ, पियो और मौज उड़ाओ'। उसने इतने ऐश-आराम और स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत किया था हालांकि वह सचेतन रूप से पैसे को मूल्यवान नहीं समझती थी, पर वह महसूस करती थी कि समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं के बिना जीवन निरर्थक हो जायेगा। वह जवान थी, जीवन की उमंग और उत्साह से भरपूर, उसे मनचाहे ढंग से घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता थी। वह पूर्णतः वर्तमान में ही अपना जीवन व्यतीत करती थी और उसे भविष्य की तनिक भी चिन्ता नहीं थी और न इस बात की कि लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे या कहेंगे, क्योंकि वह हमेशा से ऐसे लोगों के बीच उठती-बैठती आयी थी जिनके विचार उन्नत और कुंठा-रहित थे।

मोना ने तर्क दिया कि वह किसी भी प्रकार के कपड़े पहनने में कोई हर्ज नहीं समझती; वह इसे अपनी-अपनी निजी पसन्द का मामला समझती थी। उसने कहा, "अगर कोई अपने शरीर की नुमाइश करता है तो उसे सराहा जाना चाहिए, उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए या कम से कम उसकी ओर ध्यान तो दिया ही जाना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे मेरी आकर्षक वेश-भूषा की ओर ध्यान दिया जाता है। बहुत थोड़े और छोटे कपड़े पहनने को न मैं ग़लत समझती हूँ और न घटियापन का प्रमाण

मानती हूँ। यह तो अपनी पसन्द की बात है।"

आगे चलकर उसने दूसरी बातों पर चर्चा करते हुए उसने कहा, "मैं 'स्वच्छन्द-प्रेम' में विश्वास रखती हूँ, अर्थात् यह कि हर लड़की को किसी से भी प्रेम करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए और इस प्रकार के सम्बन्धों पर कोई प्रतिबन्ध या शर्त नहीं लगायी जानी चाहिए; उन पर अनिवार्य कर्त्तव्यों अथवा दायित्वों की कोई सीमाएँ नहीं होनी चाहिएँ। इस प्रकार का प्रेम-सम्बन्ध उस समय तक जारी रखा जाना चाहिए जब तक दूसरे व्यक्ति के प्रति मन की भावनाएँ रहें। जिस क्षण भी यह आकर्षण तथा भावना न रह जाये, उस सम्बन्ध को भंग कर देने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।"

वह इस बात का अनुमोदन करती थी कि माता-पिता अपने बच्चों की उपस्थिति में खुलकर तथा निःसंकोच भाव से बातें करें। वह समझती थी कि लड़कों तथा लड़कियों दोनों ही को खुलेआम सेक्स पर चर्चा करने की, आपस में बिना किसी रोक-टोक के घुलने-मिलने की और उचित तथा अनुचित की स्वयं अपनी धारणा के अनुसार सोचने तथा आचरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। उसका विश्वास था कि कोई भी काम करने में कोई भी बुराई नहीं है यदि उससे सम्बन्धित व्यक्तियों को सुख मिलता हो और किसी दूसरे के मामलात में कोई हस्तक्षेप न होता हो। उन्मुक्त भाव से मिलने-जुलने की छूट होनी चाहिए और यह बात हर व्यक्ति पर छोड़ दी जानी चाहिए कि वह स्वयं अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करे। परन्तु, वह इस बात को महसूस करती थी कि यह केवल उसी स्थिति में सम्भव हो सकता है जब बच्चों को शुरू से ही अपने व्यक्तित्व का तथा स्वतन्त्र रूप से सोचने की क्षमता का विकास करने का अवसर दिया जाये। उसे उनके सिगरेट पीने और शराब पीने पर कोई आपत्ति नहीं थी। वह स्वयं ये दोनों ही काम करती थी।

वह महसूस करती थी कि अब नौजवान लड़कों तथा लड़कियों को पहले की तुलना में अधिक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता है और यह उनके लिए बहुत स्वस्थ तथा अच्छी बात है। उसने इस पर ज़ोर दिया कि लड़कियों तथा लड़कों को सेक्स के मामले में समान स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। उसने कहा, "लोगों की समझ में आखिर यह बात क्यों नहीं आती कि शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह ही मनुष्य होती हैं और सुखप्रद अनुभवों के लिए उनकी आवश्यकताएँ भी वैसी ही होती हैं जैसी पुरुषों की।"

उसने मत व्यक्त किया, "मेरी राय में सेक्स का दमन अनेक प्रकार के विकारों तथा दूषित आचरणों को जन्म देता है और यदि सेक्स को आवश्यकता से अधिक रोका जाये या उसका दमन किया जाये तो चोरी-छुपे ऐसे विकृत आचरणों में भाग लेने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है जैसे समलिंगी-मैथुन या हस्त-मैथुन। मैं समझती हूँ कि सेक्स पर आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्ध लगाना दक़ियानूसी तथा अतर्कसंगत बात है और इससे व्यक्ति के मन में अपराध की भावना उत्पन्न होती है।"

आगे चलकर उसने तर्क दिया, "लोग अक्सर कहते हैं कि पुरुष तथा स्त्री के बीच पारस्परिक चाह तथा आकर्षण केवल उतनी ही देर तक रहता है जब तक वे परस्पर संभोग करते हैं। लेकिन यदि ऐसा हो भी तो इस बात का अनुभव कर लेने और पता लगा लेने में क्या हर्ज है कि यह चाह या आकर्षण केवल सतही है या सच्चा। क्योंकि यदि यह आकर्षण सम्भोग के बाद भी बना रहता है तो वह निश्चित रूप से हार्दिक आकर्षण या प्रेम होगा और उसे मूल्यवान समझा जाना चाहिए।"

सेक्स से सम्बन्धित कई दूसरे प्रश्नों के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए उसने कहा, "वास्तव में मेरी यह दृढ़ भावना है कि दो प्रौढ़ व्यक्तियों के बीच उनकी पारस्परिक सहमति से किसी भी प्रकार का और किसी भी हद तक सेक्स-आचरण सर्वथा उनका वैयक्तिक तथा निजी मामला है। और यदि वे सोचते हों कि उसमें कोई हर्ज नहीं है तो किसी को उनके मामलात में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और न उनकी आलोचना करना चाहिए।"

उसने तर्क दिया कि जब लोग जीवन में परिपूर्ति प्राप्त करने के लिए प्रेम की आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं, तो स्वयं अपनी परिपूर्ति के लिए सेक्स की आवश्यकता पर ज़ोर क्यों न दिया जाये। उसका विश्वास था कि सेक्स तथा प्रेम दो भिन्न आवश्यकताएँ हैं और दोनों ही का समान महत्त्व है और यह मान्यता कि सेक्स कोई दूषित तथा गन्दी चीज़ है बिल्कुल दक़ियानूसी और पुराने ढंग की बात है। उसने कहा कि उसका विश्वास था कि शरीर की आवश्यकताओं में कोई दूषित बात नहीं होती और सेक्स-सम्बन्धी आवश्यकताओं की परिपूर्ति उतनी ही सन्तोषप्रद या उससे भी अधिक आनन्ददायक होती है, जितनी कि खाने, पीने या सोने जैसी अन्य किसी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति। उसने कहा कि सेक्स यदि एकतरफ़ा, स्वार्थपूर्ण, शोषणात्मक या विनाशकारी न हो तो वह विलक्षण शारीरिक क्रिया और अपार आनन्द का स्रोत होता है।

उसने स्वयं पूछा, "सेक्स को घृणास्पद क्यों समझा जाये ? सेक्स को तिरस्कार की दृष्टि से क्यों देखा जाये ? अगर किसी भी व्यक्ति को, वह स्त्री हो या पुरुष, [illegible] से घृणा हो तो वह विवाह की परिधि में भी सन्तोषप्रद सेक्स-सम्बन्ध नहीं बना [illegible] और इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति हरदम चिड़चिड़ेपन और तनाव का शिकार [illegible] और विवाहित जीवन को अत्यन्त दुःखद बना लेगा। सेक्स की दृष्टि से [illegible] ही अपने बच्चों तथा अपने मित्रों को स्नेह प्रदान कर सकते हैं। इसलिए [illegible] घृणा की भावना क्यों पैदा की जाये ?"

उसने यह मत व्यक्त किया कि यदि दो प्रौढ़ अपनी [illegible] कोई भी काम करें, जिसमें सेक्स-क्रिया भी शामिल है, और यदि [illegible] धोखा देना या दूसरे का शोषण करना न हो और उससे [illegible] हो तो उसमें कोई अनैतिक बात नहीं है। उसने तर्क दि[illegible] किसी भी चीज़ में, जिससे सम्बन्धित व्यक्तियों को दुःख [illegible]

है। दो प्रौढ़ तथा परस्पर प्रेम-भाव रखनेवाले व्यक्तियों को यदि एक-दूसरे से शारीरिक आनन्द प्राप्त हो और उससे किसी को कोई हानि न होती हो तो उसे पापमय, अनैतिक या समाज-विरोधी क्यों समझा जाये! अपने भावों, भावनाओं या सुखों को ऐसे व्यक्तियों के साथ बाँटने में क्या बुराई है, जो हमें अच्छे लगते हों, जिनसे हमें प्रेम हो या जिनकी हम प्रशंसा करते हों, और समाज को उससे क्या हानि होती है?"

आगे चलकर विवाह से पहले सेक्स-अनुभव के बारे में चर्चा करते हुए उसने कहा कि उसकी राय में विवाह से पहले सेक्स का अनुभव कुछ बातों की दृष्टि से अच्छी बात है क्योंकि हमें विवाह से पहले सेक्स के बारे में भी उसी प्रकार जानकारी प्राप्त करनी चाहिए जैसे हम जीवन में अन्य बातों की जानकारी प्राप्त करते हैं। उसने कहा, "वैयक्तिक रूप से मैं समझती हूँ कि विवाह-पूर्व सेक्स-अनुभव से युगल प्रेमियों को यह पता चलता है कि शरीर-क्रिया की दृष्टि से तथा मानसिक दृष्टि से वे एक-दूसरे के लिए उपयुक्त हैं या नहीं और वे विवाह के माध्यम से स्थायी सेक्स-सम्बन्धों के क्षेत्र में प्रवेश करने का आपस में स्वेच्छा-पूर्वक निर्णय करें या न करें। मेरी राय में चूँकि विवाह में सेक्स-सामंजस्य का बहुत महत्त्व होता है, इसलिए इससे प्रयोगात्मक विवाह का अवसर उपलब्ध हो सकता है, जिससे दोनों पक्ष इस बात का पता लगा सकते हैं कि वे जीवन-भर के लिए एक-दूसरे के साथ विवाह के बन्धन में बँधने के लिए उपयुक्त हैं या नहीं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हर व्यक्ति को विवाह से पहले सेक्स का प्रयोगात्मक अनुभव प्राप्त करना चाहिए।"

उसका विचार था कि अक्षतयोनि होना महत्त्वहीन और दक़ियानूसी बात है। वह स्वतः कोई गुण नहीं है। उसने यह स्वीकार किया कि यदि वह किसी घनिष्ठ मित्र के साथ विवाह से पहले या विवाह के बाद सेक्स-क्रिया में भाग ले तो उसे अपराध का आभास नहीं होगा क्योंकि वह एक ऐसी क्रिया होगी जो वह अपनी इच्छा से एक ऐसे व्यक्ति के साथ करेगी जिसके प्रति उसके मन में प्यार का भाव तथा भावनाएँ होंगी।

विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध के बारे में भी उसने कहा कि उसमें कोई बुराई नहीं है यदि विवाह के सूत्र में बँधे दोनों पक्ष उसके लिए सहमत हों और एक-दूसरे की जानकारी से ऐसा कर रहे हों। उसने बताया कि उसकी कुछ सहेलियाँ, जिनका विवाह बहुत उदार तथा उन्मुक्त विचारों वाले पुरुषों के साथ हुआ था, और उनके पति भी अपने कुछ बहुत अच्छे भिन्नलिंगी मित्रों के साथ शारीरिक दृष्टि से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे, और वे इसे किसी भी प्रकार अनुचित, अनैतिक या पापपूर्ण नहीं समझते थे। मोना ने बताया, "मेरी सहेलियाँ मुझे बताती हैं कि दो-तीन दम्पत्ति, जो उनके घनिष्ठ मित्र हैं, आपस में एक-दूसरे के पति या पत्नी के साथ सचमुच बेहद घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। कभी-कभी वे अपनी पत्नियों तथा अपने पतियों को कुछ दिनों के लिए आपस में बदल भी लेते हैं, विशेष रूप से जब वे सब मिलकर शहर से बाहर छुट्टी मनाने जाते हैं। और मैं इसमें कोई बुराई नहीं समझती। बहर-

हाल वे सब आपस में इस रोमांस तथा परिवर्तन के लिए सहमत होते हैं और वे न किसी के साथ छल करते हैं, न किसी को धोखा देते हैं और न ही किसी को कोई हानि या क्षति पहुँचाते हैं। लेकिन मैं मानती हूँ कि ऐसी आदर्श स्थिति कभी-कभार ही हो सकती है। आमतौर पर यह सम्भव नहीं होता कि इस प्रकार के समूह के सभी सदस्य एक ही जैसे विचार तथा भावनाएँ रखते हों और हो सकता है कि वे सेक्स-जीवन में विविधता तथा परिवर्तन का उतने निःसंकोच, उन्मुक्त तथा निष्कपट भाव से आनन्द प्राप्त करने को पसन्द न करते हों।"

अन्त में उसने कहा कि उसका यह दृढ़ मत है कि उसकी पीढ़ी इससे पूर्वगामी पीढ़ियों से अधिक अनैतिक नहीं है, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है और उसकी पीढ़ी के लोगों को अनैतिक केवल इसलिए कहा जाता है कि वे जो कुछ करते हैं उसे स्वीकार कर लेने में, और जो कुछ वे विश्वास करते हैं उसका प्रचार करने में अधिक निःसंकोच, उन्मुक्त तथा ईमानदार होते हैं। उसने कहा, "अब जो कुछ हो रहा है वह पहले भी होता रहता था, लेकिन पहले यह सब कुछ इतने गुप्त रूप से और चोरी-छुपे और सबके सामने बाहरी दिखावे के लिए बहुत भोलेपन तथा मक्कारी की मुद्रा बनाये रखकर किया जाता था कि सब लोग यही समझते थे कि सब ठीक-ठाक है। अब वही सब बातें सबके सामने आवश्यकता से अधिक गम्भीर आचरण तथा अभिवृत्ति का ढोंग किये बिना अधिक खुले ढंग से तथा ईमानदारी के साथ की जा रही हैं और इसलिए लोग शिकायत करते हैं और यह समझते हैं कि आजकल के पुरुषों तथा स्त्रियों का आचरण ठीक नहीं है। मेरी निजी धारणा यह है कि चोरी-छुपे हर प्रकार का काम करते हुए भी मक्कारी से काम लेना और यह जताने की कोशिश करना कि जैसे कुछ किया ही न हो, इससे कहीं अच्छा है कि हर बात को खुलेआम स्वीकार कर लिया जाये।

निष्कर्ष

जिन शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन पहले किया गया था और जिनका अध्ययन दस वर्ष बाद किया गया उनके व्यक्ति-अध्ययनों को देखने पर हमें सेक्स-सम्बन्ध तथा सेक्स-आचरण के विभिन्न पहलुओं के बारे में और सेक्स तथा सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता के बारे में इन स्त्रियों की अभिवृत्तियों में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यद्यपि इन दस वर्षों के दौरान अभिवृत्तियों की विस्तार-सीमाएँ लगभग वही रहीं, एक सिरे पर रूढ़िवादी से दूसरे सिरे पर आमूल परिवर्तनवादी तक और बीच में उदारवादी, फिर भी रूढ़िवादी अभिवृत्तियों वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत-अनुपात भी घट गया था और उनकी अभिवृत्तियों की उग्रता की कुछ कम हो गयी थी, जबकि आमूल परिवर्तन की अभिवृत्तियों वाले उत्तरदाताओं की संख्या बढ़ गयी थी और उनकी अभिवृत्तियों की उग्रता भी अधिक तीक्ष्ण हो गयी थी और उनमें कुछ नयी संकल्पनाओं का भी समावेश हो गया था।

विवाह-पूर्व सेक्स-सम्बन्ध

दस वर्ष के अन्दर ही, वे हदें अथवा सीमाएँ वहुत व्यापक हो गयी थीं, जिनमें श्रमजीवी स्त्रियों के मतों के अनुसार लड़कों तथा लड़कियों को सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। इसका पता इस वात से चलता है कि दस वर्ष पहले ऐसी स्त्रियों की संख्या वहुत अधिक थी जिनका यह विश्वास था कि उनकी राय में लड़कियाँ और लड़के या तो अपने माता-पिता अथवा अभिभावकों, के साथ वाहर जा सकते हैं, या समूह के रूप में एक-दूसरे के साथ मिल सकते हैं और वाहर जा सकते हैं और दूसरों की उपस्थिति में एक-दूसरे से मिल सकते हैं लेकिन एकान्त स्थानों में अकेले नहीं। उनकी अभिवृत्ति नैतिकता के परम्परागत मानदण्ड पर आधारित थी, इसकी पुष्टि मेहता के अध्ययन (1970) से भी होती है, हालाँकि वह अध्ययन पाश्चात्य ढंग से शिक्षित हिन्दू स्त्रियों के वारे में था, शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों के वारे में नहीं। उन्होंने वताया है कि 25 से 45 वर्ष तक के आयु-वर्ग की स्त्रियों में से (जो प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम चरण के समय 25 से 35 वर्ष तक के आयु-वर्ग में रही होंगी) 72 प्रतिशत इस वात के पक्ष में नहीं थीं कि लड़के और लड़कियाँ किसी को साथ लिये विना एक-दूसरे के साथ वाहर जायें। उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी लड़की को किसी पुरुष के साथ अकेले घूमना-फिरना नहीं चाहिए और पुरुषों से मित्रता नहीं वढ़ानी चाहिए, परन्तु उन्हें इस वात में कोई आपत्ति नहीं थी कि वे उनसे अपने घरों पर या दूसरे लोगों की उपस्थिति में मिलें। उनमें से अड़तालीस प्रतिशत लड़कियों की पुरुष-मित्र वनाने की प्रवृत्ति का अनुमोदन नहीं करती थीं और उनका विश्वास था कि यह पुराना दृष्टिकोण कि स्त्रियों को पुरुषों के साथ वहुत खुलना नहीं चाहिए, वुनियादी तौर पर वहुत ठीक था (देखिए मेहता, 1970)।

इस अध्ययन के पूर्ववर्ती चरण में, दस वर्ष पहले ऐसी शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ थीं तो अवश्य जिन्होंने यह मत व्यक्त किया था कि लड़कियाँ और लड़के किसी को साथ लिये विना एक-दूसरे के साथ अकेले जा सकते हैं। वे यह भी समझती थीं कि वे एक-दूसरे का हाथ भी थाम सकते हैं या कभी-कभार माथे पर, गालों पर, हाथों पर और होंठों पर भी चुम्वन कर सकते हैं, पर उस समय उनका प्रतिशत-अनुपात उससे कहीं कम था जितना दस वर्ष वाद पाया गया। सेक्स-सम्वन्धी स्वतन्त्रता की अधिकतम सीमा के वारे में उनकी कल्पना लगभग इसी विन्दु तक सीमित थी। और वहुत थोड़ी, केवल 5 प्रतिशत, ऐसी थीं जिन्होंने दस वर्ष पहले यह कहा था कि विवाह से पहले लड़कों तथा लड़कियों के वीच सेक्स-सम्वन्धी स्वतन्त्रता आवेशपूर्ण चुम्वन तथा आलिंगन तक और सेक्स-संभोग को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार की शारीरिक घनिष्ठता तक हो सकती है, शर्त केवल यह है कि इन क्रियाओं में भाग लेने वाले दोनों व्यक्ति एक-दूसरे से प्रेम करते हों, वे एक-दूसरे से विवाह करने की योजना वना चुके हों या उनकी मँगनी हो चुकी हो।

लेकिन दस वर्ष तक यह संख्या 5 प्रतिशत से वढ़कर 31 प्रतिशत तक पहुँच

चुकी थी और उनकी राय में वह अधिकतम सीमा जहाँ तक विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जा सकती है वह भी और विस्तृत होकर दो प्रौढ़ तथा परिपक्व विचारों वाले व्यक्तियों के बीच, जो इसके लिए सहर्ष तत्पर तथा परस्पर सहमत हों, आवेशपूर्ण चुम्बन तथा आलिंगन तक और सेक्स-संभोग को छोड़कर शारीरिक घनिष्ठताएँ स्थापित करने के विन्दु तक पहुँच गयी है। कुछ थोड़ी-सी, लगभग 5-7 प्रतिशत, ऐसी थीं जो समझती थीं कि यदि दो प्रौढ़ व्यक्ति इसके लिए सहर्ष तत्पर तथा सहमत हों तो उन्हें सेक्स-संभोग तक करने की सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जा सकती है, यदि यह काम केवल एक व्यक्ति-विशेष के साथ किया जाये और हार्दिक प्रेम पर आधारित हो और यदि वे ऐसा करते हुए किसी को हानि न पहुँचा रहे हों या किसी का अनुचित लाभ न उठा रहे हों।

अभिवृत्ति में परिवर्तन का संकेत इस बात से भी मिलता है कि दस वर्षों के दौरान ऐसी स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हुई है जिन्होंने यह कहा कि उनकी राय में अविवाहित स्त्री के लिए विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करना उचित होगा यदि दोनों पक्षों के बीच हार्दिक प्रेम हो, या उनकी आपस में मँगनी हो चुकी हो या वे एक-दूसरे से हार्दिक प्रेम करते हों और आपस में विवाह करने की योजना बना चुके हों, या उस स्थिति में भी जब स्त्री अपने प्रेमी के प्रति निष्ठावान हो और कई पुरुषों के साथ एक ही समय में सेक्स-सम्बन्ध न रखती हो। इससे पता चलता है कि विवाह से पहले अक्षतयोनि रहने के नियम के उल्लंघन को अब सर्वथा निन्दा की दृष्टि से नहीं देखा जाता जैसा कि परम्परागत रूप से किया जाता रहा है और दस वर्ष पहले की तुलना में अब उसे कहीं कम निन्दनीय समझा जाता है। दस वर्ष पहले इन स्त्रियों के बीच सामान्य अभिवृत्ति यह पायी जाती थी कि जब तक स्त्री की मँगनी न हो जाये, और तब भी अत्यन्त विरल परिस्थितियों में ही, तब तक उसे किसी पुरुष को अपना चुम्बन नहीं लेने देना चाहिए। दस वर्ष बाद प्रश्न यह था कि स्त्री कभी-कभार चुम्बन के अतिरिक्त और किस हद तक जा सकती है।

परन्तु श्रमजीवी स्त्रियों के व्यक्ति-अध्ययनों में उनके जो बयान तथा टिप्पणियाँ दी गयी हैं उनसे संकेत मिलता है कि स्वयं अपने आचरण के बारे में उनके विचार उतने उदार नहीं हो पाये हैं जितने कि दूसरों के आचरण के बारे में।

प्रस्तुत अध्ययन में श्रमजीवी स्त्रियों ने जो विचार व्यक्त किये हैं उनसे पता चलता है कि समूह के रूप में भिन्नलिंगी लोगों के मिलने-जुलने के प्रति, कभी-कभार चुम्बन कर लेने और यहाँ तक कि गले लगा लेने या थपक देने आदि तक के प्रति तो उनकी अभिवृत्तियाँ अधिक उदार हो गयी हैं परन्तु व्यभिचार के प्रति उनकी अभिवृत्तियाँ अभी तक रूढ़िवादी तथा पारम्परिक हैं। अमरीका में 1967 में सेवेंटीन नामक पत्रिका ने सेक्स के बारे में किशोर-वयस्क लोगों की अभिवृत्तियों [illegible] किया था उससे भी कुछ इससे मिलते-जुलते ही निष्कर्ष [illegible] में यह देखा गया था कि जिन लड़कियों से प्रश्न पूछे [illegible]

विवाह से पहले सेक्स-संभोग के पक्ष में नहीं था, परन्तु जिन लड़कियों की आयु अधिक थी उनमें यह प्रतिशत-अनुपात गिरता गया था। यह देखा गया कि जैसे-जैसे आयु अधिक होती जाती है वैसे-वैसे सेक्स-सम्बन्धी अनुज्ञात्मकता को स्वीकार करने की प्रवृत्ति भी निरन्तर बढ़ती जाती है। यह कहने वाली लड़कियाँ अल्पमत में थीं कि पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए और जब तक किसी को प्रेम हो तब तक उसके लिए कुछ भी करना उचित है। केवल 25 प्रतिशत लड़कियों ने विवाह से पहले सेक्स-संभोग का अनुमोदन किया, परन्तु वह भी केवल ऐसे युगलों के बीच जिनकी आपस में मँगनी हो चुकी हो, और केवल 9 प्रतिशत से भी कम ने दोनों पक्षों के केवल तत्पर होने पर ऐसा करने का अनुमोदन किया। बहुत थोड़े ही नौजवान लोग ऐसे थे जिन्होंने 'मौज उड़ाने' को सेक्स के मामले में स्वच्छन्द आचरणका न्यायोचित कारण माना, और सेक्स-सम्बन्धी परम्परागत मानदण्डों को बिल्कुल अस्वीकार करनेवाले भी अल्पमत में थे। उनमें से अधिकांश ने निष्ठा तथा प्रेम के उच्च मानदण्डों पर आग्रह किया (देखिये, नेल्सन, 1970, पृष्ठ 39-46)।

इंगलैंड के नौजवानों के बारे में शोफ़ील्ड के अध्ययन (1968) में भी ऐसे ही निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं : 62 प्रतिशत इस कथन से सहमत थे कि 'विवाह से पहले सेक्स-संभोग अनुचित है, जबकि 24 प्रतिशत इस बात से असहमत थे और शेष को अपने विचार व्यक्त करने में कुछ संकोच था। यह अभिवृत्ति इस बात से और भी पुष्ट हो जाती है कि शोफ़ील्ड के अध्ययन में सभी कोटियों में अधिकांश स्त्रियाँ उन लड़कियों के आचरण को उचित नहीं समझती थीं जो विवाह से पहले अपने मँगेतरों के साथ सेक्स-कर्म में भाग लेती हैं।

भारत में विश्वविद्यालयों के छात्रों के बारे में तथा ऐसे लोगों के बारे में जो छात्र नहीं हैं, फोनसेका ने जो अध्ययन किया है उसमें दोनों ही कोटियों में 60 प्रतिशत से अधिक लोगों ने विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्धों का अनुमोदन नहीं किया। उनमें से 14 प्रतिशत ने कहा कि ऐसा करना अत्यन्त अनुचित तथा अनैतिक है। छात्राओं ने और जो स्त्रियाँ छात्र नहीं थीं उन्होंने इसी मत को अधिक आग्रहपूर्वक व्यक्त किया। उन्होंने जिन लोगों से छानबीन की थी उनमें से कुछ स्त्रियों ने कहा, "विवाह में तो सेक्स का समावेश है ही और इस मामले में उचित समय से पहले कोई प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्ध रखने के परिणामस्वरूप सामान्य प्रवृत्ति के लोग नैराश्य अथवा तंत्रिकाताप (न्यूरोसिस) के शिकार हो जाते हैं" या "विवाह से पहले किसी भी प्रकार के सेक्स-सम्बन्ध नहीं। मेरा विश्वास है कि लड़कियों के लिए यह आत्मघातक होता है" (देखिये, फोनसेका, 1966, पृष्ठ 153-155)।

प्रस्तुत अध्ययन में, प्रौढ़ तथा सहमत वयस्कों के बीच विवाह से पहले एक से अधिक स्त्री अथवा पुरुष के साथ मैथुन की अबाध सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता देने का विचार दस वर्ष बाद पहली बार व्यक्त किया गया, और सो भी बहुत अल्पमत की ओर से।

यह बात बहुत आँखें खोल देनेवाली है कि इस प्रश्न के उत्तर में कि "आपकी राय

में वह कौन-सी चीज है जो किसी लड़की को विवाह से पहले किसी ऐसे लड़के के साथ, जिससे वह प्रेम करती हो या जिसके साथ विवाह करनेवाली हो, सेक्स-कर्म करने से रोकती है या उसमें संकोच पैदा कर देती है ?" दस वर्ष पहले 70-75 प्रतिशत श्रम-जीवी स्त्रियों ने अपना मत इन उत्तर-कोटियों के रूप में व्यक्त किया था : 'उसके अपने सिद्धान्त तथा नैतिक मानदण्ड', 'सामाजिक प्रथाओं तथा नियमों का सम्मान', 'गर्भाधान का भय', 'यह विश्वास कि लड़की को विवाह के समय तक अक्षतयोनि रहना चाहिए', 'परिवार के नाम पर कलंक लगने का भय', 'लोकमत का भय', और 'स्वयं अपनी दृष्टि में प्रतिष्ठा खो देने का भय'। दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियों की संख्या बढ़ गयी थी जिन्होंने अपना मत इन उत्तर-कोटियों के रूप में दिया : 'अनुचित लाभ उठाये जाने का भय', 'पुरुष की दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा खो देने का भय', 'प्रेमी को खो देने का भय', और 'स्वयं अपने नाम पर कलंक लगने का भय'। और विशेष रूप से उन स्त्रियों की संख्या घट गयी थी जिन्होंने इनके कारण ये बताये : 'उसके अपने सिद्धान्त', 'यह विश्वास कि लड़की को अक्षतयोनि रहना चाहिए', 'गर्भाधान का भय' और 'आत्म-प्रतिष्ठा खो देने का भय'।

इससे पता चलता है कि दस वर्ष बाद पहले की अपेक्षा अधिक श्रमजीवी स्त्रियाँ यह सोचने लगी थीं कि स्वयं अपने सिद्धान्त तथा नैतिक मानदण्ड या यह विश्वास कि विवाह के समय तक लड़की को अक्षतयोनि रहना चाहिए या गर्भाधान का भय विवाह से पहले सेक्स-अनुभव से दूर रहने का उतना अधिक कारण नहीं है, जितनी कि यह आशंका कि प्रेमी शायद उससे प्रेम करना या उसे सम्मान की दृष्टि से देखना छोड़ दे और यदि वह उसके साथ सेक्स-अनुभव प्राप्त करे तो वह उसके साथ विवाह ही करने से इन्कार कर दे। आशंका की इस अभिवृत्ति की झलक इस बात में भी दिखायी देती है कि दस वर्ष बाद भी वे इस प्रस्थापना से उतनी ही अधिक सहमत थीं कि अधिकांश लड़के अब भी ऐसी लड़की से विवाह करना चाहते हैं जो अक्षतयोनि हो। इससे संकेत मिलता है कि वे अपने विचारों में नैतिकतावादी कम हो गयी हैं और हानि-लाभ का ध्यान अधिक रखने लगी हैं।

फिर भी उनमें से अधिकांश पर नैतिकता के परम्परागत मानदण्डों का शिकंजा काफी मजबूती से जकड़ा हुआ है। शिक्षित भारतीय युवजन की अभिवृत्तियों के अपने अध्ययन के आधार पर हेलेन ने भी इसी प्रकार के निष्कर्ष निकाले हैं; इस अध्ययन में उसने देखा कि 85 प्रतिशत पुरुष तथा 79 प्रतिशत स्त्रियाँ यही चाहती हैं कि जिस व्यक्ति से वे विवाह करें वह 'अक्षतयोनि अथवा अक्षतवीर्य' हो। (देखिये हेलेन, 1966, पृष्ठ 9-10)।

उनके व्यक्ति-अध्ययनों में प्रस्तुत किये गये तथ्यों का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुल मिलाकर, विवाह से पहले पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों ही के सेक्स-सम्बन्धों के प्रति शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ दस वर्ष बाद अधिक सापेक्षता की द्योतक हो गयी थीं।

विवाह की परिधि में सेक्स-सम्बन्ध

विवाहित जीवन में स्त्रियों के लिए सेक्स के महत्त्व के बारे में और उसके साथ ही विवाह की परिधि में सेक्स का आनन्द प्राप्त करने की उनकी क्षमता तथा उनके अधिकार के बारे में भी शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ अधिक सजग हो गयी हैं। इसका संकेत इस बात से मिलता है कि इन कथनों से सहमति प्रकट करनेवाली स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 38 और 43 प्रतिशत के बीच से बढ़कर 59 और 65 प्रतिशत के बीच तक पहुँच गया था : 'स्त्रियों के लिए सेक्स-विवाह का एक महत्त्वपूर्ण अंग है', 'विवाह को सफल बनाने के लिए सन्तोषप्रद सेक्स-सम्बन्धों का बहुत महत्त्व है', 'सेक्स की परिधि के अन्दर पति तथा पत्नी दोनों ही सेक्स-तुष्टि अनुभव करने की समान क्षमता रखते हैं', 'पति तथा पत्नी दोनों ही को विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स का आनन्द प्राप्त करने तथा सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने का समान अधिकार है', 'विवाहित जीवन में सेक्स-सम्बन्धों के मामले में पति तथा पत्नी दोनों ही को समान रूप से एक-दूसरे की सुख-सुविधा का ध्यान रखना चाहिए, एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए तथा धैर्य से काम लेना चाहिए', 'पति तथा पत्नी दोनों ही को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि विवाहित जीवन में दूसरे पक्ष को भी सेक्स-सन्तोष प्राप्त हो'।

इस परिवर्तन का संकेत इस बात में भी मिलता है कि एक ओर तो ऐसी स्त्रियों की संख्या काफी घट गयी है जो यह समझती थीं कि विवाह की परिधि के अन्दर भी सेक्स-सम्भोग में संयम रहना चाहिए और दूसरी ओर ऐसी स्त्रियों की संख्या काफी बढ़ गयी है जो यह समझती हैं कि विवाहित जीवन में जितनी बार भी जी चाहे या परस्पर सहमति हो, सेक्स-सम्भोग किया जा सकता है। इस प्रकार की स्त्रियाँ विवाहित जीवन में एकतरफ़ा सेक्स के विचार का या केवल पति की सन्तुष्टि तथा सुख के लिए सेक्स के विचार का भी अनुमोदन नहीं करती थीं।

विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने के अपने अधिकार के बारे में उनकी बढ़ती हुई चेतना की और अधिक पुष्टि प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका द्वारा किये गये एक और अध्ययन **विवाह और भारत की श्रमजीवी नारी** (कपूर, 1970) के निष्कर्षों से भी होती है। उस अध्ययन में लेखिका ने यह देखा कि जिन स्त्रियों के पति यह सोचते तथा विश्वास करते थे कि सेक्स-क्रिया एकतरफ़ा मामला होती है और उसे केवल पति की इच्छा के अनुसार और केवल उसी के लिए किया जाता है, उनकी प्रतिक्रिया बहुत आक्रोशमय थी। वे स्त्रियाँ ऐसे पतियों से भी बहुत अप्रसन्न रहती थीं जिन्हें केवल अपनी सेक्स-सन्तुष्टि की चिन्ता रहती थी और जो इस बात का ध्यान रखना अपना दायित्व नहीं समझते थे कि पत्नी की मानसिक तथा शारीरिक दशा इसके लिए उपयुक्त है और उसे भी इसकी कामना हो रही है तथा वह भी इससे आनन्द प्राप्त कर रही है और यह कि उसे भी विवाहित जीवन में सेक्स-सम्भोग से सन्तोष मिल रहा है।

विवाह के प्रति बम्बई में विश्वविद्यालय की छात्राओं की अभिवृत्तियों के एक अध्ययन में यह देखा गया कि विवाहित जीवन को सुखी बनानेवाले तत्त्वों में

सेक्स-सन्तुष्टि का स्थान पाँचवाँ था। उस अध्ययन से पता चलता है कि हिन्दू लड़कियाँ सेक्स-सन्तुष्टि को सुखी जीवन की एक प्राथमिक शर्त नहीं मानती हैं। ये संकल्पनाएँ विवाहित जीवन में त्याग तथा निष्ठा के हमारे परम्परागत विचारों के अनुकूल हैं (शरयु वाल तथा वानारसे, 1966, पृष्ठ 26 तथा 30)। परन्तु लेखिका के प्रस्तुत अध्ययन में परवर्ती समूह की अधिकांश श्रमजीवी स्त्रियों ने विवाहित जीवन को सफल बनाने के लिए सन्तोषप्रद सेक्स-सम्बन्धों को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बताया। इन दोनों अध्ययनों के बीच लगभग पाँच वर्ष का अन्तराल होने के कारक के अतिरिक्त दोनों के निष्कर्षों में इस असमानता का मुख्य कारण यह है कि एक अध्ययन छात्राओं का है और दूसरा श्रमजीवी स्त्रियों का। छात्रों के बीच सुखी तथा सफल विवाहित जीवन की रोमांटिक संकल्पनाओं का प्रचलन अधिक रहता है, जिनमें भौतिक सुख-सुविधाओं तथा सेक्स-संतुष्टि जैसे वस्तुनिष्ठ विचारों को बहुत प्रमुख स्थान नहीं दिया जाता। वे वस्तुतः विवाहित जीवन प्रेम तथा स्वच्छ हवा के सहारे व्यतीत कर देने के स्वप्न देखती रहती हैं, और उनके लिए विवाह में सेक्स का बहुत अधिक महत्त्व नहीं होता जबकि श्रमजीवी स्त्रियों में, जो अधिक अनुभवी तथा व्यवहारकुशल होती हैं, और जो विवाह को अधिक यथार्थ दृष्टि से देखती हैं, सफल तथा सुखी विवाहित जीवन के बारे में कम रोमांटिक संकल्पनाओं का प्रचलन पाया जाता है और वे विवाहित जीवन में सेक्स-सन्तुष्टि को अधिक महत्त्व देती हैं।

विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध

नृवेत्ता बताते हैं कि आदिम पति आतिथ्य-भाव का परिचय देने के लिए अपनी पत्नी को सहर्ष सेक्स-क्रिया में सहचारिणी के रूप में अपने अतिथि को कुछ समय के लिए दे देता था। परन्तु सभ्य समाज में यदि किसी पति को यह पता चले कि किसी दूसरे पुरुष ने उसकी पत्नी को इस्तेमाल किया है या सेक्स-क्रिया में वह किसी दूसरे पुरुष की सहचारिणी रही है तो उसकी प्रतिक्रिया बहुत प्रतिकूल और अनेक बार, अत्यन्त उग्र होती है। समान क्रिया अथवा आचरण की ओर प्रतिक्रियाओं में यह परिवर्तन उस क्रिया-विशेष के प्रति समाज की अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों के कारण होता है।

जैसा कि व्यक्ति-अध्ययनों की सहायता से प्रस्तुत अध्ययन में इतनी अच्छी तरह बताया गया है और दृष्टान्त देकर समझाया गया है, एक दशाब्दी की अवधि के अन्दर ही विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्धों के प्रति शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में एक स्पष्ट परिवर्तन हुआ है। दस वर्ष पहले इनमें से अधिकांश स्त्रियाँ इस बात की दृढ़ विरोधी थीं कि कोई स्त्री विवाह की परिधि के बाहर मैथुन करे, हालाँकि पुरुष के मामले में वे इसी प्रकार के आचरण की न समर्थक थीं न विरोधी। उनका विश्वास था कि "स्त्री को किसी भी परिस्थिति में ऐसा नहीं करना चाहिए" और यह कि "विवाहित स्त्री का किसी भी परिस्थिति में ... के बाहर

मैथुन करना उचित नहीं है।" उनमें से अधिकांश ने, 80 से 85 प्रतिशत तक ने, यह कहा कि यदि वे संयोगवश विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्भोग करें तो वे बहुत अपराधी अनुभव करेंगी और यह कि वे इसकी आशा नहीं करेंगी कि उनके पति को यदि इसका पता चल जाये तो वे उन्हें क्षमा कर देंगे।

सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता की सीमाओं के बारे में भी, जो उनके अनुसार विवाहित स्त्रियों तथा पुरुषों को अपने पति अथवा पत्नी के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के साथ दी जानी चाहिए या दी जा सकती है, दस वर्ष पहले अधिकांश स्त्रियों का यह मत था कि उन्हें समूह के रूप में, पार्टियों में या अपने पति के साथ भिन्नलिंगी व्यक्तियों से मिलने-जुलने की अनुमति दी जानी चाहिए, या यदि उन्हें किसी सामाजिक अथवा सरकारी समारोह में भाग लेने के लिए जाना हो तो वे अपने पति की अनुमति से किसी दूसरे पुरुष के साथ बाहर जा सकती हैं। इसकी अधिकतम सीमा के बारे में उनका सुझाव यह था कि यदि उनके बीच हार्दिक प्रेम हो तो वे एक-दूसरे का हाथ थाम सकते हैं और कभी-कभार चुम्बन तथा आलिंगन कर सकते हैं।

दस वर्ष बाद भी यद्यपि अधिकांश, 69 प्रतिशत, श्रमजीवी स्त्रियों ने सामान्यतः इस बात का समर्थन नहीं किया कि कोई स्त्री विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-मैथुन करे, परन्तु ऐसी स्त्रियों की संख्या घट गयी थी जिनका विश्वास यह हो कि "विवाहित स्त्री को किसी भी परिस्थिति में ऐसा नहीं करना चाहिए" और यह कि "विवाहित स्त्री के लिए किसी भी परिस्थिति में विवाह की परिधि के बाहर मैथुन करना उचित नहीं है।" दूसरी ओर उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात 11 से बढ़कर 31 हो गया था, जो यह समझती थीं कि आत्मपरक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ आवश्यकता-तुष्टि की परिस्थितियों में विवाहित स्त्री के लिए विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्भोग करना उचित हो सकता है और वह वस्तुतः ऐसा कर सकती है। और ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात भी 20 से बढ़कर 55 हो गया था, जिनका यह कहना था कि यदि वे किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी दूसरे पुरुष के साथ सम्भोग करें तो वे अपने पति से आशा रखेंगी कि वे उन्हें क्षमा कर दें।

इंगलैण्ड और अमरीका में नौजवान लोगों या शिक्षित स्त्रियों के सम्बन्ध में किये गये अन्य अध्ययन यद्यपि भारतीय सामाजिक प्रसंग से प्रत्यक्षरूप से सम्बन्धित नहीं हैं, फिर भी यह माना जा सकता है कि उनके निष्कर्षों में उन पाठकों को बहुत दिलचस्पी होनी चाहिए जो सारी दुनिया के नौजवानों की अभिवृत्तियों के बारे में जानना चाहते हैं। शोफ़ील्ड के अध्ययन (1968) में यह देखा गया कि इंगलैण्ड के अधिकांश नौजवान लोग विवाहेतर सम्बन्धों का अनुमोदन न करने की अभिवृत्ति रखते हैं। अमरीका में शिक्षित स्त्रियों के सेक्स-जीवन के अपने अध्ययन (1929) में डेविस ने अपने उत्तरदाताओं से पूछा था कि क्या "विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्भोग किया जाना चाहिए"। जिन 955 विवाहित स्त्रियों ने इस प्रश्न का उत्तर दिया था उनमें से 63·4 प्रतिशत ने बिना कोई शर्त लगाये स्पष्ट 'नहीं' के रूप में

उत्तर दिया, जबकि एक प्रतिशत से कुछ ही कम स्त्रियों ने कहा कि विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्भोग किया जा सकता है, और 12·6 प्रतिशत स्त्रियों ने केवल कुछ शर्तों के साथ इसे उचित ठहराया (देखिये घुर्ये, 1956, पृष्ठ 2)। प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों से यह पता चलता है कि उस समय अमरीका में शिक्षित स्त्रियों में जो अभिवृत्ति उस समय उभर रही थी वही लगभग पाँच दशाब्दी बाद अब शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों की अभिवृत्ति में उभरती हुई प्रवृत्ति बन गयी है।

इस अध्ययन के दूसरे चरण में दस वर्ष बाद ऐसी स्त्रियाँ पायी गयीं, हालाँकि वे बहुत ही थोड़ी संख्या में थीं—केवल 19 प्रतिशत—जिन्होंने यह कहा कि यदि वे विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करें तो वे अपराधी अनुभव नहीं करेंगी, शर्त केवल यह है कि उनके तथा उनके सहचारियों के बीच सच्चा प्रेम हो और यह काम पारस्परिक अनुमति से किया जाये।

इसके बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए कि विवाहित लोगों को विवाह की परिधि के बाहर सेक्स के मामले में अधिकतम किस सीमा तक स्वतन्त्रता दी जाये, अधिकांश उत्तरदाताओं ने दस वर्ष बाद भी उसी सीमा का सुझाव दिया जो उन्होंने पहले दिया था, फिर भी ऐसे उत्तरदाताओं की संख्या काफी बढ़ गयी थी जिनका विचार यह था कि विवाहित लोगों के मामले में विवाह की परिधि के बाहर कभी-कभार चुम्बन तथा आलिंगन की सीमा तक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए, और ऐसी स्त्रियों की संख्या काफी घट गयी थी जिनका यह विश्वास था कि विवाह की परिधि के बाहर भिन्नलिंगी व्यक्तियों के बीच प्रायः कोई भी सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए।

दस वर्ष बाद जो एक और परिवर्तन देखा गया वह यह था कि कुछ स्त्रियों ने, अलबत्ता उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी, इस प्रकार के साहसपूर्ण विचार भी व्यक्त किये कि विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्भोग को छोड़कर हर प्रकार की शारीरिक घनिष्ठता स्थापित करने की सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए; "विवाहित स्त्री को विवाह की परिधि के बाहर केवल एक और पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध रखने की अनुमति दी जानी चाहिए, यदि वह उसका सच्चा प्रेमी हो और दोनों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम तथा सम्मान की समान भावना हो", और यह कि "विवाहित स्त्री को विवाह की परिधि के बाहर एक से अधिक पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध रखने की अनुमति होनी चाहिए, यदि वह ऐसा करने की इच्छा रखती हो और इसे सर्वथा उचित समझती हो।"

ऊपर बताये गये सभी तथ्यों से यह बात प्रमाणित होती है कि विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्धों के प्रति हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ दस वर्ष पहले की तुलना क्रमशः कम पारम्परिक तथा कमकठोर होती जा रही हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे अनुज्ञात्मकता की या विवाह की परिधि के बाहर भिन्नलिंगी व्यक्तिय शारीरिक घनिष्ठताओं पर आपत्ति न करने की नयी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती ज

सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता के परिणाम पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए अधिक गम्भीर हो सकते हैं और यह कि इसमें स्त्री की ख्याति, सम्मान तथा आत्म-प्रतिष्ठा का अधिक ह्रास होने की आशंका रहती है। इससे संकेत मिलता है कि अभी तक अनुज्ञात्मकता को इनमें से अधिकांश स्त्रियों की स्वीकृति तथा अनुमोदन प्राप्त नहीं है।

उनके इस प्रत्यक्ष ज्ञान में कि समाज में अब भी पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता के दो अलग-अलग मानदंड हैं, प्राय: कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि दोनों ही समयों पर लगभग समान संख्या में स्त्रियों ने इन कथनों से अपनी सहमति प्रकट की : 'जब सेक्स का सवाल आता है तो स्त्रियों के लिए एक मानदंड बरता जाता है और पुरुषों के लिए दूसरा', 'यदि पुरुष तथा स्त्री दोनों ही विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध रखें तो लोग पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक दुराचारी समझते हैं', और यह कि 'अधिकांश लड़के ऐसी लड़की से विवाह करना चाहते हैं जो अक्षतयोनि हों'।

नैतिकता का यह दोहरा मानदंड भारत में ही नहीं बल्कि अन्य कई समाजों में भी पाया जाता है। विभिन्न विद्वानों के अध्ययनों पर अपने अभिमत आधारित करते हुए स्टीफ़ेंस लिखते हैं :

> बहुत-से समाजों में सेक्स-सम्बन्धी प्रतिबन्ध पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए अधिक कठोर हैं। नमूनों के तौर पर चुने गये तेरह समाजों में विवाह-पूर्व सेक्स-प्रतिबन्धों का आघात लड़कों की अपेक्षा लड़कियों पर अधिक भारी होता है।...किसी भी समाज के सम्बन्ध में यह नहीं बताया गया कि उसमें विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्धी प्रतिबन्ध स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के लिए अधिक कठोर थे। इसी प्रकार, मुझे किसी ऐसे समाज की जानकारी नहीं है जिसमें परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन पर स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के लिए अधिक कठोर प्रतिबन्ध हों। इसके विपरीत, आठ समाजों के उदाहरण ऐसे थे जिनमें पुरुषों के लिए परस्त्री-गमन की छूट थी, परन्तु स्त्री से पतिव्रता रहने की आशा की जाती थी।...दो अन्य उदाहरणों में, अन्यगमन-सम्बन्धी नियम पतियों की अपेक्षा पत्नियों के लिए अधिक कठोर प्रतीत होते हैं।...इरा राइस ने पश्चिमी समाज के पूरे इतिहास के दौरान निरन्तर दोहरे मानदंड प्रच-लित रहने का ब्यौरा अंकित किया है (राइस, 1960)। मध्ययुगीन काल में स्त्रियों पर अधिक कठोर प्रतिबन्ध ही नहीं लगाये गये थे; सेक्स को स्त्रियों का 'दोष' माना जाता था (स्टीफ़ेंस, 1963, पृष्ठ 290)।

प्रस्तुत अध्ययन में दस वर्ष के दौरान जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया वह यह था कि समाज में जो दोहरा मानदंड प्रचलित था उसे चुनौती देनेवाली स्त्रियों की संख्या पहले की अपेक्षा कहीं अधिक हो गयी थी। इसका प्रमाण इस तथ्य में मिलता है कि उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात, जो इन कथनों से असहमत थीं 39 और 48 के

बीच से बढ़कर 65 और 69 के बीच तक पहुँच गया : 'विवाह से पहले सेक्स-अनुभव पुरुषों के लिए तो ठीक है पर स्त्रियों के लिए नहीं', 'विवाह की परिधि से बाहर संभोग से दूर रहना स्त्री के लिए महत्वपूर्ण है पर पुरुष के लिए नहीं', और 'पत्नी का पर-पुरुषगमन पति के परस्त्रीगमन से अधिक गम्भीर अपराध है'। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अमरीका में लगभग चार दशाब्दी पहले एक बहुत बड़े पूर्वी विश्वविद्यालय के निकाय द्वारा अभिवृत्तियों के सम्बन्ध में किये गये अध्ययन में 69 प्रतिशत स्त्रियों ने दृढ़तापूर्वक कहा कि कोई भी ऐसा काम नहीं है जो पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए अधिक बुरा हो (देखिये काट्ज तथा आलपोर्ट, 1931)। यह प्रतिशत-अनुपात लगभग उतना ही था जितना कि लगभग चालीस वर्ष बाद प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका ने शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों के वर्तमान अध्ययन में पाया।

यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन में अधिकांश स्त्रियों ने यह कहा कि विवाह से पहले सेक्स-क्रिया से दूर रहना एक वांछनीय गुण है, विशेष रूप से स्त्रियों के लिए, परन्तु पहले की अपेक्षा कम स्त्रियों ने यह कहा कि पुरुषों के लिए इसकी छूट है। लगभग दस वर्ष पहले कार्नेल विश्वविद्यालय की कालेज छात्राओं के सम्बन्ध में भी ऐसे ही निष्कर्ष पाये गये थे। (देखिये, गोल्डसेन तथा अन्य, 1960, पृष्ठ 94)। इससे दोहरे मान-दंड की वैधता की अधिक अस्वीकृति का पता चलता है। श्रमजीवी स्त्रियों में दोहरा मानदंड निर्धारित करने की प्रवृत्ति दस वर्ष पहले कहीं अधिक पायी जाती थी और एक दशाब्दी बाद वह बहुत कम हो गयी थी।

चुनौती देने की बढ़ती हुई अभिवृत्ति के उभरने का संकेत इस बात में भी मिलता है कि उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बढ़ गया था जिनका यह विश्वास था कि 'पति का परस्त्रीगमन उतनी ही गम्भीर बात है जितनी कि स्त्री का परपुरुषगमन' और यह कि 'यदि पति किसी दूसरी स्त्री के साथ या पत्नी किसी दूसरे पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करे तो दूसरे पक्ष को उसे क्षमा कर देना चाहिए'। फ्रांसीसी लोकमत संस्थान की ओर से आयोजित एक अध्ययन में भी इसी प्रकार के निष्कर्ष पाये गये थे, जिसके अनुसार फ्रांस की हर तीन स्त्रियों में से दो का यह मत था कि अपने पति अथवा अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष अथवा स्त्री के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्था-पित करना दोनों ही पक्षों के लिए समान रूप से गम्भीर दोष है (रैमी तथा वूग, 19

होगा जब उसका पति परस्त्रीगामी हो या उसके प्रति निष्ठावान न हो या यदि वह उससे प्रेम न करता हो अथवा उसकी चिन्ता न करता हो, या यदि उस स्त्री का विवाहित जीवन विफल हो। इस परिवर्तन का संकेत उन स्त्रियों की संख्या में वृद्धि से भी मिलता है जिनका मत यह था कि वे विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्ध रखनेवाली स्त्री को भी उतना ही क्षम्य समझेंगी जितना कि पुरुष को, हालाँकि उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात कहीं अधिक था जिन्होंने यह कहा कि स्त्री के मामले में वे 'इसे बर्दाश्त कर लेंगी' और पुरुष के मामले में उन्हें 'इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी'।

नौजवान लोगों के सेक्स-व्यवहार के बारे में शोफ़ील्ड के अध्ययन (1968) से प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों की पुष्टि होती है, यद्यपि वह अध्ययन एक भिन्न सांस्कृतिक प्रसंग में किया गया था। उनके अध्ययन में अधिकांश स्त्रियों ने उस दोहरे मानदंड का विरोध किया जिसमें विवाह से पहले लड़कों के लिए तो सेक्स-अनुभव की अनुमति होती है पर लड़कियों के लिए नहीं। फ्रांसीसी स्त्रियों से सम्बन्धित एक और अध्ययन में (रेमी तथा वूग, 1964) केवल अल्पमत ही नैतिकता के दोहरे मानदंड को स्वीकार करने के पक्ष में था। उदाहरण के लिए जिन स्त्रियों से साक्षात्कार किया गया उनमें से केवल 33 प्रतिशत यह समझती थीं कि पत्नी का किसी दूसरे पुरुष के साथ सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करना पति के किसी अन्य स्त्री के साथ सेक्स-सम्बन्ध रखने की अपेक्षा अधिक गम्भीर बात है, जबकि उनमें से दो-तिहाई स्त्रियों का यह मत था कि यह दोनों पक्षों के लिए समान रूप से गम्भीर बात है।

नैतिकता के वर्तमान दोहरे मानदण्ड की निन्दा करने के साथ ही, अब उन श्रमजीवी स्त्रियों की संख्या भी पहले से कम होती जा रही है जो विवाह से पहले सेक्स-सम्भोग के प्रति कठोर रवैया रखती हैं। उन स्त्रियों के प्रति जिनसे अपने अज्ञान के कारण, मजबूरी में या असाधारण परिस्थितियों तथा दशाओं में सामाजिक मानदण्डों अथवा प्रचलनों का उल्लंघन हो जाता है, अपने रवैये में वे अधिक सहिष्णुता, नमनीयता तथा उदारता का परिचय देती हैं, और उनकी इतनी अधिक निन्दा नहीं करतीं। सहिष्णुता तथा उदारता की यह अभिवृत्ति 20 से 40 वर्ष तक की हर आयु की स्त्रियों में पायी जाती है। इसका प्रमाण उन स्त्रियों के प्रतिशत-अनुपात में काफी वृद्धि में मिलता है जिन्होंने यह बताया कि वे उस स्त्री को क्षम्य समझेंगी या उस पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी जिसके अवैध रूप से गर्भ ठहर जाये या उसे भी जिसके विवाह से पहले सेक्स-सम्बन्ध रह चुके हों, और ऐसी स्त्री से उन्हें सहानुभूति होगी या उस पर वे तरस खायेंगी जो केवल आर्थिक अभाव के कारण अपना कौमार्य अथवा सतीत्व नष्ट कर दे। ऊपर बताये गये पहलुओं के प्रति उनकी सहिष्णुता का संकेत इस बात में भी मिलता है कि ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बहुत घट गया है जो यह महसूस करती या सोचती हैं कि वे उन परिस्थितियों अथवा दशाओं अथवा दबावों की ओर कोई ध्यान दिये बिना जिनके अन्तर्गत यह कर्म किया गया हो, वे ऐसी स्त्री की निन्दा करेंगी, या उसका उपहास करेंगी या उससे घृणा करेंगी। अधिक सहिष्णुता

तथा उदार अभिवृत्ति का परिचय इस बात में भी मिलता है कि उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बहुत कम हो गया है (80 से घटकर 41 प्रतिशत) जिनका मत यह है कि "किसी स्त्री का विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध रखना, कभी भी उचित नहीं हो सकता", और इसके साथ ही उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात बढ़ गया है जिनका मत यह है कि कुछ परिस्थितियों तथा दशाओं में उसका ऐसा करना उचित माना जा सकता है। नियम-भंग करनेवाली स्त्रियों के प्रति ही नहीं बल्कि इस प्रकार के पुरुषों के प्रति भी रवैया अधिकाधिक सहिष्णु होता जा रहा है। कभी-कभी अपनी पत्नी के प्रति निष्ठा को भंग करनेवाले पतियों के प्रति भी काफी सहिष्णुता की अभिवृत्ति का परिचय दिया जाता है। इसका प्रमाण इस बात में मिलता है कि दस वर्ष बाद उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात काफी कम हो गया था, जो पति के एक बार भी परस्त्रीगमन को उससे अलग हो जाने या उससे तलाक़ ले लेने के लिए पर्याप्त आधार समझती थीं।

इन सब बातों से यही पता चलता है कि सेक्स के प्रति, विविधतापूर्ण सेक्स-व्यवहार के प्रति तथा सेक्स के मामले में स्वतन्त्रता के प्रति वे उत्तरोत्तर बढ़ती हुई स्वीकृति, सहिष्णुता तथा सहनशीलता की अभिवृत्ति के पक्ष में हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में सेक्स तथा सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता के प्रति इस बदलती हुई अभिवृत्ति का चरम रूप यद्यपि बहुत ही थोड़ी स्त्रियों में पाया गया, परन्तु उसकी लाक्षणिक विशेषता यह थी कि उसके पीछे सेक्स-व्यवहार से सम्बन्धित वर्तमान सामाजिक मानदण्डों तथा प्रचलित नियमों को चुनौती देने की भावना थी। उनके विचारों, उनकी भावनाओं तथा उनके आचरण के ढंग में उभरती हुई नयी प्रवृत्तियों में चुनौती की यह भावना देखी गयी। इनमें से एक प्रवृत्ति का संकेत इस कथन से उनकी सहमति में मिलता है कि "हर व्यक्ति को इस बात का निर्णय स्वयं करना चाहिए कि उसके लिए क्या उचित है और क्या अनुचित", और उनके इस विश्वास में कि "दो परस्पर सहमत प्रौढ़ व्यक्तियों के बीच सेक्स-भोग में हर चीज़ ठीक है या कुछ भी अनुचित नहीं है यदि उससे किसी को हानि न पहुँचती हो और यह कि पुरुष तथा स्त्री दोनों ही के लिए उनका सेक्स-जीवन तथा उनका सेक्स-आचरण उनका व्यक्तिगत तथा निजी मामला होता है, और जब तक सम्बन्धित पक्ष परस्पर सहमति से इसमें भाग लें और उसमें किसी का अनुचित लाभ न उठाया जा रहा हो, या किसी को हानि न पहुँच रही हो, तब तक किसी को उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए और न ही उसमें हस्तक्षेप करना चाहिए।" इस उभरती हुई प्रवृत्ति में सेक्स-सम्बन्धों में नैतिकता के बारे में रसेल की उस संकल्पना की काफी प्रतिध्वनि मिलती है जिसमें यह प्रस्थापना की गयी है, "सेक्स-सम्बन्धों में अन्धविश्वास से मुक्त नैतिकता का अर्थ मूलतः होता है दूसरे पक्ष के लिए सम्मान, और उस पुरुष अथवा स्त्री को उसकी इच्छाओं की ओर ध्यान दिये बिना उसे केवल वैयक्तिक-तुष्टि के लिए एक साधन के रूप में इस्तेमाल करने के लिए तत्पर न होना" (रसेल, 1959, पृष्ठ 103)।

इस बात का समर्थन करने की अभिवृत्ति अपनाने में कि हर स्त्री अथवा पुरुष इस बात का निर्णय स्वयं करे कि उसके लिए क्या उचित है और क्या अनुचित, ऐसा लगता है कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ अमरीका के नौजवानों की विचारधारा से प्रभावित हुई हैं। शोफ़ील्ड द्वारा नौजवानों के सेक्स-व्यवहार के सम्बन्ध में किये गये एक अध्ययन (1968) में यह देखा गया कि जिन नौजवानों का अध्ययन किया गया था उनमें से 84 प्रतिशत इस विचार से सहमत थे कि "हर व्यक्ति को इस बात का निर्णय स्वयं करना चाहिए कि क्या उचित है और क्या अनुचित", और केवल 11 प्रतिशत इस बात से असहमत थे।

जिन श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन किया गया, उनमें जो एक और प्रवृत्ति प्रबल होती हुई पायी गयी वह यह थी कि वे यह सोचने लगी हैं कि "विवाह से पहले, विवाह की परिधि के अन्दर और विवाह की परिधि के बाहर सेक्स का आनन्द प्राप्त करने या सेक्स-तुष्टि प्राप्त करने का पुरुषों तथा स्त्रियों को समान अधिकार है।" सेक्स के इन पहलुओं के बारे में—विवाह से पहले, विवाह की परिधि में और विवाह की परिधि के बाहर—उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों पर अलग से विस्तार-पूर्वक चर्चा की जा चुकी है।

एक और उभरती हुई नयी प्रवृत्ति, हालाँकि यह भी दस वर्ष बाद भी बहुत थोड़ी ही स्त्रियों में ही पायी गयी, यह है कि वे विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करनेवाली स्त्री को दुराचारिणी नहीं समझती हैं। इस बात का पता स्त्रियों के आगे दिये गये बयानों से चलता है, हालाँकि ये बाद वाले नमूने की केवल थोड़ी ही-सी स्त्रियों के—केवल 29 प्रतिशत के—बयान हैं, "अगर मैं विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर किसी से सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करूँ तो मैं अपराधी अनुभव नहीं करूँगी, शर्त केवल यह है कि उस पुरुष से मुझे प्रेम हो, या यह सम्बन्ध सच्चे तथा हार्दिक प्रेम और पारस्परिक सम्मान पर आधारित हो, या यदि यह काम कोई अनुकम्पा अथवा लाभ प्राप्त करने के लिए नहीं किया गया हो। दस वर्ष पहले कहीं अधिक संख्या में सूचना देनेवाली स्त्रियों ने लेखिका का इसलिए लगभग अपमान किया था कि उनके विचार में जो प्रश्न उनसे पूछे जा रहे थे, वे उनके चरित्र पर लांछन लगाते थे और उन्होंने ज़ोर देकर यह बात कही थी कि वे विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्धों की कल्पना भी नहीं कर सकतीं।

एक और अनोखी प्रवृत्ति, जो इस अध्ययन के दूसरे चरण में देखी गयी वह थी सेक्स, सेक्स-सम्बन्धी साहित्य तथा सेक्स-सम्बन्धी गतिविधियों में उनकी बढ़ती हुई दिलचस्पी। इस बात का पता इससे चलता है कि उन्हें विभिन्न प्रकार की सेक्स-क्रियाओं तथा सेक्स-सम्बन्धों को व्यक्त करनेवाली पारिभाषिक शब्दावली की अधिक गहरी जान-कारी थी। उदाहरण के लिए, अब पहले की अपेक्षा अधिक स्त्रियाँ यह जानती थीं कि 'नेकिंग' का अर्थ होता है चुम्बन करना, अपने सहभोगी के गले में बाँहें डालना या गर्दन से ऊपर शरीर के किसी भाग से शारीरिक सम्पर्क स्थापित करना, और

'पैटिंग' का अर्थ होता है दो व्यक्तियों के शरीर के गर्दन के नीचे के अंगों के बीच सेक्स-सम्भोग को छोड़कर और किसी भी प्रकार का शारीरिक सम्पर्क स्थापित करना, और यह कि इसमें भरपूर चुम्बन करना, कपड़े पहने हुए या कपड़े उतारकर सेक्स-अंगों सहित शरीर के किसी भी भाग को बड़ी घनिष्ठता से इतना सहलाना, जिसके फलस्वरूप, आवश्यक रूप से नहीं, रति-निष्पत्ति हो जाये, परन्तु निश्चित रूप से इसमें मैथुन शामिल नहीं है। सेक्सटन ने इसकी व्याख्या इन शब्दों में की है, " 'पैटिंग' दो (या अधिक) व्यक्तियों के बीच (जो समलिंगकामी हों या विलिंगकामी) इच्छा-पूर्वक स्थापित किये गये कामोद्दीपक शारीरिक सम्पर्क को कहते हैं, जिससे उत्तेजन, उच्चस्तरीय समतल आवेश, अथवा रति-निष्पत्ति भी उत्पन्न हो" (सेक्सटन, 1970, पृष्ठ 99)। कहने का मतलब यह कि यह इच्छापूर्वक सम्पन्न किया गया कामोद्दीपक उत्तेजन अथवा सेक्स-क्रीड़ा होती है जो मैथुन की सीमा तक नहीं जाती। बाद वाले समूह में ऐसी स्त्रियों की संख्या अधिक पायी गयी जो 'अश्लीलता' के शब्द से परिचित थीं, जो सामान्यतः ऐसे साहित्य अथवा चित्रों के प्रसंग में इस्तेमाल किया जाता है जिनका सचेतन तथा मुख्य उद्देश्य होता है पाठक अथवा दर्शक में कामोद्दीपन को उभारना।

उपर्युक्त अभिमत का प्रमाण इस बात में मिलता है कि दस वर्ष पहले जिन स्त्रियों का अध्ययन किया गया था उनमें से जिन स्त्रियों ने इन शब्दों के बारे में सुना था या जिन्हें इसके बारे में अस्पष्ट-सी जानकारी भी थी कि उनका अभिप्राय क्या होता है, उनकी संख्या मुश्किल से उसे 7 प्रतिशत तक थी, जबकि दस वर्ष बाद यह देखा गया कि कहीं अधिक संख्या में (27 से 33 प्रतिशत तक) स्त्रियाँ सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता के बारे में, या भिन्नलिंगी व्यक्तियों को दी जा सकनेवाली सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता की सीमाओं के बारे में बातें करते समय इन शब्दों का प्रयोग करती थीं और उन्हें यह मालूम था कि इनमें से प्रत्येक का सही-सही अर्थ क्या है। इस दिलचस्पी का संकेत इस बात में भी मिलता है कि दस वर्ष बाद इन स्त्रियों में ऐसी स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक हो गयी थी जिन्होंने मानव-नर तथा मानव-मादा के सेक्स-आचरण के बारे में किंसे के अध्ययनों और अंग्रेज स्त्रियों के विवाह-सम्बन्धों तथा सेक्स-सम्बन्धों के बारे में चेस्सर के अध्ययन जैसे अध्ययनों के बारे में सुना था और कुछ ने तो उन्हें पढ़ा भी था। वे जानती थीं कि अश्लील साहित्य क्या होता है और उन्होंने अश्लील साहित्य पढ़ा भी था और अश्लील चित्र-प्रदर्शन देखे भी थे। इन चित्र-प्रदर्शनों और लोगों की सेक्स-सम्बन्धी गतिविधियों तथा व्यवहार के बारे में बात करने में उन्हें अब दस वर्ष पहले की तुलना में बहुत कम संकोच होता था।

इस प्रवृत्ति का संकेत इस बात में भी मिलता है कि बाद वाले समूह में यह देखा गया कि उन स्त्रियों की संख्या पहले से कहीं अधिक हो गयी थी जिनमें यह चेतना बहुत तीव्र रूप से जागृत हो गयी थी कि पुरुष स्त्रियों को केवल सेक्स का [illegible] समझते हैं और उनका अनुचित लाभ उठाते हैं। इसका प्रमाण इस बात में

है कि उन स्त्रियों की संख्या भी पहले से वढ़ गयी है जिनमें अपने स्त्री होने और स्त्रियों के लिए पुरुष की कमजोरी की चेतना जागृत हो चुकी है, उनमें यह भावना उत्पन्न हो गयी है कि यदि वे पुरुषों को थोड़ी-सी छूट दें और शारीरिक रूप से उनके साथ थोड़ा-सा घनिष्ठ होने का अवसर दें तो वे अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकती हैं।

उन स्त्रियों का अनुपात जिन्होंने परम्परा-विरोधियों की—ऐसे व्यक्तियों की जो नियमों तथा प्रचलित प्रथाओं की पूरी अश्रद्धा के साथ अवहेलना करते हैं—अभिवृत्तियाँ अपना ली थीं, दस वर्ष बाद कहीं अधिक हो गया था, हालाँकि वे अब भी बहुत अल्पसंख्यक ही थीं। इससे उनकी अभिवृत्तियों में आमूल परिवर्तन की दिशा में बढ़ती हुई प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। इस प्रवृत्ति का प्रमाण इस बात में भी मिलता है कि उन्होंने 'उन्मुक्त-प्रेम', 'खुला प्रेम' और 'प्रयोगात्मक विवाह' जैसी नयी संकल्पनाओं को प्रचलित किया है। स्वैरिता अथवा अनियत सम्भोग की संकल्पना को भी उन्होंने एक नया आशय प्रदान किया है। परम्परा-विरोधी श्रमजीवी स्त्रियों के लिए स्वैरिता का अर्थ है प्रेम के बिना सेक्स-सम्भोग, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह किसके साथ किया जाये, और उनका कहना है कि यदि सेक्स-सम्भोग में भाग लेने वाले दोनों पक्ष, चाहे वह एक से अधिक व्यक्तियों के साथ ही क्यों न किया जाये, एक-दूसरे से प्रेम करते हों तथा एक-दूसरे का सम्मान करते हों तो वह स्वैरिता नहीं है।

सेक्स-सम्बन्धों के प्रति उनकी अभिवृत्ति में आमूल परिवर्तनवाद की इस प्रवृत्ति का संकेत इनमें से कुछ—9 प्रतिशत—स्त्रियों के मतों तथा विचारों में भी मिलता है, जिन्होंने यह कहा कि परस्त्रीगमन तथा परपुरुषगमन या विवाह से पहले सेक्स-अनुभव के लिए औचित्य उपलब्ध करने की प्रायः कोई आवश्यकता नहीं है, और यदि दो वयस्क व्यक्ति इसके लिए सहमत तथा तत्पर हों तो वे ऐसा कर सकते हैं। एक दशाब्दी बाद सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्ति अधिक सापेक्षतामूलक हो गयी थी और उतनी निरपेक्ष नहीं रह गयी थी जितनी दस वर्ष पहले थी।

इन सभी बदलती हुई तथा उभरती हुई प्रवृत्तियों से संकेत मिलता है कि ये स्त्रियाँ, कुछ प्रतिबन्धों के साथ ही सही, विविध प्रकार के सेक्स-व्यवहार को अधिकाधिक स्वीकारने लगी हैं, या यह कि सेक्स-सम्बन्धों के प्रति उनकी अभिवृत्ति पहले की अपेक्षा कम कुण्ठित तथा अधिक निःसंकोच हो गयी है, या वे इस स्वीकृति को व्यक्त करने में अधिक ईमानदारी तथा स्पष्टवादिता से काम लेने लगी हैं, या उनमें ये सभी बातें मिलकर भी मौजूद हो सकती हैं। कुछ भी हो, इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता कि उत्तरदाताओं में जिन नयी उभरती हुई विविध प्रवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनसे असन्दिग्ध रूप से सेक्स-सम्बन्धी अभिवृत्तियों तथा आचरणों में एक वास्तविक तथा दीर्घकालिक परिवर्तन का संकेत मिलता है।

5

सिंहावलोकन

पिछली लगभग दो दशाब्दियों के दौरान जीवन के विभिन्न पक्षों के बारे में भारतवासियों की अभिवृत्तियों में गहरे परिवर्तन हुए हैं। बदलते हुए सामाजिक-आर्थिक परिवेश के प्रसंग में युगों पुरानी और प्राय: पावन-पुनीत मानी जानेवाली सामाजिक प्रथाओं को स्वतन्त्र तथा आलोचनात्मक दृष्टि से जाँचना-परखना और प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति सुस्पष्ट तथा सचेतन अभिवृत्तियाँ धारण करना, और इतना ही नहीं बल्कि उनके बारे में मत व्यक्त करना भारत में अपेक्षाकृत एक नयी घटना है। दैविक प्रेम और आध्यात्मिक प्रेम को छोड़कर, सेक्स तथा प्रेम के पूरे क्षेत्र पर या तो नैतिक पाखन्ड, भावुकता तथा अन्य अवरुद्ध अभिवृत्तियों का परदा पड़ा रहता था, उन पर असंदिग्ध निन्दनीयता, अमिट कलंक और अश्लीलता की ऐसी छाप लगा दी गयी थी कि उनके बारे में अन्वेषक भाव से तथा खुलकर बात करने या विचार-विनिमय करने की प्राय: कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। विवाह के बारे में भी परम्परा या पति के प्रति पत्नी की निर्दिष्ट भूमिकाओं तथा उसके पद की स्वीकृत मान्यता से विचलित होना या विचारों में अथवा बातचीत में प्रणय-शैया की पुनीत सुरक्षित गोपनीयता में परदों में से झाँकना नैतिक आचरण का निन्दनीय उल्लंघन समझा जाता था। परन्तु इधर कुछ समय से शहरों के शिक्षित लोग वैयक्तिक क्रिया-प्रतिक्रिया तथा मानव-सम्बन्धों के इन तीन बुनियादी क्षेत्रों के महत्त्व को समझने लगे हैं।

देश में जो राजनीतिक-सांस्कृतिक तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हो रहे हैं उनके कारण और विदेशी प्रभावों के बढ़ते हुए असर के कारण ऊपर बताये हुए पहलुओं के बारे में बातचीत करना अब उतना संकोचमय नहीं रह गया है, और उनके बारे में मत व्यक्त करने को अभद्र, लज्जाजनक या अशिष्ट नहीं समझा जाता है

जैसा कि अब तक काफी समय से समझा जाता रहा था। इस अध्ययन में अपेक्षाकृत आधुनिक अभिवृत्ति के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक आयामों की छानबीन की गयी है और यह सेक्स, प्रेम तथा विवाह के प्रति भारत की शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की—उन श्रमजीवी स्त्रियों की जो हमारे समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं—बदलती हुई अभिवृत्तियों का प्रथम वैज्ञानिक अन्वेषण है। इसमें तो सन्देह नहीं कि इस प्रवृत्ति की दिशा तथा विस्तार के बारे में अनुमानों की तो कोई कमी नहीं है परन्तु उनके बारे में वैज्ञानिक जानकारी न होने के बराबर है।

यह शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों का अध्ययन करने के उद्देश्य से कुछ सामाजिक समस्याओं के उस रूप का दस वर्षों के अन्तराल से दो विविन्न समयों पर किया गया अनुभवजन्य अध्ययन है, जिस रूप में ये स्त्रियाँ उन समस्याओं को देखती हैं। यह अध्ययन क्षेत्र में जाकर की गयी छानबीन पर—500 शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के साथ स्वयं लेखिका के अनेक बार किये गये साक्षात्कारों पर—आधारित है। इस पुस्तक में लेखिका ने इस बात का अध्ययन करने का प्रयास किया है कि ये स्त्रियाँ सेक्स, प्रेम तथा विवाह के बारे में क्या सोचती हैं, ताकि उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके, उनकी अभिवृत्तियों को प्रभावित करने-वाले, ढालने वाले तथा बदलने वाले कारकों का विश्लेषण किया जा सके और इस बात की छानबीन की जा सके कि स्वयं ये अभिवृत्तियाँ उनके आम दृष्टिकोण और उनकी पूरी जीवन-पद्धति को किस प्रकार भावित करती हैं।

चूँकि यह मुख्यतः गुणात्मक अध्ययन है, इसलिए लेखिका ने उन श्रमजीवी स्त्रियों के, जिनका अध्ययन किया गया था, कुछ दृष्टान्तमूलक व्यक्ति-वृत्तान्त प्रस्तुत किये हैं, ताकि जानकारी प्रभावशाली ढंग से व्यक्त की जा सके और अध्ययन के निष्कर्षों की व्याख्या की जा सके। व्यक्ति-अध्ययनों में इन स्त्रियों के विविधतम विचारों का रहस्योद्घाटन हुआ है, विशेष रूप से प्रेम, सेक्स तथा विवाह के बारे में, सामाजिक जीवन के उन तीन पक्षों के बारे में जो समान रूप से जन-साधारण तथा समाज-विज्ञानियों दोनों ही के ध्यान तथा गहरी दिलचस्पी का केन्द्र रहे हैं परन्तु फिर भी भारत में इन क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसन्धान का काम नहीं के बराबर हुआ है।

चूँकि अभिवृत्तियों के काफी दूरगामी प्रभाव उन अभिवृत्तियों को धारण करने-वाले व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के प्रच्छन्न तथा प्रत्यक्ष व्यवहार पर पड़ते हैं, इसलिए इस अध्ययन से प्रेम, सेक्स तथा विवाह के बारे में श्रमजीवी महिलाओं के वास्तविक, विशेषतः अव्यक्त व्यवहार का—विशिष्ट परिस्थितियों में विशिष्ट प्रति-क्रिया के लिए तत्परता—बहुत व्यापक चित्र सामने आता है। एक प्रकार से यह अध्ययन प्रेम तथा सेक्स-सम्बन्धों के और विवाह-प्रथा के भविष्य के बारे में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। इस अध्ययन में पाठक को यह बताने का दावा नहीं किया गया है

कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ सेक्स, प्रेम और विवाह के क्षेत्रों में वास्तव में क्या करती हैं, लेकिन इसमें इस बात का रहस्योद्‌घाटन निश्चित रूप से हुआ है कि वे जीवन की इन मूलभूत समस्याओं के बारे में क्या सोचती हैं।

चूंकि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों के बारे में कोई तुलनात्मक आधार-सामग्री उपलब्ध नहीं है, इसलिए इस अध्ययन में विभिन्न स्थानों पर मुख्यतः कालेजों की छात्राओं या समाज के मध्यम वर्ग की शिक्षित महिलाओं के सम्बन्ध में किये गये अन्य अध्ययनों की आधार-सामग्री का हवाला दिया गया है। यद्यपि इन आधार-सामग्रियों का स्वरूप वैसा ही नहीं है, फिर भी उनसे यह संकेत अवश्य मिलता है कि विवाह तथा सेक्स के बारे में प्रचलित अथवा उदीयमान अभिवृत्तियाँ तथा विचार केवल शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में ही नहीं बल्कि बहुत बड़ी हद तक शहरों के पूरे युवा-वर्ग में पाये जाते हैं।

अभिवृत्तिमूलक परिवर्तनों की सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया

क्रो तथा क्रो ने यह मत व्यक्त किया है कि अभिवृत्तिमूलक परिवर्तन "ऐसे गतिशील, न्यूनाधिक रूप में नमनीय संघटक अंगों का संयोजन होता है जिन्हें बदला जा सकता है।...इसलिए मूल्यांकन के उद्देश्य से किसी एक कारक की क्रिया को अलग कर सकना अत्यन्त कठिन है।..." (क्रो तथा क्रो, 1956)। विभिन्न सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक-वैधिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक शक्तियों ने शिक्षित स्त्रियों की विचार-पद्धति को प्रभावित किया है। इन सभी कारकों का प्रभाव इतना संश्लिष्ट है कि इनमें से किसी एक को दूसरे से अलग कर सकना और यह कह सकना कि कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है, बहुत कठिन है। किसी व्यक्ति पर इनकी क्रिया और परस्पर-क्रिया ही विभिन्न वस्तुओं तथा मूल्यों के प्रति उसकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाती है।

प्रेम, विवाह या सेक्स जैसी जीवन की आधारभूत समस्याओं के बारे में और स्वयं अपने बारे में किसी व्यक्ति के विचार बहुत बड़ी हद तक उस समाज के अनुसार ढलते हैं जिसमें उसका जन्म तथा पालन-पोषण होता है और वे उस समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित होते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ तथा लड़कियाँ अभी तक सामाजिक अनुमोदन पर अधिक निर्भर हैं। यही कारण है कि उनके लिए अभिवृत्तियां विचार के स्तर पर भी परम्पराओं को तोड़ना या पुराने रीति-रिवाजों तथा सामाजिक प्रथाओं के विपरीत जाना अधिक कठिन होता है। अभिवृत्ति के स्तर पर भी परम्परा से हटकर चलने की प्रवृत्ति स्पष्टतः कई महत्त्वपूर्ण सामाजिक, वैयक्तिक तथा मनोवैज्ञानिक कारकों का परिणाम होती है।

सामाजिक कारक

विवाह की प्रथा की अनेक लाक्षणिक विशेषताएँ ऐसी हैं जिन्हें परम्परागत रूप से उसके स्थायित्व के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है। हिन्दू समाज ने, विशेष रूप से स्वतन्त्रता के बाद के युग में, विवाह की प्रथा से सम्बन्धित युगों पुराने सामाजिक रीति-रिवाजों तथा नियमों में कुछ बहुत प्रमुख परिवर्तन अनुभव किये हैं। 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम ने विवाह की प्रथा में संविदा के तत्त्व का समावेश करके वस्तुतः एक क्रान्ति कर दी है। उसमें विवाह के लिए न्यूनतम आयु निर्धारित कर दी गयी है। उसमें तलाक़ तथा विच्छेद का प्रावधान है। उसमें अन्तर्गोत्रीय तथा अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति दी गयी है।

अन्य सामाजिक प्रथाओं की तरह विवाह की प्रथा पर भी आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक और वैधिक शक्तियों का प्रभाव पड़ा है। स्त्रियों की शिक्षा, उनके नागरिकता के तथा अन्य वैधिक अधिकारों और सबसे बढ़कर उनके लाभप्रद रोज़गार तथा आर्थिक स्वाधीनता ने उनकी धारणाओं तथा विचारों को बहुत प्रभावित किया है, जिनमें वैवाहिक सम्बन्ध के प्रति उनका दृष्टिकोण तथा विवाह के प्रति उनकी अभिवृत्तियाँ भी शामिल हैं। किसी समाज विशेष के सांस्कृतिक स्वभाव का भी इन सभी कारकों पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वास्तविक संस्कृति, "किसी समाज के सदस्यों के व्यवहार का कुल योग होती है क्योंकि ये व्यवहार सीखे हुए होते हैं और समाज के अन्य सदस्य भी उनमें सम्मिलित रहते हैं" (लिंटन, 1945)।

इस अध्ययन के प्रसंग में संस्कृति के दो पक्ष माने जा सकते हैं : प्रत्यक्ष पक्ष, और प्रच्छन्न पक्ष। संस्कृति के प्रत्यक्ष पक्ष में दो बातें होती हैं : एक है भौतिक, अर्थात् उद्योग का उत्पादन, और दूसरी है गत्यात्मक, अर्थात् प्रत्यक्ष व्यवहार। प्रच्छन्न पक्ष में मनोवैज्ञानिक बातें सम्मिलित होती हैं, अर्थात् समाज के सभी सदस्यों का सम्मिलित ज्ञान, अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य। ये दोनों ही पक्ष मानव व्यवहार को समझने के लिए समान रूप से वास्तविक तथा समान रूप से महत्त्वपूर्ण होते हैं। इन दोनों में से किसी भी एक पक्ष में होनेवाले परिवर्तन का प्रभाव दूसरे पक्ष पर पड़ता है, और इस प्रकार इसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष तथा प्रछन्न दोनों ही प्रकार के मानव-व्यवहार में परिवर्तन होता है। प्रत्यक्ष संस्कृति के बारे में राइसमैन लिखते हैं : "मैं यह मानकर चलता हूँ कि आज संचार के मुख्य साधन—रेडियो, फिल्में, रेकार्ड, कामिक, बच्चों की पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ—चरित्र-निर्माण में उससे कहीं अधिक बड़ी भूमिका अदा करती हैं, जितनी वे अब से पहले के युगों में करती थीं। निश्चय ही ये माध्यम आज पहले कभी की अपेक्षा अधिक केन्द्रीकृत हैं और अधिक समय तक अधिक लोगों तक पहुँचते हैं" (राइसमैन, 1953, पृष्ठ 99)। किसी भी व्यक्ति के परिवेश का बहुत बड़ा भाग जीवन की भौतिक परिस्थितियों का होता है। और किसी भी व्यक्ति के सामाजिक उत्तराधिकार का काफी बड़ा भाग उसकी भौतिक संस्कृति का होता है। जब भौतिक परिस्थितियाँ बदलती हैं तो प्रत्यक्ष व्यवहार में परिवर्तन होते हैं, और फिर इसके फल-

स्वरूप लोगों की अभिवृत्ति भी बदलती है।

शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों में भौतिक तथा बाह्य मूल्यों को अधिकाधिक महत्त्व देने और हर मामले में ठोस व्यावहारिक और नपा-तुला रवैया अपनाने की जो बढ़ती हुई प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं, उन्होंने भी प्रेम, सेक्स तथा विवाह के प्रति उनकी अभिवृत्तियों को प्रभावित किया है। ये प्रवृत्तियाँ इस सिद्धान्त को बल प्रदान करती हैं कि कोई भी व्यक्ति बदले में कुछ पाने की आशा में ही कुछ देता है। और यह बात स्पष्ट है कि यह रवैया प्रौढ़ ढंग से प्रेम करने की क्षमता के विकास के लिए हितकर नहीं हो सकता। इन स्त्रियों में इस बात की बढ़ती हुई प्रवृत्ति देखी गयी है कि वे अपना जीवन सतही ढग से व्यतीत करती हैं, उन्हें आमतौर पर पूरे समाज के प्रति कोई गहरा लगाव नहीं होता, जिनके कारण किसी भी व्यक्ति के लिए भरपूर ढंग से और गहराई के साथ प्रेम करना कठिन हो जाता है। और फिर यही बात उन्हें भौतिक तथा सतही मूल्यों का अधिकाधिक गुलाम बनाती जाती है। किसी भी स्त्री या पुरुष की प्रेम करने की क्षमता या प्रेम के प्रति उसकी अभिवृत्ति के विकास पर जिस एक और कारक का प्रभाव देखा गया वह यह था कि उस स्त्री अथवा पुरुष की बाल्यावस्था में उसके और परिवार के 'अन्य महत्त्वपूर्ण लोगों' के बीच अन्तःक्रिया का स्वरूप क्या था।

यद्यपि कालेज की छात्राओं के बारे में शरयु बल तथा बानारसे (1966) के अध्ययन में यह देखा गया कि जात-पाँत, माता-पिता की शिक्षा तथा आय में अन्तर का उनकी अभिवृत्तियों पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा था, परन्तु प्रस्तुत अध्ययन में यह देखा गया कि माता-पिता की शिक्षा तथा आय का अभिवृत्तियों पर प्रभाव पड़ता है, परन्तु जात-पाँत के आधार पर कोई अन्तर पड़ते नहीं देखा गया। और विवाह के प्रति, या यों कहें कि जीवन की विभिन्न समस्याओं के प्रति लोगों की अभिवृत्तियों को प्रभावित करने या उन्हें ढालने में जिन कारकों को अधिक महत्त्वपूर्ण पाया गया, वे थे—माता-पिता के घर पर पालन-पोषण किस ढंग से हुआ; माता-पिता और सन्तान के बीच सम्बन्ध किस ढंग के थे; परिवार के सामाजिक-सांस्कृतिक तथा अभिवृत्ति-सम्बन्धी मूल्य किस ढंग के थे; उनकी शिक्षा-दीक्षा किस ढंग की हुई थी और अपनी बाल्यावस्था में वे किस प्रकार के शहर या क़स्बे में रहे थे।

व्यक्ति-अध्ययनों की तुलना करने पर पता चलता है कि यदि दो स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा और उनकी सामाजिक हैसियत बिल्कुल एक जैसी होने पर भी, और उनके एक ही शहर में एक जैसी नौकरी करने, समान वेतन पाने और समान काम करने पर भी विभिन्न बातों के बारे में उनकी अभिवृत्तियों में अन्तर होता है। व्यक्ति-अध्ययनों का विश्लेषण करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तरदाता के परिवार की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का—पारिवारिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों, आस्थाओं और रहन-सहन का—उसकी अभिवृत्तियों के निर्माण [illegible] गहरा सम्बन्ध होता है और विभिन्न लोगों की पृष्ठभूमि में इस [illegible]

ही अन्य भिन्नतापरक तत्त्वों में समानता के बावजूद उनकी अभिवृत्तियों में अन्तर होता है।

उत्तरदाताओं की विभिन्न प्रकार की अभिवृत्तियों और विभिन्न भिन्नता-परक तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करने के लिए उनके आयु-वर्ग, शिक्षा, पारिवारिक पृष्ठभूमियों और उनके समवयस्क समुदायों को ध्यान में रखा गया। प्रस्तुत अध्ययन में विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में जो आधार-सामग्री उपलब्ध हुई है उससे पता चलता है कि किसी व्यक्ति की अभिवृत्तियाँ किस प्रकार की हैं इसका सम्बन्ध उसकी आयु, शैक्षिक योग्यता अथवा उसकी अन्य योग्यताओं की अपेक्षा इन बातों से अधिक घनिष्ठ है कि उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि कैसी है, उसे शिक्षा कैसी मिली, उसके समवयस्क समुदाय में कैसे लोग हैं और वह किस जगह रहता है और किस जगह काम करता है। उदाहरण के लिए, जिन स्त्रियों का पालन-पोषण आगरे जैसे छोटे और कम उन्नत शहर में हुआ था और जिन्होंने वहीं शिक्षा पायी थी तथा जो वहीं नौकरी करती थीं और जिनके समवयस्क समुदाय में कट्टरपंथी या कम उन्नत परिवार की स्त्रियाँ थीं, उनकी अभिवृत्तियाँ उन स्त्रियों की अभिवृत्तियों से मात्रा तथा दिशा दोनों ही की दृष्टि से काफी भिन्न थीं जिनका पालन-पोषण दिल्ली जैसे उन्मुक्त वातावरण वाले शहर में हुआ था और जिन्होंने वहीं शिक्षा पायी थी तथा वहीं नौकरी करती थीं और जिनके समवयस्क समुदाय में आधुनिक तथा उन्नत स्त्रियाँ थीं।

यद्यपि सेक्स एक जैविक घटना है परन्तु सेक्स के प्रति मनुष्य की अभिवृत्तियों का निर्माण किसी संस्कृति-विशेष के वातावरण में पलने-बढ़ने के दौरान होता है। आदिम ढंग के समाज में अभिवृत्तियों का निर्माण प्रौढ़ लोगों का अनुकरण करने से और प्रथाओं का पालन करने से होता है, लेकिन अधिक सभ्य समाजों में मनुष्य की अभिवृत्तियों का निर्माण माता-पिता, मित्रों, अन्य सामाजिक समुदायों के माध्यम से और संचार के माध्यमों—अखबारों, पत्रिकाओं, पुस्तकों और फ़िल्मों—के जरिये होता है। उदाहरण के लिए, सेक्स के प्रति अभिवृत्तियों में परिवर्तन में योग देनेवाले कारकों में से एक कारक वैज्ञानिक विचारों का प्रसार है। एक अन्य कारक है व्यक्ति पर अन्य संस्कृतियों का बढ़ता हुआ प्रभाव; एक और कारक है बहुत बड़ी मात्रा में ऐसे साहित्य का उपलब्ध होना जिसमें सामाजिक प्रभावों के कारण उत्पन्न होनेवाले सेक्स-सम्बन्धी प्रावरोधों के सम्भावित खतरों को उभारकर प्रस्तुत किया जाना। साइमंस की धारणा है, "परन्तु पूरब और पश्चिम में प्रवृत्तियों की दिशा एक ही है: बढ़ती हुई जन-जाग्रति के आधार पर समानता तथा सहिष्णुता में भी वृद्धि हो रही है और इसके फलस्वरूप अब जो सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं उनकी प्रबल धारा को रोक सकना कठिन है" (साइमंस, 1971, पृष्ठ 68)।

सेक्स के प्रति तर्कसंगत रवैये को क्रमशः जो अधिकाधिक मान्यता मिलती जा रही है और क्रमशः जो प्रमुखता दी जा रही है, उसका और अमरीका, योरप तथा अन्य स्थानों में होनेवाले अन्य परिवर्तनों का विभिन्न राष्ट्रों के लोगों के बीच अन्तःक्रिया

तथा अन्तः-प्रतिक्रिया के माध्यम से भारत के नगरवासी शिक्षित वर्ग पर प्रभाव पड़ा है, और इस प्रक्रिया में जन-प्रचार के अधिक महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली साधनों से और विभिन्न देशों के लोगों के साथ मिलने-जुलने के अधिकाधिक उपायों तथा साधनों से योग मिला है।

आधुनिक शहरी संस्कृति विशेष रूप से बड़े-बड़े शहरों की संस्कृति भारत में भी मनुष्य की सेक्स-सम्बन्धी संवेदनाओं को अधिक उग्र बनाने तथा उद्दीप्त करने की प्रवृत्ति रखती है। विज्ञापनों से लेकर लोकप्रिय साहित्य के विषयों तक जन-प्रचार के सभी माध्यमों का लक्ष्य काम-सम्बन्धी विचारों तथा वासनाओं को प्रज्वलित करना होता है। विज्ञापनों की दिशा सेक्स की ओर प्रवृत्त है, फ़िल्मों में नग्नता तथा काम-वासना के अधिकाधिक दृश्य दिखाये जाते हैं और किताबों की दुकानें अश्लील साहित्य से भरी रहती हैं। संचार के ये माध्यम मनुष्य को न केवल सेक्स की दृष्टि से उद्दीप्त करते हैं बल्कि निरन्तर अवैध सेक्स-क्रिया को बढ़ावा और प्रोत्साहन देते रहते हैं। हमें इन तथ्यों का सामना खुलकर, यथार्थमूलक तथा वस्तुपरक ढंग से करना होगा।

जन-प्रचार के कामोद्दीपक साधनों, फ़िल्मों और यहाँ तक कि वेशभूषा के माध्यम से समाज अधिकाधिक वासनामय होता जा रहा है, और सेक्स-कामना की रोक-थाम करना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है। अपने उग्रतम रूप में पश्चिम में नारी-मुक्ति का आन्दोलन स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों ही के लिए विवाह से पहले तथा विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्धों की माँग करता है तथा उसका प्रचार करता है। अभी तक पूरब के देशों पर इस उग्रतम रूप में उसका प्रभाव भले ही न पड़ा हो, फिर भी भारत में उसका प्रभाव काफी प्रकट है, विशेष रूप से शहरों की शिक्षित स्त्रियों में, इस रूप में कि उनमें हर मामले में, सेक्स के रूप में भी बराबरी की माँग करने की प्रवृत्ति उभर रही है और खास तौर पर इस रूप में कि वे दोहरे मानदंडों के विरुद्ध बढ़ते हुए विद्रोह का रवैया व्यक्त करने लगी हैं।

इन अभिवृत्तियों को ढालने में औद्योगीकरण, नगरीकरण, संस्कृति के लोकतन्त्री-करण, धर्म के घटते हुए असर और वैज्ञानिक तथा बुद्धिसंगत कसौटियों तथा रवैयों के प्रति बढ़ते हुए समर्थन के सामूहिक प्रभावों का भी हाथ है। हार्ट (1933, पृष्ठ 421) मोटरकार, सन्तति नियमन, औद्योगीकरण, नगरीकरण और पितृसत्तात्मक विचारधारा के पराभव के प्रासंगिक प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी यह विश्वास रखते हैं कि "इधर हाल में सेक्स-व्यवहार के प्रति अभिवृत्तियों में जो परिवर्तन हुए हैं उनका एक मुख्य कारण है धार्मिक नियन्त्रण का छिन्न-भिन्न हो जाना और उसके स्थान पर वैज्ञानिक कसौटियों की स्थापना के अधपके प्रयास" (देखिये फोलसम्, 1948, पृष्ठ 548)।

राइस (1968) के अध्ययन जैसे अन्य अध्ययनों की तरह ही लेखिका के [illegible] अध्ययन में भी यह देखा गया कि लोगों तथा उनके माता-पिता की [illegible] का [illegible]र जितना ही [illegible] होता है, उनमें स्वयं अपने लिए तथा दूस[illegible]

आचरण के मामले में छूट देने की प्रवृत्ति उतनी ही कम होती है और उनकी अभिवृत्तियों में रूढ़िवादिता उतनी ही अधिक होती है। उदाहरण के लिए, ज्योति और सुमन की मिसालें इस कारक के प्रभाव को काफी स्पष्ट कर देती हैं। चूंकि सुमन अपने बचपन से एक खाते-पीते कट्टरपंथी परिवार में रही थी जिसकी औरतें अनपढ़ थीं और जिसमें परिवार के प्रमुख की सत्ता प्रायः निर्बाध थी—ऐसा परिवेश जिसमें परिवार की प्रमुख महिला बहुत भीरु तथा आज्ञाकारी होती है और अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों के पालन में व्यस्त तथा जकड़ी हुई रहती है—इसलिए उसके सामाजिक-मानसिक परिवेश ने इसके उपचेतन मन में अपने पिता के प्रति तथा भारतीय नारीत्व के परम्परागत आदर्श के प्रति एक आतंक-जनित सम्मान का भाव और धर्म के प्रति श्रद्धा का भाव पैदा कर दिया था। अपनी प्रौढ़ता, अपने मानसिक विकास, अपनी उच्च शिक्षा और वाह्य जगत् से अपने सम्पर्कों के बावजूद उस पर अपने परिवार की परम्परागत पृष्ठभूमि का प्रभाव बना रहा।

यह भी देखा गया है कि किसी भी व्यक्ति की अभिवृत्तियों पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि उसके परिवार में और विशेष रूप से स्वयं उस व्यक्ति में धर्मपरायणता किस हद तक है। उदाहरण के लिए, यह देखा गया है कि सेक्स तथा विवाह के प्रति धर्मपरायण तथा भक्तिभाव रखनेवाली स्त्री की अभिवृत्तियाँ परम्परागत और काफी हद तक रूढ़िवादी होती हैं। एक और उदाहरण लीजिये, ज्योति (व्यक्ति-अध्ययन संख्या 19) का जन्म तथा पालन-पोषण सामान्य साधनों तथा घोर रूढ़िवादी विचारों वाले मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था और वह विवाह, सेक्स तथा नैतिक मानदंडों के मामले में अपने माता-पिता के आदेशों की आज्ञाकारी रही, क्योंकि उसे सामाजिक परम्परा के बन्धनों को तोड़ने में डर लगता था। उसके उदाहरण से इस मूल सत्य की पुष्टि होती है कि मानसिक तथा बौद्धिक विकास के बावजूद अभिवृत्तियों के मनोविज्ञान का अध्ययन हमेशा पूर्ववर्ती जीवन के प्रसंग में किया जाना चाहिए।

यह देखा गया कि उन श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ अधिक प्रगतिशील तथा पाश्चात्य ढंग की हो गयी थीं जिनका सम्बन्ध आधुनिक तथा पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवारों से था और जिन्होंने कानवेंट स्कूलों अथवा पब्लिक स्कूलों में शिक्षा पायी थी और जिनके समसमूह में भी ऐसी ही पृष्ठभूमियों से आनेवाले लोग थे, जैसे पमिला और मोना, या फिर घोर कट्टरपंथी तथा रूढ़िवादी परिवारों से सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रियों की, जैसे कमला तथा ललिता। कमला और ललिता का पालन-पोषण बहुत ही रूढ़िवादी तथा जकड़े हुए वातावरण में, जहाँ कहीं आने-जाने की प्रायः कोई भी स्वतन्त्रता नहीं थी, और बहुत बड़ी हद तक कठोर, नीरस तथा निरंकुश पारिवारिक परिवेश में हुआ था। और जब ये दोनों स्त्रियाँ अपने माता-पिता की निगरानी से दूर हो गयीं और आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो गयीं, तो परिस्थितिवश वे अत्यन्त प्रगतिशील तथा उन्नत लड़कियों के समूह में फँस गयीं जो उनका समसमूह

था, जिसका परिणाम यह हुआ कि आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्धित तथा कठोर वातावरण में पालन-पोषण के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में वे सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण अपनाने लगीं तथा उसे अपने अन्दर विकसित करने लगीं। वे हर उस चीज़ का विरोध करने लगीं जो प्रथा तथा परम्परा के अनुकूल हो, और लगभग हर उस चीज़ का अनुमोदन करने लगीं जो प्रथा के विरुद्ध हो। इस प्रकार की स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ इस दृष्टि से प्रतिक्रियामूलक तथा परम्परा-विरोधी होती हैं कि वे हर परम्परागत चीज़ को बुरा और हर उस चीज़ को जो परम्परा के विरुद्ध हो, अच्छा समझती हैं।

यह भी देखा गया कि कट्टरपंथी तथा परम्पराबद्ध परिवार में पालन-पोषण की पृष्ठभूमि में यदि बच्चों को बहुत अधिक लाड़-प्यार मिले और कहीं आने-जाने की छूट और अन्य स्वतन्त्रताएँ न मिलने के बावजूद यदि वे सुखी जीवन व्यतीत करें तो उनमें परम्परा का पालन करने की और कट्टरपंथी अभिवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी अभिवृत्तियाँ उन स्त्रियों में भी विकसित होते देखी गयी हैं जो बहुत उन्नत और पाश्चात्य ढंग के रहन-सहन वाले परिवारों की थीं और जिन्हें हर प्रकार की छूट और स्वतन्त्रता तो मिली थी पर अपने माता-पिता से कोई प्यार या मार्गदर्शन नहीं मिला था। कुछ अरुचिकर तथा विफलतामूलक अनुभवों के बाद प्रतिक्रिया के रूप में और अन्ततः बिल्कुल निराश होकर वे विभिन्न समस्याओं के बारे में परम्परागत मान्यताओं तथा विचारों में विश्वास रखने लगीं।

विभिन्न व्यक्तियों से सम्बन्धित आधार-सामग्री और इस अध्ययन में प्रस्तुत की गयी आधार-सामग्री के गुणात्मक विश्लेषण से इस सैद्धान्तिक प्रस्थापना के पक्ष में प्रबल संकेत मिलते हैं कि माता-पिता जितने ही कठोर तथा रूढ़िबद्ध होंगे और उनमें प्यार तथा सद्भावना की जितनी ही कमी होगी उतनी ही अधिक इस बात की सम्भावना होगी कि बच्चों की अभिवृत्तियाँ नयी सामाजिक शक्तियों से प्रभावित होकर अपने माता-पिता की अभिवृत्तियों से अलग दिशा अपना लें। इस प्रस्थापना को राइस (1968) द्वारा व्यक्त किये गये मतों का समर्थन प्राप्त है, जो प्रस्तुत अध्ययन के प्रणेता के मतों से बहुत मिलते-जुलते हैं, हालाँकि वे एक सर्वथा भिन्न संस्कृति के लोगों के अध्ययन पर आधारित हैं। अभिवृत्ति-परिवर्तन के विषमता सिद्धान्त के अनुसार "अत्यधिक विषमता से अभिवृत्ति में अत्यधिक परिवर्तन होता है, यदि विषमता को कम करने के अन्य साधन सापेक्ष रूप से उपलब्ध न हों"। इस सिद्धान्त के अनुसार, उन स्त्रियों में जिनको ऊपर बतायी गयी स्थिति का सामना करना पड़ रहा था, अत्यधिक अभिवृत्ति-परिवर्तन देखा गया। इसका मुख्य कारण यह था कि इस प्रकार की स्थिति ने बहुत अधिक विषमता उत्पन्न हुई और चूँकि इस विषमता को कम करने का प्रायः कोई भी दूसरा साधन प्रदान नहीं किया, इसलिए विषमता से उत्पन्न होनेवाले तनाव ने कम होने की कोशिश की और इसने उनकी अभिवृत्तियों में स्पष्ट परिवर्तन के रूप में व्यक्त हुआ।

आधार-सामग्री से यह भी संकेत मिलता है कि माता-पिता जितने ही उदार,

नमनीय और उन्मुक्त विचारोंवाले होंगे और अपने बच्चों के प्रति उनका व्यवहार जितना प्यार-भरा, सद्भावनापूर्ण और अच्छा होगा, उतनी ही अधिक इस बात की सम्भावना रहेगी कि सामाजिक शक्तियाँ उनके अन्दर अपने माता-पिता की अभिवृत्तियों को ही पुष्ट करेंगी। उदाहरण के लिए, जो माता-पिता 'बहुत छूट देनेवाले' और प्रेममय होंगे उनके बच्चों में भी इस बात की सम्भावना अधिक होगी कि वे 'बहुत अधिक छूट देनेवाले' हों। इन निष्कर्षों की पुष्टि राइस (1968) द्वारा व्यक्त किये गये इसी प्रकार के मतों से होती है, और उन मतों के सर्वथा भिन्न संस्कृति के प्रसंग में व्यक्त किये जाने से प्रस्तुत अध्ययन की लेखिका के निष्कर्षों की और अधिक पुष्टि होती है। इस समानता से निरन्तरता बनाये रखने की उस मनोवैज्ञानिक घटना की सार्थकता की पुष्टि होती है जिसकी प्रस्थापना हाइडर, ग्रासगुड तथा न्यूकोम जैसे निरन्तरता के सिद्धान्तवेत्ताओं ने की है।

अनुज्ञात्मकता न केवल इस बात की माप है कि कोई व्यक्ति अपने लिए तथा अन्य समलिंगी व्यक्तियों के लिए क्या स्वीकार करेगा, बल्कि इस बात की भी कि वह भिन्नलिंगी व्यक्तियों के लिए किस प्रकार के व्यवहार की अनुमति देने को तैयार है। प्रस्तुत अध्ययन में यह देखा गया कि स्त्री की शिक्षा, उसका व्यवसाय और इससे भी बढ़कर उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता, यदि उसके परिवार से उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता को बढ़ावा मिलता हो, उसकी अभिवृत्तियों में कुछ हद तक अनुज्ञात्मकता को भी बढ़ावा देती है। अनुज्ञात्मकता का समर्थन करनेवाली स्त्रियों ने स्वीकार किया कि आर्थिक स्वतन्त्रता ने उनमें विचार तथा आचरण की स्वतन्त्रता भी पैदा की है और उन्हें स्वयं अपने को तथा अन्य लोगों को भी ऐसे व्यक्तियों के रूप में देखने का अवसर दिया है जिन्हें अपनी क्षमताओं की पूर्णतम अभिव्यक्ति का पूरा अधिकार है। ये स्त्रियाँ अपने को पुरुषों के बराबर समझती थीं और अपने लिए व्यक्तियों के रूप में मान्यता प्राप्त करने का प्रयत्न करती थीं। वे महत्त्वाकांक्षी थीं और अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने को तत्पर थीं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उनकी शिक्षा, नौकरी या आर्थिक स्वाधीनता और वैयक्तिक प्रतिष्ठा ने उन्हें अधिक अनुज्ञात्मक बना दिया था।

अभिवृत्ति में अनुज्ञात्मकता का निर्धारण इस बात से भी होता है कि कोई भी व्यक्ति जिस वातावरण तथा परिवेश में रहता तथा घूमता-फिरता है उसमें कितनी अनुज्ञात्मकता है, विशेष रूप से इस बात से कि उसके समसमूह के सदस्यों की, और उनसे भी बढ़कर उन लोगों की अभिवृत्तियाँ क्या हैं जिन्हें वह अपना घनिष्ठतम मित्र समझता है। जिन शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन किया गया है उनके बयानों, प्रत्युत्तरों तथा कथनों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जो विचार उन्होंने व्यक्त किये वे उनके घनिष्ठ मित्रों, सगे-सम्बन्धियों या उनके सन्दर्भ-समूह के अन्य सदस्यों के विचारों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे। इस प्रकार इस अध्ययन की आधार-सामग्री से विकसित होनेवाली एक और सैद्धान्तिक प्रस्थापना यह है कि अनुज्ञात्मकता के प्रति

किसी की अभिवृत्ति इस बात से प्रभावित तथा सम्बन्धित होती है कि उसके सन्दर्भ-समूह में प्रत्यक्ष अनुज्ञात्मकता कितनी है। इस सैद्धान्तिक प्रस्थापना की पुष्टि वाल्श के अध्ययन (1970) से भी होती है, यद्यपि उसका सम्बन्ध छात्रों में अनुज्ञात्मकता से है। अपने अध्ययन के बारे में वाल्श लिखते हैं :

> हमारी तीसरी प्राक्कल्पना को—कि छात्रों की अनुज्ञात्मकता उनके सन्दर्भ-समूह की प्रत्यक्ष अनुज्ञात्मकता के अनुसार बदलती जायेगी—हमारी आधार-सामग्री का समर्थन प्राप्त था। हमने देखा कि घनिष्ठ मित्रों की प्रत्यक्ष अनुज्ञात्मकता का (चाहे वह उच्च हो या निम्न) छात्रों की अनुज्ञात्मकता के साथ गहरा सम्बन्ध था। हमने देखा कि लड़कों या लड़कियों को यह विश्वास हो गया कि उनका अपना चुना हुआ सबसे महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ-समूह पूर्ण सेक्स-सम्बन्धों का अनुमोदन करेगा तो 87% लड़कों और 71% लड़कियों ने विवाह से पहले पूर्ण सेक्स-सम्बन्धों का अनुमोदन कर दिया (वाल्श, 1970, पृष्ठ 1397-ए)।

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जिस स्त्री की अभिवृत्ति जितनी ही अधिक अनुज्ञात्मक होती है, अपनी अभिवृत्ति में भी उसके उतना ही अधिक समताप्रेमी होने की सम्भावना रहती है और वह सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता के दोहरे मानदंडों को चुनौती देगी। जो स्त्रियों के स्वतन्त्र सेक्स-जीवन का अनुमोदन करती हैं या उस पर 'आपत्ति नहीं करतीं', वे समतावाद की भी पैरवी करती हैं।

वैयक्तिक उपादान

संस्कृति के अप्रत्यक्ष पक्ष में वे मनोगत तथा वैयक्तिक उपादान होते हैं जिनकी विवेचना नीचे की गयी है।

संवेगात्मक अनुक्रिया की आवश्यकता—अभिवृत्तियों को प्रभावित करनेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण मनोगत उपादान 'मन की आवश्यकताओं' का उपादान है। शायद मनुष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वाधिक सतत क्रियाशील मन की आवश्यकता दूसरे व्यक्तियों की संवेगात्मक अनुक्रिया की आवश्यकता है। आधुनिक नगरीय परिवेश में इस आवश्यकता के और भी अधिक महत्त्व का उल्लेख करते हुए लिटन लिखते हैं :

> ...आधुनिक नगर में किसी व्यक्ति के लिए यह बिल्कुल सम्भव होता है कि वह बहुत बड़ी संख्या में दूसरे व्यक्तियों के साथ औपचारिक ढंग से तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सुस्थापित मानदंडों के अनुसार परस्पर आचरण करे तथा उनसे आवश्यक सेवाएँ प्राप्त कर ले और फिर भी उन लोगों में कोई संवेगात्मक अनुक्रिया जाग्रत न हो। ऐसी परिस्थितियों में उसके मन की अनु[illegible] की आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती [illegible] और वह अकेलेपन तथा [illegible]

जो लगभग उतनी ही उम्र होती है जैसे कोई दूसरा मौजूद न हो (लिंटन, 1945)।

दिल्ली जैसे बड़े शहरों में रहनेवाली शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बारे में यह बात और भी अधिक सच देखी गयी है। वे भीड़ में भी अकेली महसूस करती हैं और बहुत-से लोगों से जान-पहचान होने के बावजूद उदास रहती हैं। अनुक्रिया की इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए नये मित्र बनाने की खोज में वे क्लबों और भीड़-भाड़ की दूसरी जगहों में जाती रहती हैं। और जीवन-साथी ढूंढ़ने का यह तरीक़ा वास्तव में संवेगात्मक अनुक्रिया की उस बहुत बड़ी आवश्यकता को सब कुछ दाँव पर लगाकर पूरा करने की कोशिश होती है। उनकी अभिवृत्तियाँ इस आवश्यकता से प्रभावित होती हैं।

सुरक्षा की आवश्यकता—दूसरी ओर इतनी ही व्यापक आवश्यकता है सुरक्षा की। अन्य आवश्यकताओं के अतिरिक्त इसी आवश्यकता के कारण, शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ नौकरी करना चाहती हैं और जीविकोपार्जन का अनुभव तथा प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहती हैं ताकि वे आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र बन सकें और आवश्यकता पड़ने पर अपने पाँवों पर खड़ी रह सकें। इस आवश्यकता का जिस एक और पक्ष पर प्रभाव पड़ता है वह है विवाह के प्रति उनकी अभिवृत्ति। व्यक्ति-अध्ययनों के गुणात्मक विश्लेषण से पता चलता है कि अचेतन रूप से वे इसीलिए विवाह करके सुचारु ढंग से अपना घर बसा लेना चाहती हैं ताकि वे अपने पति, घर-बार और बच्चों के साथ शारीरिक, संवेगात्मक तथा आर्थिक दृष्टि से अधिक सुरक्षित अनुभव करें।

अनुभव की नूतनता की आवश्यकता—मन की तीसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है अनुभव की नूतनता की आवश्यकता। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में इसकी अभिव्यक्ति उकताहट की परिचित घटना के रूप में होती है, जिसके फलस्वरूप वे नाना प्रकार के प्रयोग करती हैं जैसे प्रेम-विवाह, प्रणय-याचन (कोर्टशिप), प्रेमियों से मेल-जोल, यात्रा करना, नये मित्र बनाना, विवाह की परिधि के बाहर मित्रताएँ बढ़ाना, विवाह से पहले और विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-सम्बन्ध स्थापित करना, और मन-बहलाव तथा मनोरंजन के नित नये उपाय ढूंढ़ना। इस बढ़ती हुई आवश्यकता ने भी, जिसे शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ सचेतन तथा अचेतन दोनों ही रूपों में अब पहले की अपेक्षा अधिक अनुभव करने लगी हैं, प्रेम, सेक्स तथा विवाह के प्रति उनकी अभिवृत्तियों को बदल दिया है।

मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता—श्रमजीवी स्त्रियों में मान्यता प्राप्त करने और उपलब्धि की आवश्यकता बहुत प्रबल है और इसने उनके व्यवहार तथा उनकी अभिवृत्तियों को बदल दिया है।

असामान्य व्यवहार की मनोगतिकी का अध्ययन करने से पता चलता है कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों का व्यवहार जिस ढंग का होता है वह कुछ हद तक तो उनकी अब तक की पुरुषों की अधीनता और उनके हाथों दुर्व्यवहार सहन करने के

विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है, और साथ ही वह अपने हीन भाव को दूर करने का भी एक उपाय होता है। उसे दूर करने की कोशिश में अचेतन मन के यन्त्र सक्रिय हो उठते हैं और उन्हें इस विशिष्ट ढंग का व्यवहार करने पर विवश कर देते हैं, और फिर यह व्यवहार उनकी अभिवृत्तियों को बदल देता है।

वैयक्तिक अनुभव—व्यक्ति-अध्ययन के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन दो श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में क्यों और किस प्रकार अन्तर पाया गया जिनकी शैक्षिक-योग्यताएँ समान थीं, नौकरियाँ एक जैसी थीं, वेतन बराबर था, और जिनके नौकरी करने के कारण भी एक ही जैसे थे। यह देखा गया कि ऐसा होने का कारण यह था कि उनके पिछले तथा वर्तमान वैयक्तिक अनुभवों में अन्तर था, जो व्यक्ति की अभिवृत्तियों को काफी बड़ी हद तक प्रभावित करता है। वर्तमान वैयक्तिक अनुभवों से अभिप्राय उन अनुभवों से है जो कोई व्यक्ति निजी कारकों के सम्बन्ध में प्राप्त करता है, जैसे उसका शारीरिक रूप तथा स्वभाव। यह देखा गया कि किसी भी व्यक्ति का शारीरिक रूप बहुत प्रभावशाली वैयक्तिक उपादान होता है, जो प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति उसके सामान्य दृष्टिकोण तथा अभिवृत्ति को प्रभावित करता है। लेखिका ने अपने 'पात्रों' से साक्षात्कार करते समय यह देखा कि जिनमें शारीरिक आकर्षण था, वे बहुत प्रतिभावान, आशावान तथा प्रसन्नचित्त थीं, जबकि जिनमें कम आकर्षण था उनमें अपने पूरे जीवन के प्रति उत्साह भी कम था। यह इस पर निर्भर है कि दूसरे लोग शारीरिक रूप को किस दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि अपने शारीरिक आकर्षण के अभाव के कारण दूसरों की उपेक्षा का पात्र बनने का अनुभव हर व्यक्ति के लिए बहुत निराशाजनक अनुभव होता है और जीवन की आधारभूत समस्याओं के प्रति उस व्यक्ति की अभिवृत्ति को निश्चित रूप से बदल देता है।

परन्तु किसी व्यक्ति के मतों, विचारों तथा अभिवृत्तियों को ढालने, और उससे भी बढ़कर उन्हें बदलने में पिछले वैयक्तिक अनुभवों का प्रभाव विशेषतः महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि अभिवृत्तियाँ पिछले अनुभवों से निर्धारित होनेवाली चीजों में विशेष रूप से दृढ़ होती हैं। अपने माता-पिता के घर के पिछले अनुभवों के अतिरिक्त उन संस्थाओं में प्राप्त किये गये अनुभवों का भी महत्त्व होता है जहाँ कोई व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करता है। इन श्रमजीवी स्त्रियों के व्यक्ति-अध्ययनों में यह देखा गया कि जिन स्त्रियों ने कानवेंट स्कूलों या अन्य अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पायी थी उनके अनुभव उन स्त्रियों से भिन्न थे जिन्होंने भारतीय स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की थी। देखा गया कि इस बात का भी महत्त्व होता है कि कोई व्यक्ति पढ़ाई में कितना अच्छा है, और यह कि अध्यापक तथा छात्र उसे पसन्द करते हैं या नहीं, और स्कूल तथा कालेज में उसे मित्रता के किस प्रकार के अनुभव हुए।

यह देखा गया कि किसी भी व्यक्ति के पूरे दृष्टिकोण पर और उसके पूरे व्यक्तित्व पर 'प्रेम' के अनुभव का—माता-पिता, भाई-बहनों, सगे-सम्बन्धियों, सहपाठियों तथा मित्रों के प्रेम का—बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए किसी को

प्रेम का अनुभव हुआ है या नहीं और वह अनुभव सन्तोषप्रद, उद्दीपक तथा स्थायी था कि नहीं, ये ऐसी बातें हैं जिनके बारे में देखा गया है कि इनका उन लोगों की भावनाओं तथा विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। न केवल स्वयं उनके प्रेम के अनुभव बल्कि उनके निकटवर्ती प्रियजनों के अनुभव भी उनकी अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्तियों में यह प्रभाव विशेष रूप से देखा गया।

विभिन्न व्यक्तियों से सम्बन्धित आधार-सामग्री के—इस अध्ययन में प्रस्तुत किये गये व्यक्ति-अध्ययनों के—गुणात्मक विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि जीवन में अनुभवों के साथ अभिवृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। यदि किसी के जीवन में कोई आकस्मिक तथा महत्त्वपूर्ण घटना हो जाती है, या उसे मानव-सम्बन्धों में कुछ कटु-अनुभव होते हैं तो उसके बाद भी उसकी अभिवृत्तियाँ बदलने लगती हैं। इस प्रसंग में आश ने कहा है:

> मनोरोग-सम्बन्धी विचारों से प्रेरित होकर मनोविज्ञानवेत्ताओं ने दावा किया है कि प्रौढ़ सामाजिक अभिवृत्तियाँ मूलतः पूर्ववर्ती उत्पत्ति की निजी संवेगात्मक समस्याओं की परोक्ष अभिव्यक्ति होती हैं। उन्होंने इस सामान्य प्रस्थापना को अपना लिया है कि बचपन के सर्वप्रथम अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध उन दीर्घकालीन चरित्र-सम्बन्धी स्ववृत्तियों की स्थापना करते हैं जो सामाजिक समस्याओं के प्रति प्रौढ़ व्यक्ति के विचारों की दिशा को नियंत्रित करती हैं (आश, 1952, पृष्ठ 607)।

मनुष्य अपने जीवन में जैसे-जैसे अनुभव प्राप्त करता जाता है और उसमें प्रौढ़ता आती जाती है वैसे-वैसे उसकी अभिवृत्तियाँ भी बदलती जाती हैं। वे उसके जीवन में होनेवाले अन्य सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के साथ भी बदलती रहती हैं। उदाहरण के लिए, प्रौढ़ता तथा जीवन के अनुभवों के साथ कंचन, ज्योति तथा वासना जैसी श्रमजीवी स्त्रियों के जीवन में प्रेम की संकल्पना बदलती गयी है, और साक्षात्कार के समय वे प्रेम, विवाह तथा सेक्स के बारे में जो कुछ अनुभव करती थीं, वह स्वयं उनके बयान के अनुसार, उससे बहुत भिन्न और बदला हुआ था जो वे उस समय अनुभव करती थीं जब वे किशोरवयस्क थीं या जब वे आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं हुई थीं और उन्हें जीवन का बहुत अनुभव नहीं हुआ था।

आइसेंक के दूसरे अभिवृत्ति आयाम "आमूल परिवर्तनवाद-रूढ़िवाद" (1954) का बहुत बड़ा अंश उन प्रभावों के प्रति, जो किसी व्यक्ति-विशेष ने अपने जीवन में अनुभव किये हैं, उसकी प्रतिक्रियाओं का है। यह आयाम कई बातों में शोफ़ील्ड की 'शोध-कार्य' (1968) के "अनुज्ञात्मक-नियामक" आयाम के समान है और ऐसा लगता है कि शोफ़ील्ड का अति अनुज्ञात्मक किशोर आइसेंक के आमूल-परिवर्तनवादी किशोर की तरह है तथा शोफ़ील्ड का अति दृढ़ नियामक किशोर घोर रूढ़िवादी होगा सिवाय इसके कि शोफ़ील्ड का किशोर जिन विषयों पर अपना मत व्यक्त करता है उनका सम्बन्ध मुख्यतः नैतिकता से है, जबकि आइसेंक का किशोर जिन विषयों पर मत व्यक्त करता है उनका सम्बन्ध

राजनीति से है (देखिये शोफ़ील्ड, 1968, पृष्ठ 194-195)। आइसेंक के सिद्धान्त के अनुसार 'आमूल परिवर्तनवाद-रूढ़िवाद' के आयाम की परिधि में आनेवाले विषयों पर किसी व्यक्ति के जो मत होते हैं उनका निर्धारण उन समस्त प्रभावों से होता है जिन्हें वह व्यक्ति अपने पूरे जीवन के दौरान अनुभव करता है, जिनमें भाषा के माध्यम से सीखने का प्रभाव भी शामिल है।

अभिवृत्तियों के क्षेत्र में जो शोध-कार्य होता है उसकी जड़ें 'नियतत्ववाद' में होती हैं। नियतत्ववाद की मुख्य कल्पना यह है कि अतीत के सामाजिक तथा मानसिक अनुभव बहुत स्पष्ट रूप से इस बात का निर्धारण करते हैं कि भविष्य में लोग किस ढंग से अनुक्रिया करेंगे, किस ढंग से सोचेंगे और उनकी प्रतिक्रिया किस प्रकार की होगी।

अतीत के अनुभवों में परिवार के सदस्यों के साथ, अध्यापकों के साथ और स्कूल, कालेज तथा काम करने की जगह में समकक्षी लोगों के साथ विविध प्रकार के अनुभव शामिल रहते हैं। इस प्रकार के अनुभव कुछ मूल्यों तथा पूर्वग्रहों के अर्जन को प्रभावित करते हैं (देखिये लैंट्ज़ तथा स्नाइडर, 1969, पृष्ठ 209)।

जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्याओं के बारे में प्रत्येक व्यक्ति की अभिवृत्तियों की प्रतिक्रिया उस परिवेश तथा समाज पर होती है जिसमें वह व्यक्ति रहता है और उस समाज तथा परिवेश की प्रतिक्रिया उसकी अभिवृत्तियों पर होती है। यह दोतरफ़ा प्रक्रिया होती है जिसमें सामाजिक तथा वैयक्तिक कारकों की परस्पर अन्तःक्रिया तथा अन्तः-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ऐसे सामाजिक तथा अभिवृत्ति-सम्बन्धी परिवर्तन होते हैं जिनमें बहुत घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध होता है और जो एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

बदलती हुई अभिवृत्तियाँ

प्रेम, विवाह और सेक्स के प्रति—तीन ऐसे तन्त्र [illegible] होते हुए भी वे अनिवार्य रूप से परस्पर सम्बन्वित रहते हैं—[illegible] में इतनी घुली-मिली होती हैं कि दूसरे तन्त्रों को ध्यान में रखे [illegible] में सोचना और महसूस करना प्रायः असम्भव होता है। [illegible] का अंग है और सेक्स प्रेम का अंग है और ये दोनों मिलकर [illegible] विश्लेषण के काम के लिए इन तीनों पर अलग-अलग विचार [illegible] अलग उनकी विवेचना की गयी है। पूरी सावधानी [illegible] कि अलग-अलग शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये इन [illegible] वृत्तियाँ कहीं-कहीं परस्परव्यापी हो गयी हों और एक-दूसरे [illegible]

प्रेम से सम्बन्धित अभिवृत्तियाँ

जैसा कि डे (1959) ने बताया है, इस बात के [illegible] तथा बीसवीं के लोकप्रिय साहित्य में भी प्रेम एक महत्त्वपूर्ण [illegible] के साहित्य के अधिकांश घटनामूलक कथा-प्रसंगों में प्रेम एक [illegible]

जाता है, जैसे सावित्री, शकुन्तला या दमयन्ती के कथा-प्रसंगों में, और राम तथा सीता का प्रेम तो एक महान् महाकाव्य का मुख्य विषय है।

प्राचीन हिन्दू साहित्य के गीतों में "शायद ही कभी प्रेम का उल्लेख किसी पारलौकिक वस्तु के रूप में किया गया हो, बल्कि उसे हमेशा एक निश्चित संवेदन अथवा भावना के रूप में उसके ठोस आकार तथा उसके प्रत्यक्ष आकर्षण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि हमेशा शरीर तथा आत्मा का चित्रण एक साथ करता है, यद्यपि अपने आवेश की यथार्थनिष्ठता के कारण वह शरीर पर अधिक ध्यान देता है; और प्रेम का चित्रण आत्म-त्याग की अपेक्षा आत्म-तुष्टि के रूप में अधिक होता है। परन्तु उसके शरीर को प्राथमिकता देने में कोई तुच्छ अथवा निन्दनीय बात नहीं है" (डे, 1959, पृष्ठ 36-37)। संस्कृत में शृंगार-रस के परवर्ती काव्यों में प्रेम-क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है जैसे भारवि, माघ आदि कवियों के यहाँ, और उनमें नारी के रूप-लावण्य का अत्यन्त कामोद्दीपक वर्णन करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। एक आवेश के रूप में उनमें प्रेम का मूलतः यथार्थ निरूपण आंशिक रूप से नारी-सौन्दर्य की भारतीय संकल्पना तथा आदर्श को व्यक्त करता है। इन काव्यों से बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित वे काव्य हैं जो कामविज्ञान के अध्ययन पर ही आधारित हैं। स्त्री के हृदय पर भी प्रेम का वैसा ही प्रभाव होता है जैसा पुरुष के हृदय पर, परन्तु विभिन्न प्रकार के पुरुषों तथा स्त्रियों पर यह प्रभाव अलग-अलग ढंग का होता है। संस्कृत की शृंगार-रस की कविता अत्यन्त समृद्ध है और उसमें खुले कामोद्दीपन से लेकर कामोद्दीपक रहस्यवाद तक प्रेम के विभिन्न पहलुओं का चित्रण किया जाता है (देखिये डे, 1959)।

प्राचीन भारतीय शास्त्रीय साहित्य की शृंगार-रस की काव्य-रचनाओं की तरह, जिनमें दैवी प्रेम से लेकर कामोद्दीपक प्रेम तक प्रेम की विभिन्न परिवर्तनशील मनोदशाओं, अभिवृत्तियों तथा संकल्पनाओं का चित्रण किया गया है, भारत की शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियाँ भी उतनी ही विविध तथा परिवर्तनशील हैं, जिसमें पहले 'शुद्ध स्नेह', 'रूमानी प्रेम' और 'सर्वस्व बलिदान कर देने तथा सर्वस्व दे डालने वाले प्रेम' पर आग्रह किया जाता था और दस वर्ष बाद 'सेक्स-प्रेम', 'उद्देश्य-मूलक प्रेम, 'तर्कसंगत प्रेम' और 'हानि-लाभ का लेखा-जोखा करके किये जानेवाले प्रेम' पर अधिक ज़ोर दिया जाने लगा।

इस बात से प्रेम के प्रति स्त्रियों की अभिवृत्तियों में निश्चित परिवर्तन का संकेत मिलता है कि ऐसी स्त्रियों की संख्या अब घटती जा रही है जो 'एक ही सच्चे प्रेम' के आदर्श में विश्वास रखती हों और उन स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है जो स्त्री के एक से अधिक पुरुष से प्रेम करने की वैधता में विश्वास करने लगी हैं।

प्रेम के प्रति उनकी अभिवृत्तियों में एक और परिवर्तन उनके उन प्रत्युत्तरों में देखा गया जो उन्होंने इस प्रश्न के जवाब में दिये थे कि सुखी रहने के लिए उन्हें किस चीज़ की सबसे अधिक आवश्यकता है। जबकि दस वर्ष पहले 'प्रेम' और 'अच्छे पति तथा अच्छे घर-बार' पर अधिक ज़ोर दिया जाता था, दस वर्ष बाद 'धन-दौलत' और

'ख्याति' पर अधिक ज़ोर दिया जाने लगा, हालांकि 'प्रेम' और 'अच्छा पति तथा अच्छा घरबार' अब भी उनकी वांछित आवश्यकताएँ हैं। यह देखा गया है कि उनके मूल्य बदल गये हैं और कम से कम सचेतन रूप से, वे स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में प्रेम को कम महत्त्व देने लगी हैं।

बहुत अच्छी हैसियत का या बहुत धनवान पति और बहुत अच्छे घर-बार के लिए उनकी यह नयी लालसा और इसके साथ ही मान्यता तथा ख्याति प्राप्त करने की उनकी उत्कट इच्छा दस वर्ष बाद कहीं अधिक प्रबल रूप में पायी गयी; विशेष रूप से उन स्त्रियों में जो दिल्ली में रहती तथा काम करती थीं। काफ़ी हद तक यह इच्छा-पूर्ति की भी अभिव्यक्ति हो सकती है—जो अचेतन मन की एक मानसिक घटना होती है। बड़े शहरी केन्द्रों के अवैयक्तिक तथा व्यक्ति-निरपेक्ष वातावरण में मनुष्य के [illegible]

विवाह के प्रति अभिवृत्तियाँ

अब अधिकाधिक शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ इस परम्परागत मध्यमवर्गीय विचार को त्यागती जा रही हैं कि स्त्री की एकमात्र जीवन-वृत्ति उसका परिवार होता है। यद्यपि अधिकांश श्रमजीवी स्त्रियाँ अब भी निःसंकोच भाव से विवाह तथा परिवार की इच्छा करती हैं, परन्तु दस वर्ष पहले की तुलना में आज कहीं अधिक स्त्रियाँ ऐसी हैं जिनमें आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने, एक व्यक्ति के रूप में मान्यता पाने और केवल पारिवारिक जीवन के बजाय किसी व्यवसाय अथवा रोज़ी के काम में उपयोगिता का आभास अनुभव करने की इच्छा बनी रहती है, और अब उनमें से अधिकांश यह नहीं सोचतीं कि विवाह और जीवनवृत्ति में कोई विरोध है। लेखिका ने अपने अध्ययन **विवाह और भारत की श्रमजीवी स्त्रियाँ** (कपूर, 1970) में यह देखा कि सबसे अधिक प्रतिशत-अनुपात उन स्त्रियों का था जो विवाह के साथ ही कोई नौकरी भी करते रहना अधिक पसन्द करती हैं।

फिर भी, अधिकांश श्रमजीवी स्त्रियों के लिए विवाह अब भी, पहले से भी अधिक, निश्चित रूप से एक अत्यन्त वांछित लक्ष्य है और बहुधा तो ऐसा भी होता है कि उसे जीवनवृत्ति के रूप में काम करने की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है। प्रस्तुत अध्ययन में एकत्रित की गयी आधार-सामग्री के परिमाणात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही प्रकार के विश्लेषण से संकेत मिलता है कि शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों के बीच विवाह की लोकप्रियता पहले की तुलना में बढ़ गयी है। दस वर्ष पहले की तुलना में अब वे यह अधिक चाहती हैं कि वे जल्दी विवाह कर लें और विवाह के बाद शीघ्रतम उनके बच्चे हो जायें, और सबसे बढ़कर उन्होंने यह स्वीकार किया कि विवाह ही उनका अन्तिम लक्ष्य तथा वास्तविक जीवन है और यही स्त्री की आधारभूत योजना होती है।

अपनी समस्त शिक्षा, नौकरियों, आर्थिक स्वतन्त्रता और व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त होने के बावजूद हर आयु की, हर शैक्षिक तथा व्यावसायिक स्तर की और हर सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की अविवाहित श्रमजीवी स्त्रियाँ पहले की अपेक्षा अब यह अधिक सोचने लगी हैं कि विवाह उनकी एक सबसे बड़ी आवश्यकता है और यह कि जीवन-विवाह के बिना अधूरा रहता है और उसकी परिपूर्ति नहीं होती। और इस सचेतन आभास के साथ वे सुखी विवाहित जीवन की आवश्यकता तथा इच्छा को अधिक गहराई से अनुभव करती हैं। यह बिल्कुल वैदिक साहित्य में उल्लिखित प्रख्यात स्त्रियों जैसी अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति है, जो सुखी विवाहित जीवन की कामना करती थीं तथा उसके लिए प्रार्थना करती थीं और यह विश्वास करती थीं कि यह उनके जीवन की पूर्ण निष्पत्ति के लिए अनिवार्य है।

समस्त परिवर्तनों के बावजूद विवाह को अब भी सर्वाधिक वांछित तथा आवश्यक संस्कार माना जाता है, उससे भी अधिक जितना कि पहले समझा जाता था। परन्तु अब उनके लिए विवाह ऐसा सांस्कारिक बन्धन नहीं रह गया है जिसे भंग न

किया जा सके, वल्कि वह एक ऐसी व्यावहारिक व्यवस्था है, एक प्रकार का संविदा जिसका लक्ष्य उसमें भाग लेनेवाले दोनों पक्षों को कुछ लाभ तथा सुविधाएँ प्रदान करना होता है। और इस संकल्पना के अनुरूप, शहरों की शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ अधिकाधिक संख्या में यह विश्वास रखने लगी हैं कि जब भी विवाह व्यावहारिक दृष्टि से सफल न रह जाये तो उसे भंग करने की अनुमति होनी चाहिए। इस प्रकार यह देखा गया है कि जो चीज़ धीरे-धीरे वदल रही है वह है विवाह की पुनीतता से सम्बन्धित उनकी संकल्पना। अब ऐसी स्त्रियों की संख्या पहले से कहीं अधिक है जिनके लिए विवाह की पुनीतता पारस्परिकता की पुनीतता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

विवाह करने की इस बढ़ती हुई आवश्यकता तथा इच्छा के साथ विवाह करने की अभिप्रेरणा से सम्बन्धित उनके विचारों में होनेवाले परिवर्तन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'केवल परम्परा अथवा सामाजिक प्रथा का पालन करने', 'जीवन के मूल कर्त्तव्यों को पूरा करने', 'पति, घर-बार तथा बच्चों का ही होकर रहने', 'पारस्परिक प्रेम प्राप्त करने', 'सामाजिक, आर्थिक तथा शारीरिक सुरक्षा प्राप्त करने' और 'परिपूर्ण तथा सर्वरूपेण सम्पन्न मानसिक तथा शारीरिक जीवन प्राप्त करने' के उद्देश्य से विवाह करने की इच्छा रखने से हटकर अब उनके विवाह करने की इच्छा रखने के केन्द्रीय लक्ष्य हो गये हैं 'सामाजिक प्रतिष्ठा तथा समाज में सम्मान प्राप्त करना', 'मानसिक, शारीरिक तथा संवेगमूलक आवश्यकताओं तथा जीवन को किसी के साथ मिल-बाँटकर बिताने की भावना की तुष्टि करना', 'पति, घर-बार, बच्चों का सुख प्राप्त करना', 'सुविधा प्राप्त करना', 'अकेलेपन से—एक अविवाहित लड़की के नैराश्यपूर्ण तथा सुखरहित जीवन से—बचना', 'विफल प्रेम-सम्बन्ध की निराशा से मुक्त होना', 'सेक्स-तुष्टि के वैध साधन प्राप्त करना', 'गहराई से अनुभव की जानेवाली प्रेम तथा ध्यान की आवश्यकता को पूरा करना', 'एक ऐसा व्यक्ति प्राप्त करना जो उसके जीवन की सारी जिम्मेदारियों का बोझ अपने कन्धों पर ले ले', और 'संवेगात्मक अरक्षा तथा हीनता की भावना को दूर करना'।

उनमें अब अधिकाधिक स्त्रियाँ सबसे बढ़कर भौतिक सम्पदाओं तथा भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए विवाह करना चाहती हैं। शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों के बीच सम्पदा तथा सुख-सुविधा के लिए विवाह करने की प्रवृत्ति प्रबल होती जा रही है। दस वर्ष के अन्दर परिवर्तन यह हो गया है कि अब विवाह करने के लिए नकारात्मक तथा अहंमूलक अभिप्रेरणाएँ अधिक होती हैं और उन्हें अब स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की अधिक चिन्ता रहने लगी है और सकारात्मक तथा परार्थ-परक अभिप्रेरणाओं की संख्या कम हो गयी है। उनका वैयक्तिक लाभ और वैयक्तिक आवश्यकता की तुष्टि प्रदान करनेवाली अभिप्रेरणाओं पर अधिक बल देना, जैसे पति तथा घर-बार और सबसे बढ़कर सम्पदा तथा भौतिक-सुख-सुविधाएँ प्राप्त करना और शारीरिक तथा संवेगात्मक सन्तुष्टि प्राप्त करना, काफी हद तक जीवन में प्रेम के अभाव, सुरक्षा के अभाव और अच्छे तथा अर्थपूर्ण मानव-सम्बन्धों के अभाव को पूरा करने के उनके

अचेतन प्रयास को प्रदर्शित करता है। यह आत्मविश्वास की उस कमी, दूसरों को प्रेम करने तथा उनकी सेवा करने की अपनी क्षमता में भरोसे की उस कमी को भी पूरा करने की उनकी अचेतन चेष्टा की भी अभिव्यक्ति है, जो सारी कमियाँ उनके अन्दर अपने माता-पिता के घर और बड़े शहरों के विसम्बन्धित, प्रायः मानवता-रहित तथा आवश्यकता से अधिक तथ्यपरक जीवन के कारण उत्पन्न हो जाती हैं जहाँ लोग अधिकांश स्वकेन्द्रिक तथा लाभोन्मुख रहते हैं। अपनी रक्षा का सारा तन्त्र-विधान एक उद्विग्न, विच्छृंखल, अपरिपक्व तथा तनावपूर्ण मन का परिचायक है, जिसके कारण वे समझने लगती हैं कि विवाह उनकी सारी संवेगमूलक तथा मानसिक समस्याओं को हल कर देगा और उनके हर अभाव को पूरा कर देगा। विवाह करने की उनकी अभिप्रेरणाओं में अब यह प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है कि वे विवाह को तथा अपने जीवन-साथी को स्वतः लक्ष्य मानने के बजाय किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन मानने लगी हैं। हालाँकि वे अब भी प्रेम को एक ऐसी चीज़ मानती हैं जिसकी उन्हें सबसे अधिक आवश्यकता है और जिसे वे सबसे अधिक मूल्यवान समझती हैं; फिर, अब ऐसी स्त्रियों की संख्या पहले से अधिक हो गयी है जो अपने जीवन में सच्चे प्रेम-सम्बन्ध प्राप्त कर सकने के प्रति निराश होने लगी हैं। इसलिए वे विवाह को आदान-प्रदान का ऐसा व्यापार-सम्बन्ध समझती हैं जिसमें पति तथा पत्नी दोनों ही उन अन्य लाभों के बदले में, जो वे अपने विचार से दूसरे पक्ष को देते हैं, स्वयं कुछ लाभों की माँग करते हैं।

विवाह की अभिप्रेरणाओं का विवाह से की जानेवाली प्रत्याशाओं के साथ पारस्परिक सम्बन्ध है और एक प्रकार से विवाह की अभिप्रेरणाएँ ही विवाह से की जानेवाली प्रत्याशाओं तथा उसके फलस्वरूप स्थापित होनेवाले वैवाहिक सम्बन्ध का महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व होती हैं। विवाह की प्रथा का विकास सबसे पहले उत्तरजीविता (जीवन के संरक्षण) के लिए, फिर सुरक्षा के लिए और उसके बाद सुविधा के लिए किया गया था। परन्तु दस ही वर्ष की अवधि के अन्दर यह देखा गया कि विवाह से शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की प्रत्याशाओं में नये आयाम जुड़ते जा रहे हैं। अब इनमें से अधिकाधिक स्त्रियाँ पहले की अपेक्षा इस बात की अधिक आशा रखने लगी हैं कि विवाह न केवल उनकी सारी मूल आवश्यकताओं को, बल्कि उनके जीवन की अन्य सभी आवश्यकताओं को भी पूरा कर देगा—इस बात की आवश्यकता कि कोई उनकी चिन्ता करे, कोई उनकी देखभाल करे, कोई उनकी मानसिक तथा संवेगमूलक समस्याओं को हल कर दे, उन्हें भौतिक सुख-सुविधाएँ मिल सकें और वे किसी के साथ अपने भाव, अपना प्रेम, अपनी रुचियाँ, अपने मूल्य, अपनी सद्भावना और अपने बौद्धिक तथा सेक्स-सम्बन्धी सुख बाँट सकें।

ऊपर बतायी गयी सारी प्रत्याशाओं के पीछे वैयक्तिक सन्तोष तथा वैयक्तिक सुख पर अधिकाधिक बल देने की प्रवृत्ति दिखायी देती है, जो अभी इधर कुछ ही समय से उत्पन्न हुई है। इससे इस बात का भी संकेत मिलता है कि वे अचेतन रूप से उस

अर्थपूर्ण तथा सन्तोषप्रद मानव-सम्बन्ध के लिए, उस सम्पूर्ण प्रेम तथा सम्पूर्ण संवेगात्मक परिपूर्ति के लिए लालायित रहती हैं तथा उसे पाने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं, जो उन्हें अपने घर के या बड़े शहरों के निर्वैयक्तिक, उदासीन, स्वकेन्द्रिक और 'आवश्यकता से अधिक भौतिकवादी' वातावरण में नहीं मिल पाता। यदि विवाह जैसे एक ही सम्बन्ध तथा प्रथा से इतनी बहुत-सी बातों की आशा रखी जाये और यदि उनके पूरे होने में कोई कमी रह जाये तो उससे विफलता की भावना, असन्तोष, निराशा और उदासी उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। और अब पहले की अपेक्षा अधिक स्त्रियाँ यह महसूस करने लगी हैं कि पति की क्रूरता, शराबीपन या बेवफ़ाई के आधार पर ही नहीं बल्कि दोनों के स्वभावों तथा जीवन-पद्धति में मेल न बैठने पर भी अलगाव या तलाक़ की अनुमति होनी चाहिए। और यदि विवाह से या अपने जीवन-साथी से उनकी प्रत्याशाएँ पूरी न हों तब भी उन्हें तलाक़ ले लेने की छूट होनी चाहिए। 1938 में अमरीका की राष्ट्रीय तलाक़ सुधार लीग की ओर से एक प्रश्नावली के आधार पर किये गये 500 व्यक्तियों के अध्ययन में यह देखा गया कि 2 प्रतिशत से भी कम तलाक़ पति या पत्नी के वफ़ादार न रहने के कारण लिये जाते हैं और 70 प्रतिशत पारस्परिक असंगतियों के कारण। अचेतन रूप से यह प्रवृत्ति श्रमजीवी स्त्रियों की, और विशेष रूप से नौजवान शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की, अभिवृत्तियों में शामिल होती जा रही हैं।

कुल मिलाकर, दस वर्षों के अन्दर, विवाह के प्रति शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की विवाहित जीवन में अपनी ओर से अधिकतम देने के बजाय उससे अधिकतम प्राप्त करने की अभिवृत्ति बढ़ गयी है। और विवाह जैसे अनन्य सम्बन्ध में, दूसरों को कुछ देकर तथा उनके लिए कुछ करके सुख तथा सन्तोष प्राप्त करने पर असमर्थ रहने पर इस बात की सम्भावना उत्पन्न होती है कि तनाव पैदा हों और वे लक्ष्य ही अप्राप्य हो जायें जिन्हें ये स्त्रियाँ विवाह के माध्यम से तथा उसकी परिधि में प्राप्त करने की कोशिश करती हैं। वे इस प्रकार विवाह के उद्देश्य को ही विफल कर देती हैं। आधुनिकता के रंग में रँगी हुई श्रमजीवी स्त्रियाँ विवाहित जीवन की सुरक्षा भी चाहती हैं और अविवाहित जीवन की स्वतन्त्रता भी। वे दोनों ही स्थितियों के सारे लाभ चाहती हैं परन्तु यह भूल जाती हैं कि इसके लिए उन्हें सुविधाओं के अनुसार त्याग भी करना होगा।

प्रस्तुत अध्ययन की लेखिका ने शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों के बीच विवाह के सम्बन्ध में जिन अनोखे आदर्शों तथा विचारों का प्रादुर्भाव देखा और जिनका इस खंड में विभिन्न प्रसंगों में उल्लेख भी किया जा चुका है, उनमें से कई का प्रादुर्भाव अमरीका में लगभग दो दशक पहले आरम्भ हो चुका था। इसका संकेत सिरजामाकी (1948) के निष्कर्षों तथा विश्लेषण में मिलता है, जिन्होंने लिखा था :

> अपनी नौकरी में संवेगात्मक सन्तुष्टि की खोज करते हुए बहुधा अपने समाज में भी उसे प्राप्त करने में विफल रहकर, आधुनिक मनुष्य ने

विवाह को समस्त सुख का स्रोत और समस्त संवेगात्मक अभावों का हल तथा क्षतिपूर्ति का साधन मान लिया है। पति तथा पत्नी का निजी सुख सफल विवाह की कसौटी बन गया है। पारस्परिक सामंजस्य को विवाह का आधार माना जाता है और विवाहित जीवन का आनन्द उन संवेगात्मक भावों पर निर्भर रहने लगता है जो दम्पत्ति अपने सम्बन्ध के प्रति रखते हैं। इस प्रकार विवाहित जीवन में सुख की भविष्यवाणी एक निजी समीकरण के आधार पर, वैयक्तिक सन्तोष के आधार पर की जाती है। विवाहित जीवन में सुख के सांस्कृतिक पक्ष पर बल अभी इधर कुछ ही समय से दिया जाने लगा है (देखिये ओटो, पृष्ठ 71)।

और असंदिग्ध रूप से "यह स्वीकार किया जाता है कि 'अहं' की इस अभिवृत्ति का एकमात्र उद्देश्य अपने स्वार्थ को बढ़ावा देना होता है, वह स्वार्थ कितनी ही उत्कृष्ट कोटि का क्यों न हो" (एलियट तथा मेरिल, 1950), और जैसा कि सेट ने लिखा है, "यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि व्यक्तिवाद की दिशा में आधुनिक प्रवृत्ति के कारण स्त्रियाँ तथा पुरुष दोनों ही विवाहित जीवन में निजी सुख प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयत्नशील रहने लगे हैं और सामाजिक संयम के प्रति वे कम सहिष्णु रह गये हैं। सभी वर्गों में तथा स्त्रियों व पुरुषों दोनों ही में व्यक्तिवाद के प्रसार से असंदिग्ध रूप से उस समय तक सामाजिक जीवन में, और सबसे बढ़कर विवाहित जीवन में, अधिकाधिक उलझाव पैदा होते जायेंगे, जब तक कि वैयक्तिक दायित्व की नैतिकता के विकास के माध्यम से इस नयी स्वतन्त्रता का उपयोग अधिक विवेकपूर्ण ढंग से न किया जाने लगे" (सेट, 1938, पृष्ठ 570)।

यद्यपि इसमें विरोधाभास दिखायी देता है परन्तु यह बात है सच कि यद्यपि विवाह से स्त्रियों की प्रत्याशाओं का क्षेत्र अधिक व्यापक होता जा रहा है, परन्तु उन स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात निरन्तर घटता जा रहा है जो यह सोचती हैं कि "विवाह से सम्पूर्ण सुख मिलता है"। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि अव्यावहारिक होने तथा कल्पनालोक में रहने के बजाय विवाह के प्रति उनकी अभिवृत्ति अधिक व्यावहारिक और यथार्थपरक होती जा रही है। परन्तु काफी हद तक इसका कारण यह भी हो सकता है कि सम्पूर्ण सुख की उनकी संकल्पना में ही एक परिवर्तन दिखायी देने लगा है। इस बात के बावजूद वे अपने विवाह से कहीं अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति की आशा रखने लगी हैं, परन्तु वे उससे अपनी समस्त आवश्यकताओं की तुष्टि की आशा नहीं रखतीं।

इस अध्ययन में और इससे पहले वाले अध्ययन में जो गुणात्मक आधार-सामग्री—व्यक्ति-अध्ययन—प्रस्तुत की गयी है, उसमें उनके इस उत्तरोत्तर बढ़ते हुए विश्वास का स्पष्ट चित्रण होता है कि वे अपनी समस्त संवेगात्मक, बौद्धिक तथा मानसिक आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए विवाह पर निर्भर नहीं रहतीं। पहले की अपेक्षा अधिक उन्होंने यह बताया कि अपनी अनेक आवश्यकताओं को, जैसे उपलब्धि, मान्यता,

ख्याति, बौद्धिक उद्दीपन तथा साहचर्य की आवश्यकता की ओर एक निजी हैसियत तथा आर्थिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता को पूरा करने के लिए वे मुख्यतः अपनी नौकरियों, अपनी जीवनवृत्तियों तथा अपने व्यवसाय पर और विभिन्न बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा घर के बाहर की अन्य गतिविधियों पर और विवाह की परिधि के बाहर स्थापित की गयी मित्रताओं पर निर्भर रहती हैं। इसकी और अधिक पुष्टि इस बात से होती है कि अपनी विभिन्न बौद्धिक तथा संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे विवाह की परिधि के बाहर की मित्रताओं तथा सम्बन्धों का अधिकाधिक अनुमोदन करने लगी हैं, और उनके इस बढ़ते हुए विश्वास से भी कि सम्पूर्ण सुख के लिए उन्हें विवाह पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

प्रायः पारम्परिक ढंग के तय किये हुए विवाह का अनुमोदन करनेवाली स्त्रियों की कुछ कोटियाँ ये हैं : (1) वे जो कट्टरपंथी परिवारों की होती हैं और जिन पर स्नेहमय माता-पिता की सत्ता का नियन्त्रण रहता है, और जो उन्हीं की तरह सोचती हैं; (2) वे जिनमें अपने अनाकर्षक शारीरिक रूप-रंग के कारण या भीरु तथा संकोचशील स्वभाव के कारण आत्मविश्वास नहीं रहता और जो यह समझने लगती हैं कि वे अपने लिए उचित वर नहीं ढूंढ़ सकतीं; (3) वे जिन्हें स्वयं अपने 'प्रेम प्रसंगों' में कटु अनुभव हो चुके हों या जिन्हें अपने रिश्तेदारों अथवा मित्रों से इन प्रकार के अनुभवों की जानकारी मिली हो। पहली दो कोटियों की स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात दस वर्ष पहले अधिक था, जबकि दस वर्ष बाद तीसरी कोटि की स्त्रियों का प्रतिशत-अनुपात अधिक पाया गया। परन्तु ये स्त्रियाँ भी 'शुद्धतः तय किये हुए विवाह' के विचार की विरोधी हैं और यह समझती हैं कि अन्तिम निर्णय से पहले दोनों ही पक्षों की सहमति प्राप्त कर ली जानी चाहिए।

विवाह के प्रति शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में एक और बढ़ती हुई प्रवृत्ति यह देखी गयी कि वे तय किये हुए विवाहों की प्रथा का पहले से अधिक समर्थन करने लगी हैं, हालांकि तय किया गया विवाह किस ढंग का होना चाहिए इसके बारे में उनकी संकल्पना बदल गयी है। तय किये हुए विवाह से उनका अभिप्राय वह पारम्परिक ढंग का शुद्धतः तय किया हुआ विवाह नहीं रह गया है जिसमें लड़की को दूकान में सजे हुए बिकाऊ माल की तरह प्रदर्शित किया जाता है और लड़का तथा उसके परिवार वाले अत्यन्त औपचारिक तथा तनावपूर्ण वातावरण में आलोचना[illegible] दृष्टि से उसका निरीक्षण करते हैं। तय किये हुए विवाह कराने की पारम्परि[illegible] का दृढ़तापूर्वक विरोध करनेवाली श्रमजीवी स्त्रियों की संख्या अब बढ़ गयी [illegible] इससे उनका अभिप्राय यह हो गया है कि लड़के तथा लड़की से सम्बन्धि[illegible] के बारे में और उनके परिवारों से सम्बन्धित सभी भौतिक तथा [illegible] तथ्यों के बारे में पूरी तरह सन्तुष्ट हो जाने तथा उनको सर्वथा [illegible] माता-पिता, अभिभावक या मित्र भावी जीवन-साथियों का उनके [illegible] सम्बन्धियों की उपस्थिति में किंचित् अनौपचारिक तथा [illegible]

में एक-दूसरे से परिचय करा देने की व्यवस्था कर दें। वे महसूस करती हैं कि इस प्राथमिक भेंट के बाद यदि लड़के तथा लड़की का झुकाव एक-दूसरे के प्रति हो तो उन्हें एक-दूसरे से मिलने और विचारों का आदान-प्रदान करने के कुछ अवसर दिये जाने चाहिए और इसके बाद उन्हें अपने माता-पिता, अभिभावकों, या मित्रों की सहायता तथा सलाह से अन्तिम निर्णय करने दिया जाये। इस प्रकार, यद्यपि यह विवाह माता-पिता या अभिभावकों का तय किया हुआ होता है, पर इसे भावी जीवन-साथियों की हार्दिक सहमति प्राप्त रहती है जो सहमति व्यक्त करने से पहले इस बात का पूरा आश्वासन कर लेते हैं कि इस बात की आशा की जा सकती है कि उन परिस्थितियों में उनकी जितनी भी माँगें सम्भवतः पूरी हो सकती हैं वे उनके भावी जीवन-साथी से तथा विवाह से पूरी हो सकेंगी। इस प्रकार के विवाह को "नये ढंग का तय किया हुआ विवाह' कहा" जा सकता है, क्योंकि इसमें अन्तिम निर्णय लड़के और लड़की की पसन्द तथा अनुमति पर निर्भर रहता है, जो पारम्परिक ढंग के तय किये हुए विवाहों से भिन्न पद्धति है।

यह भी देखा गया है कि "तय किये हुए विवाहों" के बदलते हुए अर्थ के साथ ही शहरों के मध्यमवर्गीय शिक्षित परिवारों में उन बातों तथा विचारणीय तथ्यों के सम्बन्ध में भी परिवर्तन आ गया है जिनका कि तय किये हुए विवाह में ध्यान रखा जाता है। तीन दशक पहले लड़की के माता-पिता के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण विचारणीय बात यह होती थी कि लड़का उसी प्रान्त तथा जाति का और प्रतिष्ठित तथा समृद्धिशाली परिवार का हो। स्वयं उसकी आयु, नौकरी या व्यवसाय की ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता था। अब दस वर्ष पहले की अपेक्षा अधिक हद तक, मुख्य महत्त्व लड़के की नौकरी अथवा व्यवसाय और उसकी आय को और उसकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताओं तथा अपनी नौकरी, व्यवसाय या व्यापार में पैसा कमाने की उसकी क्षमताओं तथा भावी सम्भावनाओं को दिया जाने लगा है। लड़के के माता-पिता के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण विचारणीय बात यह होती थी कि लड़की उसी प्रान्त तथा उसी जाति की हो, सम्पन्न परिवार की हो और घर के काम-काज तथा खाना पकाने में निपुण हो, जबकि अब उसकी शिक्षा, उसकी प्रतिभाओं तथा जीविकोपार्जन की उसकी क्षमताओं पर, उसके निजी सौन्दर्य तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि पर अधिक जोर दिया जाने लगा है।

यद्यपि अब श्रमजीवी स्त्रियाँ अधिकाधिक संख्या में "शुद्ध प्रेम-विवाहों" को नापसन्द करने लगी हैं, परन्तु वे एक नये ढंग के प्रेम-विवाह का निश्चित रूप से अनुमोदन करती हैं। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बयानों, उनके जीवन-वृत्तों तथा उनकी अनुक्रियाओं का विश्लेषण करने से इस बात का निश्चित संकेत मिलता है कि प्रेम के बारे में उनकी संकल्पना में परिवर्तन के साथ ही प्रेम-विवाह से सम्बन्धित उनकी संकल्पना में भी परिवर्तन हुआ है। और इसके साथ ही जिस ढंग के प्रेम-विवाह का वे अनुमोदन करती हैं और जिस प्रकार के प्रेम-विवाह वे करती हैं उनमें भी परिवर्तन

हुआ है। उनकी संकलपना के अनुसार, जिस प्रकार के प्रेम-विवाह का वे अनुमोदन करती हैं वह केवल 'सम्मोहन', 'सेक्स आकर्षण', 'स्वतःस्फूर्त परस्परिक 'प्रेम', 'रूमानी प्रेम', 'अन्धे प्रेम' या 'देखते ही प्रेम हो जाने' का परिणाम नहीं होता, बल्कि वह "शान्त भाव से सब बातों का लेखा-जोखा करके, विकसित किये गये स्नेह अथवा प्रेम" का प्रतिफल होता है। हर बात का लेखा-जोखा करके किया जाने वाला यह प्रेम इस बात का पूरा आश्वासन कर लेने के बाद कि लड़की जिस भावी जीवन-साथी के साथ विवाह के सूत्र में बँधने जा रही है वह उन समस्त विशिष्ट गुणों तथा साधनों से सम्पन्न हैं जो उस लड़की के लिए निश्चित रूप से लाभप्रद तथा हित-कर होंगे, विवाह करने का लक्ष्य प्राप्त करने के निश्चित उद्देश्य से विकसित किया जाता है। अध्याय-2 में दिया गया वासना का व्यक्ति-अध्ययन इस प्रकार के प्रेम-विवाह का एक लाक्षणिक उदाहरण है।

नये प्रकार के प्रेम-विवाह में लड़का और लड़की दफ़्तर में, क्लबों में या अन्य सामाजिक समारोहों में या तो स्वयं ही एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, या उनके मित्र, रिश्तेदार, सहकर्मी या माता-पिता भी उनका एक-दूसरे से परिचय करा देते हैं। इसके बाद लड़की बड़े शान्त भाव से और बड़ी होशियारी से लड़के की शिक्षा, उसकी नौकरी, व्यवसाय या व्यापार और भावी प्रगति की सम्भावनाओं तथा उसके स्वास्थ्य के बारे में सब कुछ मालूम कर लेती है; उसकी जाति और वह किस प्रान्त का है, ये महत्त्वपूर्ण विचारणीय बातें नहीं होतीं। लड़का भी यह देख लेता है कि लड़की अच्छे परिवार की है, पढ़ी-लिखी है, सूरत-शक्ल की अच्छी है, और या तो अच्छे वेतन वाली नौकरी कर रही है या आगे चलकर जीविका कमा सकती है। और जब दोनों इन सारी बाह्य आवश्यकताओं के बारे में सन्तुष्ट हो जाते हैं, तब कहीं जाकर वे उद्देश्य-पूर्वक एक-दूसरे के 'प्रेम में पड़ जाते हैं' और विवाह करके एक-दूसरे के साथ घर बसाने की कोशिश करते हैं, जिसके लिए कई उदाहरणों में माता-पिता की अनुमति भी ले ली जाती है। इस प्रकार, जबकि श्रमजीवी स्त्रियाँ अब अधिकाधिक संख्या में 'शुद्धतः तय किये हुए विवाहों' और 'शुद्ध प्रेम-विवाहों' से विमुख होती जा रही हैं, वे 'नये ढंग के तय किये हुए विवाहों' और 'नये ढंग के प्रेम-विवाहों' का समर्थन करने लगी हैं, जिनके अलग-अलग अर्थ तथा अलग-अलग रूप होते हैं। शिक्षित श्रम-जीवी स्त्रियों के बीच परम्परागत ढंग के 'आँख मूँदकर तय किये हुए विवाहों को स्वीकार कर लेने' और 'अन्धे प्रेम-विवाहों' दोनों ही का ह्रास होता जा रहा है।

उनकी अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों के साथ ही जीवन-साथी चुनने की समस्या अधिक जटिल हो गयी है, क्योंकि विवाह-सम्बन्ध में अलग-अलग पक्षों की भूमिकाओं तथा उनकी हैसियतों के बारे में बहुत उलझाव हैं। भावी दम्पत्ति एक-दूसरे से जिन बातों की माँग करते हैं, वे पहले की अपेक्षा अधिक भले ही न है
भी वैयक्तिकता, विस्तृत होती हुई रुचियों और नयी उभरती हुई आवश्यक
साथ-साथ पिछले एक दशक के अन्दर ही इन आवश्यकताओं में एक नूतनता

है, और वे अधिक निश्चित तथा अटल हो गयी हैं। और दोनों पक्ष अपनी माँगों के वारे में अधिक सजग हो गये हैं। स्वाभाविक रूप से जीवन-साथी चुनते समय अब इनमें से अधिकाधिक स्त्रियाँ इस वात का अधिक ध्यान रखती हैं कि वह व्यक्ति विवाह के वाद उनकी सहायता करेगा या कम से कम स्वयं अपने जीवन तथा निजी रुचियों का विकास करने में वाधक नहीं होगा। इस वात की और अधिक पुष्टि इस वात से होती हैं कि शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्री अपने भावी पति में जो गुण चाहती हैं, उनमें से कुछ ये हैं कि वह उदार विचारों वाला हो और शिक्षा तथा प्रज्ञा में उससे वढ़कर हो ताकि वह उसका सम्मान कर सके और उससे मार्गदर्शन तथा सहायता की प्रत्याशा रख सके। सारत: यह अभिवृत्ति विवाह के प्रति वही परम्परागत अभिवृत्ति है जिसमें पत्नी चाहती है कि उसका पति वुद्धि, शिक्षा तथा वीरता में उससे वढ़कर हो ताकि वह निश्चित होकर उस पर निर्भर रह सके, उसका सम्मान कर सके और उससे प्रेरणा प्राप्त कर सके। इससे मिलती-जुलती पारम्परिक अभिवृत्ति उन फ्रांसीसी स्त्रियों में भी पायी गयी जिनके वारे में रेमी तथा वूग ने यह मत व्यक्त किया है कि फ्रांसीसी स्त्री "चाहती है कि वौद्धिक दृष्टि से उस पर भरपूर प्रभुत्व रखा जाये, और यह अभिवृत्ति उसे सर्वाधिक सनातन नैतिक, मनोवैज्ञानिक परम्पराओं की परिधि में पहुँचा देती है" (रेमी तथा वूग, पृष्ठ 146)।

शिक्षित हिन्दू श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में ऊपर वताये गये परिवर्तनों से यह संकेत मिलता है कि अव उनमें ऐसी स्त्रियों की संख्या वहुत वढ़ गयी है जो विवाह की कल्पना अधिक स्पष्ट रूप में करती हैं और स्वयं अपने तथा अपने मित्रों के अनुभवों से सवक़ सीखने की कोशिश करती हैं।

विवाह के प्रति उनकी अभिवृत्तियों में एक और आँखें खोल देनेवाले तथा रोचक परिवर्तन का संकेत इस वात में मिलता है कि दस वर्ष पहले उन्होंने हिन्दू-समाज में विवाह की प्रचलित पद्धति के दोषों का उल्लेख करते हुए दहेज और आवश्यकता से अधिक प्रथाओं तथा रस्मों के पालन के साथ शुद्धत तय किये हुए विवाहों जैसे सामाजिक प्रचलनों पर अधिक ज़ोर दिया था। परन्तु दस वर्ष वाद एक-विवाह पद्धति पर प्रहार किये गये और उसे नीरस तथा असन्तोषप्रद वताया गया, और 'प्रायोगिक विवाह' तथा 'समूह-विवाह' जैसी नयी संकल्पनाओं का उल्लेख किया गया। यद्यपि अभी तक इस प्रकार के विचार व्यक्त करनेवाली स्त्रियों की संख्या वहुत थोड़ी है, फिर भी एक दशक वाद इनमें से पहले की अपेक्षा अधिक स्त्रियों ने एक-विवाह पद्धति के वारे में ऐसे विचार व्यक्त किये जिनमें कुछ-कुछ प्रतिध्वनि उन विचारों की मिलती है जो कैंडवैलेडर जैसे लोगों ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किये हैं :

> समकालीन विवाह एक अभिशप्त प्रथा है। वह स्वैच्छिक स्नेह का, स्वतन्त्रापूर्वक दिये गये तथा हर्षपूर्वक स्वीकार किये गये प्रेम का अन्त कर देता है। सुन्दर रोमांस नीरस विवाहों में परिणत हो जाते हैं, और

अन्ततोगत्वा यह सम्बन्ध अवरोधकारी, ह्रासकारी, दमनकारी तथा विनाशकारी बन जाता है। सुन्दर प्रेम-लीला एक कटुतामय संविदा का रूप धारण कर लेती है (फैंडर्वेलेंडर, 1967, पृष्ठ 48)।

प्रायोगिक विवाह का विचार कुछ-कुछ उस विचार से मिलता-जुलता है जिसे मार्गरेट मीड ने (1970) में व्यक्त किया है। उनके अनुसार दो प्रकार के विवाह होने चाहिए, जिनमें पहले प्रकार के विवाह के बाद दूसरे प्रकार का विवाह हो भी सकता है और नहीं भी। पहला विवाह वैयक्तिक विवाह हो सकता है, जिसमें दो व्यक्ति, जब तक वे साथ रहना चाहें, परन्तु भावी माता-पिता के रूप में नहीं, परस्पर प्रतिबद्ध रहेंगे। दूसरा विवाह मातृ-पितृ विवाह हो सकता है, जिसका स्पष्ट निर्दिष्ट लक्ष्य परिवार की स्थापना करना होगा। इस प्रकार के विवाह के बाद, पहली अवस्था को आज़मा लेने और उसे पूरा कर लेने पर और दोनों व्यक्तियों के दूसरी अवस्था में प्रवेश करने के लिए उत्सुक होने पर, दूसरे चरण अथवा अवस्था के रूप में हमेशा एक वैयक्तिक विवाह होगा। उसकी अपनी अलग अनुज्ञा, अपने अलग संस्कार तथा अपना अलग प्रकार का दायित्व होगा (देखिये ओटो, 1970, पृष्ठ 80)।

यद्यपि "समूह विवाह" के विचार का सुझाव दस वर्ष बाद इस अध्ययन के दूसरे चरण में बहुत ही थोड़ी श्रमजीवी स्त्रियों ने दिया, परन्तु इसके समर्थन में यह तर्क दिया गया कि यह अपने-आपमें कोई नया विचार नहीं है और मनुष्य सर्वप्रथम जिस प्रकार के विवाहों से परिचित हुआ वे समूह-विवाह ही थे। जिन लोगों ने समूह-विवाह का विचार प्रस्तुत किया उनके तर्क कुछ इस प्रकार के थे : मनुष्य से, जो सामाजिक पशुओं के समान है, यह आशा क्यों रखी जाये कि वह अपने सम्पर्क केवल एक भिन्नलिंगी व्यक्ति तक सीमित रखेगा ? व्यक्तियों के एक समूह को इस बात की अनुमति क्यों न हो कि वे आपस में विवाह करके समूह के अन्दर ही अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा कर लें और अपनी विविध रुचियों में दूसरों को भी सम्मिलित करें और जीवन-साथियों तथा बच्चों सहित अपनी उन सभी चीज़ों को जिन पर सब का सम्मिलित अधिकार है, दूसरों के साथ मिल-बाँटकर इस्तेमाल करना, सहयोग करना, निःस्वार्थ रहना और त्याग करना सीखें, जो गुण इतने घनिष्ठ सम्बन्ध के [illegible] समूह-जीवन सिखाता है ?

परन्तु इस बात के बावजूद कि कुछ लोग एक-विवाही सम्बन्धों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के सम्बन्धों के अन्तर्गत जीवन व्यतीत करने में, जिनमें समूह-विवाह भी शामिल है, विश्वास रखते हैं और जीवन व्यतीत करते भी हैं, व्यवहार में [illegible] में अब भी प्रवृत्ति 'एक-विवाही' पद्धति की दिशा में है और सम्भवतः [illegible] व्यवहार में विवाह इसी प्रकार का रहेगा (देखिये ओटो, 1970, पृष्ठ 9[illegible]

थोड़े-बहुत रूपान्तर तो हो सकते हैं, जैसे संविदा-सहित [illegible] विवाहों में थोड़ी-सी वृद्धि, परन्तु विवाह का मूल रूप अब भी वैसा [illegible] और ऐसा प्रतीत होता है कि एक संस्था के रूप में विवाह का

वह जाति, धर्म, देश आदि के बन्धनों से मुक्त होता जा रहा है और सम्भव है कि यह प्रवृत्ति और अधिक बढ़ जाये। विवाह की परम्परा चलती आ रही है और ऐसा लगता है कि भविष्य में भी चलती रहेगी। फिर भी लोग ऐसे दुस्साहसी लोगों के प्रति अधिकाधिक सहिष्णु होते जा रहे हैं जो विभिन्न प्रकार के विवाहों तथा विभिन्न सम्भावनाओं के बारे में नये-नये प्रयोग करते रहना चाहते हैं। हो सकता है कि स्वयं विवाह के स्वरूप में कुछ परिवर्तन हों। ऐसा लगता है कि आगे चलकर यह और अधिक उन्मुक्त संस्था बन जाये, जिसकी परिधि में लोग स्वयं अपनी स्वतन्त्र इच्छा से प्रवेश कर सकें या उससे बाहर निकल सकें, और वे विवाह की परिधि के अन्दर और उससे बाहर भी सेक्स-तुष्टि अनुभव कर सकें। वेस्टरमार्क ने अपनी विवेकपूर्ण रचना **विवाह का भविष्य (दि फ़्यूचर ऑफ़ मैरिज)** में लिखा है कि "लोगों में प्रचलित नियमों से बँधे रहने की प्रवृत्ति कम होती जायेगी और वे हर उदाहरण के बारे में अपना निर्णय उसके गुण-दोष के आधार पर देने को अधिक तत्पर रहेंगे, और यह कि वे स्त्रियों तथा पुरुषों को अपना प्रेम-जीवन स्वयं अपनी इच्छानुसार ढालने के लिए अधिक स्वतन्त्रता को स्वीकार करेंगे" (वेस्टरमार्क, 1928, बी)।

देखा गया है कि विवाह का अर्थ बदलता जा रहा है और हो सकता है कि आगे चलकर उसमें और अधिक परिवर्तन हों, फिर भी एक संस्था के रूप में विवाह दृढ़ रूप से स्थापित है, शायद पहले से भी अधिक दृढ़ रूप से। इस बात की और अधिक पुष्टि इस बात से भी होती है कि अब ऐसी शिक्षित स्त्रियों की संख्या बढ़ गयी है जो विवाह करना चाहती हैं, और इस बात से भी कि लोग अब पहले कभी की अपेक्षा अधिक विवाह कर रहे हैं।

कुल मिलाकर, सभी आयु-वर्गों की नौजवान शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ अब भी यही परम्परागत विचार रखती हैं कि जीवन की परिपूर्णता के लिए विवाह एक आवश्यकता है और वे इस बात को अधिक पसन्द करती हैं कि विवाह वैदिक पद्धति के अनुसार और परम्परागत विधियों के साथ सम्पन्न किया जाये। उनमें से अधिकांश परम्परा से अलग इस दृष्टि से हैं कि वे केवल जाति की सीमाओं के अन्दर या प्रान्त की सीमाओं के अन्दर विवाह करने में दृढ़ विश्वास नहीं रखतीं और अलग-अलग जातियों तथा अलग-अलग प्रान्तों के लोगों के बीच विवाह में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

फिर भी यह देखा गया है कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ विवाह की अधिक आवश्यकता अनुभव करने लगी हैं तथा उसके लिए अधिक प्रयत्नशील रहने लगी हैं, हालांकि उनके लिए इसका अर्थ बदल गया है, और इसके साथ ही इन बातों में भी परिवर्तन आ गया है कि वे किस प्रकार के विवाह को अधिक पसन्द करती हैं और किन अभिप्रेरणाओं तथा कारणों से विवाह करना चाहती है और विवाह से उनकी प्रत्याशाएँ क्या हैं।

सम्बन्धों के आधारभूत संवेगों तथा समस्याओं के स्वभाव के बारे में कुछ वैज्ञानिक समझ-बूझ प्राप्त कर ली गयी है। वैज्ञानिक आधार-सामग्री जैसी कोई चीज एकत्रित करने के प्रयास बहुत थोड़े ही हुए हैं (किंसे, 1953, पृष्ठ 309)।

पोमेराई कहते हैं कि "आजकल के पुरुष तथा स्त्रियां एक ऐसी कामुकता से पीड़ित हैं जिसे विक्षिप्तता से भिन्न करके देखना बहुत कठिन है, और जब श्री एच० जी० वेल्स ने कहा था कि 'हमारी वर्तमान सभ्यता सेक्स के पीछे पागल है' तो उन्होंने केवल सत्य ही कहा था। सभ्यता के आधीन मनुष्य अपने असभ्य पूर्वजों की अपेक्षा अधिक कामुक हो गया है" (पोमेराई, 1936, पृष्ठ 16)। आधुनिक पुरुषों तथा स्त्रियों के बारे में जो बात पोमेराई ने अब से तीन दशक से अधिक पहले कही थी वह भारत के शहरों के शिक्षित आधुनिक युवा-वर्ग के बारे में आज भी सत्य प्रतीत होती है, और रसेल के अनुसार इसका कारण यह है कि सभ्य मनुष्य पर आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। "जब स्वतन्त्रता होती है तो सेक्स अपना उचित स्थान ग्रहण करता है और हर समय दिमाग पर छाया रहने वाला उन्माद नहीं रह जाता" (रसेल, 1951, पृष्ठ 150)।

अतीत काल की, बल्कि अभी कुछ ही वर्ष पहले तक की या कट्टरपंथी परिवारों की आजकल की भी हिन्दू स्त्रियां सेक्स के बारे में चर्चा करने को भी अरुचिकर तथा अभद्र मानती हैं। सेक्स के विषय को वर्जित माना जाता था और बच्चों के सामने या अन्य पुरुषों के सामने उस पर चर्चा नहीं की जाती थी। अब पहले की अपेक्षा अधिक हद तक शिक्षित श्रमजीवी युवतियां इस बात में कोई बुराई नहीं समझती हैं कि माता-पिता अपने बच्चों के सामने खुलकर और सच्ची भावना के साथ सेक्स पर चर्चा करें या युवा लड़के तथा लड़कियां आपस में खुलकर इस पर चर्चा करें। "जिस तरह सच्चा और झूठा प्रेम होता है ठीक उसी प्रकार सच्चा और झूठा संकोच भी होता है। हमारे तथाकथित संकोच का अधिकांश भाग तो चालाकी का होता है और उसमें काफी मात्रा में मक्कारी का मिश्रण रहता है" (स्टेकेल, 194 ; पृष्ठ 210)। जिस समय प्रस्तुत अध्ययन का दूसरा चरण सम्पन्न किया जा रहा था उससे लगभग तीन दशक पहले स्टेकेल ने जो विश्लेषण किया था वह बदलती हुई सेक्स-सम्बन्धी अभिवृत्तियों के बारे में आज भी सार्थक है, और अब अधिकाधिक संख्या में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियां यह अनुभव करने लगी हैं कि सेक्स समस्याओं के बारे में स्पष्टवादी न होना, विशेष रूप से विवाह की परिधि के अन्दर, सरासर मिथ्या संकोच है। भारत में प्राचीन काल के लोग सेक्स के प्रति श्रद्धा का भाव रखते थे और इसी भाव से उसका उल्लेख करते थे। हमें इस प्रकार के उल्लेख वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत तथा विभिन्न पुराणों में मिलते हैं। लेकिन बाद में चलकर परम्पराबद्ध हिन्दू स्त्रियां इसे अशिष्ट तथा पतित चीज समझने लगीं और आज भी समझती हैं। परन्तु अब एक दशक के अन्दर ही शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियां पहले की

सोरेंसेन का दृढ़ मत है, "पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों ही स्वभावतः सेक्स की दृष्टि से स्वैर होते हैं। इस स्पष्ट सत्य को व्यक्त कर देने के बाद, स्वतन्त्रता से न तो स्वैरिता को प्रोत्साहन मिलता है और न ही उसकी अभिव्यक्ति में बाधा पड़ती है" (सोरेंसेन, 1941, पृष्ठ 371)। लगभग चार दशाब्दी पहले सेक्स-सम्बन्धों के भविष्य की विवेचना करते हुए पोमेराई ने लिखा था, "मैं उस समय की आस लगाये हूँ... जब विवाह की परिधि के बाहर रिआयतें, जैसी आदिम काल में भी पायी जाती थीं, स्वतन्त्र तथा समान विवाहित सहचारियों के बीच 'सीमित प्रकार की रिआयतों' के रूप में स्वीकार कर ली जायेंगी और जब जीवन पहले की अपेक्षा असीम रूप से परिपूर्ण, अधिक समृद्ध तथा अधिक स्वतन्त्र होगा" (पोमेराई, 1936, पृष्ठ 132)।

विवाह के विषय पर लिखी गयी अधिकांश नियम-पुस्तिकाओं, सेक्स-शिक्षा से सम्बन्धित प्रबन्धों, नैतिक दर्शनों और अधिकांश तकनीकी साहित्य में, जैसे बेकर तथा हिल में कोहन के लेख (1942, पृष्ठ 226), पोपनोए (1943, पृष्ठ 113-128), दुवाल तथा हिल (1945, पृष्ठ 141-163), किर्कंडाल (1947, पृष्ठ 26-31), लैंडिस तथा लैंडिस (1948, पृष्ठ 124-131), क्रिस्टेंसेन (1950, पृष्ठ 149-158), फास्टर (1950, पृष्ठ 66-69) और बुंडेसेन (1951, पृष्ठ 88-120) की कृतियों में विवाह-पूर्व मैथुन की सामान्य अवांछनीयता तथा उसके दोषों पर ज़ोर दिया गया है। इसके विपरीत लेवी तथा मुनरो (1938, पृष्ठ 1-46), राइख (1945, पृष्ठ 111-115), कम्फ़र्ट (1950, पृष्ठ 89), फ़ार्नहम (1951, पृष्ठ 130-135), और स्टोन तथा स्टोन (1952, पृष्ठ 246-259) जैसे लोगों के अध्ययनों में विवाह-पूर्व सेक्स-अनुभव के प्रति सहिष्णुता की अभिवृत्तियों की पैरवी की गयी है (देखिये किंसे, 1953, पृष्ठ 307-308)। इस विषय पर किंसे का मत है :

> एक ओर तो यह दावा किया जाता है कि विवाह से पहले मैथुन पर जो आपत्तियाँ की जाती हैं वे मुख्यतः नैतिक हैं, उन स्थितियों में भी जब वे व्यावसायिक दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्तियों की लिखी हुई प्रकटतः तकनीकी नियम-पुस्तकों में प्रस्तुत की जाती हैं। दूसरी ओर यह दावा किया जाता है विवाह-पूर्व मैथुन के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं वे अन्ततोगत्वा उसमें भाग लेनेवाले दोनों पक्षों के या सामाजिक संगठन की भलाई की चिन्ता से अधिक सुखमूलक कामनाओं पर आधारित होते हैं। एक ओर तो इस बात पर आग्रह किया जाता है कि लोकचार की उत्पत्ति उस प्राचीन अनुभव से हुई थी जो वर्तमान काल के लिए भी सार्थक है। दूसरी ओर यह दावा किया जाता है कि परिस्थितियाँ बदल गयी हैं, और यह कि विवाह-पूर्व मैथुन पर पहले जो आपत्तियाँ की जाती थीं उनमें से कई आज की दुनिया में सार्थक नहीं रह गयी हैं जिसमें गर्भाधान को नियंत्रित करने और रतिज रोगों की रोकथाम करने के उपाय मालूम कर लिये गये हैं और मान

की संख्या पहले से अधिक हो गयी है जो सेक्स-सम्बन्धी कामना को कोई दूषित अथवा गन्दी चीज समझने के बजाय एक जैविकीय, सामाजिक तथा मानसिक दृष्टि से एक प्रकृत घटना समझने लगी हैं। और अब ऐसी स्त्रियों की संख्या पहले की तुलना में कम हो गयी है, जो सन्तान पैदा करने की इच्छा को सेक्स-सम्बन्धी गतिविधियों का एकमात्र वैध उत्प्रेरण मानती हों। यह संकल्पना भारत के लिए सर्वथा नयी नहीं है, क्योंकि प्राचीन काल में वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में अन्य बातों के अतिरिक्त यह बात भी स्पष्ट शब्दों में कही थी कि शरीर के अस्तित्व तथा कल्याण के लिए काम-तुष्टि भी उतनी ही आवश्यक है जितना कि भोजन (1,2.46)। प्राचीन भारत में वात्स्यायन के काल में शृंगारिक कला प्रचुर मात्रा में पायी जाती थी और खजुराहो की काम-कला का उद्देश्य लोगों को प्रेम करने की कला सिखाना माना गया था। बाद में चलकर हम बिल्कुल दूसरे छोर पर पहुँच गये जब सेक्स का उल्लेख करना भी अश्लील माना जाने लगा, और उससे सम्बन्धित हर चीज वर्जित घोषित कर दी गयी। अब एक बार फिर यह बात देखी गयी है कि शिक्षित श्रमजीवी, हिन्दू स्त्रियों के बीच यह विश्वास जागृत हो रहा है कि सेक्स से आनन्द प्राप्त करना पाप नहीं है। इसके विपरीत अब पहले की तुलना में अधिक स्त्रियाँ यह अनुभव करने लगी हैं कि यह एक मानव-अधिकार है और इसलिए इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए किसी और चीज की जरूरत नहीं है।

मैकग्रेगोर ने बताया है कि सबसे पहले हैवलाक एलिस ने "बहुत-से लोगों को इस बात से अवगत कराने में सहायता दी कि स्त्रियों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और उनकी अपनी वैध सेक्स-सम्बन्धी आवश्यकताएँ तथा उनकी तुष्टि होती है। उनकी रचनाओं के बाद से ही सेक्स-सम्बन्धी अभिवृत्तियाँ अज्ञान तथा अन्ध-विश्वास से ज्ञान तथा आत्म-चेतना की दिशा में संक्रमित होने लगीं" (मैकग्रेगोर, 1972, पृष्ठ 44-59)। अन्य बातों के अतिरिक्त, फ्रायड की विचारधारा ने भी सेक्स के प्रति आमतौर पर एक नयी अभिवृत्ति उत्पन्न करने में निश्चित योगदान किया है। इस विचारधारा ने जीवन में सेक्स के स्थान को व्यापक मान्यता तथा स्वीकृति दिलाने में बहुत सहायता दी।

जिन समाजों में सेक्स के प्रति अभिवृत्ति प्रतिबन्धों से मुक्त है, उनमें सेक्स को "जीवन का एक सुखद तथा महत्त्वपूर्ण तथ्य" माना जाता है, "कोई ऐसी अनुचित बात नहीं जिसे लज्जित होकर छुपाने की कोशिश की जाये। नियम होते अवश्य हैं पर वे सेक्स-आचरण का दमन करने के लिए नहीं बल्कि उसे नियन्त्रित करने के लिए होते हैं," (हेमिंग, 1970, पृष्ठ 128)। बलाफ़ लिखते हैं, "प्राचीनकालीन हिन्दू पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच शरीर क्रिया-सम्बन्धी तथा मनोक्रिया-सम्बन्धी अन्तरों को पहचानते थे। वे जानते थे कि मैथुन के दौरान उसकी अवधि से अधिक महत्त्व उसके गतिक्रम का होता है, और यह कि स्त्री में काम-तृप्ति का चरमोत्कर्ष उत्पन्न करने के लिए कौशल तथा धैर्य की आवश्यकता होती है" (बलाफ़, 1964, पृष्ठ 9)। सबके

अपेक्षा अधिक संख्या में सेक्स के बारे में खुलेआम चर्चा करने लगी हैं और उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखनेवाली स्त्रियों की संख्या कम हो गयी है।

वैदिक काल में पुरुष तथा स्त्रियाँ घरों में, उपासनागृहों में तथा बाज़ारों में और विद्यापीठों में भी बिना किसी रोक-टोक के घूमते-फिरते थे। गुरुकुलों में लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ अपने गुरु के चरणों में बैठते थे। इस तरह खुलकर मिलने-जुलने पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की जाती थी। बाद में चलकर सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण हिन्दू समाज की पूरी व्यवस्था बदल गयी और उस समय से स्त्रियों के लिए अपने घर की चारदीवारी से बाहर निकलने की मनाही कर दी गयी। खुलकर मिलना-जुलना तो दूर रहा, बिना पर्दे के पुरुषों के सामने आना भी निषिद्ध कर दिया गया। ये परिस्थितियाँ इतने दीर्घकाल तक बनी रहीं कि परम्पराओं में जकड़ी हुई हिन्दू स्त्री आज भी इन अभिवृत्तियों को त्याग नहीं सकी है। वह अपने पिता, भाई या पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के साथ मिलने-जुलने को अनैतिक समझती है। फिर भी शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियाँ इन अभिवृत्तियों को त्यागती जा रही हैं, जैसा कि इस बात में स्पष्ट होता है कि अब वे अधिकाधिक संख्या में उन्मुक्त रूप से मिलने-जुलने का अनुमोदन करने लगी हैं, हालांकि रूढ़िबद्ध तथा पिछड़े हुए परिवारों की शिक्षित श्रमजीवी युवतियाँ केवल समूहों में ही खुलकर मिलने-जुलने का अनुमोदन करती हैं और सो भी बौद्धिक, मनोरंजनात्मक तथा सांस्कृतिक प्रयोजनों के लिए। परन्तु उन्नत परिवारों की दिल्ली में काम करनेवाली उन शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू युवतियों की अभिवृत्तियों में बहुत स्पष्ट परिवर्तन दिखायी देता है जो पाश्चात्य सभ्यता से सबसे अधिक प्रभावित हुई हैं। वे दो भिन्नलिंगी व्यक्तियों के आपस में समूह के रूप में या एकान्त में खुलकर मिलने-जुलने का अनुमोदन करती हैं।

यह बात वांछनीय हो या अवांछनीय, परन्तु दस वर्षों के अन्दर ही शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों की सेक्स-सम्बन्धी अभिवृत्तियों में निश्चित रूप से परिवर्तन हुआ है, भले ही इस सम्बन्ध में उनके वास्तविक आचरण में परिवर्तन न हुआ हो। यह बात ही कि स्त्रियाँ अब अधिकाधिक संख्या में व्यापारिक तथा व्यावसायिक जीवन में प्रवेश करने लगी हैं, अधिक सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता और स्त्रियों तथा पुरुषों के अधिक उन्मुक्त रूप से आपस में मिलने-जुलने का कारण बन जाती है। आधुनिक शहरी केन्द्रों में अधिक आधुनिक ढंग के रहन-सहन के फलस्वरूप भिन्नलिंगी व्यक्तियों के सम्पर्क में आने के कहीं अधिक अवसर उपलब्ध हो गये हैं। आज पहले की अपेक्षा युगल-बन्धन के अतिरिक्त कहीं अधिक ऐसी परिस्थितियाँ सामने आती हैं जिनमें पुरुष तथा स्त्रियाँ एक-दूसरे के *साथ* होते हैं। अधिक व्यापक सामान्य स्वतन्त्रता के फलस्वरूप सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता में भी वृद्धि हो सकती है और फिर इसके फलस्वरूप परम्परागत सेक्स-सम्बन्धी प्रतिबन्ध तथा वर्जनाएँ भंग भी हो सकती हैं।

एक ही दशक के अन्दर सभी आयु-वर्गों में अब ऐसी शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों

उसे चुनौती देने और पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए अधिक समरूप मानदंड में विश्वास करने की जो नयी प्रवृत्ति पायी जाती है वह पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच विशेषाधिकार तथा दायित्व के बराबर-बराबर बँटवारे की उभरती हुई माँग की ही द्योतक है।

प्रस्तुत अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सेक्स के सम्बन्ध में जो कुछ उचित है उसकी संकल्पना में उतना अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है जितना इस विचार में कि उसमें क्या अनुचित है। ऐसे आचरण जिनके बारे में वे समझती हैं कि "उनमें कोई बुराई नहीं है" उनकी संख्या तथा उनकी सीमाओं की व्यापकता दोनों ही में वृद्धि हुई है। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के उन्नत वर्गों में विवाह की परिधि के अन्दर भी और उसके बाहर भी सेक्स-तुष्टि तथा सेक्स-सम्बन्धी प्रयोगों के बारे में स्त्रियों के अधिकार पर अधिकाधिक आग्रह किया जाने लगा है। अब वे पहले की तुलना में अधिक हद तक सेक्स-भोग को केवल विषय-वासना समझने के बजाय आनन्द प्राप्त करने का तथा तनाव कम करने का स्रोत समझने लगी हैं। कुंठाओं से मुक्त तथा कोमल भावों तथा पारस्परिक स्नेह तथा सम्मान से युक्त सेक्स-अनुभव को अधिकाधिक संख्या में इस प्रकार की स्त्रियाँ एक मूल्यवान अनुभव समझने लगी हैं, वह विवाह की परिधि के अन्दर हो या उससे बाहर। और इसके साथ ही स्त्री के स्वैर आचरण के बारे में उनकी परिभाषा भी बदल गयी है। उनके लिए स्वैरिता का अर्थ है गम्भीर रूप से लिप्त हुए बिना और केवल मौज उड़ाने के लिए सेक्स का भोग करना। आधुनिक तथा उन्नत शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच यह अभिवृत्ति उभरती हुई पायी जाती है कि स्वेच्छापूर्वक परस्पर सहमत प्रौढ़ व्यक्तियों के बीच सेक्स-कर्म, चाहे वह हर बार एक ही व्यक्ति के साथ किया जाये अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ, उन व्यक्तियों का निजी मामला है और उससे किसी और का कोई सम्बन्ध नहीं है।

सामाजिक परिस्थितियाँ जहाँ तक अनुमति दें उस सीमा तक वात्स्यायन उन्मुक्त प्रेम में विश्वास रखते थे। यह बात एक प्रकार से प्राचीन भारत में भी उन्मुक्त प्रेम को स्वीकार करने की अभिवृत्ति की द्योतक है। इसलिए इसमें कोई सर्वथा नयी बात नहीं है। परन्तु वात्स्यायन के बाद कई शताब्दियों तक उन्मुक्त प्रेम को, विशेष रूप से स्त्रियों के प्रसंग में, इतना अपमानजनक समझा जाता था कि उसकी कल्पना भी नहीं की जाती थी। यद्यपि दस वर्ष पहले भी केवल एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों ने उन्मुक्त प्रेम की संकल्पना का उल्लेख किया था, फिर भी यह देखा गया कि एक दशक बाद यह संकल्पना अधिक स्पष्ट हो गयी थी और उसकी रूपरेखा का धुँधलापन कम हो गया था, इसके अतिरिक्त यह बात तो थी ही कि इस सम्बन्ध का प्रयोग करनेवाली स्त्रियों की संख्या भी बढ़ गयी थी। उनके लिए अब उन्मुक्त प्रेम का अर्थ विवेकहीन सेक्स-सम्बन्ध नहीं रह गया है, बल्कि उसका अर्थ हो गया है विवाह के परम्परागत बन्धनों अथवा दायित्वों में जकड़े रहे बिना किसी से भी प्रेम

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वात्स्यायन ने स्त्री का चित्रण उस रूप में किया है कि वह भी पुरुषों जितनी ही प्रबल सेक्स-अनुक्रिया की क्षमता रखती है। यह एक अत्यन्त आधुनिक विचार है जो पाश्चात्य सेक्स-ज्ञान में बीसवीं शताब्दी में ही जाकर उभरा है। वात्स्यायन के अनुसार पुरुष को इस बात की पूरी चेष्टा करनी चाहिए कि उसके साथ सेक्स-क्रिया में भाग लेनेवाली स्त्री की तुष्टि हो। यह एक ऐसी अभिवृत्ति या माँग है जिसे बहुत समय तक पूरी तरह दबाकर रखा गया था और जो अब भारत के शहरों की शिक्षित तथा प्रबुद्ध स्त्रियों के बीच उभरने लगी हैं।

परन्तु वात्स्यायन के काल (चौथी शताब्दी ईस्वी) में भी सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता का दोहरा मानदंड निश्चित रूप से था। हिन्दू पत्नी से यह आशा की जाती थी कि यदि उसका पति विवाह की परिधि से बाहर भी सेक्स का भोग करे तो उसे बिना किसी आपत्ति अथवा रोष के उसे सहन कर लेना चाहिए, जबकि उससे स्वयं इस प्रकार के आचरण से सर्वथा दूर रहने की आशा की जाती थी। इस प्रकार के समाज में जिस पर पुरुषों का प्रभुत्व था, पुरुषों के लिए अक्षतयोनि कन्याओं के साथ, अन्य पुरुषों की पत्नियों के साथ, या जो भी स्त्री उपलब्ध हो सके उसके साथ, चाहे वह उसकी ही जाति की हो या उससे नीची जाति की हो, अपनी काम-वासना को तृप्त करने की पूरी स्वतन्त्रता थी। पुरुषों को गणिकाएँ रखने की भी छूट थी। ऐसे पुरुषों के लिए जिनकी सेक्स-शक्ति क्षीण होने लगी हो उनके लिए कामोत्तेजक औषधियों अथवा उद्दीपन के कृत्रिम उपायों का भी परामर्श दिया जाता था।

शताब्दियों तक पुरुष तो अपने सुख-भोग के लिए या सन्तान उत्पन्न करने के लिए स्त्री के शरीर का निःसंकोच उपयोग करते रहा, परन्तु यदि स्त्री विवाह की परिधि के अन्दर भी अपने सेक्स-जीवन में अनुभव किये गये सुखों को व्यक्त करती थी तो उसे उच्छृंखल तथा अनैतिक समझा जाता था। इस दोहरे मानदंड में निहित विश्वास के कारण ही परम्परावद्ध पति अपनी पत्नी का सम्मान केवल तभी करता है जब वह उसके साथ अपने सेक्स-सम्बन्धों में पूरी तरह अनुक्रियात्मक आचरण का परिचय न दे, क्योंकि वह यह समझता है कि किसी सम्मानित स्त्री के लिए विवाह की परिधि में भी सेक्स-कर्म में सक्रिय रूप से भाग लेना अशोभनीय है और यह केवल पुरुष का हिस्सा तथा उसका विशेषाधिकार है। यह स्पष्ट-है कि सेक्स-सम्बन्धी सामान्य नैतिकता के बारे में और विवाहित जीवन में सेक्स-आचरण के बारे में इस प्रकार का दोहरा मानदंड स्त्री को पूरी तरह पुरुष के आधीन रखने के सुदृढ़ आधार के बिना टिक ही नहीं सकता था।

सेक्स के क्षेत्र में शताब्दियों तक दबे-कुचले रहने और चुपचाप सहन कर लेने के बाद, अब शिक्षित स्त्रियों ने, विशेष रूप से शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों ने, सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता के दोहरे मानदंडों के औचित्य को चुनौती देना तथा उसके बारे में शंकाएँ उठाना आरम्भ कर दिया है। अधिकाधिक संख्या में इन श्रमजीवी स्त्रियों ने सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता के दोहरे मानदंड को स्वीकार करने से इंकार करने और

उसे चुनौती देने और पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए अधिक समरूप मानदंड में विश्वास करने की जो नयी प्रवृत्ति पायी जाती है वह पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच विशेषाधिकार तथा दायित्व के बराबर-बराबर बँटवारे की उभरती हुई माँग की ही द्योतक है।

प्रस्तुत अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सेक्स के सम्बन्ध में जो कुछ उचित है उसकी संकल्पना में उतना अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है जितना इस विचार में कि उसमें क्या अनुचित है। ऐसे आचरण जिनके बारे में वे समझती हैं कि "उनमें कोई बुराई नहीं है" उनकी संख्या तथा उनकी सीमाओं की व्यापकता दोनों ही में वृद्धि हुई है। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के उन्नत वर्गों में विवाह की परिधि के अन्दर भी और उसके बाहर भी सेक्स-तुष्टि तथा सेक्स-सम्बन्धी प्रयोगों के बारे में स्त्रियों के अधिकार पर अधिकाधिक आग्रह किया जाने लगा है। अब वे पहले की तुलना में अधिक हद तक सेक्स-भोग को केवल विषय-वासना समझने के बजाय आनन्द प्राप्त करने का तथा तनाव कम करने का स्रोत समझने लगी हैं। कुंठाओं से मुक्त तथा कोमल भावों तथा पारस्परिक स्नेह तथा सम्मान से युक्त सेक्स-अनुभव को अधिकाधिक संख्या में इस प्रकार की स्त्रियाँ एक मूल्यवान अनुभव समझने लगी हैं, वह विवाह की परिधि के अन्दर हो या उससे बाहर। और इसके साथ ही स्त्री के स्वैर आचरण के बारे में उनकी परिभाषा भी बदल गयी है। उनके लिए स्वैरिता का अर्थ है गम्भीर रूप से लिप्त हुए बिना और केवल मौज उड़ाने के लिए सेक्स का भोग करना। आधुनिक तथा उन्नत शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच यह अभिवृत्ति उभरती हुई पायी जाती है कि स्वेच्छापूर्वक परस्पर सहमत प्रौढ़ व्यक्तियों के बीच सेक्स-कर्म, चाहे वह हर बार एक ही व्यक्ति के साथ किया जाये अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ, उन व्यक्तियों का निजी मामला है और उससे किसी और का कोई सम्बन्ध नहीं है।

सामाजिक परिस्थितियाँ जहाँ तक अनुमति दें उस सीमा तक वात्स्यायन उन्मुक्त प्रेम में विश्वास रखते थे। यह बात एक प्रकार से प्राचीन भारत में भी उन्मुक्त प्रेम को स्वीकार करने की अभिवृत्ति की द्योतक है। इसलिए इसमें कोई सर्वथा नयी बात नहीं है। परन्तु वात्स्यायन के बाद कई शताब्दियों तक उन्मुक्त प्रेम को, विशेष रूप से स्त्रियों के प्रसंग में, इतना अपमानजनक समझा जाता था कि उसकी कल्पना भी नहीं की जाती थी। यद्यपि दस वर्ष पहले भी केवल एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों ने उन्मुक्त प्रेम की संकल्पना का उल्लेख किया था, फिर भी यह देखा गया कि एक दशक बाद यह संकल्पना अधिक स्पष्ट हो गयी थी और उसकी रूपरेखा का धुंधलापन कम हो गया था, इसके अतिरिक्त यह बात तो थी ही कि इस शब्दावली का प्रयोग करनेवाली स्त्रियों की संख्या भी बढ़ गयी थी। उनके लिए अब उन्मुक्त प्रेम का अर्थ विवेकहीन सेक्स-सम्बन्ध नहीं रह गया है, बल्कि उसका अर्थ हो गया है विवाह के परम्परागत बन्धनों अथवा दायित्वों में जकड़े रहे बिना किसी

करने की स्वतन्त्रता, क्योंकि उनके अनुसार केवल इसी स्थिति में प्रेम वाह्य रूढ़िगत बन्धनों के माध्यम से नहीं वल्कि स्वयं अपनी शक्ति के बल पर जीवित रह सकता है। वे अनुभव करती हैं कि किसी भी व्यक्ति को सच्ची भावनाएँ बनी रहने तक प्रेम करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, और उन्हें इस बात की भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि जब उनके बीच प्रेम बाक़ी न रह जाये तो वे अपने प्रेमी अथवा अपनी प्रेमिका को छोड़ दें। उनके अनुसार प्रेम एक आन्तरिक शक्ति है जिसका सम्बन्ध आत्मा से है, वह कोई ऐसा कर्त्तव्य नहीं है जिसका पालन उससे सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए सुखद तथा सन्तोषप्रद न रह जाने के बाद भी करते रहना आवश्यक हो। की तथा ब्लाख ने भी कुछ इसी प्रकार की विचारधारा इन शब्दों में व्यक्त की है, "प्रेम जीवन की एक आध्यात्मिक शक्ति है, और अधिक निर्विकार नस्ल प्रेम से ही उत्पन्न की जा सकती है, जिसके लिए प्रेम की अन्तर्मुखी स्वतन्त्रता अनिवार्य है।...आजीवन प्रेम एक आदर्श है, परन्तु कर्त्तव्य नहीं। तलाक़ सर्वथा उन्मुक्त होना चाहिए" (देखिये रोवी, 1967, पृष्ठ 114)।

आजकल की शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच स्नेहयुक्त सेक्स-आचरण की वांछनीयता के प्रति एक निरन्तर बढ़ती हुई बौद्धिक अभिवृत्ति पायी जाती है। वे इस प्रकार की स्थिति को केवल सुखवादी भोग-विलास अथवा विफलता या निराशा को दूर करने का साधन न मानकर एक सकारात्मक अनुभव के रूप में उचित ठहराती हैं। सेक्स के प्रति अनुज्ञात्मकता की प्रवृत्ति के साथ 'प्रेम-सहित सेक्स' की शर्त लगा दी गयी है, जो नयी उदीयमान नैतिकता है। सेक्स-सम्बन्धी मानदंडों में यह नयी विकासशील प्रवृत्ति कई प्रकार से उस प्रवृत्ति से मिलती-जुलती है जो विवाह-पूर्व सेक्स-अनुभव के सम्बन्ध में अमरीका में पायी जाती है, जैसा कि राइस ने अपने अध्ययन में पता लगाया है (राइस, 1960)। जिन शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों का अध्ययन किया गया है, उनमें जो सेक्स-सम्बन्धी मानदंड विकसित होता हुआ पाया गया है उसे राइस की शब्दावली में "स्नेह-सहित अनुज्ञात्मकता" कहा जा सकता है।

विवाहित जीवन में सेक्स की संकल्पना में भी यह परिवर्तन हुआ है कि उसे केवल सन्तानोत्पत्ति का साधन समझने के बजाय "एक स्वस्थ ऐन्द्रिय सुख" माना जाने लगा है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि ये स्त्रियाँ अधिकाधिक संख्या में विवाहित जीवन में सेक्स को केवल एक जैविकीय अथवा शारीरिक आवश्यकता न मानकर उसे एक सामाजिक-मानसिक आवश्यकता समझने लगी हैं, जिसकी तुष्टि केवल सेक्स की मूल प्रवृत्ति की तुष्टि से नहीं वल्कि विवाहित जीवन में सम्पूर्ण "सामाजिक-मानसिक सेक्स आवश्यकता" की तुष्टि से होती है। वोमैन ने (1954) भी अपने अध्ययन में इसी प्रकार के निष्कर्षों का उल्लेख किया है। प्रस्तुत अध्ययन की और लेखिका के दूसरे अध्ययन विवाह और भारत की श्रमजीवी स्त्रियाँ (कपूर, 1970) की परिमाणात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही प्रकार की आधार-सामग्री में इस बात के प्रबल संकेत मिलते हैं कि विवाह की परिधि के अन्दर सेक्स की तुष्टि के अपने विशेषाधिकारों को पाने के लिए आग्रह करके अधिकाधिक शिक्षित स्त्रियाँ अब विवाहित जीवन में सेक्स की मर्यादा

को ऊँचा उठा रही हैं; वे अब इस स्थिति को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि विवाहित जीवन में सेक्स केवल पुरुष के सेक्स-सम्बन्धी तनावों को दूर करने का साधन होता है जबकि पत्नी को सर्वथा निष्क्रिय रहना होता है; वे उसे शारीरिक उल्लास, तनाव-शैथिल्य तथा सन्तोष की एक पारस्परिक साझेदारी के पद पर पहुँचा देना चाहती हैं।

विवाह से पहले अक्षतयोनि रहने का जो आग्रह किया जाता है उसे भी सर्वथा समाप्त कर देने की भी एक बढ़ती हुई प्रवृत्ति पायी जाती है, हालाँकि यह प्रवृत्ति अभी बहुत मन्द तथा क्षीण है, और विवाह-पूर्व सेक्स-अनुभव तथा सेक्स-सम्बन्धी अनुज्ञात्मकता के पक्ष में भी प्रवृत्ति धीरे-धीरे विकसित हो रही है। अधिकांश स्त्रियों की दृष्टि में अब भी विवाह-पूर्व सेक्स-सम्बन्ध अनुज्ञेय नहीं हैं, परन्तु इस प्रकार के सम्बन्धों को अनुज्ञेय मानने वाली स्त्रियों की संख्या पिछले दस वर्षों में बढ़ी है। इसमें सन्देह नहीं कि वे इस प्रकार के सम्बन्धों को बर्दाश्त कर लेने के लिए अब पहले से अधिक तत्पर हैं, फिर भी ऐसी स्त्रियाँ इनी-गिनी ही हैं, बहुत ही थोड़ी संख्या में, जो परम्परागत सेक्स-सम्बन्धी लोकाचार को सर्वथा अस्वीकार करती हों, और जो ऐसा करती भी हैं वे स्वयं अपने पतिव्रत तथा प्रेम के उच्च मानदंडों पर बहुत ज़ोर देती हैं।

किया जाने लगा है। इधर हाल के वर्षों में शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच सेक्स के प्रति जो अधिक उदार अभिवृत्तियाँ पायी गयीं वे मुख्यतः प्रेम की परिवर्तित संकल्पना का और स्वास्थ्य-रक्षा से सम्बन्धित नयी विचारधाराओं का परिणाम थीं। अब ये स्त्रियाँ पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में सेक्स को सन्तानोत्पत्ति के साधन के अतिरिक्त विवाहित जीवन में सन्तोष का एक महान् स्रोत भी मानने लगी हैं। अब इनमें ऐसी स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक है जो विवाह से पहले या विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-अनुभव को क्षमा कर देने के लिए तैयार हैं, यदि वह 'सच्चे प्रेम' से प्रेरित हो। अब ऐसी स्त्रियों की संख्या भी पहले से अधिक है जो फ्रायड के इस सिद्धान्त से परिचित हैं कि सेक्स का दमन भावात्मक अस्वस्थता का कारण बन सकता है और अब वे किसी अविवाहित स्त्री की, या जिस स्त्री का विवाहित जीवन सुखी न हो, उसकी भी सेक्स-सम्बन्धी गुमराही को पहले से अधिक हद तक बर्दाश्त करने को तैयार रहती हैं।

यह बात बहुत रोचक है कि संज्ञानात्मक स्तर पर बहुत परिवर्तन हुआ है, और यह कि प्रेम, विवाह तथा सेक्स के प्रति बदलती हुई अभिवृत्तियों ने और इन विषयों पर उन्मुक्त चर्चा ने पहले की गुपचुप कानाफूसी का स्थान ले लिया है। सेक्स के विषय के बारे में प्रकटता को अधिकाधिक स्वीकार किया जाने लगा है। मूलभूत परिवर्तन समानतावाद, स्त्रियों द्वारा अनुज्ञात्मकता की अधिक स्वीकृति और सेक्स-सम्बन्धी समस्याओं पर अधिक उन्मुक्त चर्चा की दिशा में हुआ है। विवाह से पहले तथा विवाह की परिधि के बाहर सेक्स-अनुभव के प्रति उनकी अभिवृत्ति में सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन इस बात में दिखायी देता है कि वे "अनुज्ञात्मक अभिवृत्तियों तथा मूल्यों" को और "सेक्स-सम्बन्धी अनुज्ञात्मकता" को अधिक उन्मुक्त भाव से व्यक्त करने लगी हैं। उनके सेक्स-सम्बन्धी आचरण में भी ऐसा ही परिवर्तन हुआ है या नहीं, इसका अध्ययन अभी वैज्ञानिक ढंग से तथा विस्तारपूर्वक होना बाक़ी है। सेक्स के प्रति "अनुज्ञात्मक अभिवृत्तियों" की अधिक उन्मुक्त अभिव्यक्ति परम्पराबद्ध समाज की आवश्यकता से अधिक कठोर मानदंडों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया मात्र हो सकती है, या यह भी हो सकता है कि वह सेक्स के प्रति अपने विचारों तथा अभिवृत्तियों में अधिक जानकार तथा आधुनिक लगने की आवश्यकता का परिणाम हो, या यह भी हो सकता है कि वे केवल यह जताना चाहती हों कि उनकी अभिवृत्तियाँ नयी हैं।

जो भी हो, यह तथ्य तो अपनी जगह पर है ही कि इधर पिछले कुछ समय के दौरान सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्ति में काफ़ी परिवर्तन हुआ है, जिसका कारण कुछ हद तक तो यह है कि समस्त समकालीन परिवेश में परिवर्तन हुआ है, और बहुत बड़ी हद तक इसका कारण यह है कि एलिस, फ्रायड तथा वात्स्यायन जैसे प्रख्यात विद्वानों की रचनाओं तथा सिद्धान्तों के प्रति रुचि बढ़ रही है; वात्स्यायन के कामसूत्र को अब अधिक प्रमुखता प्राप्त हो गयी है। जिस शब्दावली को अभी एक ही दशाब्दी पहले सुनकर इन स्त्रियों को आघात पहुँचता था उसी को अब वे अधिकाधिक संख्या में बिना

बजाये इस्तेमाल करती हैं।

उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन का संकेत उनके पहनावे में होनेवाले नये परिवर्तनों में भी मिलता है, क्योंकि कोई भी स्त्री जिस ढंग के कपड़े पहनती है वह इस बात का सबसे बड़ा संकेत होता है कि वह स्त्री क्या है और वह क्या चाहती है कि लोग उसे किस रूप में देखें। स्त्री के शरीर के कामोत्तेजक अंगों को आजकल दस वर्ष पहले की तुलना में अधिक खुला रखा जाता है। इससे यह संकेत मिलता है कि अब उन्हें अपने शरीर के कामोत्तेजक क्षेत्रों के अधिक बड़े भाग को प्रदर्शित करने में पहले की अपेक्षा कम संकोच होता है, और यह कि वे स्त्री के अनावृत्त शरीर को अश्लील नहीं समझती हैं।

सेक्स अब उनके लिए वर्जित विषय नहीं रह गया है और पुरानी मक्कारी ढहती जा रही है। परिवर्तन इस बात से भी स्पष्ट है कि इस समय ऐसी पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचारपत्रों तथा अन्य प्रकार के लोकप्रिय तथा सुलभ साहित्य का प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार बड़ी तेज़ी से बढ़ता जा रहा है जिनमें सेक्स-सम्बन्धी विषयों पर उनके विविध रूपों में चर्चा की जाती है, और इस बात से भी कि फ़िल्मों में भी सेक्स-सम्बन्धी विषयों तथा स्थितियों को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अभी कुछ ही दशक पहले तक ये सारी बातें प्राय: वर्जित थीं, और यों देखा जाये तो एक ही दशक पहले तक ये बहुत छोटे पैमाने पर पायी जाती थीं। ऊपर बताये गये सभी तत्त्वों का सक्रिय हो उठना इस बात का द्योतक है कि जन-साधारण अभी एक ही दशक पहले की अपेक्षा उन्हें अधिक बर्दाश्त करने लगे हैं तथा उनमें रुचि लेने लगे हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर भारत के शहरी क्षेत्र में, विशेष रूप से बड़े-बड़े शहरों में, पिछले दो-एक दशकों के दौरान धीरे-धीरे सेक्स के प्रति अधिक उन्मुक्त तथा संकोच-रहित अभिवृत्ति उभरी है।

समाज के विभिन्न भागों के सेक्स-आचरण के वैज्ञानिक अध्ययनों का सहारा लिये बिना—जिनका इस देश में लगभग सर्वथा अभाव है—हम केवल सेक्स के प्रति उनकी अभिवृत्तियों के अध्ययनों के आधार पर विश्वास के साथ यह नहीं कह सकते कि सेक्स के बारे में अधिक स्पष्ट आचरण अधिक स्वैरिता की द्योतक है या कम मक्कारी की। फिर भी अभिवृत्तियों के इस अध्ययन से इस बात का पता अवश्य चलता है कि सेक्स के प्रति शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों की अभिवृत्तियों में पिछले एक दशक के अन्दर ही इतना परिवर्तन अवश्य आया है कि वे परम्परागत 'गुपचुप' या 'अवरुद्ध' अभिवृत्ति से दूर हटती गयी हैं और उन्होंने उसके प्रति अधिक निर्भीक, सहिष्णु तथा यथार्थनिष्ठ अभिवृत्ति अपना ली है। जिस हद तक और जिस ढंग से अब इस विषय पर चर्चा होने लगी है उसके कारण यह परिवर्तन और उजागर हो गया है।

शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों का सोचने का ढंग अब पहले की अपेक्षा अधिक 'सेक्समय' हो गया है। यह देखा गया है कि अधिकाधिक संख्या में इन स्त्रियों के लिए, सेक्स हर समय दिमाग़ पर छाया रहनेवाला उन्माद-सा हो गया है। कुछ हद तक तो

इसकी वजह यह है कि विभिन्न बदलते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक-आर्थिक तथा कानूनी कारणों से वे सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता सहित हर मामले में अपने बराबरी के अधिकार के बारे में अधिक सजग हो गयी हैं, और फिर वे सेक्स के बारे में तकनीकी-वैज्ञानिक तथा अन्य प्रकार के साहित्य से अधिक परिचित हो गयी हैं जिसने उनमें अपनी शारीरिक आवश्यकताओं तथा उल्लासों की समानता की सजगता पैदा कर दी है। इस स्थिति में यदि उनकी सेक्स-सम्बन्धी स्वतन्त्रता पर आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं तो यह बात हर समय उन्हें सताती रहती है। कोमल प्रेम के अभाव को पूरा करने की उनकी बढ़ती हुई आकांक्षा के कारण भी वे लगभग उन्मादियों की तरह शारीरिक प्रेम अथवा सेक्स पर निर्भर रहकर उससे जीवन की सारी तुष्टियाँ प्राप्त करना चाहती हैं।

परन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि इसका कारण यह है कि उन्हें सच्चे तथा हार्दिक प्रेम से वंचित रहने का आभास अधिक है या यह कि वे अपनी सेक्स-सम्बन्धी आवश्यकता के बारे में अधिक सजग हो गयी हैं या यह कि उन पर सेक्स का भूत अधिक सवार रहने लगा है या यह कि वे प्रेम, विवाह तथा सेक्स से सम्बन्धित अपने मतों तथा विचारों के बारे में अधिक निःसंकोच, सत्यनिष्ठ तथा स्पष्टवादी हो गयी हैं। यद्यपि किर्केंडाल का अध्ययन शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बारे में नहीं बल्कि अमरीका के युवा-वर्ग के बारे में है, फिर भी उनके अभिमत युवा-वर्ग की सेक्स-सम्बन्धी अभिवृत्तियों के किसी भी अध्ययन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। युवा-वर्ग के बीच 30 वर्ष तक अपने काम के दौरान उन्होंने अनेक बार यह बात कही है कि नौजवानों पर सेक्स का भूत सवार नहीं रहता। वह लिखते हैं, "जहाँ तक सेक्स-सम्बन्धी दुविधाओं के बारे में सोचने तथा उनका अर्थपूर्ण हल ढूंढ़ने का सवाल है, वे अधिकांश प्रौढ़ लोगों की तुलना में अधिक नीतिपरायण, अधिक स्पष्टवादी तथा अधिक ईमानदार होते हैं।" आगे चलकर वह लिखते हैं कि प्रौढ़ लोग उस भय में जकड़े रहते हैं "जो हमारे पूरे समाज पर छाया हुआ है और जो सेक्स से सम्बन्धित समस्याएँ उत्पन्न होने पर अध्यापकों तथा प्रशासकों दोनों ही को समस्या से कतराने और बेईमानी का रास्ता अपनाने पर विवश कर देता है" (किर्केंडाल, 1961)।

ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः निषेध धीरे-धीरे क्षीण होते जायेंगे और परम्परा क्रमशः कम दमनकारी तथा कम बाध्यकारी होती जायेगी। जिन शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू युवतियों का अध्ययन किया गया है उनकी अभिवृत्ति में "जियो और जीने दो" तथा "हस्तक्षेप से दूर रहने" की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पायी गयी है—अर्थात् यह प्रवृत्ति कि लोग अपने काम से काम रखें—जो इस बात का संकेत है कि जकड़कर रख देनेवाले भय तथा कठोर रूढ़ियों का प्रभाव उन पर कम हो गया है और वे लोगों के रूढ़ि-विरोधी अथवा परम्परा-विरोधी आचरण तथा अभिवृत्तियों के प्रति अधिक सहिष्णु हो गयी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये स्त्रियाँ अपने स्नेह-सम्बन्धों में कम आधिपत्यकारी तथा अधिक उदार होंगी और दूसरों को क्षमा करने में भी अधिक

उदारता का परिचय देंगी ।

अभिवृत्तियों की अस्थिरता

भारतीय समाज के परम्परावद्ध परिवेश में पुराने विचार तथा अभिवृत्तियाँ वहुत मुश्किल से वदलती हैं और पारिवारिक जीवन से सम्वन्धित पारम्परिकता का ढाँचा और विवाह की प्रथा स्वयं ही इन्हें चिरस्थायी वनाये रखती है। जिन श्रमजीवी स्त्रियों का अध्ययन किया गया है उनके सम्वन्ध में यह देखा गया है कि कुछ वातों में वे परम्परावद्ध होती हैं और कुछ दूसरी वातों में आधुनिक। शायद उनकी वर्तमान अभिवृत्तियों का सवसे सही वर्णन अस्थिरता या संघर्ष के प्रसंग में ही किया जा सकता है।

सेक्स के प्रति शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्ति वहुत कुछ अस्थिर है। वे यह अनुभव करने लगी हैं कि सेक्स उल्लास तथा सन्तुष्टि का एक वहुत अच्छा स्रोत है। परन्तु इसके साथ ही वे इस विश्वास को भी पूरी तरह त्यागने में सफल नहीं हो सकी हैं कि यह एक अपेक्षाकृत निकृष्ट मूल प्रवृत्ति है, कि वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसकी खुलेआम कामना की जाये और प्राप्त करने की चेष्टा की जाये और यह कि विवाह की परिधि के अन्दर भी उसका दमन किया जाना चाहिए और उसे उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्त नहीं किया जाना चाहिए। यद्यपि वे यह सोचने लगी हैं कि सेक्स के मामले में लड़कियों को भी उतनी ही स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए जितनी लड़कों को दी जाती है, परन्तु इसके साथ ही वे यह भी अनुभव करती हैं और विश्वास करती हैं कि यदि कोई स्त्री पुरुषों के साथ वहुत खुलकर घुलती-मिलती है तो विशेष रूप से पुरुषों द्वारा, उसे 'घटिया' समझा जाता है और उसका सम्मान नहीं किया जाता, और वे यह भी महसूस करती हैं कि सेक्स की स्वतन्त्रता स्त्रियों के लिए नये असन्तोषों तथा नयी निराशाओं को जन्म देती है।

इस संक्रमणकाल में, जव शिक्षित स्त्रियाँ सेक्स के मामले में अधिक स्वतन्त्रता की माँग तो करती हैं पर उन्हें यह भरोसा नहीं है कि वे अपनी इस स्वतन्त्रता तथा आज़ादी का क्या उपयोग करें, तो इस नये नैतिक वातावरण में उन्हें उलझाव और चिन्ता का सामना करना पड़ता है। शिक्षित स्त्रियों के मन में उलझन, तनाव और चिन्ता इसीलिए रहती है कि नैतिकता के पुराने मानदंडों पर से उनका विश्वास उठता जा रहा है, परन्तु उन्हें अभी तक ऐसे नये मानदंड नहीं मिल सके हैं जिनका वे सहज भाव से तथा सुरक्षा के साथ पालन कर सकें। इसलिए वे हर समय इसी दुविधा में पड़ी रहती हैं कि वे किस प्रकार आचरण करें और किस वात में आस्था रखें। वे इस-लिए भी उलझनों का शिकार रहती हैं कि समानता का तर्क तो उन्हें अभिभूत कर देता है, परन्तु उनकी अपनी मनोवृत्ति अभी तक परम्परा के साथ जकड़ी हुई है। [illegible] परिवर्तन की आवश्यकता तो अनुभव करने लगी है, परन्तु इसके [illegible] मूल्यों के साथ भी चिपकी हुई हैं क्योंकि उनका लालन-पालन उन्हीं [illegible]

है, और इससे भी बढ़कर इसलिए कि वे पूरे भरोसे के साथ यह नहीं कह सकती हैं कि इन मूल्यों के स्थान पर किन मूल्यों की स्थापना करें। इससे उनके बीच पायी जाने वाली 'दोहरे चिन्तन' की प्रक्रिया और उनकी अभिवृत्तियों की अस्थिरता का पता चलता है।

धर्मभीरु पारिवारिक पृष्ठभूमि और उसके साथ गहराई से जमी हुई परम्पराओं की भूमिका आमूल परिवर्तनकारी चिन्तन तथा आभास में बाधा डालने में बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। परन्तु फिर भी शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियाँ स्वयं अपने आदर्शों तथा विचारों और सामान्य समाज के आदर्शों तथा विचारों के पारस्परिक संघर्ष के प्रति सजग हैं। समस्या समाज के परम्परागत मानदंडों और व्यक्ति के बदलते हुए विचारों के बीच होनेवाले टकरावों से ही उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए स्त्रियों को सेक्स के मामले में स्वतन्त्रता दिये जाने के सवाल पर उनकी बदलती हुई अभिवृत्तियाँ अभी तक सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से और स्त्रियों की स्वतन्त्रता के प्रति पुरुषों की अभिवृत्ति से इतनी असंगत हैं कि जब कोई आधुनिक लड़की यह देखती है कि विवाह का प्रश्न उठते ही उसके प्रेमी लड़के उससे किनारा कर जाते हैं या जब यह देखती है कि काफी समय तक उसके साथ रहने का आनन्द लेने के बाद उन्हें उसकी कोई चिन्ता नहीं रह जाती तो वह बेहद निराश हो जाती है। इस प्रकार की स्त्रियाँ पहले तो खुलकर मिलने-जुलने के फलस्वरूप इन लोगों के प्रति गहरा लगाव पैदा कर लेती हैं और बाद में जब उनका भ्रम टूटता है तो वे न केवल बेहद निराश हो जाती हैं बल्कि उनका आचरण भी बेहद अस्वाभाविक हो जाता है। उनके व्यक्तित्व विच्छिन्न हो जाते हैं और इस पृष्ठभूमि में उन्हें न तो अपनी नौकरियों के प्रति ही कोई उत्साह रह जाता है और न ही जीवन के प्रति।

भिन्नलिंगी व्यक्तियों के बीच शारीरिक घनिष्ठता का अनुमोदन करने के फलस्वरूप वे किन उलझनों, अन्तर्द्वन्द्वों तथा अपराध की भावना का शिकार हो जाती हैं, इसका पता सबसे अच्छी तरह उनके व्यक्ति-अध्ययनों को पढ़कर और उन्नत तथा पाश्चात्य सभ्यता के रंग में डूबी हुई लड़कियों के विक्षिप्त व्यक्तित्वों को देखकर लगाया जा सकता है। वे इसलिए पीड़ित रहती हैं कि उनकी अभिवृत्तियाँ आधी तो भारतीय रहती हैं और आधी से अधिक पाश्चात्य ढंग की और इस कारण भी कि उनकी उन्नत आधुनिक अभिवृत्तियाँ समाज के उन रूढ़िबद्ध पुरुषों की अभिवृत्तियों के साथ मेल नहीं खातीं जिनके बीच वे उठती-बैठती तथा रहती हैं। अपने लिए एक उपयुक्त जीवन-साथी की खोज में वे अपनी प्रतिष्ठा तथा आत्म-सम्मान खो देती हैं और अपने सुखमय तथा उल्लासमय लगने वाले जीवन के बावजूद वे अनुभव करती हैं कि वे बिल्कुल अकेली हैं और जैसे उनका कोई नहीं है। इस प्रकार के मानसिक रूप से विचलित व्यक्तित्व वाले लोग स्वयं अपने लिए भी और पूरे समाज के लिए भी एक समस्या बन सकते हैं।

समाज के लिए बहुत महत्त्व होता है। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों के बीच भिन्नलिंगी व्यक्तियों के आपस में खुलकर घुलने-मिलने का अनुमोदन करने, कुछ सीमाओं के भीतर उनके बीच शारीरिक घनिष्ठता पर आपत्ति न करने, विवाह की परिधि के बाहर किसी से लगाव हो जाने में कोई बुराई न समझने आदि की जो बढ़ती हुई प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं, उनसे यही पता चलता है कि शिक्षित श्रमजीवी युवतियों ने सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता के बारे में अपनी धारणा बदल दी है। वह अच्छी हो या बुरी पर उससे सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याएँ अवश्य उत्पन्न हो गयी हैं, क्योंकि वह अभी एक ही दशक पहले तक की इन स्त्रियों की धारणा से भिन्न है। इससे सामाजिक शान्ति के लिए संकट उत्पन्न हो जाता है क्योंकि परम्परागत हिन्दू समाज का सामान्य सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश पाश्चात्य ढंग के उस परिवेश से मेल नहीं खाता जिसमें वे घूमना-फिरना चाहती हैं। इसका कारण यह भी है कि सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता के बारे में समाज की जो धारणा है और श्रमजीवी स्त्रियाँ जिस ढंग से चीजों को देखती हैं उन दोनों के बीच सामंजस्य नहीं है।

यह पूरा ढाँचा अव्यवस्थित है क्योंकि समाज, विशेष रूप से पुरुष इस हद तक नहीं बदले हैं, और जो लड़कियाँ उनके साथ खुलकर मिलती-जुलती हैं उन्हें वे केवल मौज उड़ाने का साधन समझते हैं और उनका लाभ उठाना चाहते हैं। सेक्स के मामले में स्त्रियों की स्वतन्त्रता के प्रति उनकी अभिवृत्ति भी अस्थिर है। उनके मन में आदर्श स्त्री का जो चित्र है वह न्यूनाधिक रूप में एक परम्परागत नारी का चित्र है—विनम्र, संकोचशील, सती-साध्वी, भीरु, लजीली तथा अछूती स्त्री। परन्तु इसके साथ ही इन सारे गुणों से सम्पन्न होने के अतिरिक्त वे यह भी चाहते हैं और आशा करते हैं कि उनकी पत्नी 'चुस्त-चालाक' और 'सुसंस्कृत' भी हो, जो पति के हित के लिए उसके मित्रों तथा परिचितों के मिले-जुले समुदाय में आत्मविश्वास के साथ प्रसन्नचित्त रहकर घुलना-मिलना तथा आतिथ्य-सत्कार करना भी जानती हो। समाज की अभिवृत्ति भी कुछ अस्थिर है। समाज अनेक व्यवसायों की स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से तो देखने लगा है और यह चाहता है कि वे सुशिक्षित, स्वतन्त्र तथा निर्भीक हों और जो भी विपत्ति उन पर पड़े उसका सामना करने का आत्म-विश्वास उनमें हो, फिर भी समाज यह नहीं चाहता कि वे आजाद, स्पष्टवादी, सचमुच स्वतन्त्र और अपने आचरण में निर्भीक हों, सबसे बढ़कर अपने सेक्स-आचरण में।

न्यूकोम के सिमेट्री माडल (1959) और फ़ेस्टिंगर के संज्ञानात्मक विसंगति के सिद्धान्त (1959) के अनुसार, श्रमजीवी स्त्री का स्वयं अपने स्वरूप के बारे में जो प्रत्यक्ष ज्ञान है और अपने स्वरूप के बारे में समाज के प्रत्यक्ष ज्ञान के बारे में उसका जो प्रत्यक्ष ज्ञान है, जब तक इन दोनों के बीच सामंजस्य नहीं होगा तब तक हमेशा मानसिक खींचातानी बनी रहेगी। जब तक जीवन की इन महत्त्वपूर्ण समस्याओं के प्रति स्त्रियों की अभिवृत्तियों और इन्हीं समस्याओं के प्रति पुरुषों तथा समाज की अभिवृत्तियों का अभिवृत्तिमूलक अन्तर दूर नहीं होगा तब तक उनके बीच संघर्ष,

उलझनें और तनाव बने रहेंगे और उनमें विभिन्न मनोविकारों के रोग-चिह्नों का रूप धारण कर लेंगे और विभिन्न प्रकार के अरुचिकर, अप्रिय तथा अप्राकृतिक बाह्य आचरणों के रूप में व्यक्त होंगे जो आगे चलकर समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर देंगे। इसलिए उनके और पूरे समाज के बीच संज्ञानात्मक सामंजस्य होना आवश्यक है और इसके लिए आवश्यक है कि स्वयं अपनी अभिवृत्तियों के बारे में उनके प्रत्यक्ष ज्ञान और मूल समस्याओं के प्रति विभिन्न अभिवृत्तियों के बारे में समाज के प्रत्यक्ष ज्ञान के बीच समानता या सामंजस्य हो और यह सामंजस्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

व्यापक निष्कर्ष

इस सीमित अध्ययन के आधार पर व्यापक निष्कर्ष निकालना तो कठिन है, फिर भी कुछ निष्कर्षों का उल्लेख कर देना तर्कसंगत भी होगा और उचित भी।

इस अध्ययन के दौरान जिन बातों का पता लगा है उनसे शिक्षित श्रमजीवी हिन्दू स्त्रियों की अभिवृत्तियों में 'काफी परिवर्तन' का संकेत मिलता है। यह देखा गया है कि जिन स्त्रियों का अध्ययन किया गया वे सभी दस वर्ष के अन्दर प्रेम, विवाह तथा सेक्स के बारे में अपनी भावनाओं, प्रत्यक्ष ज्ञान, चिन्तन तथा आचरण के मामले में कम परम्पराबद्ध तथा कम रूढ़िबद्ध रह गयी थीं, हालांकि इस व्यापक चित्र के अन्दर भी अलग-अलग प्रकारताएँ तथा प्रतिरूप पाये जाते हैं। ये शिक्षित स्त्रियाँ पारम्परिकता के बन्धनों को तोड़कर बाहर निकलने लगी हैं। रूढ़िवादी शक्तियाँ भी पूर्ववत् बनी हुई हैं, फिर भी आमूल परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ भी विकसित हो रही हैं। आचरण के स्तर पर भले ही उतनी हद तक न सही पर संज्ञानात्मक तथा भावात्मक स्तरों पर तो निश्चित रूप से और कुछ हद तक संज्ञान के स्तर पर पारम्परिकता ढहती जा रही है।

'परम्परोन्मुखी' होने के बजाय वे अब अधिकाधिक 'अन्योन्मुखी' अथवा 'अन्तर्मुखी' होने की दिशा में आगे बढ़ रही हैं। प्रेम, सेक्स तथा विवाह के बारे में वे किस ढंग से सोचती हैं, इस सामाजिक महत्त्व की घटना के मामले में उनके संज्ञान की दुनिया और इसके साथ ही उनकी इच्छाओं तथा प्रत्याशाओं की दुनिया धीरे-धीरे ही सही पर अनिवार्य रूप से स्थापित रूढ़ियों से दूर हटती जा रही है।

यह देखा गया है कि उनमें धीरे-धीरे परम्परा-विहीन जीवन-पद्धतियों तथा जीवन-शैलियों का विकास होता जा रहा है। वे समानतावादी तथा समतावादी सिद्धान्तों से प्रभावित होती जा रही हैं और उनकी अभिवृत्तियाँ तथा उनके मूल्य अधिक समतावादी तथा समानतावादी होते जा रहे हैं।

स्वयं उनकी अभिवृत्तियों और उन्हीं समस्याओं के प्रति समाज की, विशेष रूप से पुरुषों की, अभिवृत्तियों के बारे में उनके प्रत्यक्ष ज्ञान के बीच बहुत चौड़ी खाई है। और यह बात उनमें उलझनें, अन्तर्द्वन्द्व तथा चिन्ता उत्पन्न करती है और उनकी अभिवृत्तियों को अस्थिर बना देती है।

की गयी है उनसे निश्चित रूप से इस बात का संकेत मिलता है कि भविष्य में चल-कर दृष्टिकोण, विचार, विश्वास, आचरण तथा व्यवहार का रूप सम्भवतः क्या होगा।

चूँकि अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य समाज में सामाजिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं, इसलिए उभरती हुई अभिवृत्तियों को समाज में एक गतिशील सामाजिक तथा नैतिक व्यवस्था का निर्माण करने के पूरे समकालीन संघर्ष के प्रसंग में देखा जाना चाहिए। बराबरी की बढ़ती हुई चेतना अवश्य है, फिर भी हो सकता है कि आनेवाले वर्षों में भी स्त्रियों तथा पुरुषों के बीच पूर्ण समानता न हो। यह उस समय तक सम्भव नहीं है जब तक कि परिवार में स्त्रियों तथा पुरुषों की भूमिकाओं को भी बराबर महत्त्वपूर्ण न समझा जाये, उनको बराबर सम्मानित तथा उपयोगी न समझा जाये, और बच्चों को पालने तथा परिवार के भरण-पोषण में स्त्रियाँ तथा पुरुष बराबर दायित्व वहन न करें।

कोई स्त्री सेक्स-आचरण को कितना महत्त्व देती है यह बहुत बड़ी हद तक उसके अन्य मूल्यों तथा उद्देश्यों पर निर्भर करता है। चूँकि ये मूल्य तथा उद्देश्य बदल रहे हैं, इसलिए सेक्स-आचरण के प्रति उसकी अभिवृत्ति भी बदल रही है। सेक्स के बारे में एक नयी अभिवृत्ति की झलक दिखायी देती है जिसमें सेक्स को जीवन का एक सकारात्मक मूल्य माना जाने लगा है, और उसे "सम्पूर्णता, परिपूर्ति तथा पारस्परिकता की मनुष्य की खोज में एक सृजनात्मक प्रभाव, मानव-मूल्यों से प्रभावित हो सकनेवाला मानव-सम्बन्ध समझा जाने लगा है" (हेंमिंग, 1970, पृष्ठ 126)। आगे चलकर हेंमिंग यह मत व्यक्त करते हैं :

> अतीत की भयावह कठोरताओं तथा छद्मविवेक ने सेक्स को, जिसे स्वास्थ्य तथा उल्लास का स्रोत होना चाहिए था, इतना उत्पीड़ित किया कि वह मानसिक पीड़ा तथा विक्षोभ का एक मुख्य स्रोत बन गया। अब हम ऐसे भविष्य की आशा लगा सकते हैं, जो इस समय भी प्रकट होने के लिए संघर्ष कर रहा है, जो समाज के अन्दर कुंठारहित परन्तु नियंत्रित सेक्स-आचरण जीवन तथा विवाह की पूरी उत्कृष्टता को बढ़ा देगा। समस्त मानवता के हित में ऐसा होने की आवश्यकता है, और इसलिए भी कि भविष्य सभी व्यक्तियों में तथा पूरे समाज में उपलब्ध समस्त सृजनात्मक शक्ति का तक़ाज़ा करेगा। (हेंमिंग, 1970, पृष्ठ 255)।

इस समय शिक्षित श्रमजीवी युवतियों में जो नयी अभिवृत्ति उभरती हुई पायी जाती है, और वह भविष्य जिसकी हेंमिंग बड़ी आशा के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं, वह एक प्रकार से उसी प्रवृत्ति का पुनरुत्थान है, जो कुछ हद तक प्राचीन भारत में मौजूद थी। डे का मत है कि प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार आध्यात्मिक चरमोत्कर्ष की गरिमा में भी जीवन के व्यावहारिक पक्ष का कभी सर्वथा परित्याग नहीं किया गया है। इसकी अभिव्यक्ति इस बात में होती है कि "बहुत प्रारम्भ में ही और स्पष्ट रूप से

सेक्स-आवेग को मानव-मस्तिष्क का एक प्रबलतम आवेग मान लिया गया था' (डे, 1959, पृष्ठ 85)। ऋग्वेद की एक सुविख्यात ऋचा में (10, 129, 4-5) प्रेम के देवता काम पहले-पहल सामान्यतः समस्त इच्छाओं के पर्याय के रूप में प्रकट होते हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध सेक्स-प्रतीक से जुड़ा हुआ है। यह इस बात की स्वीकारोक्ति है कि आदर्श रूप में सेक्स-कामना समस्त अस्तित्व का आदिस्रोत है। इस प्रसंग में डे ने बताया है, "ऋग्वेद की दो सुविख्यात संवाद-ऋचाओं में, जिनका सम्बन्ध पौराणिक जीवों की प्रेम-लीला से है, हमें भारतीय साहित्य में (और विश्व-साहित्य में) पहली बार प्रेम के संवेग की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति दिखायी देती है" (डे, 1959, पृष्ठ 87)। बृहदारण्यक उपनिषद् (4, 22) में कहा गया है कि सेक्स की इच्छा का स्तर अन्य किसी भी इच्छा के स्तर जैसा ही होता है (डे, 1959, पृष्ठ 89)। 400 और 500 ई० के बीच किसी समय लिखा गया वात्स्यायन का कामसूत्र एक गम्भीर तथा विज्ञानसम्मत रचना है जिसमें इस सामान्यतः वर्जित विषय पर मानविकी के एक अंग के रूप में प्रकाश डाला गया है। (देखिये डे, 1959, पृष्ठ 104)।

क्लाफ़ के अनुसार जिस समाज ने कामसूत्र को जन्म दिया वह मनोग्रन्थियों से मुक्त था। कामसूत्र की रचना समृद्धि के उस युग में हुई जब भारत के नगर अत्यन्त भव्य हुआ करते थे और सार्वजनिक क्षेत्रों में दीवारों को विशेष रूप से इस प्रकार चमकाया जाता था कि वे उधर से होकर गुजरने वाली सुन्दर स्त्रियों की आकृतियों को प्रतिबिम्बित कर सकें। उस युग में लोग नैतिक तथा विषयमूलक सुख को समान महत्त्व देते थे (देखिये क्लाफ़, 1964)। आगे चलकर क्लाफ़ ने मत व्यक्त किया है, "कामसूत्र उस लुप्त सभ्यता को समझने के लिए बुनियादी महत्त्व का समाजशास्त्रीय प्रबन्ध-ग्रन्थ है, जिस सभ्यता में जीवन-स्तर तथा स्वतन्त्रता का सम्मान लगभग हमारी वर्तमान स्थिति जैसा ही था" (क्लाफ़, 1964, पृष्ठ 8)। कामसूत्र में जीवन के तीन सम्मान-प्राप्त लक्ष्यों—धर्म, अर्थ तथा काम—के समान महत्त्व तथा सामंजस्यपूर्ण समन्वय पर बल देकर उनके बीच ताल-मेल बिठाने की कोशिश की गयी थी। उसमें इस विचार को प्रचारित किया गया है कि जो व्यक्ति धर्म तथा अर्थ और उनके साथ ही काम को भी अपने आवेगों का दास बने बिना विकसित करता है, बल्कि अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण संयम प्राप्त कर लेता है, वह अपने हर प्रयास में सफल होता है।

इस बात का पर्याप्त प्रमाण मिलता है कि बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में सेक्स-सम्बन्धी रुचि के सीमित दमन तथा उदात्तीकरण से सभ्यता के सभी श्रेष्ठतम पक्षों को—कला का सृजन, विज्ञान की खोज तथा शिल्प-कौशल की प्रगति को—पोषण प्राप्त होता है। आदिम मनुष्य जिसे असीमित सेक्स-सम्बन्धित स्वतन्त्रता रहती है और जो बिना किसी अवरोध के सेक्स का भोग करता है, वह सभ्यता तथा प्रगति के क्षेत्र में बहुत पीछे रहता है। इसलिए उन्मुक्त परन्तु नियन्त्रित सेक्स-आचरण की उस अभिवृत्ति को, जिसका वर्णन प्राचीन भारतीय साहित्य में किया गया है, एक बार फिर से जागृत करना होगा ताकि समाज की सृजन-शक्ति का न तो सेक्स-आचरण का दमन करने

तथा उसे कुंठित करने में अपव्यय हो, और न ही वह अनियंत्रित सेक्स-आचरण में नष्ट हो।

सेक्स-आचरण के सामाजिक रूप से स्वीकृत प्रतिमान तथा मानदण्ड ही उस समाज-विशेष की सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता होती है और इन्हीं के प्रसंग में अभिवृत्तियों में होनेवाले परिवर्तनों के विकासमूलक अथवा क्रान्तिकारी होने का मूल्यांकन किया जा सकता है। तीव्र गति से होनेवाला परिवर्तन क्रान्तिकारी होता है और अपेक्षाकृत क्रमिक परिवर्तन विकासमूलक होता है। इस प्रश्न का उत्तर कि शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की अभिवृत्तियों में क्रान्ति हुई है या नहीं, इस पर निर्भर करता है कि हम क्रान्ति की परिभाषा किस रूप में करते हैं, परन्तु लेखिका का मत यह है कि उनकी अभि-वृत्तियों में क्रान्तिकारी नहीं, विकासमूलक परिवर्तन हुआ है। या हम उसे प्राचीनकाल में लौट जाने की प्रवृत्ति भी कह सकते हैं जब प्रेम तथा सेक्स को मनुष्य की दो सबसे बड़ी आवश्यकताएँ समझा जाता था और जब सेक्स का आनन्द प्राप्त करने की प्रवि-धियाँ भी सिखायी जाती थीं और जब वैयक्तिक स्वतन्त्रता का सम्मान किया जाता था। वात्स्यायन और खजुराहो के कामसूत्र के काल की कला, स्थापत्य कला तथा मूर्तिकला से उस समय की सेक्स की सकारात्मक भूमिका का संकेत मिलता है। यह तो बाद में चलकर सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक प्रभावों ने लोगों में यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि सेक्स केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए होता है और यह कि वैयक्तिक तुष्टि के लिए सेक्स-भोग पाप है। विवाह की परिधि के अन्दर तो सेक्स को स्वीकार किया जा सकता था परन्तु विवाह की परिधि के बाहर उसे सबसे बड़ा पाप और अनै-तिक आचरण समझा जाता था। बाद में चलकर यह अभिवृत्ति पैदा हुई कि सेक्स आनन्द का स्रोत भी हो सकता है और सन्तानोत्पत्ति का माध्यम भी। देश में होने वाले विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों ने 'शुद्धाचारवादी' अथवा 'विक्टोरियाई' प्रतिबन्धकारी सेक्स-नैतिकता के विरुद्ध बढ़ती हुई प्रतिक्रिया को और तीव्र कर दिया है।

औद्योगिक क्रान्ति, नगरों के विकास, शिक्षा और स्त्रियों के हाल ही में प्राप्त किये गये कानूनी तथा राजनीतिक अधिकारों, मोटरकार का आविष्कार करनेवाली उन्नत टेक्नोलोजी तथा विज्ञान ने गर्भ-निरोध की प्रविधियों में भी सुधार किया, जन-प्रचार के माध्यमों की उन्नति की, और फ्रायड तथा किसे जैसे लेखकों की पुस्तकें उप-लब्ध कीं, और सबसे बढ़कर देश के विभाजन, आर्थिक मन्दी और स्त्रियों की शिक्षा तथा आर्थिक स्वतन्त्रता के नये अवसरों ने तथा उनके फलस्वरूप स्त्रियों की जीवन-पद्धति के बाह्य तथा आन्तरिक परिवेशों में होनेवाले परिवर्तनों ने, अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया से शिक्षित श्रमजीवी युवतियों की अभिवृत्तियों को बदल दिया है। सच तो यह है कि प्रेम, सेक्स तथा विवाह से सम्बन्धित उनके विचारों तथा मतों में समानता, स्वतन्त्रता, स्वाधीनता तथा मानव-अधिकारों के नये विचारों का समावेश होता जा रहा है।

सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता सामाजिक समस्या भी है और वैयक्तिक भी क्योंकि क्या उचित है और क्या अनुचित, इसके बारे में सामाजिक तथा वैयक्तिक निर्णय अथवा मानदंड ही नैतिकता है। सेक्स-सम्बन्धी नैतिकता के समाज के मानदंडों तथा वैयक्तिक मानदंडों के बीच परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है और जब भी इनमें से किसी एक में परिवर्तन आता है तो वह दूसरे को भी बदल देता है। समाज के मानदंडों में परिवर्तन उसके सदस्यों में व्याप्त विचारों तथा आचरणों से आता है, और परम्परा के प्रभाव से तथा मित्रों, समसमूहों, अध्यापकों, माता-पिता की अभिवृत्तियों के प्रभाव से परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है और साहित्य, चलचित्रों, रेडियो तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नये प्रतिमानों के सम्पर्क में आने से सेक्स-सम्बन्धी व्यक्तिगत मानदंडों में परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है।

शायद ही कोई पीढ़ी ऐसी रही हो जिसमें सेक्स अत्यधिक रुचि का विषय न रहा हो, और प्रायः हर पीढ़ी में ऐसे लोग हुए हैं जो अपने बड़ों के बनाये हुए नियमों का उल्लंघन करते हैं। अतीत में अनेक काल ऐसे आये हैं जब सेक्स-सम्बन्धी लोकाचार के नियम कुछ शिथिल कर दिये गये थे और उसके बाद फिर सेक्स पर अधिक कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये गये। इस प्रकार सेक्स-सम्बन्धी प्रतिबन्धों को शिथिल तथा कठोर करने का क्रम एक चक्र के रूप में चलता रहता है। इतिहास की दृष्टि से देखा जाये तो सेक्स-सम्बन्धी समाज-विज्ञान का लोलक विभिन्न प्रकार की सामाजिक शक्तियों तथा समाजगत परिवर्तनों से प्रेरित होकर 'डायोनीसियन'—यूनानी देवता डायोनीसस से सम्बन्धित, अर्थात् ऐन्द्रिक—और 'अपोलोनियन'—यूनानी देवता अपोलो से सम्बन्धित, अर्थात् सामंजस्यपूर्ण तथा सन्तुलित—छोरों के बीच झूलता रहता है। उभरती हुई अनुज्ञात्मकता और अधिक अनुज्ञात्मकता को जन्म दे सकती है और इसके बाद कुछ सामाजिक शक्तियाँ अथवा समाजगत परिवर्तन और अधिक सामाजिक प्रतिबन्धों को फिर वापस ला सकते हैं। फिर भी, प्रस्तुत अध्ययन में देखी गयी प्रचलित अभिवृत्तियों के आधार पर लेखिका को भारत में भावी अभिवृत्तियों तथा सेक्स-मूल्यों में बहुत अधिक विघटन की कोई सम्भावना दिखायी नहीं देती। प्रेम, विवाह और सेक्स के बारे में चर्चा करते हुए टर्नर लिखते हैं :

> सेक्स, प्रेम और विवाह को हम तीन ऐसी व्यवस्थाएँ कह सकते हैं जिनका गति-विधान अलग-अलग है, जिनके अनिवार्य अन्तर-सम्बन्धों को महत्त्व की दृष्टि से एक सोपान के रूप में व्यवस्थित करके और उनकी व्याख्या अपेक्षाकृत निकट अथवा अपेक्षाकृत भिन्न होने के रूप में करके ही समझा जा सकता है। तीव्र पृथकता कदाचित् [illegible] वान वर्ग के लिए या केवल उस अवस्था में ही सम्पन्न हो सकती है जब मूल परिवार को दृढ़तापूर्वक एक स्थायी अभिवृद्ध पत्नी-स्थानिक परिवार के आधीन कर दिया जाये। निकटता के विभिन्न रूप जिनमें सेक्स को प्रेम के और प्रेम को विवाह के आधीन रखा गया हो, [illegible]

> तथा प्रेम के सम्बन्धों को गहन बनाने तथा संघर्षों का समाधान करने की शक्ति को चरम सीमा तक बढ़ा देते हैं, जिसके फलस्वरूप विवाह तुष्टियों तथा विघटनों दोनों ही की दृष्टि से एक गहन सम्बन्ध बन जाता है, (टर्नर, 1970, पृष्ठ 343)।

भारतीय समाज जैसे परम्परा-निर्देशित समाज में, जिस पर परम्परा का प्रभाव अब भी बहुत प्रबल है, और जिसमें अब भी बहुत बड़ी हद परम्परोन्मुख संकल्पनाएँ व्याप्त हैं, और जिसमें चिन्तन परम्पराबद्ध लोकाचार से प्रभावित रहता है, इन तीन व्यवस्थाओं को आदर्श के रूप में घनिष्ठता के प्रतिमान में विवाह, सेक्स तथा प्रेम के क्रम से व्यवस्थित किया गया है। इसलिए आदर्श के रूप में सेक्स का स्थान विवाह के बाद है और प्रेम का सेक्स के बाद। प्राचीन भारतीय साहित्य में ऐसे प्रतिमान के उल्लेख भी मिलते हैं जिसमें विवाह का स्थान प्रेम के बाद आता है और ऐसे भी जिनमें सेक्स का स्थान प्रेम के बाद आता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय प्रचलित विश्वास यह था, जैसा कि आज भी है, कि सेक्स का स्थान विवाह के बाद आना चाहिए और सामान्यतः प्रेम भी विवाह के बाद ही होना चाहिए। जैसा कि राधाकृष्णन् ने बताया है, "हम जिस स्त्री से प्रेम करते हैं उससे विवाह नहीं करते, बल्कि जिस स्त्री से विवाह करते हैं, उससे प्रेम करते हैं" (1956, पृष्ठ 171)। वह आगे चलकर तर्क देते हैं, "यदि विवाह के बिना प्रेम अवैध है, तो प्रेम के बिना विवाह अनैतिक है" (राधाकृष्णन्, 1956, पृष्ठ 193)।

शिक्षित श्रमजीवी युवतियों के बीच जो नयी प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं उनकी दिशा इन तीनों व्यवस्थाओं के क्रम को प्रेम, विवाह और सेक्स के सोपान के रूप में या इससे भी बढ़कर प्रेम, सेक्स और विवाह के सोपान के रूप में फिर से व्यवस्थित करने की ओर है। प्रेम, विवाह तथा सेक्स के क्रमबद्ध प्रतिमान के प्रति उनकी अभिवृत्ति में जो परिवर्तन दिखायी दे रहा है वह यह है कि परम्परागत रूप में स्वीकृत "विवाह, तब सेक्स और तब प्रेम" या "प्रेम, तब विवाह, और तब सेक्स' के क्रम से बजाय उनमें से कुछ, यद्यपि उनकी संख्या बहुत थोड़ी ही है, अब "प्रेम तथा सेक्स और फिर, यदि सम्भव हो तो विवाह" के क्रम के पक्ष में हैं। और कुछ उदाहरणों में, यद्यपि वे विरले ही हैं, यह भी देखा गया कि वे "सेक्स, फिर यदि सम्भव हो तो प्रेम और फिर विवाह" का अनुमोदन करती हैं।

"विवाह की प्रक्रिया से प्रेम तथा सेक्स" के स्थान तथा महत्त्व का उल्लेख करते हुए टर्नर लिखते हैं :

> जब सेक्स तथा प्रेम को विवाह के आधीन कर दिया जाता है परन्तु तीनों को परस्पर बहुत घनिष्ठ रूप से गुँथा हुआ रखा जाता है, तो सेक्स एक सशक्त बन्धन बन जाता है, केवल शारीरिक तुष्टि के कारण उतना नहीं जितना कि उस चीज़ के कारण जिसका वह प्रतीक है। सेक्स-सम्बन्ध विवाहित दम्पत्ति के बीच अत्यन्त विशिष्ट तथा वैयक्तिक

सम्बन्ध की भावना का मूर्त रूप बन जाते हैं। इस प्रतीक-विधान का केन्द्र इस सम्बन्ध का पुनीत स्वरूप हो सकता है, और सेक्स-सम्भोग एक संस्कार के रूप में एक आधारभूत अनुभव के पूरे विवाह-सम्बन्ध की पवित्रता को अपने अन्दर समाविष्ट कर सकता है। या...सेक्स को प्रेम की एक अभिव्यक्ति के रूप में अनुभव किया जाता है; परन्तु चूंकि वह समस्त प्रेम नहीं होता है, इसलिए वह थोड़े-थोड़े समय बाद प्रेम की पुनर्पुष्टि के समान होता है और उसकी तुष्टि को प्रेम के ह्रास के रूप में नहीं अनुभव किया जाता। प्रेम के व्यापक रूप से अभिवृद्ध अर्थ के माध्यम से ही सेक्स-अनुभव की परस्पर बद्धता को बढ़ाने वाले प्रभाव समय के विस्तार में इस तरह बढ़ता जाता है कि तुष्टि के साथ उसका ह्रास न हो (टर्नर, 1970, पृष्ठ 339)।

विचित्र बात है कि प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि ये प्रतिमान प्राचीन भारत में भी मौजूद थे और आदर्श के रूप में परम्परागत परिवेश में आज भी मौजूद हैं।

हम सभी में मूलतः एक दोहरापन पाया जाता है—प्रेम की आवश्यकता और सेक्स की आवश्यकता का दोहरापन—और ये आवश्यकताएँ अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग रूप में पायी जाती हैं। शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों में प्रेम की आवश्यकता और सेक्स की आवश्यकता दोनों ही तीक्ष्ण हो गयी हैं। परन्तु उनके मस्तिष्क में कुछ उलझाव हैं, क्योंकि वे अभी यह नहीं समझ पायी हैं कि इस दोहरी आवश्यकता को कैसे पूरा किया जाये। समाज को उनकी सहायता करनी होगी कि वे इस बढ़ती हुई दोहरी आवश्यकता में सामंजस्य उत्पन्न करने के उपाय विकसित कर सकें।

शहरों की शिक्षित श्रमजीवी स्त्रियों की बदलती हुई अभिवृत्तियों का गहराई के साथ विश्लेषण करने पर यह बात स्पष्ट तथा प्रकट हो जाती है कि उनकी प्रेम की, सेक्स की तथा विवाह की आवश्यकता बढ़ती जा रही है और पहले की अपेक्षा अधिक प्रबल तथा सजग-रूप से अनुभव की जाने लगी है। और वैयक्तिक स्वतन्त्रता की खोज के झीने आवरण के पीछे और उनके आचार-विचार की विविध प्रत्यक्ष तथा परोक्ष अभिव्यक्तियों की परत के नीचे इच्छा-पूर्ति की प्रक्रिया काम करती रहती है। उनके समस्त प्रत्यक्ष तथा परोक्ष व्यवहार में एक ऐसी गतिवान समाज-व्यवस्था स्थापित करने की इच्छा को पूरा करने की अचेतन चेष्टा प्रतीत होती है जिसमें विवाह, प्रेम और सेक्स एक-दूसरे में बहुत घनिष्ठ रूप से घुल-मिल जायें, और उनके मानसिक, संवेगात्मक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक स्व की पूर्णरूपेण परिपूर्ति हो सके।

पारिभाषिक शब्दावली—1

(हिन्दी-अंग्रेज़ी)

न्त:क्रिया	Inter-action
न्त:प्रेरण	Urge
न्त:सांस्कृतिक	Cross-cultural
न्तर्दृष्टि	Insight
न्तर्निरीक्षण	Introspection
न्तर्नाद	Drive
न्तर्वैयक्तिक	Inter-personal
चेतन (मन)	Unconscious
तिकल्पना	Fantasy
ध्ययन	Study
निवार्य	Essential
नुकम्पामय	Compassionate
नुकूलन	Conditioning
नुक्रिया	Response
नुक्रियाशील	Responsive
नुदैर्घ्य	Longitudinal
नुप्रस्थ परिच्छेद	Cross-section
नुबन्ध	Contract
नुमान	Inference
नुमोदन	Approbation
नुराग	Affection
नुज्ञा	Permission
नुज्ञात्मक	Permissive

अनुज्ञात्मकता	Permissivness
अन्यगमन	Adultery
अन्योन्य	Reciprocal
अन्वेषण	Investigation
अन्वेषी	Exploratory
अभाव	Desideratum
अभिप्राय, अभिप्रेरण, अभिप्रेरक	Motive
अभिप्रेरण-शक्ति	Motivating force
अभिभावक	Guardian
अभिमत	Observation
अभिविन्यास	Orientation
अभिवृत्ति	Attitude
अभिज्ञा	Awareness
अवचेतन (मन)	Subconscious
अवसाद	Depression
अवैयक्तिक	Impersonal
अहंकेन्द्रिक	Egocentric
अहंभाव	Ego
आचरण	Behaviour
आत्म-तादात्म्य	Self-identity
आत्मपरक	Subjective
ात्म-परिरक्षण	Self-preservation
त्मातिक	Narcissistic
त्मीयता	Intimacy
दर्शक	Normative
दिम	Primitive
दिम जाति	Tribe
ार-सामग्री	Data
भविक	Empirical
आवेग	Impulse
आवेश	Passion
आवेशपूर्ण, आवेश-प्रधान	Passionate
आस्था	Faith
इन्द्रियगत	Sensuous
उत्कर्ष	Exaltation

उत्तेजन	Excitation
उत्संस्करण	Acculturation
उद्दीपक	Stimulating
उद्दीपन	Stimulus
उदात्त	Sublime
उपकरण	Instrument, Tool
उपागम	Approach
उपादान	Factor
उभयभावी	Ambivalent
उल्लास	Elation
एकरूप, एकसार	Uniform
एक-विवाह	Monogamy
एकाधिक	Multiple
ऐन्द्रिय	Sensuous
औचित्यस्थापन	Rationalisation
कट्टरपंथी	Orthodox
कबीला	Tribe
कल्पना	Assumption
कल्याण	Welfare, Well-being
कशेरुकी	Vertebrate
कामुक, कामोद्दीपक	Erotic
कारक	Factor
कार्यात्मक, कार्यमूलक, कार्यपरक	Functional
कालक्रमिक	Diachronic
किशोर	Adolescent
कुमारीगमन	Fornication
कौमार्य	Virginity
खिंचाव तथा विकृति	Stress & Strain
गणित, गणितीय	Mathematics, Mathematical
गहन	Intense
गुण	Attribute
गुणात्मक	Qualitative
घटना	Phenomenon
घनिष्ठता	Intimacy, Rapport
चेतना	Consciousness

जनजाति	Tribe
जनतन्त्र	Democracy
जननांग	Genitals
जैविक	Biological
तन्त्रिकाताप	Neurosis
तालिका	Panel
तीव्रता	Intensity
द्वित्व, द्वैत	Duality
दैहिक	Carnal
दृष्टिकोण	Approach
नस्ल	Race
नामिका	Panel
नार्सिसीय	Narcissistic
नियमत्ववाद	Determinism
नियम-पुस्तिका	Manual
नियमोन्वेषी	Nomothetic
निरपेक्ष	Absolute
निरवरोध	Uninhibited
निरूपण	Formulation
निर्धारक	Determinant
निर्माणात्मक काल	Formative period
निश्चयात्मक	Positive
निषेध	Taboo
निष्ठा	Loyalty
निष्पत्ति	Consummation
नैत्यक, नेमीं	Routine
नृविज्ञान	Anthropology
पत्नीस्थानिक	Matrilocal
पारम्परिक, परम्परागत	Traditional
परपुरुषगमन	Adultery
परसंस्कृतिग्रहण	Acculturation
परस्त्रीगमन	Adultery
परस्पर निर्भर	Interdependent
परहितवादी, परार्थवादी, परार्थपरक	Altruistic
परिदर्शिका	Guide

परिपक्व	Mature
परिपाटी	Convention
परिप्रेक्ष्य	Perspective
परिमाणन	Quantification
परिमाणात्मक	Quantitative
परिवेश	Environment
परिष्कृत	Refined
परीक्षण-विवाह	Trial marriage
पाठ्येतर, पाठ्यचर्येतर, पाठ्यविषयेतर	Extra-curricular
पारस्परिक	Reciprocal
पित्रीय, पैतृक	Paternal
पुनीतता, पवित्रता	Sanctity
पुनरावृत्त साक्षात्कार	Repeated interview
पूर्वग्रह	Prejudice
पूर्ववृत्ति	Pre-disposition
पूर्वानुमान	Prognosis
प्रकट	Overt
प्रकारता	Modality
प्रकृति	Nature
प्रच्छन्न	Covert
प्रणय-याचन	Courtship
प्रणाली	Method
प्रतिचयन	Sampling
प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन	Cross-section study
प्रतिमान, प्रतिरूप	Pattern
प्रतिष्ठा	Status
प्रतिस्थापन	Substitution
प्रतीक विधान	Symbolism
प्रत्यर्थी	Respondent
प्रत्युत्तर	Response
प्रत्यक्ष	Overt
प्रत्यक्ष ज्ञान	Perception
प्रथा	Custom
प्रबन्ध	Treatise
प्रबुद्ध वर्ग	Intelligentsia

प्रयोजन	Motive
प्रयोजनवत्ता	Teleology
प्रलेख	Documents
प्रविधि	Technique
प्रवृत्ति	Trend
प्रश्नमाला, प्रश्नावली	Questionnaire
प्रस्थापना	Proposition
प्रज्ञा	Intellect
प्राक्कल्पना	Hypothesis
प्रावरोध	Inhibition
प्रेयवाद	Hedonism
प्रौढ़	Adult, Mature
बहिर्मुखी	Extrovert
बहुचरणी	Multistage
बहुविध	Multiple
बुद्धिजीवी वर्ग	Intelligentsia
बुद्धिसंगत	Rational
भाव	Sentiment
भावना	Feeling
भावात्मक	Affectional, Emotive
भावात्मक व्यवहार	Affective behaviour
भावावेश, आवेश	Passion
मन:ऊर्जा	Psychic energy
मन:स्थिति	Mood
मनोग्रन्थि	Complex
मनोरोगविज्ञान	Psychiatry
मनोवृत्ति	Attitude
मान	Value
मानक	Standard
मानकित, मानकीकृत	Standardised
मानवतावादी	Humanistic
मान्यता	Recognition
मुक्तोत्तर प्रश्न	Open-ended question
मूल कुटुम्ब, मूल परिवार	Nuclear family
मूल प्रवृत्ति	Instinct

मूल्य	Value
मैथुन	Coitus, Mating
मोह	Infatuation
यौवनारम्भ	Puberty
रतिज रोग	Veneral disease
रति-निष्पत्ति	Orgasm
रहस्यात्मक	Mystical
रूढ़ि	Convention, Custom
रूढिवादी	Conservative, Orthodox
रूमानी	Romantic
लक्षण	Characteristics
लोकतन्त्र	Democracy
लोकतन्त्रीय	Democratic
लोकरीति	Mores
लोकस्वभाव	Ethos
लोकाचार	Mores. Ethos
वयस्क	Adult
वर्जन, वर्जना	Taboo
वस्तुनिष्ठ, वस्तुपरक	Objective
वस्तुनिष्ठा, वस्तुपरकता	Objectivity
विभिन्नता	Variation
विकास	Evolution
विकासवादी, विकासमूलक	Evolutionary
विचार	Idea
विलिंगकामी	Heterosexual
विशेषता	Attribute
विश्लेषण	Analysis
विश्वास	Belief
विषयनिष्ठ	Objective
विषयनिष्ठा	Objectivity
विसंगति, विसन्नवाद	Dissonance
विसम्बन्ध	Alienation
वैवाहिक स्थिति	Marital status
व्यक्ति-अध्ययन	Case study
व्यक्त्यंकन	Idiography

व्यवसाय	Occupation, Profession
व्यवहार	Behaviour
शारीरिक	Carnal
शाश्वत	Eternal
शुद्धाचारी	Puritan
शोधित	Refined
श्रमजीवी	Working
श्लाघा	Admiration
संकल्पना	Conception, Concept
संगमन	Mating
संतानीय	Filial
संभावी	Potential
संयम	Continence
संविदा	Contract
संवेग	Emotion
संवेगात्मक	Emotive
संवेदन, संवेदना	Sensation
संस्कार	Sacrament
संस्थान	Institute
संज्ञान	Cognition
संज्ञानात्मक	Cognitive
सकारात्मक	Positive
सचेतन	Conscious
सजातीय, समजातीय	Homogeneous
तीत्व	Virginity
द्भावना	Goodwill
मकक्षी	Peer
तावादी	Equalitarian
न्वेषी	Exploratory
रूप	Uniform
न करना	Endorse
गकामी	Homosexual
म	Mating
विज्ञान	Social science
विज्ञानी	Social scientist

समाजशास्त्री	Sociologist
समसमूह	Peer group
समनुमोदन	Approbation
समायोजन	Adjustment
समुदाय	Community
समूह	Group
सम्मान	Respect
सहचारिता	Companionship
सहचारी, साहचर्यमूलक	Companionate
सहमतिजन्य	Consensual
सहानुभूति	Sympathy
सांख्यिकीय	Statistical
साधन	Resources
साहचर्य	Association
सिंहावलोकन, दिग्दर्शन, संदर्शिका, संक्षिप्त विवरण	Conspectus
सुखवाद	Hedonism
सूचक	Index
सोद्देश्य	Purposive
सौहार्द	Rapport
स्थापना	Thesis
स्नेह	Affection
स्वच्छन्द प्रेम	Free love
स्वतःस्फूर्त	Spontaneous
स्वयं-प्रयोजन	Self-administering
स्वरूप	Nature
स्वभाव, स्ववृत्ति	Disposition
स्वैर	Promiscuous
स्वैरिता, अनियत सम्भोग	Promiscuity

पारिभाषिक शब्दावली–2

(अंग्रेजी-हिन्दी)

Absolute	निरपेक्ष
Acculturation	उत्संस्करण, परसंस्कृतिग्रहण
Adjustment	समायोजन
Admiration	श्लाघा
Adolescent	किशोर
Adult	वयस्क, प्रौढ़, बालिग
Adultery	अन्यगमन, परस्त्रीगमन, परपुरुषगमन
Affection	स्नेह, अनुराग
Affectional	भावात्मक
Affective behaviour	भावात्मक व्यवहार
Alienation	विसम्बन्ध
Altruistic	परार्थवादी, परहितवादी, परार्थपरक
Ambivalent	उभयभावी
Analysis	विश्लेषण
Anthropology	नृविज्ञान
Approach	उपागम, दृष्टिकोण
Approbation	अनुमोदन, समनुमोदन
Association	साहचर्य
Assumption	कल्पना
Attitude	अभिवृत्ति, मनोवृत्ति

Attribute	गुण, विशेषता
Awareness	अभिज्ञा
Behaviour	व्यवहार, आचरण
Belief	विश्वास
Biological	जैविक
Carnal	दैहिक, शारीरिक
Case study	व्यक्ति-अध्ययन
Characteristics	लक्षण
Cognition	संज्ञान
Cognitive	संज्ञानात्मक
Coitus	मैथुन
Community	समुदाय
Companionate	सहचारी, साहचर्यमूलक
Companionship	सहचारिता
Compassionate	अनुकम्पामय
Complex	मनोग्रन्थि
Conception, Concept	संकल्पना, संप्रत्यय
Conditioning	अनुकूलन
Conscious	सचेतन
Consciousness	चेतना
Consensual	सहमतिजन्य
Conservative	रूढ़िवादी
Conspectus	सिंहावलोकन, दिग्दर्शन, संदर्शिका
Consummation	निष्पत्ति
Continence	संयम
Contract	संविदा, अनुबन्ध
Convention	रूढ़ि, परिपाटी
Courtship	प्रणय-याचन
Covert	प्रच्छन्न, अप्रकट
Cross-cultural	अंतःसांस्कृतिक
Cross-section	अनुप्रस्थ-परिच्छेद
Cross-section study	प्रतिनिध्यात्मक
Custom	प्रथा, रूढ़ि
Data	आधार
Democracy	[illegible]

Democratic	लोकतन्त्रीय
Depression	अवसाद
Desideratum	अभाव
Determinant	निर्धारक
Determinism	नियतत्ववाद
Diachronic	कालक्रमिक
Disposition	स्ववृत्ति, स्वभाव
Dissonance	विसंगति, विसन्नवाद
Documents	प्रलेख, दस्तावेज़
Drive	अंतर्नोद
Duality	द्वित्व, द्वैत
Ego	अहंभाव
Egocentric	अहंकेन्द्रिक
Elation	उल्लास
Emotion	संवेग
Emotive	भावात्मक, संवेगात्मक, रागात्मक
Empirical	आनुभविक
Endorse	समर्थन करना
Environment	परिवेश, पर्यावरण
Equalitarian	समतावादी
Erotic	कामुक, कामोद्दीपक
Essential	अनिवार्य
Eternal	शाश्वत
Ethos	लोकाचार, लोकस्वभाव
Evolution	विकास
Evolutionary	विकासवादी, विकासमूलक
Exaltation	उत्कर्ष
Excitation	उत्तेजन
Exploratory	समन्वेषी, अन्वेषी
Extra-curricular	पाठ्येतर, पाठ्यचर्येतर, पाठ्यविषयेतर
Extrovert	बहिर्मुखी
Factor	कारक, घटक, उपादान
Faith	आस्था
Fantasy	अतिकल्पना
Feeling	भावना

Filial	संतानीय
Formative period	निर्माणात्मक काल
Formulation	निरूपण
Fornication	कुमारीगमन
Free-love	स्वच्छन्द प्रेम
Functional	कार्यपरक, कार्यमूलक, कार्यात्मक
Genitals	जननांग
Goodwill	सद्भावना
Group	समूह
Guardian	अभिभावक
Guide	परिदर्शिका
Hedonism	सुखवाद, प्रेयवाद
Heterosexual	विलिंगकामी
Homogeneous	सजातीय, समजातीय
Homosexual	समलिंगकामी
Humanistic	मानवतावादी
Hypothesis	प्राक्कल्पना
Hysteria	हिस्टीरिया
Idea	विचार
Ideographing	व्यवत्यंकन
Impersonal	अवैयक्तिक
Impulse	आवेग
Index	सूचक
Infatuation	मोह
Inference	अनुमान
Inhibition	प्रावरोध
Insight	अन्तर्दृष्टि
Instinct	मूल प्रवृत्ति
Institute	संस्थान
Instrument	उपकरण, यन्त्र, औजार, साधन
Intellect	प्रज्ञा
Intelligentsia	प्रबुद्ध वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग
Intense	गहन
Intensity	तीव्रता
Inter-action	अन्तःक्रिया

Interdependent	परस्पर निर्भर
Inter-personal	अन्तर्वैयक्तिक
Intimacy	घनिष्ठता, आत्मीयता
Introspection	अन्तर्निरीक्षण
Investigation	अन्वेषण, जाँच-पड़ताल
Longitudinal	अनुदैर्घ्य
Loyalty	निष्ठा
Manual	नियम-पुस्तिका
Marital status	वैवाहिक स्थिति
Mathematics, Mathematical	गणित, गणितीय
Mating	मैथुन, संगमन, समागम
Matrilocal	पत्नीस्थानिक
Mature	परिपक्व, प्रौढ़
Method	प्रणाली
Modality	प्रकारता
Monogamy	एक-विवाह
Mood	मनःस्थिति
Mores	लोकाचार, लोकरीति
Motivating Force	अभिप्रेरण-शक्ति
Motive	अभिप्रेरक, अभिप्रेरण, प्रयोजन, अभि
Multistage	बहुचरणी
Multiple	एकाधिक, बहुविध
Mystical	रहस्यात्मक
Narcissistic	नार्सिसीय, आत्मातिक
Nature	प्रकृति, स्वरूप
Neurosis	तंत्रिकाताप
Normative	आदर्शक
Nomothetic	नियमोन्वेषी
Nuclear family	मूल-परिवार, मूल-कुटुम्ब
Objectivity	वस्तुनिष्ठा, वस्तुपरकता, विषयनिष्ठा
Observation	अभिमत
Occupation	व्यवसाय
Open-ended question	मुक्तोत्तर प्रश्न
Orgasm	रति-निष्पत्ति
Orientation	अभिविन्यास, मोड़, दिशा

Orthodox	कट्टरपंथी, रूढ़िवादी
Overt	प्रकट, प्रत्यक्ष
Panel	तालिका, नामिका
Passion	भावावेश, आवेश
Passionate	आवेशपूर्ण, आवेशप्रधान
Paternal	पित्रीय, पैतृक
Pattern	प्रतिरूप, प्रतिमान
Peer	समकक्षी
Peer group	समसमूह
Perception	प्रत्यक्ष ज्ञान
Permission	अनुज्ञा
Permissive	अनुज्ञात्मक
Permissiveness	अनुज्ञात्मकता
Perspective	परिप्रेक्ष्य
Phenomenon	घटना, दृग्विषय, गोचर
Positive	निश्चयात्मक, सकारात्मक
Potential	संभावी
Pre-disposition	पूर्ववृत्ति
Prejudice	पूर्वग्रह
Primitive	आदिम
Profession	व्यवसाय
Prognosis	पूर्वानुमान
Proposition	प्रस्थापना
Promiscuity	स्वैरिता, अनियत संभोग
Promiscous	स्वैर
Psychiatry	मनोरोग-विज्ञान
Psychic energy	मनःऊर्जा
Puberty	यौवनारम्भ
Puritan	शुद्धाचारी
Purposive	सोद्देश्य
Qualitative	गुणात्मक
Quantification	परिमाणन
Quantitative	परिमाणात्मक
Questionnaire	प्रश्नावली, प्रश्नमाला
Race	नस्ल

Rapport	घनिष्ठता, सौहार्द
Rational	बुद्धिसंगत, तर्कसंगत
Rationalisation	औचित्य, स्थापन
Reciprocal	अन्योन्य, पारस्परिक
Recognition	मान्यता
Refined	परिष्कृत, शोधित
Repeated interview	पुनरावृत्त साक्षात्कार
Resources	साधन, संसाधन
Respect	सम्मान
Respondent	प्रत्यर्थी, उत्तरदाता
Response	प्रत्युत्तर, अनुक्रिया
Responsive	अनुक्रियाशील
Romantic	रूमानी
Routine	नैत्यक, नेमी
Sacrament	संस्कार
Sampling	प्रतिचयन
Sanctity	पुनीतता, पवित्रता
Self-administering	स्वयं प्रयोजन
Self-identity	आत्म-तादात्म्य
Self-preservation	आत्म-परिरक्षण
Sensation	संवेदन, संवेदना
Sensuous	ऐंद्रिय, इंद्रियगत
Sentiment	भाव
Social science	समाज-विज्ञान
Social scientist	समाज-विज्ञानी
Sociologist	समाजशास्त्री
Spontaneous	स्वतःस्फूर्त
Standard	मानक
Standardised	मानकीकृत, मानकित
Statistical	सांख्यिकीय
Status	हैसियत, प्रतिष्ठा
Stimulating	उद्दीपक
Stimulus	उद्दीपन
Stress & Strain	खिंचाव तथा विकृति
Study	अध्ययन

Subconscious	अवचेतन (मन)
Subjective	आत्मपरक
Sublime	उदात्त
Substitution	प्रतिस्थापन
Symbolism	प्रतीक विधान
Sympathy	सहानुभूति
Taboo	निषेध, वर्जन, वर्जना
Technique	प्रविधि, तकनीक
Teleology	प्रयोजनवत्ता
Thesis	स्थापना
Tool	उपकरण, औज़ार
Traditional	पारम्परिक, परम्परागत
Treatise	प्रबन्ध
Trend	प्रवृत्ति
Trial marriage	परीक्षण-विवाह
Tribe	आदिम जाति, जनजाति, कबीला
Unconscious	अचेतन (मन)
Uniform	एकसा, एकरूप, समरूप
Uninhibited	निरवरोध
Urge	अन्त:प्रेरण
Value	मूल्य, मान
Variation	विभिन्नता
Venreal disease	रतिज रोग
Vertebrate	कशेरुकी
Virginity	कौमार्य, सतीत्व
Working	श्रमजीवी
Welfare, Well-Being	कल्याण

सन्दर्भ ग्रन्थ

ADLER, ALFRED, *What Life Should Mean to You*, London: George Allen and Unwin Ltd., Unwin Books edition (First published in 1932), 1962.

ALTEKAR, A. S., *The Position of Women in Hindu Civilisation*, 3rd edition, Varanasi: Motilal Banarsidass, 1962.

ARNOLD, MARTIN, *Marriage, Sex and Society*, London: Mayflower Books Ltd., 1965.

ASCH, SOLOMAN E., *Social Psychology*, New Jersey: Prentice-Hall, Inc., 1952.

BABER, BERNARD, "The Three Human Females," in *An Analysis of the Kinsey Reports on Sexual Behaviour in the Human Male and Female*, edited by Donald Porter Geddes, A Mentor Book, New York: The New American Library of World Literature, Inc., 1954.

BABER, RAY E., *Youth Looks at Marriage and the Family: A Study of Changing Japanese Attitudes*, Tokyo: International Christian University, 1958.

BAIN, READ, "Changed Beliefs of College Students" in *The Journal of Abnormal and Social Psychology*, Vol. 31, 1936, pp. 1-11.

BAROT, JYOTI, "Trends in Marital Relations in 70's". A Paper read in *All India Seminar on The Indian Family in The Change and Challenge of Seventies*, in New Delhi, from 28 Nov. to 2nd Dec., 1971.

BEAUVOIR, SIMONE DE, *The Second Sex*, London: New English Library, 1969.

BECKER, H., and HILL, R. (ed.), *Marriage and the Family*, Boston: D. C. Heath and Co., 1942.

BEIGEL, HUGO G., "Romantic Love," in *American Sociological Review*, Vol. 16, No. 3, June 1951, pp. 326-34.

BENNY, M., REISMAN, D., and STAR, S. A., "Age and Sex in the Interviewer," in *Americal Journal of Sociology*, Vol. 62, 1956, pp. 143-52.

BLOCH, TWAN, *The Sexual Life of Our Time*, New York: Rebman, 1968, p. 188.

BOGARDUS, E. S., *Sociology*, 3rd edition, New York: The Macmillan Company, 1950.

BOROFF, DAVID, *Campus*, New York: Harper and Brothers, 1961.

——, "Sex: The Quiet Revolution," in *Esquire Magazine*, July 1962.

BOWMAN, HENRY A., *Marriage for Moderns*, 3rd edition, New York: McGraw-Hill Book Company, Inc., 1954.

BRATA, SASTHI, "The Sex Revolution," in *The Illustrated Weekly of India*, 24 October 1971.

BROMLEY, D. D., and BRITTEN, F. H., *Youth and Sex, A Study of 1300 College Students*, New York: Harper and Brothers, 1938.

BROWN, J. F., *The Psycho-Dynamics of Abnormal Behaviour*, London: McGraw-Hill Book Company, Inc., 1940.

BUCK, W., "A Measurement of Changes in Attitudes and Interests of University Students Over a Ten Year Period," in *Journal of Abnormal and Social Psychology*, Vol. 31. 1936, pp. 12-19.

BUNDESEN, H. N., *Toward Manhood*, New York: J. B. Lippincott Co., 1951.

BURGESS, ERNEST W., and LOCKE, HARVEY J., *The Family*, 2nd ed., New York: American Book Company, 1960.

CADWALLADER, MERVYN, "Changing Social Mores," in *Current*, February 1967, p. 48.

CAPELLANUS, ANDREAS, *The Art of Courtly Love*, translated by John J. Parry, New York: Columbia University Press, 1941.

CARSTAIRS, G. M., *This Island Now*, London: Hogarth, 1963.

CAVAN, RUTH SHONLE, "Attitudes of Jewish College Students in the United States Toward Interreligious Marriage," in *International Journal of Sociology of the Family*, Vol. I. Special Issue, May 1971, pp. 84-98.

DESAI NEERA A., *Woman in Modern India*, Bombay: Vora and Co. Publishers Private Ltd., 1957.

DUBE, S. C., "Men's and Women's Roles in India," in *Women in the New Asia*, ed. Barbara E. Ward, Paris: UNESCO, 1963.

DUVALL, EVELYN MILLIS, "Adolescent Love as a Reflection of Teenagers' Search for Identity," in *Journal of Marriage and Family*, Vol. 26, No. 2 (May 1964), pp. 226-29.

DUVALL, E. M., and HILL, R., *When You Marry*, Boston: D. C. Heath and Co., 1945.

EDWARDS, JOHN N., "The Future of the Family Revisited," in *Journal of Marriage and the Family*, Vol. 29 (August 1967), pp. 505-07.

EJLERSEN, METTE, *I Accuse*, London: Universal-Tandem Publishing Co. Ltd., 1969.

ELLIOT, MABEL A., and MERRIL, FRANCES E., *Social Disorganisation*, 3rd edition, New York: Harper and Brothers Publishers, 1950.

ELLIS, ALBERT, "Questionnaire Versus Interview Methods in the Study of Human Love Relationships," in *American Sociological Review*. Vol. 12, 1947, pp. 61-65.

——, *The American Sexual Tragedy*, New York: Lyle Stuart and Grove Press, 1962 (*Idem*) *The Case for Sexual Liberty*, New York: Tucson, Seymour Press, 1965.

——, "Group Marriage: A Possible Alternative," in *The Family in Search of a Future*, edited by Herbert A. Otto, 1970.

ELLIS, ALBERT, and ABARBANEL, ALBERT (eds.), *The Encyclopaedia of Sexual Behaviour*, New York City: Hawthorn Books, 1967.

ELLIS, HAVELOCK, "The Evolution of Modesty," in *Studies in the Psychology of Sex*, Vol. I, New York: F. A. Davis Company, 1900.

——, "Sexual Selection in Man," in *Studies in the Psychology of Sex*, Vol. IV, New York: F. A. Davis Company, 1905.

——, "Sex in Relation to Society," in *Studies in the Psychology of Sex*, Vol. VI, New York: F. A. Davis Company, 1910.

——, *Studies in the Psychology of Sex*, Vol. II, Part Three, New York: Random House, 1936.

——, *Sex and Marriage*, 3rd Printing, edited by John Gawsworth, New York: Pyramid Books, 1961.

EYSENCK, H. J., *The Structure of Human Personality*, London: Methuen, 1953.

——, *The Psychology of Politics*, London: Routledge & Kegan Paul, 1954.

——, *Experiments in Personality*, London: Routledge & Kegan Paul, 1960.

FARNHAM, M. F., *The Adolescent*, New York: Harper & Brothers, 1951.

FENICHEL, OTTO, *The Psychoanalytic Theory of Neurosis*, New York: W. W. Norton & Company, Inc., 1945.

FESTINGER, L., *A Theory of Cognitive Dissonance*, California: Stanford University Press, 1957.

——, "Behavioural Support for Opinion Change," in *Public Opinion Quarterly*, Vol. 28, 1964, pp. 404-17.

FIGS, EVA, *Patriarchal Attitudes: Women in Society*, London: Faber and Faber, 1970.

FOLSOM, JOSEPH KIRK, *The Family and Democratic Society*, London: Routledge & Kegan Paul Limited, 1948.

FONSECA, MABEL, *Counselling for Marital Happiness*, Bombay: Manaktalas, 1966.

FORBATH, A. (ed.), *Love, Marriage, Jealousy*, London: Pallas Publishing Co. Ltd., 1941.

FORD, CHELLAN S., and BEACH, FRANK A., *Patterns of Sexual Behaviour*, New York: Harper & Row, Publishers, 1951.

Fortune Magazine poll, April 1937.

FOSTER, R. G., *Marriage and Family Relationships*, New York: The Macmillan Co., 1950 (1st edition 1944).

FREUD, SIGMUND, *Group Psychology and the Analysis of the Ego*, London: Hogarth, 1972.

FROMM, ERICH, *Man for Himself*, New York: Rinehart and Co., Inc., 1947.

——, *The Art of Loving*, New York: Harper and Brothers, 1956.

FROMME, ALLAN, *The Psychologist Looks at Sex and Marriage*, New York: Barnes and Noble, 1955.

GEDDES, DONALD PORTER (ed.), *An Analysis of the Kinsey Reports on Sexual Behaviour in the Human Male and Female*, a Mentor Book, New York: The New American Library of World Literature, Inc., 1954.

GHURYE, G. S., *Caste and Class in India*, Bombay: Popular Book Depot, 1950.

——, *Family and Kin*, Bombay: Popular Book Depot, 1955.

——, *Sexual Behaviour of the American Female*, Bombay: Current Book House, 1956.

GITTLER, JOSEPH B., *Social Dynamics*, New York: McGraw-Hill Book Company, Inc., 1952.

GOLDSEN, ROSE K., *et al.*, *What College Students Think*, New York: D. Van Nostrand Company, Inc., 1960.

GOODE, WILLIAM J., "The Theoretical Importance of Love," in *American Sociological Review*, Vol. 24, No. 1 (February 1959), pp. 38-47.

——, *World Revolution and Family Patterns*, London: The Free Press of Glencoe, 1963.

——, *The Family*, New Delhi: Prentice-Hall of India (Private) Ltd., 1965.

GORE, M. S., *Urbanization and Family Change*, Bombay: Popular Prakashan, 1968.

GOTTSCHALK, LOUIS, KLUCKHOHN, CLYDE, and ANGELL, ROBERT, "The Use of Personal Documents in History, Anthropology and Sociology," London: *Social Science Research Council*, 1945.

REEN, GAEL, *Sex and the College Girls*, London: Mayflower Books, 1964, Reprinted 1970.

REER, GERMAINE, *The Female Eunuch*, London: Granada Publishing Limited, 1971.

UPTA, K. C., "Family Counselling—(Parent-Child Relationship)," a paper read in *All-India Seminar on the Indian Family in Change and Challenge of the Seventies*," in New Delhi from 28 Nov. to 2nd Dec. 1971.

ART, HORNELL, "Changing Social Attitudes and Interests," in *Recent Social Trends*, McGraw-Hill Book Company, Inc., 1933.

ATE, C. A., "The Socio-Economic Conditions of Educated Women in Bombay City," Study prepared in the University School of Economics and Sociology, Bombay, 1930.

——, "The Social Position of Hindu Women," unpublished Ph.D. Thesis, University School of Economics and Sociology, Bombay, 1946.

——, *Changing Status of Woman in Post-Independence India*, Bombay: Allied Publishers Private Limited, 1969.

IAYTIN, DANIEL LEIGH, "A Methodological Validity of the Case-Study in the Social Sciences," in *Dissertation Abstracts International, A*, Vol. 31, No. 1, July 1970, p. 492-A

HEIDER, F., "Attitudes and Cognitive Organization," in *Journal of Psychology*, Vol. 21, 1946, pp. 107-12.

HELLEN, G.C., "Attitudes of Educated Youth Towards Marriage," in *Social Welfare*, Vol. XII, No. 11, Feb. 1966, pp. 9-10.

HEMMING, JAMES, *Individual Morality*, London: Panther Books, 1970.

HILL, REUBEN, "The American Family of the Future," in *Journal of Marriage and the Family*, Vol. 26, No. 20, February 1964.

HOFFMAN, LOIS W., "The Decision to Work," in F. I. Nye and Lois W. Hoffman (eds.), *The Employed Mother in America*, Chicago: Rand McNally, 1963.

IYENGAR, S. SRINIVASA, *Hindu Law and Usage*, 1938.

KANNAN, C. T., *Intercaste and Inter-community Marriage in India*, Bombay: Allied Publishers Private Ltd., 1963.

KAPADIA, K. M., *The Hindu Marriage and Divorce Bill, A Critical Study*, Bombay: Popular Book Depot, 1953.

——, "Views and Attitudes of University Graduates in the Hindu Community on Marriage and Family Relationships," in *Sociological Bulletin*, Vol. 3, No. 1, March 1954.

——, "Changing Patterns of Hindu Marriage," in *Sociological Bulletin*, Vol. 3, No. 2, September 1954.

——, "Changing Patterns of Hindu Marriage and Family," in *Sociological Bulletin*, Vol. 4, No. 2, September 1955.

——, *Marriage and Family in India*, 2nd edition, Bombay: Oxford University Press, 1958.

——, "The Family in Transition," in *Sociological Bulletin*, Vol. 8, No. 2, September 1959.

KAPUR, PROMILLA, "The Socio-Psychological Study of the Change in the Attitudes of Young Hindu Educated Earning Women," unpublished Ph. D. thesis, Institute of Social Science, Agra University, Agra, 1960.

——, *Marriage and the Working Woman in India*, Delhi: Vikas Publications, 1970.

KARDINER, A., *The Individual and His Society*, New York: Columbia University Press, 1939.

KATZ, D., and ALLPORT, F. H., *Students Attitudes: A Report of the Syracuse University Reaction Study*, Syracuse: The Chaftsman Press, 1931.

KIESLER, CHARLES A., Collins, Barry E., Miller, and Norman,

Attitude Change: A Critical Analysis of Theoretical Approaches, New York: John Wiley & Sons, 1969.

KINESY, ALFRED C., *et al.*, *Sexual Behaviour in the Human Male*, Philadelphia: W. B. Saunders Company, 1948.

——, *Sexual Behaviour of Human Female*, Philadelphia: W. B. Saunders Company, 1953.

KIRKENDALL, LESTER, A., *Understanding Sex*, Chicago: Science Research Associates, 1947.

——, *Premarital Intercourse and Interpersonal Relationships*, New York: The Julian Press, Inc., 1961.

KIRKPATRICK, CLIFFORD, *The Family as Process and Institution*, 2nd edition, New York: Ronald Press, 1963.

KLAF, FRANKLIN S. (Introduction by), *Kama Sutra of Vatsyayana*, New York: Lancer Books, Inc., 1964.

KNOWER, F. H., "Experimental Studies of Changes in Attitudes: I. A. Study of the Effect of Oral Argument on Changes of Attitude," in *Journal of Social Psychology*, Vol. 6, 1935, pp. 315-47.

KOLB, WILLIAM L., "Sociologically Established Norms and Democratic Values," in *Social Forces*, 26, 1948.

KOMAROVSKY, MIRRA., *The Unemployed Man and His Family*, New York: The Dryden Press, 1940.

KRECH, DAVID., and CRUCHFIELD, RICHARD S., *Theory and Problems of Social Psychology*, Asian Student Edition, McGraw-Hill Book Co., Inc., 1948.

KRICH, A. M. (ed.), *Women: The Variety and Meaning of Their Sexual Experience*, New York: Dell Books, 1953.

——, (ed.), *Men: The Variety and Meaning of Their Sexual Experience*, Sixth Printing, New York: Dell Publishing Co., Inc., 1967.

KUPPUSWAMY, B., *A Study of Opinion Regarding Marriage and Divorce*, Bombay: Asia Publishing House, 1957.

LANDIS, J. T., and LANDIS, M. G., *Building a Successful Marriage*, New York: Prentice-Hall, 1948.

LANTZ, HERMAN R., and SYNDER, ELISE C., *Marriage: An Examination of the Man-Woman Relationship*, New York: John Wiley and Sons, Inc., 1969.

LARSON, LYLE E., "The Family in Contemporary Society and Emerging Family Patterns," Unpublished paper, Department of Sociology, University of Alberta, 1970, pp. 15-20.

LEVY, J., and MUNROE, R., *The Happy Family*, New York: Alfred A. Knopf, 1938.

LIEBERMAN, SEYMOUR, "The Effects of Changes in Roles on the Attitude of Role Occupants," in *Human Relations*, Vol. 9, No. 4, 1966, pp. 385-402.

LIKERT, R., "A Technique for the Measurement of Attitudes," in *Arch. Psychology*, New York, No. 140, 1932, pp. 1-55.

LINTON, RALPH, *Cultural Background of Personality*, New York: Appleton-Century Crafts, 1945.

LISOVSKY, VLADIMIR, and PELEVIN, SERGEI, "Why Divorce in the Soviet Union," in *Sputnik*, a monthly Soviet magazine, January issue, 1967.

LUNDIN, JOHN PHILIP, *Women*, New York: Lancer Books, Inc., 1967.

MAHAJAN, AMARJIT, "A Study of Attitudes of Women Students towards Mate-Selection," in *Journal of Family Welfare*, Vol. XII, No. I, September 1965.

MALINOWSKI, BRONISLAW, in *Nature*, 22 April 1922.

——, *Sex and Repression in Savage Society*, London: Paul. Trench and Trubner, 1927.

MATHEW, A., "Expectations of College Students Regarding Their Marriage," in *Journal of Family Welfare*, Vol. 12, No. 3, March 1966, pp. 46-52.

MAYO, ELTON, *The Human Problems of an Industrial Civilization*, Cambridge: Harvard University Press, 194[illegible].

McGREGOR, O. R., "Equality, Sexual Values and Permissive Legislation: The English Experience," in *Journal of Social Policy*, Vol. I, Part I, January 1972 Issue, pp. [illegible], Cambridge University Press.

MEAD, M., *Growing Up in New Guinea*, New York: [illegible]

——, "Kinship in the Admirality Islands," in *Anthrop. [illegible] Mus.*, Vol. 34, 1934, pp. 121-358.

——, "What Women Want," in *Fortune*, [illegible]

——, "Marriage in Two Steps," in *[illegible]* [illegible] reprinted in *The Family in Search of a [illegible]* [illegible] 1970.

MEHTA, RAMA, *The Western Educated [illegible]* [illegible] Asia Publishing House, 1970.

MERCHANT, K. T., *Changing Views on [illegible]* Madras: B. G. Paul and Co., [illegible]

MEYER, JOHANN J., *Sexual Life in Ancient India*, Calcutta: The Standard Literature Co. Ltd., 1952.

MURDOCK, GEORGE PETER, *Social Structure*, New York: The Macmillan Company, 1949.

NELSON, JACK L., *Teenagers And Sex: Revolution or Reaction?*, New Jersey: Prentice-Hall, Inc., 1970.

NEUBACK, GERHARD (ed.), *Extramarital Relations*, New York: Prentice-Hall, 1969.

NEUMEYER, MARTIN H., *Social Problems and the Changing Society*, New York: D. Van Nostrand Company, Inc., 1953.

NEWCOMB, THEODORE M., "Recent Changes in Attitudes Towards Sex and Marriage," in *American Sociological Review*, Vol. 2, 1937, pp. 659-67.

——, "An Approach to the Study of Communicative Acts," in *Psychological Review*, Vol. 30, 1953, pp. 393-404.

——, "Individual Systems of Orientation," in S. Koch (ed.), *Psychology: A Study of a Science*, Vol. 3, New York: McGraw-Hill, 1959, pp. 384-422.

NEWCOMB THEODORE M., TURNER, RALPH H., and CONVERSE, PHILIP E., *Social Psychology*, New York: Holt, Rinehart and Winston, Inc., 1965.

OMARI, T. PETER, "Changing Attitudes of Students in West African Society Towards Marriage and Family Relationship," in *British Journal of Sociology*, Vol. XI, No. 3, September 1960, p. 205.

OSGOOD, C. E., and TANNENBAUM, P. H., "The Principles of Congruity in the Prediction of Attitude Change," in *Psychological Review*, Vol. 62, 1955, pp. 42-55.

OTTO, HERBERT, A. (ed.), *The Family in Search of a Future: Alternate Models for Moderns*, New York: Appleton-Century Crafts, 1970.

OVERSTREET, HARRY, *The Mature Mind*, New York: W.W. Norton & Company, Inc., 1949.

OVID, "The Loves," and "Remedies of Love," in *The Art of Love*, Cambridge Press, Mass., Harvard University Press, 1939.

PANUNZIO, C., *Major Social Institutions*, New York: Macmillan, 1939.

PARSONS, TALCOTT, *et. al.*, *Working Papers in the Theory of Action*, New York: The Free Press of Glencoe, 1953.

PARSONS, T., and BALES, R. F., *Family Socialization and Interaction Process*, Glencoe, III: The Free Press, 1955.

PETERSON, R. C., and THURSTONE, L. L., *Motion Pictures and the Social Attitudes of Children*, New York: The Macmillan Company, 1933.

POMERAI, RALPH DE, *The Future of Sex Relationships*, London: Kegan Paul, Trench, Trubner & Co. Ltd., 1936.

POPENOE, PAUL., *Sex, Love and Marriage*, New York: Belmont Productions, Inc., 1963.

——, *Marriage: Before and After*, New York: Wilfred Funk, 1943.

PORTERFIELD, AUSTIN L., *Creative Factors in Social Research*, Durham, N. C.: Duke University Press, 1941.

PRABHU, PANDHARI NATH, *Hindu Social Organization*, rev. ed., Bombay: Popular Book Depot, 1954.

PRESCOTT, DANIEL A., "The Role of Love in Human Development," in *Journal of Home Economics*, Vol. 44, No. 3 (March 1952), reprinted in *The Individual, Marriage and the Family: Current Perspectives*, by Lloyd Saxton, Belmont, California: Wadsworth Publishing Co., Inc., 1970.

PRINCE, ALFRED J., "Attitudes of Catholic University Students in the United States Toward Catholic-Protestant Intermarriage," in *International Journal of Sociology of the Family*, Vol. I, Special Issue, May 1971, pp. 99-125.

PUNEKAR, S. D., and RAO, KAMALA, *A Study of Prostitutes in Bombay*, 2nd edition, Bombay: Lalvani Publishing House, 1967.

RADHAKRISHNAN, S., *Religion and Society*, 2nd edition, Third Impression, London: George Allen & Unwin Ltd., 1956.

REICH, WELHELM, *The Sexual Revolution: Toward a Self-Governing Character Structure*, New York: Orgone Institute Press, 1945.

REIK, THEODORE, *A Psychoanalyst Looks at Love*, New York: Holt, Rinehart and Winston, Inc., 1944.

——, *Psychology of Sex Relations*, New York: Farrar, Straus & Co., 1945.

——, *Of Love and Lust*, New York: Farrar, Straus and Company, 1957.

REISMAN, DAVID, "Permissiveness and Sex Role," in *Marriage and Family Living*, August 1959.

REISMAN, D., GLAZER, N., and DENNEY, R., *The Lonely Crowd: A Study of the Changing American Character*, New York: Doubleday, 1953.

REISS, IRA L., *Premarital Sexual Standards in America*, New York: The Free Press of Glencoe, 1960.

——, "How and Why America's Sex Standards are Changing," in *Transaction*, Vol. 5, March 1968, pp. 26-32.

REMMERS, H. H., "Studies in Attitudes—Series I," in *Purdue University Studies in Higher Education*, No. 26, 1934.

——, "Studies in Attitudes—Series II," in *Purdue University Studies in Higher Education*, No. 31, 1936.

——, "Studies in Attitudes—Series III," in *Purdue University Studies in Highter Education*, No. 34, 1938.

——, *Introduction to Opinion and Attitude Measurement*, New York: Harper & Brothers, 1954.

REMY, JACQUES, and WOOG, ROBERT (presented by them), *Patterns of Sex and Love: A Study of the French Woman and Her Morals*, by the French Institute of Public Opinion, London: Anthony Gibbs and Phillips Ltd., A Panther Book, 1964.

ROBIE, W. F., *Love and Response*, New York: Belmont Productions, Inc., 1967.

ROSS, AILEEN D., *The Hindu Family in Its Urban Setting*, Canada: University of Toronto Press, 1961.

RUSSELL, BERTRAND. Quoted in *Dear Bertrand Russell*, London: Allen & Unwin, 1951.

——, *Marriage and Morals*, New York: Bantam Books, Inc., 1959.

ROUGEMENT, DENS DE, *Love in the Western World*, New York: Harcourt, Brace and World, 1940.

——, "The Crisis of the Modern Couple," in R.N. Anshen, *Family, Functions and Destiny*, New York: Harper Brothers & Co., 1949.

SAIT, UNA BERNARD., *New Horizons for the Family*, New York: The Macmillan Company, 1938.

SARTAIN, AARON QUINN, *et al.*, *Understanding Human Behaviour*, New York: McGraw-Hill Book Company, Inc., 1958.

SAXTON, LLOYD, "Love in a Paired Relation," in *The Individual, Marriage and the Family: Current Perspectives*, edited by Lloyd Saxton, Belmont, California: Wadsworth Publishing Company, Inc., 1970.

SCHOFIELD, MICHAEL, *The Sexual Behaviour of Young People*, Baltimore: Pengiun Books, Inc., 1968.

SCHUCKING, LEVIN L., *The Puritan Family*, London: Routledge & Kegan Paul, 1969.

SCHUR, EDWIN, M. (ed.), *The Family and the Sexual Revolution*, Bloomington: Indiana University Press, 1964.

SEWARD, GEORGENE H., *Sex and the Social Order*, London: Penguin Books Ltd., 1954.

SHAH, B. V., "Gujarat College Students and Selection of Bride," in *Sociological Bulletin*, Vol. XI, 1962, p. 132.

SHARAYU BAL, and VANARASE, S. J., *Attitude of College Girls Towards Marriage*," A Study in *Journal of the S. N. D. T. Women's University*, Bombay, Vol. I, 1966, pp. 19-31.

SHETH, JYOTSNA, "A Matter of Arrangement," in *Times Weekly*, col. 12, pp. 3, 5, March 1972, Sunday Magazine Section of *The Times of India*.

SIMONS, G. L., *Sex Tomorrow*, London: New English Library Limited, 1971.

SIMPSON, RICHARD L., and SIMPSON, IDA HARPER (eds.), *Social Organization and Behaviour*, New York: John Wiley & Sons, Inc., 1964.

SINGH, SUNEET VIR, "Is Marriage Outmoded?" in "Sunday World" of *The Hindustan Times*, 15 August 1971.

SIRJAMAKI, JOHN, "Cultural Configuration in the American Family," in *The American Journal of Sociology*, May 1948, p. 44.

SLATER, RALPH, "Narcissism Versus Self-Love," in paper prepared for *Auxiliary Council to the Association for the Advancement of Psychoanalysis*, 1953.

SMITH, M. BREWSTER., BRUNER, JEROME S., and WHITE, ROBERT W., *Opinions and Personality*, New York: John Wiley & Sons, Inc., 1964.

SORENSEN, S., "Is a Reform of Marriage Necessary?" in *Love, Marriage, Jealousy*, edited by A. Forbath, London: Pallas Publishing Co. Ltd., 1941.

SOROKIN, PITRIM A., "Altruistic Love," in *The Encyclopaedia of Sexual Behaviour*, by Albert Ellis and Albert Abarbanel, New York: Hawthorn Books, Inc., 1967, reprinted in Lloyd Saxton's *The Individual, Marriage and the Family: Current Perspectives*, Belmont, California: Wadsworth Publishing Company, Inc., 1970.

SPENCER, HERBERT, *Principles af Psychology*, 1855.

STEKEL, W., "The Art of Love," in *Love, Marriage, Jealousy*, edited by A. Forbath, London: Pallas Publishing Co. Ltd., 1941.

——, "The First Disappointments in Man and Woman," in *Love, Marriage, Jealousy*, edited by A. Forbath, London: [illegible] Publishing Co. Ltd., 1941.

STEPHENS, WILLIAM N., *The Family in Cross-Cultural Perspecti*
New York: Holt, Rinehart and Winston, 1963.

STOKES, WALTER R., and MACE, DAVID R., "Premarital Sex
Behaviour," in *Marriage and Family Living*, August 1953.

STONE, H. M., and STONE, A. S., *A Marriage Manual: A Practi Guide-book to Sex and Marriage* (rev. ed.), New York: Sim and Schuster, 1952.

STORR, ANTHONY, *The Integrity of the Personality*, Harmon worth: Penguin Books, Inc., 1963.

——, *Sexual Deviation*, Harmondsworth: Penguin Books, In 1964.

SULLIVAN, HARRY STACK, *Conceptions of Modern Psychiat* Washington D. C.: William Alanson White Psychiatric Foun tion, 1947.

SWANSON, G. E., "Routinization of Love: Structure and Proc in Primary Relations," in S. Klausner (ed.), *The Quest for S Control*, New York: The Free Press of Glencoe, pp. 160-2 1965.

TAIETZ, PHILIP, "Conflicting Group Norms and the 'Third' Pers in the Interview," in *American Journal of Sociology*, Vol. 1962, pp. 97-104.

"Teen-Agers and Sex: A Student Report," in *Seventeen* Magazi 17 July 1967 issue, published, New York: Triangle Publi tions, Inc.

THOMAS, JOHN L., *The American Catholic Family*, New Jers Prentice-Hall, 1956.

THOMAS, W. I., and ZNANIECKI, F., *The Polish Peasant in Eur and America*, Boston: R. C. Badger, 1918.

THURSTONE, L. L., "Comment," in *American Journal of Sociolo* Vol. 52, 1946, pp. 39-40.

TODD, ARTHUR JAMES, *The Primitive Family*, New York: Putna 1913.

TRUXAL, ANDREW G., and MERRIL, FRANCES E., *The Family American Culture*, New Jersey: Prentice-Hall, 1947.

TURNER, RALPH H., *The Family Interaction*, New York: J Wiley & Sons, Inc., 1970.

VATSYAYANA, *The Kama Sutra* (translated), Delhi: Rajkamal, 19

VEROFF, JOSEPH., and FELD, SHEILA, *Marriage and Work America*, New York: Van Nostrand Reinhold Company, 197

VIDAL, F., "Love, the Impulsive Instinct," in *Love, Marriage, Jealousy*, edited by A. Forbath, London: Pallas Publishing Co. Ltd., 1941.

VIVEKANANDA, SWAMI, *Complete Works of Swami Vivekananda*, Almora: Advaita Ashrama, Vol. No. IV, 1946, 4th edition.

——, *Our Woman*, Reprints Almora: Advaita Ashrama, 1953.

WALLACE, IRVING, *The Chapman Report*, London: Pan Books Ltd., 1962.

WALLER, WILLARD, *The Family*, New York: Dryden, 1938.

WALSH, ROBERT HILL, "A Survey of Parents and Their Own Children's Sexual Attitudes," in *Dissertation Abstracts International*, A-Humanities and Social Sciences, 1970, p. 1397-A.

WESTERMARCK, EDWARD, *The History of Human Marriage*, Macmillan Company, Vol. I, 1925.

——, *The Origin and Development of Moral Ideas*, Vol. II, 1928, a.

——, *The Future of Marriage*, New York: Events Publishing Company, Inc., 1928, b.

——, *Future of Marriage in Western Civilization*, London: Macmillan, 1936.

WHITEHURST, ROBERT N., "Extramarital Sex: Alienation or Extension of Normal Behaviour," in *Extramarital Relations*, edited by Gerhard Neuback, New York: Prentice-Hall, 1969.

WHITEHURST, ROBERT N., and PLANT, BARBARA, "A Comparison of Canadian and American University Students Reference Groups, Alienation and Attitudes Towards Marriage," in *International Journal of Sociology of the Family*, Vol. I, No. I. March 1971.

WHITE, R. K., "Value and Analysis: A Quantitative Method for Describing Qualitative Data," in *Journal of Social Psychology*, Vol. XIX, 1944, pp. 351-58.

WINCH, ROBERT F., *The Modern Family*, New York: Holt, Rinehart and Winston, 1952.

YOUNG, PAULINE V., *Scientific Social Surveys and Research*. 3rd edition, New Jersey: Prentice-Hall, 1956.